

प्रमुख योग उपनिषदों में योग तत्त्व: आधुनिक परिप्रेक्ष्य
के सन्दर्भ में



कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच.डी. (संस्कृत)

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

कला-संकाय

शोधार्थी

हेमराज पलसानिया

पंजीयन क्रमांक- (RS/3221/22)

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. प्रतिभा किरण

आचार्य

संस्कृत विभाग

राजकीय महाविद्यालय, बूंदी (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

(राजस्थान) - 324005

भारत

मार्च, 2026

शोध निदेशालय

कोटा विश्वविद्यालय

एम.बी.एस. मार्ग, कोटा (राजस्थान)-324005

फोन नम्बर : 0744-2471037



Directorate of Research

University of Kota

MBS Marg, KOTA (Rajasthan)-324005

Phone No.: 0744-2471037

CERTIFICATE

I feel great pleasure in certifying that the Ph.D. thesis entitled "**प्रमुख योग उपनिषदों में योग तत्त्व : आधुनिक परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में**" submitted by **Mr. Hemraj Palsania, Registration No. (RS/3221/22)** to the University of Kota in the partial fulfillment of the requirements for the award of the degree of Doctor of Philosophy is based on the research work carried out under my guidance.

He has completed the following requirements as per UGC Regulations and research ordinance of the University:

- (a) Satisfactory Completion of the Ph.D. Course Work.
- (b) Submission of Half Yearly Progress Reports.
- (c) Fulfilment of residential requirement of the Research Centre (*Minimum 200 Days*).
- (d) Presentation of research work before the Departmental Committee.
- (e) Publication of at least one research paper in the referred research journal of national and international repute.
- (f) Two paper presentations in the Conferences/ Seminars.

I recommend the submission of the Ph.D. thesis and certify that it is fit to be evaluated by the examiners.

Date:

Place:

Dr. Pratibha Kiran

Research Supervisor

शोध निदेशालय

कोटा विश्वविद्यालय

एम.बी.एस. मार्ग, कोटा (राजस्थान)-324005

फोन नम्बर : 0744-2471037



Directorate of Research University of Kota

MBS Marg, KOTA (Rajasthan)-324005

Phone No.: 0744-2471037

DECLARATION

I, **Mr. Hemraj Palsania, Registration No. (RS/3221/22)**, hereby certify that the research work presented in my Ph.D. thesis entitled "**प्रमुख योग उपनिषदों में योग तत्त्व : आधुनिक परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में**" which is carried out by me under the supervision of supervisor **Dr. Pratibha Kiran, Professor, Department of Sanskrit, Govt. College, Bundi (Rajasthan)** and submitted in the partial fulfillment of the requirement for the award of the degree of Doctor of Philosophy of the University of Kota, represents my ideas in my own words and where others' ideas or words have been included in this thesis, I have adequately cited and referenced the original sources.

The work presented in this thesis has not been submitted elsewhere for the award of any degree or diploma from any other institution or university in India or abroad. I declare that I have adhered to all the principles of academic honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea / data / fact / source in my submission.

I understand that any violation of the above will cause for disciplinary action by the University and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited or from whom proper permission has not been taken when needed.

Date:

(Hemraj Palsania)

Place:

Research Scholar

This is to certify that the above statement made by **Mr. Hemraj Palsania, Registration Number: (RS/3221/22)** is correct to the best of my/our knowledge.

Date:

Dr. Pratibha Kiran

Place:

Research Supervisor

शोध निदेशालय

कोटा विश्वविद्यालय

एम.बी.एस. मार्ग, कोटा (राजस्थान)-324005

फोन नम्बर : 0744-2471037



Directorate of Research

University of Kota

MBS Marg, KOTA (Rajasthan)-324005

Phone No.: 0744-2471037

Anti-Plagiarism Certificate

It is certified that the Ph.D. thesis entitled "प्रमुख योग उपनिषदों में योग तत्त्व :

आधुनिक परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में" submitted by **Mr. Hemraj Palsania**, Registration No.

(RS/3221/22) has been examined with the anti-plagiarism tool.

We undertake that:

- The thesis has significant new work/knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation mark and duly referenced.
- The work presented is original and own work of the author *i.e.* there is no plagiarism. No ideas, processes, results or words of others have been presented as the author's own work
- There is no fabrication of data or results which have been compiled and analyzed.
- There is no falsification by manipulating research materials, equipment or processes, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented in the research record.
- The thesis has been checked by using **DrillBit** software and found within the limits as per UGC plagiarism policy and instructions issued from time to time.

Report is also enclosed along with this Ph.D. thesis.

Date :

Place :

Hemraj Palsania

Research Scholar

Date :

Place :

Dr. Pratibha Kiran

Research Supervisor



The Report is Generated by DrillBit Plagiarism Detection Software

Selected Language

Hindi

Submission Information

Author Name	Hemraj Palasania
Title	PRAMUKH YOGA UPANISHADON MEN YOGA TATTWA
Paper/Submission ID	5211102
Submitted by	pumachandra9414@gmail.com
Submission Date	2026-02-02 16:45:46
Document type	Thesis

Result Information

Similarity	6%

A Unique QR Code use to View/Download/Share Pdf File



आभार

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ॥

योगात्संजायते ज्ञानं ज्ञानाद् योगः प्रवर्तते।

योगज्ञानाभियुक्तस्य प्रसीदति महेश्वरः॥

सर्वप्रथम चराचर जगत् के नियन्ता परमपिता परमेश्वर को कोटि-कोटि नमन करता हूँ। जिनकी असीम अनुकम्पा से मैं विद्वज्जनों का सान्निध्य व सहयोग पाकर यह शोध कार्य सम्पन्न कर सका।

जीवन के अस्तित्व आधार तथा मेरी प्रत्येक उपलब्धि के उत्प्रेरक सर्वतीर्थमयी माता श्रीमती धापा देवी व सर्वदेवमय पिता श्री बन्ना लाल जाट को कृताञ्जलि प्रणाम निवेदित करता हूँ। आपके ममत्व और वात्सल्य की शीतच्छाया ने शोधकार्य के दौरान प्रत्येक विषम परिस्थितियों को मेरे अनुकूल बनाया अतः मैं अपने शोध प्रबन्ध को देवतुल्य माता-पिता के असीम स्नेह एवं सहयोग के प्रति समर्पित करता हूँ। मैं आपके स्वस्थ एवं दीर्घायु जीवन की ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ।

सौम्या, सहज एवं उदारमना शोधनिर्देशिका डॉ. प्रतिभा किरण (आचार्य) को कोटिशः नमन एवं धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। आपके सरल स्वभाव एवं सहज निर्देशन का ही परिणाम है कि मेरा शोधकार्य समयावधि में निर्विघ्न पूर्णता की ओर अग्रसर हो पाया है। शोधकार्य में आपने मुझे पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की जिससे कि मैं इस शोध विषय के साथ न्याय कर पाया। मेरे ऊपर आपके अप्रतिम विश्वास ने मुझे इस शोध कार्य को उचित रीति से पूरा करने का साहस व उत्साह प्रदान किया। आपके प्रति आभार के लिए मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं हैं, यही आशा है कि आपका स्नेह व आशीर्वाद सदैव बना रहे। मैं परमात्मा से आपके उत्तम स्वास्थ्य की कामना करता हूँ।

शोधकेन्द्र, राजकीय महाविद्यालय बूँदी का मैं सदैव ऋणी हूँ, जिसने मुझे वह वातावरण प्रदान किया जिसमें मैं सहजता से अपना शोध कार्य पूर्ण कर सका।

संस्कृत विभाग, बूँदी कॉलेज के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनका समय-समय पर अमूल्य परामर्श और सहयोग प्राप्त होता रहा। विशेष रूप से विभागाध्यक्ष, डॉ. पूर्णचन्द्र उपाध्याय के प्रति हृदय के अन्तस्तल से आभार व्यक्त करता हूँ। आपने हमेशा व्यस्तताओं के रहते हुए भी मेरी समस्याओं को सुना तथा

उनका निराकरण सहयोगी भाव से किया। आपके गम्भीर चिन्तन ने शोध कार्य के प्रति मेरी समझ को बनाने में महत्त्वपूर्ण एवं अवर्णनीय योगदान दिया।

मैं अपनी सहधर्मिणी श्रीमती देवन्त कुमारी (प्राध्यापक, राज. विज्ञान) के सजकतापूर्ण सहयोग और अप्रतिम स्नेहिल त्याग के लिए चिर ऋणी हूँ। आपने पारिवारिक व राजकीय सेवा के दायित्वों का सम्यक् निर्वहन करते हुए मुझे पारिवारिक दायित्वों से मुक्त रखा तथा आपके स्नेहिल वचनों ने मुझे शोध कार्य के शीघ्र लेखन हेतु हमेशा प्रेरित किया। आपके अपरिमित सहयोग व स्नेह ने मुझे जीवन के प्रत्येक मोड़ पर सम्बल प्रदान किया है। आपके प्रोत्साहन, मानसिक सम्बल और प्रभूत सहयोग से मैं यह शोध जैसा श्रमसाध्य कार्य द्विगुणित उत्साह के साथ कर सका। मुझे बौद्धिक बनाए रखने के लिए आपने स्वयं के हितों की उपेक्षा की इसके लिए मैं सदैव आपका ऋणी रहूँगा।

शोध कार्य के दौरान पुत्री अवेक्षा व पुत्र हेमांग मेरे भावनात्मक सम्बल रहे। आपसे मुझे नई स्फूर्ति और ऊर्जा मिलती रही जिससे तनावरहित होकर मैं अपना शोधकार्य सुचारु रूप से पूर्ण कर सका। आप दोनों को स्नेहाशीष प्रदान करते हुए आपके उज्ज्वल भविष्य एवं दीर्घायु की मैं ईश्वर से कामना करता हूँ।

राजकीय सेवा के दौरान संस्था प्रधान एवं साथी-सहयोगियों का सहयोग रहा उनके प्रति कृतज्ञ हूँ। विशेष रूप से डॉ. नरेश कुमार मीना (प्राचार्य), सहायक आचार्य डॉ. भानाराम जाट व श्री प्रकाशचन्द्र ढबास, वरिष्ठ सहायक श्री रविन्द्र सिंह शेखावत तथा कम्प्यूटर अनुदेशक श्री महेश टेलर का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मार्गदर्शन के साथ-साथ मुझे निरन्तर प्रोत्साहित किया है।

डॉ. ज्योति गुप्ता (सहायक आचार्य, संस्कृत) का हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। आपने अपने महत्त्वपूर्ण सुझावों संशोधन कार्य व शोध प्रारूप में आने वाली समस्याओं का समाधान कर शोध कार्य हेतु सदैव मेरा उत्साहवर्धन किया। अभिन्न मित्र डॉ. हेमन्त चतुर्वेदी, डॉ. शक्ति कुमार पारीक, राकेश गोरा व राजकुमार जाट (सीआरपीएफ) का आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके स्नेहिल सहयोग से शोधकार्य की सूक्ष्म त्रुटियों को दूर कर सका। मैं कोटा विश्वविद्यालय, कोटा का आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने शोधार्थी के रूप में मेरा चयन कर मुझे शोध का अवसर प्रदान किया।

टंकण कार्य के लिए श्री मनमोहन दाधीच का आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने शोध कार्य को इतना शुद्ध, स्पष्ट, आकर्षक व शीघ्र टंकित किया। मैं अपने समस्त

गुरुजनों, मित्रों, शुभेच्छुकों व प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करने वालों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

आशा है कि प्रस्तुत शोध कार्य जनसामान्य व योग क्षेत्र में शोध कर रहे शोधार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

अन्त में विद्वज्जनों के समक्ष शोध प्रबन्ध उपस्थापित करते हुए विनयपूर्वक निवेदन है कि शोध कार्य में यथाशक्य पूर्ण मनोयोग एवं निष्ठा उपरान्त भी यदि अनभिज्ञता, टंकणसम्बन्धी अथवा अनवधानवश त्रुटियाँ रह गई हों तो मैं क्षमा प्रार्थी हूँ आशा है मुझे मेरी त्रुटियों से अवगत करवाकर नवीन दिशा प्रदान करेंगे।

दिनांक

शोधार्थी
(हेमराज पलसानिया)

प्राक्कथन

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।

आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥

यः कश्चित् कस्यचिद्धर्मो मनूना परिकीर्तितः।

स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥ (मनुस्मृति 2/6-7)

वेद ऋषि-मस्तिष्क से प्रादुर्भूत ऐसे नितान्त आदिकालीन प्रामाणिक ग्रन्थ हैं, जो विश्व की अमूल्य निधि हैं। सर्वज्ञानमय एवं सभी ज्ञान-विज्ञान के प्रवृत्ति स्रोत वेद भारतीयों के सनातन चक्षु हैं। वेद के दो विभाग हैं - मन्त्र और ब्राह्मण। मन्त्रों के संग्रह का नाम संहिता है और मन्त्रों के विनियोग आदि विषयों को बतलाने वाले ग्रन्थ ब्राह्मण ग्रन्थ कहलाते हैं। ब्राह्मणों का अन्तिम भाग बहुधा आरण्यक होता है और आरण्यकों का अन्तिम अंश ही उपनिषद् हैं, यही कारण है कि उपनिषद् को वेदान्त कहा जाता है। उपनिषदों में वैदिक ज्ञान का सार तत्त्व निहित है। इन्हें वैदिक वाङ्मय का शिखर माना गया है। औपनिषदिक ज्ञान वैदिक काल से ही मनुष्यों को अनुप्राणित करता रहा है। उपनिषद् आत्म-परमात्म विषयक ज्ञान की अक्षय निधि हैं। इनकी ज्ञान साधना से आत्म-परमात्मा को सम्यक् प्रकार से तत्त्वतः जाना और समझा जा सकता है। योगविद्या के द्वारा मनुष्य आत्म-परमात्मा में साम्य स्थापित करते हुए तादात्म्य रूप में विलीन होने की प्रेरणा प्राप्त करता है तदनन्तर योगान्तर्गत आत्म-निरीक्षण विधि द्वारा स्वात्म में परमात्म दर्शन करता है। मानव जीवन के चरम लक्ष्य में योग की महत्ता को समझकर ही प्रतिपादित धर्म में इसे प्रमुख स्थान दिया व मानव को योगमय जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दी।

वेद, वेदांग, दर्शन, उपनिषद्, पुराण, गीता आदि सभी धर्मग्रन्थ योग में आत्मानुभूति के ही दिग्दर्शन हैं। ऋषियों ने आत्मकल्याण और लोककल्याण के सन्मार्ग का अनुसन्धान समाधिस्थ अवस्था में योगारूढ़ होकर ही किया। वेदों में कर्म उपासना और ज्ञान के नाम से योग का वर्णन किया गया है। उपनिषदों में भी योग विषयक वर्णन मिलता है जैसा कि योग का महत्त्व श्वेताश्वतरोपनिषद् में इस प्रकार वर्णित किया गया है -

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः।

प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥ (श्वेता. 2/12)

अर्थात् योगाग्निमय शरीर को प्राप्त कर लेने वाले योगी में न तो रोग उत्पन्न होते हैं, न बुढ़ापा आता है और न ही उसकी मृत्यु होती है। सच्चे अर्थों में योग मानव को स्वस्थ एवं नीरोग रखते हुए संसाररूपी भवसागर को तैर कर पार करने के लिए नौका का कार्य करता है। वर्तमान परिदृश्य में योग व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, सामाजिक, आध्यात्मिक प्रक्रियाओं और क्षमताओं को विकसित करने का एक आधुनिक चिकित्सकीय उपाय है। विशेष रूप से योग विभिन्न मानसिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं जैसे - तनाव, चिन्ता, कुण्ठा, अवसाद, असुरक्षा, भग्नशा तथा भावात्मक सुरक्षा आदि से निजात पाने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण, प्रभावकारी एवं बेशकीमती औषधि है। योग व्यक्ति को अपने शरीर, मन एवं आत्म नियन्त्रण रखने में सहायता प्रदान करता है। यह एक समग्र मार्ग है, जो व्यक्ति के मन को शान्ति और आन्तरिक प्रसन्नता की ओर ले जाता है। योग एक ऐसी विद्या है जिसमें वाद-विवाद का कोई स्थान नहीं है। आध्यात्मिक उन्नति, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए योग की आवश्यकता व महत्त्व को प्रायः सभी ने एकमत और मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। आज सम्पूर्ण विश्व 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मनाकर योग के महत्त्व को समझ रहा है, जो निश्चित ही महर्षियों द्वारा प्रतिपादित योग के आध्यात्मिकता के साथ-साथ सांसारिक महत्त्व को भी दर्शाता है तथा तत्समय व्याख्यायित योग न केवल वर्तमान में अपितु मानव अस्तित्व के रहने तक प्रासंगिक रहेगा। योग की महत्ता व उपयोगिता को जानकर ही हमारे ऋषि-महर्षियों ने मुख्य उपनिषदों के अतिरिक्त योगविद्या को प्रधान विषय मानकर योगोपनिषदों की रचना की। जिनमें योगतत्त्व की विशद व व्यापक मीमांसा प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार वैदिक वाङ्मय, पुराण, महाभारत, दर्शन, पातञ्जल योग सूत्र, गीता, शिव संहिता, योगवाशिष्ठ, हठयोगप्रदीपिका, घेरण्डसंहिता आदि में योगविद्या की विभिन्न विधाओं यथा कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, लययोग, राजयोग, ध्यानयोग, मन्त्रयोग, हठयोग, जपयोग, कुण्डलिनी योग आदि को व्याख्यायित कर उनकी उपयोगिता पर विस्तृत चर्चा की गई है। इन ग्रन्थों पर व्यापक रूप से शोधकार्य किए जा चुके हैं और किए जा रहे हैं अतः योग उपनिषदों पर भी वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शोध किया जाना आवश्यक है। योग उपनिषदों को समग्र रूप से जानने, व्याख्यायित करने व आधुनिक सन्दर्भों में विवेचित करने के साथ ही उनके व्यावहारिक पक्षों पर उचित अनुसन्धान की महती आवश्यकता है।

आधुनिक भौतिकवादी असंतुलित जीवनशैली में प्रस्तुत शोध विषय की उपादेयता एवं आवश्यकता और अधिक बढ़ जाती है कि किस प्रकार ऋषि-मुनियों ने शुद्ध, अल्प, कालास्थायी, ससीम, भौतिक जीवन से ऊपर उठकर महान् शाश्वत् एवं असीम अनन्त जीवन को प्राप्त किया। आज औपनिषदिक योगविद्या का प्रचार-प्रसार कर व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के साथ-साथ विश्व का कल्याण भी किया जा सकता है। उपर्युक्त इन्हीं चिन्तनों एवं विचारों के आलोक में प्रस्तुत शोध विषय का चयन शोधार्थी द्वारा किया गया है।

साहित्य समीक्षा -

साहित्य समीक्षा या पुनर्वेक्षण प्रत्येक शोध प्रक्रिया का अतिमहत्त्वपूर्ण चरण होता है। सम्बन्धित साहित्य समीक्षा से तात्पर्य शोध समस्या से सम्बन्धित पुस्तकों, शोधपत्रों, पत्र-पत्रिकाओं, शोधप्रबन्धों आदि स्रोतों से है, जिनके अध्ययन से शोध समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रूपरेखा तैयार करने व शोधकार्य को गति प्रदान करने में सहायता मिलती है।

प्रस्तुत शोध कार्य के शीर्षक, प्रस्तावना, उद्देश्यों एवं विविध आयामों को ध्यान में रखकर पुस्तकों, शोध पत्रों, शोधगंगा, शोधगंगोत्री इत्यादि स्रोतों के माध्यम से प्रस्तुत शोध कार्य से सम्बन्धित साहित्य का पुनर्वेक्षण करने से उपलब्ध कतिपय पूर्ववर्ती शोधकार्यों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

- ❖ सैनी नेहा रानी, गौतम रूद्रदीप तथा प्रजापति धवल, “योग उपनिषदों में बन्ध एवं उनकी वैज्ञानिक विवेचना” शोधपत्र IJCRT.ORG VOL-10, ISSUE 1, JAN 2022 में योग उपनिषदों में वर्णित बन्ध तत्त्व का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत कर प्रत्येक बन्ध से होने वाले लाभ को बताकर बन्धों की वैज्ञानिकता सिद्ध की है।
- ❖ चौहान नम्रता, “योगोपनिषदों में प्रणव की अवधारणा : एक विवेचनात्मक अध्ययन,” शोध कार्य, योग विभाग, राँची विश्वविद्यालय, 2018-19 में शोधार्थी द्वारा योग उपनिषदों में प्रणव तत्त्व की अवधारणा को वर्णनात्मक व विवेचनात्मक प्रविधि द्वारा स्पष्ट किया गया है।
- ❖ सिंह रणजीत, “चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा : एक विवेचनात्मक अध्ययन (योगोपनिषदों के विशेष परिप्रेक्ष्य में)”, शोध कार्य, योग विभाग, राँची

विश्वविद्यालय, 2018-19 में शोधार्थी द्वारा योगोपनिषदों में चक्र और कुण्डलिनी की अवधारणा को वर्णनात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

❖ कुशवाह जयराम, “योगोपनिषदों में मुद्राओं के स्वरूप का विवेचनात्मक अध्ययन”, एम.फिल, योग विभाग, राँची विश्वविद्यालय, 2018-19 में योगोपनिषदों में वर्णित केवल मुद्राओं के स्वरूप को वर्णनात्मक विधि द्वारा विवेचित किया गया है।

❖ चौधरी लक्ष्मी “योगोपनिषदों में प्राण की अवधारणा एक अध्ययन”, एम.एस.सी., (YHH) राँची विश्वविद्यालय, 2018-19 में योगोपनिषदों में प्राण की अवधारणा को स्पष्ट किया है।

❖ विद्यालंकार सुभाष, “योग उपनिषदः” पुस्तक, खण्ड दो, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, 2018 में लेखक ने बीस योग उपनिषदों का मूल संस्कृत श्लोक तथा हिन्दी अनुवाद के साथ विद्यालंकृता हिन्दी व्याख्या श्लोकानुक्रमणिका सहित बताई है।

❖ रमेश कुमार, “उपनिषदों में योग का स्वरूप” शोध पत्र NJHSR 01 (20) 2018 में मुख्य उपनिषदों के साथ-साथ योग उपनिषदों में योग के स्वरूप को संक्षेप में प्रस्तुत किया है।

❖ अनन्त भारती परमहंस स्वामी, “योग उपनिषद् संग्रह” पुस्तक, चौखम्बा ओरियन्टलिया दिल्ली, 2015 में लेखक ने योग उपनिषदों के मूल संस्कृत श्लोकों का योग प्रभाकर भाष्य सहित हिन्दी अनुवाद किया है।

❖ कोटक बी.हीना, “Yoga Upanisads : A Study” शोध कार्य, महाराज शिवाजीराव विश्वविद्यालय बडौदा, 2003 में शोधार्थी ने सात अध्यायों में बीस योग उपनिषदों का विश्लेषणात्मक व आलोचनात्मक अध्ययन कर अन्य यौगिक ग्रन्थों से तुलनात्मक अध्ययन किया है।

❖ प्रीता रानी, “औपनिषद् योग और पातञ्जल योग का तुलनात्मक अध्ययन” शोध कार्य, काशी विश्वविद्यालय, 1983 में बीस योग उपनिषदों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर पातञ्जलयोगसूत्र से तुलनात्मक अध्ययन किया है।

इसके अतिरिक्त योगदर्शन, सांख्यदर्शन, गीता, योगवाशिष्ठ तथा हठयोगिक ग्रन्थों पर अनेक शोधकार्य किए जा चुके हैं या किए जा रहे हैं। आज योग की उपयोगिता को देखकर विज्ञान, योग, संस्कृत तथा दर्शन विभागों में अनुसन्धान कार्य चल रहे हैं।

पूर्ववर्ती शोध कार्यों के अन्वेषण से यह स्पष्ट है कि योग उपनिषदों का विवेचनात्मक अध्ययन, अन्य यौगिक ग्रन्थों से तुलनात्मक अध्ययन या योग उपनिषदों में वर्णित केवल प्रणव, मुद्रा, चक्र, बन्ध, प्राण या कुण्डलिनी आदि विषयों के आधार पर विवेचनात्मक शोध कार्य हुए हैं किन्तु योग उपनिषदों की वर्तमान प्रासंगिकता को विशेष रूप से प्रकाशित करने वाला कोई भी शोधकार्य उपलब्ध नहीं हुआ।

अतः आवश्यकता है कि योग उपनिषदों के ज्ञान का एक गहन, व्यापक, महत्त्वपूर्ण तथा वस्तुनिष्ठ विश्लेषण किया जाए। इक्कीस योग उपनिषदों में योग तत्त्व का सम्यक् रूप से प्रतिपादन करने वाले अमृतनादोपनिषद् योगकुण्डल्युपनिषद् योगचूडामण्युपनिषद् त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् तथा योगतत्त्वोपनिषद् इन पाँच योग उपनिषदों का शोधकार्य हेतु शोधार्थी द्वारा चयन किया गया है ताकि इन योग उपनिषदों की गहन व विस्तृत विवेचना कर समकालीन प्रासंगिकता के सन्दर्भ में मूल्यांकन किया जा सके।

शोधार्थी द्वारा चयनित **“प्रमुख योग उपनिषदों में योग तत्त्व : आधुनिक परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में”** इस शीर्षक पर शोधपूर्णतया मौलिक व अभिनव है। यह शोध सामान्य पाठकों सहित योग पर शोध करने वाले गवेषकों के लिए भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

शोध कार्य के उद्देश्य -

- ❖ प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित योग तत्त्व का समीक्षात्मक तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन कर इनकी आधुनिक परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में उपयोगिता सिद्ध करना प्रस्तुत शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य है।
- ❖ प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित योग तत्त्व के स्वरूप व योग के विभिन्न आयामों का विवेचनात्मक व समीक्षात्मक अध्ययन करना।
- ❖ योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि व विकासक्रम को समुपस्थापित करना।
- ❖ प्रमुख योग उपनिषदों के योग तत्त्व की मीमांसा की विवेचना करते हुए इसके क्रियापरक पक्षों को स्पष्ट करना।
- ❖ प्रमुख योग उपनिषदों का अन्य यौगिक ग्रन्थों से तुलनात्मक व विश्लेषणात्मक अध्ययन कर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इनके योगतत्त्व की प्रासंगिकता को सिद्ध करना।

- ❖ योग सम्बन्धी विभिन्न भ्रान्तियों का निराकरण कर औपनिषदिक योग विद्या का वास्तविक व व्यापक स्वरूप प्रस्तुत करना।
- ❖ विभिन्न क्षेत्रों में व विभिन्न आयु वर्ग के व्यक्तियों के लिए योग उपनिषदों की उपादेयता को स्पष्ट करना।

शोध परिकल्पना -

प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित योग तत्त्व की भूमिका एवं वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता?

शोध प्रविधि -

प्रस्तुत शोध विषय से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण, विश्लेषण तथा व्यवस्थित कर शोध को उचित निष्कर्ष तक पहुँचाने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध की प्रकृति अन्वेषणात्मक एवं वर्णनात्मक है। प्रस्तुत शोध में नवीनता, सूक्ष्मता एवं पारदर्शिता लाने के लिए वर्णनात्मक विधि, समीक्षात्मक विधि, अन्वेषणात्मक विधि, तुलनात्मक विधि तथा विश्लेषणात्मक विधियों का प्रयोग किया गया है।

शोध परिसीमन -

प्रस्तुत शोध में योग उपनिषदों के अन्तर्गत अमृतनादोपनिषद्, योगकुण्डल्युपनिषद्, योगचूडामण्युपनिषद्, त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् तथा योगतत्त्वोपनिषद् इन पाँच योग उपनिषदों का चयन शोधकार्य हेतु किया गया है, जिन्हें इस शोध प्रबन्ध में प्रमुख योग उपनिषद् कहा गया है तथा अन्य तुलनात्मक यौगिक ग्रन्थों के अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीता, घेरण्ड संहिता एवं पातंजल योग सूत्र का चयन किया गया है।

शोध कार्य की उपादेयता -

- ❖ औपनिषदिक प्राचीन योग विद्या के अध्ययन का अवसर मिलेगा।
- ❖ जनसामान्य में योग के प्रति समादर भाव जाग्रत कर योगमयी जीवनशैली अपनाने हेतु प्रेरित करना।
- ❖ आधुनिक काल में प्रमुख योग उपनिषदों की प्रासंगिकता को सुस्पष्ट करना।

- ❖ योग क्षेत्र से जुड़े प्रबुद्ध वर्ग व योग जिज्ञासुओं के साथ-साथ शोधार्थियों, मनोचिकित्सकों व जन सामान्य हेतु योग के नवीन आयाम उपस्थापित करना व उनके लिए उपयोगी साहित्य उपलब्ध कराना।
- ❖ योग उपनिषदों की ज्ञान-परम्परा के प्रचार-प्रसार में प्रस्तुत शोध कार्य सहायक सिद्ध होगा।
- ❖ प्रस्तुत शोध कार्य मानसिक क्लेशों, शारीरिक दुःखों व भावात्मक विकारों के निराकरण हेतु चिकित्सा पूरक के रूप में उचित मार्ग प्रदान कर सकेगा।

शोधसार

प्रस्तुत शोध कार्य “प्रमुख योग उपनिषदों में योग तत्त्व: आधुनिक परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में” को अध्ययन सुविधा की दृष्टि से छः अध्यायों में विभाजित करते हुए अन्त में उपसंहार, सन्दर्भ ग्रन्थ सूची तथा परिशिष्ट भाग को प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अध्यायवार सार इस प्रकार है -

प्रथम अध्याय ‘उपनिषद् वाङ्मय:परिचय एवं महत्त्व’ में उपनिषद् का विवेचन करते हुए उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ, औपनिषदिक विचारों का उद्भव एवं विकास, उपनिषदों का रचनाकाल, संख्या, वर्गीकरण, प्रतिपाद्य विषय, भाषा एवं प्रतिपादन शैली तथा उपनिषदों के महत्त्व एवं प्रभाव को प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय ‘योग : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उद्देश्य एवं महत्त्व’ में योग का अर्थ व परिभाषा, योग का इतिहास एवं परम्पराएँ, योग का विकास एवं प्रमुख यौगिक ग्रन्थ, वेद में योग का स्वरूप, मुख्य उपनिषदों में योग तत्त्व, योग के विविध प्रकार तथा योग के उद्देश्य एवं महत्त्व को व्याख्यायित किया गया है।

तृतीय अध्याय ‘योग उपनिषद् : सामान्य परिचय’ में योग उपनिषद् का तात्पर्य, योग उपनिषदों का रचनाकाल, संख्या एवं वर्गीकरण करते हुए इक्कीस योग उपनिषदों का मन्त्र संख्या, उपक्रम, विषयवस्तु तथा उपसंहार के आधार पर संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है अन्त में योग उपनिषदों की भाषा व प्रतिपादन शैली का विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय ‘प्रमुख योग उपनिषदों में योग तत्त्व की मीमांसा’ नाम से अभिहित है। इस अध्याय में शोधार्थी द्वारा चयनित अमृतनादोपनिषद्, योगकुण्डल्युपनिषद्, त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, योगचूडामण्युपनिषद् तथा योगतत्त्वोपनिषद् इन पाँच योग उपनिषदों में योग तत्त्व की विस्तृत विवेचना व समीक्षा की गई है ताकि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इनकी प्रासंगिकता सिद्ध की जा सके।

पंचम अध्याय ‘प्रमुख योग उपनिषदों का अन्य यौगिक ग्रन्थों से तुलनात्मक अध्ययन’ में शोध कार्य हेतु चयनित पाँच प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित योग तत्त्व का पातञ्जल योगसूत्र, श्रीमद्भगवद्गीता तथा घेरण्ड संहिता के साथ तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक व समीक्षात्मक अध्ययन कर योग तत्त्व का साम्य-वैषम्य प्रतिपादित किया गया है ताकि प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित योग तत्त्व का और अधिक

व्यापक व समीक्षात्मक अध्ययन कर इनकी वर्तमान सन्दर्भ में उपयोगिता सिद्ध की जा सके।

षष्ठ अध्याय 'प्रमुख योग उपनिषदों की वर्तमान प्रासंगिकता' में प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित योग तत्त्व को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया गया है। विभिन्न योगाभ्यासों से होने वाले लाभ को बताते हुए आसन, मुद्रा, बन्ध, चक्र आदि के शीघ्र परिज्ञान व अवबोध हेतु इनको सचित्र उपस्थापित किया गया है। साथ ही आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अष्टांग योग, बन्ध, मुद्रा, कुण्डलिनी जागरण, षट्चक्र, ध्यान व अजपा जप की उपादेयता, यौगिक आहार व दिनचर्या से होने वाले लाभ, शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, आध्यात्मिक व सामाजिक स्वास्थ्य, नैतिक व चारित्र्यिक, शैक्षिक, आर्थिक, खेलकूद, एकता व सद्भाव के क्षेत्र में प्रमुख योग उपनिषदों की उपादेयता, बच्चों, किशोरों, वृद्धों व गर्भवती महिलाओं के लिए प्रमुख योग उपनिषदों की उपादेयता तथा विभिन्न रोगों के उपचार में उपयोगी योगाभ्यासों को वर्णित किया गया है।

अन्त में उपसंहार के अन्तर्गत शोध कार्य का निष्कर्ष, सारांश व भावी शोध हेतु सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची के अन्तर्गत आधारग्रन्थ, सहायक ग्रन्थ, कोषग्रन्थ, शोधपत्र-पत्रिकाओं तथा अन्तर्जालीय सूची प्रस्तुत की गई है, जो इस शोध कार्य में बहुत सहायक रही हैं। परिशिष्ट भाग में शोधार्थी द्वारा शोधपत्रिकाओं में प्रकाशित शोधपत्र तथा संगोष्ठी में शोध पत्र प्रस्तुतीकरण का समावेश किया गया है।

प्रस्तुत शोध कार्य का मुख्य ध्येय है कि प्रमुख योग उपनिषदों में निहित योग तत्त्व का विवेचन करते हुए इसके व्यावहारिक पक्ष की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उपयोगिता व प्रासंगिकता को सिद्ध करना।

विषयानुक्रमणिका

शोध पर्यवेक्षक प्रमाण-पत्र	I
घोषणा प्रमाण-पत्र	II
साहित्यिक चोरी विरोधी प्रमाण-पत्र	III - IV
आभार	V - VII
प्राक्कथन	VIII - XIV
शोधसार	XV - XVI
विषयानुक्रमणिका	XVII - XIX
तालिका सूची	XX - XXI
चित्र सूची	XXII - XXIII
प्रथम अध्याय - उपनिषद् वाङ्मयः परिचय एवं महत्त्व	1-38
1.1 उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ	
1.2 औपनिषदिक विचारों का उद्भव एवं विकास	
1.3 उपनिषदों का रचना काल	
1.4 उपनिषदों की संख्या तथा वर्गीकरण	
1.5 उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय	
1.6 उपनिषदों की भाषा एवं प्रतिपादन शैली	
1.7 उपनिषदों का महत्त्व एवं प्रभाव	
द्वितीय अध्याय - योग : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उद्देश्य एवं महत्त्व	39-77
2.1 योग का अर्थ व परिभाषा	
2.2 योग का इतिहास एवं परम्पराएँ	
2.3 योग का विकास एवं प्रमुख यौगिक ग्रन्थ	
2.4 वेद में योग का स्वरूप	
2.5 मुख्य उपनिषदों में योग तत्त्व	
2.6 योग के विविध प्रकार	
2.7 योग का उद्देश्य एवं महत्त्व	

तृतीय अध्याय - योग उपनिषद् : सामान्य परिचय 78-144

- 3.1 योग उपनिषद् का तात्पर्य
- 3.2 योग उपनिषदों का रचना काल
- 3.3 योग उपनिषदों की संख्या एवं वर्गीकरण
- 3.4 योग उपनिषदों का संक्षिप्त परिचय
- 3.5 योग उपनिषदों की भाषा एवं प्रतिपादन शैली

चतुर्थ अध्याय - प्रमुख योग उपनिषदों में योग तत्त्व 145-222

की मीमांसा

- 4.1 अमृतनादोपनिषद् में योग तत्त्व
- 4.2 योगकुण्डल्युपनिषद् में योग तत्त्व
- 4.3 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में योग तत्त्व
- 4.4 योगचूडामण्युपनिषद् में योग तत्त्व
- 4.5 योगतत्त्वोपनिषद् में योग तत्त्व

पञ्चम अध्याय - प्रमुख योग उपनिषदों का अन्य 223-331

यौगिक ग्रन्थों से तुलनात्मक अध्ययन

- 5.1 पातञ्जल योग सूत्र और प्रमुख योग उपनिषद्
- 5.2 श्रीमद्भगवद्गीता और प्रमुख योग उपनिषद्
- 5.3 घेरण्ड संहिता और प्रमुख योग उपनिषद्

षष्ठ अध्याय - प्रमुख योग उपनिषदों की वर्तमान 332-423

प्रासंगिकता

- 6.1 यम-निमय की उपादेयता
- 6.2 विभिन्न आसनों की उपादेयता
- 6.3 यौगिक बन्धों की उपादेयता
- 6.4 विभिन्न यौगिक मुद्राओं की उपादेयता
- 6.5 प्राणायाम की उपादेयता
- 6.6 कुण्डलिनी जागरण व षट्चक्र के ध्यान से लाभ
- 6.7 प्रत्याहार की उपादेयता
- 6.8 धारणा, ध्यान व समाधि की उपादेयता
- 6.9 अजपा जप साधना की उपादेयता

- 6.10 यौगिक आहार व दिनचर्या से लाभ
- 6.11 विभिन्न क्षेत्रों में प्रमुख योग उपनिषदों की उपादेयता :-
 - 6.11.1 शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, आध्यात्मिक व सामाजिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में
 - 6.11.2 नैतिक व चारित्रिक क्षेत्र में
 - 6.11.3 शैक्षिक क्षेत्र में
 - 6.11.4 आर्थिक क्षेत्र में
 - 6.11.5 खेलकूद के क्षेत्र में
 - 6.11.6 एकता और सद्भाव के क्षेत्र में
- 6.12 विभिन्न आयुवर्ग के व्यक्तियों के लिए प्रमुख योग उपनिषदों की उपादेयता :-
 - 6.12.1 बच्चों के लिए
 - 6.12.2 किशोरों के लिए
 - 6.12.3 वृद्धों के लिए
 - 6.12.4 गर्भवती महिलाओं के लिए
- 6.13 विभिन्न रोगों के उपचार में प्रमुख योग उपनिषदों के उपयोगी योगाभ्यास :-
 - 6.13.1 वात, पित्त व कफ दोषों में उपयोगी
 - 6.13.2 अन्तःस्रावी ग्रंथियों को प्रभावित करने वाले योगाभ्यास
 - 6.13.3 विभिन्न रोगों के उपचार में उपयोगी योगाभ्यास

उपसंहार **424-429**

शोधसारांश **430-441**

सन्दर्भग्रन्थ सूची **442-449**

परिशिष्ट -

प्रकाशित शोध-पत्र

संगोष्ठी प्रमाण-पत्र

तालिका सूची

तालिका संख्या	तालिका शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.1	मैक्समूलर के अनुसार वैदिक रचना काल	6
1.2	बालगंगाधर तिलक के अनुसार वैदिक रचना काल	8
1.3	ऋग्वेद से सम्बन्धित उपनिषद्	13
1.4	शुक्ल यजुर्वेद से सम्बन्धित उपनिषद्	13
1.5	कृष्णयजुर्वेद से सम्बन्धित उपनिषद्	14
1.6	सामवेद से सम्बन्धित उपनिषद्	14
1.7	अथर्ववेद से सम्बन्धित उपनिषद्	14
1.8	श्रीराम शर्मा द्वारा विभाजित ज्ञानखण्ड में निबद्ध उपनिषद्	15
1.9	श्रीराम शर्मा द्वारा विभाजित ब्रह्मविद्या खण्ड में निबद्ध उपनिषद्	15-16
1.10	श्रीराम शर्मा द्वारा विभाजित साधना खण्ड में निबद्ध उपनिषद्	16-17
1.11	अड्यार लाइब्रेरी द्वारा 108 उपनिषदों के अतिरिक्त संगृहीत उपनिषद्	17-18
1.12	कल्याण उपनिषद् अंक में उल्लेखित 220 उपनिषदों की सूची	19-24
2.1	प्रमुख यौगिक ग्रन्थ सूची	54-55
4.1	दस वायु के स्थान व कार्य	180-181
4.2	प्राणायाम प्रकार, मात्रा व लक्षण	198
4.3	पञ्चमहाभूतों में धारणा का स्वरूप	211
4.4	योग प्रकार, अवस्था, साधन व परिणाम	213

5.1	घेरण्ड संहिता तथा प्रमुख योग उपनिषदों में धारणा की तुलना	293-297
5.2	घेरण्ड संहिता और प्रमुख योग उपनिषदों में प्राणायाम का स्वरूप	309
5.3	घेरण्ड संहिता और प्रमुख योग उपनिषदों में पञ्च वायु	310-312
5.4	घेरण्ड संहिता और प्रमुख योग उपनिषदों में पञ्च उपप्राण	312-313
6.1	बच्चों के लिए अनुशंसित योग प्रोटोकॉल	404-406
6.2	गर्भवती महिलाओं के लिए अनुशंसित योग प्रोटोकॉल	409-414

चित्र सूची

चित्र संख्या]	चित्र शीर्षक	पृष्ठ संख्या
4.1	पञ्चप्राण	105
4.2	तीन मुख्य ग्रन्थियाँ	169
4.2	दस नाड़ीयाँ	178
4.3	दस प्राण	180
4.4	पञ्च धारणा	185
4.5	षट् चक्र	188
4.6	तीन प्रमुख नाड़ियाँ	191
6.1	सिद्धासन	336
6.2	पद्मासन	337
6.3	सिंहासन	338
6.4	पश्चिमोत्तानासन	338
6.5	सुखासन	339
6.6	मयूरासन	340
6.7	मत्स्येन्द्रासन	341
6.8	गोमुखासन	342
6.9	वीरासन	342
6.10	योगासन	343
6.11	भद्रासन	343
6.12	वज्रासन	344

6.13	स्वस्तिकासन	345
6.14	बद्धपद्मासन	345
6.15	कुक्कुटासन	346
6.16	धनुरासन	347
6.17	मुक्तासन	348
6.18	बन्ध	349
6.19	महामुद्रा	353
6.20	महावेध मुद्रा	354
6.21	विपरीतकरणी मुद्रा	355
6.22	खेचरी मुद्रा	357
6.23	वज्रोली मुद्रा	358
6.24	षण्मुखी या योनि मुद्रा	359
6.25	नाडी शोधन प्राणायाम	363
6.26	सूर्यभेदन प्राणायाम	364
6.27	उज्जायी प्राणायाम	365
6.28	शीतली प्राणायाम	366
6.29	भस्त्रिका प्राणायाम	367
6.30	केवली प्राणायाम	368
6.31	प्रणव या उद्गीथ प्राणायाम	369

प्रथम अध्याय
उपनिषद् वाङ्मय : परिचय एवं महत्त्व

प्रथम अध्याय

उपनिषद् वाङ्मय : परिचय एवं महत्त्व

1.1 उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ

वैदिक वाङ्मय में उपनिषदों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैदिक संहिताओं, आरण्यक तथा ब्राह्मणग्रन्थों के दार्शनिक, सामाजिक तथा व्यावहारिक विचारों का सुस्पष्ट व विकसित रूप उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है। उपनिषद् तो वैदिक वाङ्मय के हीरकमणि हैं, जो आज भी हमारी आध्यात्मिक व भौतिक समस्याओं को अपने आलोक से दूर कर हमें परमतत्त्व का साक्षात्कार करवाते रहे हैं और करवाते रहेंगे।

उपनिषद् ज्ञानकोष हैं, जो व्यक्ति की सकल जिज्ञासाओं की परिपुष्टि एवं सत्य का दर्शन कराने में समर्थ हैं। ये ज्ञान के आदि स्रोत और विद्या के अक्षुण्ण भण्डार हैं। उपनिषदों को ब्रह्मविद्या, वेदान्त, रहस्यविद्या आदि नामों से जाना जाता है। उपनिषद् भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र इन तीनों को सामूहिक रूप से प्रस्थान त्रयी कहा जाता है। उपनिषद् प्रस्थानत्रयी में प्रथम प्रस्थान कहा गया है, क्योंकि यह भारतीय विचार शास्त्र का सर्वश्रेष्ठ उपजीव्य ग्रन्थ है। इसमें मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के साधन का उपदेश है।

उप तथा नि उपसर्गपूर्वक सद् धातु से क्विप् प्रत्यय कर उपनिषद् शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ होता है समीप बैठना अर्थात् गुरु के समीप (उप) बैठकर (निषद्य) प्राप्त किया गया ज्ञान। धातुपाठ के अनुसार सद् (सदलृ) धातु के तीन अर्थ होते हैं - विशरण (नाश), गति (प्राप्ति) तथा अवसादन (शिथिल होना)

इस प्रकार जो समस्त अनर्थों के उत्पादक सांसारिक क्रिया-कलापों का नाश करती है, संसार के कारणभूत अविद्या (माया) के बन्धन को शिथिल करती है और ब्रह्म का साक्षात्कार कराती है, उसे उपनिषद् कहते हैं -

“उपनिषादयति सर्वानर्थकरं संसारं विनाशयति, संसारकारणभूतामविद्यां च शिथिलयति, ब्रह्म च गमयति”¹।

शंकराचार्य उपनिषद् शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि - जो मनुष्य भक्ति एवं श्रद्धा के साथ आत्मभाव से ब्रह्मविद्या को प्राप्त करते हैं, यह विद्या

उनके जन्म-मरण, रोग आदि अनर्थों को नष्ट करती है और परब्रह्म को प्राप्त कराती है तथा अविद्या आदि संसार के कारणों को समूल नष्ट करती है, वह उप+नि पूर्वक सद् धातु का अर्थ स्मरण होने से उपनिषद् है।

“य इमां ब्रह्मविद्यामुपयन्त्यात्मभावेन श्रद्धाभक्तिपुरुःसरः सन्तस्तेषां गर्भजन्मजरारोगादिवर्गं विनाशयति परं वा ब्रह्म गमयति, अविद्यासंसारकारणं चात्यन्तमवसादयति विनाशयति, उपनिपूर्वस्य सादेरेवमर्थस्मरणात्”²

इस प्रकार शंकराचार्य ने उपनिषद् शब्द का मुख्य अर्थ ब्रह्मविद्या माना है। ब्रह्मविद्या को उपनिषद् कहा जाता है, क्योंकि यह ब्रह्म का साक्षात्कार कराती है तथा उपनिषदों में मुख्य रूप से इसी विद्या का वर्णन किया गया है। उप-सामीप्येन, नि-नितरां, प्राप्नुवन्ति परं ब्रह्म यया विद्यया सा उपनिषद् अर्थात् जिस विद्या से परब्रह्म का सामीप्य एवं तादात्म्य सम्बन्ध प्राप्त किया जाता है, वह उपनिषद् है।

वेद का अन्तिम भाग होने से उपनिषद् को वेदान्त भी कहते क्योंकि उपनिषदों में वेद का चरम तात्पर्य या सारभूतसिद्धान्त वर्णित है।

आचार्य पाणिनि ने “जीविकोपनिदावौपम्ये”³ सूत्र में उपनिषद् शब्द परोक्ष या रहस्य अर्थ में प्रयुक्त किया है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में युद्धकाल के गुप्त प्रयोगों की चर्चा में औपनिषद् शब्द का प्रयोग किया है। अमरकोश में धर्मरहस्युपनिषत् स्यात् अर्थात् उपनिषद् शब्द गूढ़ धर्म एवं रहस्य के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। इस प्रकार उपनिषद् शब्द का प्रयोग रहस्य अर्थ में भी किया गया है -

“गुह्या आदेशा”,⁴ “परं गुह्यम्”⁵

क्योंकि प्राचीन काल में उपनिषद् का अध्ययन-अध्यापन रहस् (एकान्त) स्थान में किया जाता था, अतः इसे रहस्य विद्या भी कहते हैं अर्थात् जिन ग्रन्थों में रहस्यात्मकज्ञान आत्मविद्या की चर्चा की जाती है उसे उपनिषद् कहते हैं।

पाश्चात्य विद्वान् जे.डब्ल्यू हौर के अनुसार उपनिषद् शब्द का अर्थ तपस् और ध्यान से प्राप्त किया गया रहस्यात्मक ज्ञान है। एकान्त व शान्त वातावरण में गुरु रहस्यज्ञान (गुह्यज्ञान) या अध्यात्मविद्या का चिन्तन किया करते थे तथा यह रहस्यात्मक ज्ञान सामान्य लोगों के लिए अभिप्रेत नहीं था बल्कि योग्य एवं विश्वासपात्र शिष्यों को ही दिया जाता था। जैसा कि कहा गया है -

“इदं वाव तज्ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रब्रूयात् प्रणाय्याय वान्तेवासिने”⁶।

पाल झ्यूसन ने भी उपनिषद् का अर्थ रहस्य विद्या माना है।

ई. सेनार्ट ने उपनिषद् शब्द का अर्थ गम्भीर ज्ञान प्राप्त करना माना है।

ओल्डनबर्ग ने उपनिषद् का अर्थ पूजा की एक पद्धति किया है। उनका पूजा से क्या तात्पर्य था यह स्पष्ट नहीं बताया जा सकता। लेकिन यदि पूजा को उपासना का पर्याय कहा जाए तो उपनिषद् का अर्थ उपासना भी हो सकता है। शंकराचार्य ने तैत्तिरीयोपनिषद् के भाष्य में उपनिषद् का अर्थ उपासना भी बताया है।⁷

उपनिषद् के लिए श्रुति शिखा, श्रुतिशिरः आदि शब्दों का भी प्रयोग किया गया है -

श्रुतिशिखोत्थाखण्डधीगोचरः⁸, श्रुतिशिरोवचनेषु⁹

मोतीलाल शर्मा भारद्वाज गौड ने 'उपनिषद् भाष्य भूमिका' में उपनिषद् का नियत अर्थ न मानकर व्यापक अर्थ स्वीकार करते हुए कहा है कि उपनिषद् शब्द का अर्थ विज्ञान सामान्य अथवा उपपत्ति है क्योंकि उपनिषद् का सम्बन्ध ज्ञानकाण्ड प्रधान आध्यात्मिक विद्या के साथ ही नहीं है अपितु ज्ञान, कर्म और उपासना इन तीनों के साथ भी है। उपनिषद् (ब्रह्मविद्या) वेद के सभी भागों (संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक) में अनुस्यूत है। अध्यात्म के चरम केन्द्र के ज्ञापक उपनिषद् के लिए ज्ञान की प्रधानता के कारण उपनिषद् शब्द का प्रयोग हुआ है।

महाभारत में वेदव्यास ने भी उपनिषद् का व्यापक अर्थ किया है। उन्होंने सत्य, दान एवं तप आदि में उपनिषद् शब्द का व्यवहार किया है।¹⁰

मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक Indian what can teachusमें लिखा है -"The upnishad are the sources of the Vedant Philosophy, a system in which human speculation seems to me to have reached it's very acme."

उपर्युक्त विभिन्न मतों की विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपनिषद् शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

1.2 औपनिषदिक विचारों का उद्भव एवं विकास

उपनिषद् अपने मूल अर्थात् वेद से अलग नहीं हैं, ये तो वैदिक विचारों का ही विस्तार और विकास हैं। उपनिषदों ने वैदिक धर्म को छोड़े बिना उसे एक सदाचार का पुट देने का प्रयास किया है। वेद में प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को आराध्य देव के रूप में मानकर इन देवताओं से सांसारिक वैभव वसुःख-सम्पत्ति की प्रार्थना की गई, इस प्रकार वेदविहित धर्म सुखोत्पादक प्रेयस् था। पर यह धर्म का हीनतर स्वरूप था। ब्राह्मणग्रन्थों में प्रतिपादित धर्म भी यज्ञपरक था। मानव का देवताओं से यान्त्रिक सम्बन्ध रहा, परन्तु उपनिषदों ने भौतिक जगत् व कर्मकाण्ड से परे आन्तरिक जगत् (आत्मा) की ओर प्रेरित किया। इस प्रकार उपनिषद् से धार्मिक जीवन के नवीन स्रोत

प्राप्त हुए, जो कि पूर्णतः आभ्यन्तर एवं आध्यात्मिक थे। ईश्वर का साक्षात्कार आध्यात्मिक पूजा द्वारा किया जाने लगा तथा दुःख निवृत्ति ही मानव जीवन का लक्ष्य रहा लेकिन उपनिषदों ने यज्ञपरक धर्म के प्रति उदासीन होकर उन याज्ञिक विधियों को स्वीकार कर उनमें सुधार या नये ढंग से दृष्टान्त रूप में यज्ञों की लाक्षणिक व्याख्या की है। उपनिषदों ने वैदिक सूक्तों के सांकेतिक द्वाैतपरक विचारों पर और अधिक बल देकर एवं विचारों के केन्द्र को बाह्य जगत् से दूर कर आन्तरिक जगत् की ओर उन्मुख किया तथा वैदिक कर्मकाण्ड के बाह्य स्वरूप से भी ऊपर उठकर विचारधारा को और अधिक उन्नत किया।

उपनिषद् का उद्देश्य परम सत्य की खोज करना रहा है। सभी उपनिषद् विभिन्न साधनों से सत्य को ही प्रकट करते हैं। ब्रह्म क्या है? सृष्टि कैसे बनी? आत्मा और ब्रह्म के बीच क्या सम्बन्ध है? ये सभी वैदिक विचार उपनिषदों के मुख्य दार्शनिक विचार हो गए। वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित यज्ञकर्मकाण्ड, अनुष्ठान तथा धार्मिक विश्वास मन को सन्तुष्ट करने में शायद विफल हो गए होंगे, इसलिए अधिक दार्शनिक विचारों की आवश्यकता महसूस हुई। परिणामस्वरूप अपने विचारों को बाह्य जगत् से हटाकर आन्तरिक जगत् की ओर मोड़ लिया।

उपनिषदों ने एक ही आन्तरिक जगत् आत्मतत्त्व को स्वीकार किया, जो सर्वशक्तिमान्, अनन्त, नित्य तथा अनिर्वचनीय है। इस प्रकार वेदों के अर्धेश्वररूपी देवताओं को दूर कर सत्यस्वरूप ब्रह्म सामने आया और सब कुछ उस पूर्ण आध्यात्मिक ब्रह्म में ही समाविष्ट हो गया। जैसा कि डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा है कि - “एक अन्य पक्ष ने भी उपनिषदों के भाव का निर्णय किया। उनका लक्ष्य भौतिक विज्ञान अथवा दर्शनशास्त्र न होकर समुचित जीवन था। उनकी अभिलाषा आत्मा को देह के बन्धन से मुक्त कराने की थी, जिससे कि वह परब्रह्म के साथ संयुक्त हो जाने का आनन्दमय उपभोग कर सकें। बौद्धिक शिक्षा जीवन की पवित्रता के एक उपयोगी सहायक के रूप में थी। इसके अतिरिक्त भूतकाल के लिए उपनिषत्कारों के मन में श्रद्धा का भाव भी था। वैदिक ऋषियों की मंगलमयी स्मृति के कारण भी उनके सिद्धान्तों पर आक्रमण करना एक अपवित्र कार्य होता। इस प्रकार उपनिषदों ने एक उदित हुए आदर्श दार्शनिक विज्ञान के साथ रूढ़िगत पुराने आस्तिकवाद की अनुकूलता स्थापित करने का प्रयत्न किया।”¹¹

इस प्रकार औपनिषदिक विचारों ने प्रकृति के देवताओं के स्थान पर दिव्य विचार के अमूर्त और प्रतीकात्मक अवतार को प्रकट किया। बहुदेवतावाद को पूर्ण के अंग के रूप में मानकर एक सर्वव्यापी दिव्यशक्ति ब्रह्म से सभी की उत्पत्ति और प्रलय माना जैसा कि तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म के बिना एक तिन्के को भी आग जला नहीं सकती और ना ही वायु उड़ा सकती है -

भीषास्माद्वातः पर्वते। भीषोदेति सूर्यः। भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चम इति।”¹²

वैदिकसंहिताओं व ब्राह्मणग्रन्थों में विभिन्न प्राकृतिक घटनाओं के पीछे कुछ दिव्य शक्तियाँ व विभिन्न प्राकृतिक देवताओं को कारण माना जबकि उपनिषदों ने विभिन्न घटनाओं के पीछे एक दिव्यशक्ति ब्रह्म को ही कारण माना। हालांकि वैदिक सूक्तों में एक केन्द्रीभूत शक्ति का भाव विद्यमान था। जैसा कि ऋग्वेद के 10.90 सूक्त में सम्पूर्ण सृष्टि की एक ही सत्ता के रूप में कल्पना, 10.121 सूक्त में सृष्टि के आरम्भ में स्वर्ग और पृथिवी को सहारा देने वाले प्राणियों के एकमात्र स्वामी के अस्तित्व का वर्णन, सूक्त 10.54.3, 10.77.2.4 तथा 10.81 में एकता की अवधारणा स्पष्ट रूप से बताई गई है, यही एकत्ववाद की अवधारणा धीरे-धीरे औपनिषदिक काल तक अद्वैतवाद में परिवर्तित हो गई। संहिताओं व ब्राह्मणग्रन्थों में कर्ममार्ग पर जोर दिया, परन्तु वास्तव में न आरण्यक और न ही उपनिषद् ने कर्ममार्ग की उपेक्षा की बल्कि इसे केवल ज्ञानमार्ग के तहत अपने में समाहित कर लिया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि उपनिषद् ब्राह्मण साहित्य के नवीनतम चरण से सम्बन्धित हैं। समय के साथ सामान्य रूचि उपचार की अनुष्ठान पद्धति से रूपक और फिर दार्शनिकता में स्थानान्तरित हो गई।

इसके अलावा यह भी माना जा सकता है कि ब्रह्माण्ड के प्रथम सिद्धान्त के रूप में आत्मा के सिद्धान्त का क्रमिक उदय ऋग्वेद और अथर्ववेद के सूक्तों से हुआ है। अन्य मत के अनुसार ब्राह्मणीय कर्मकाण्डों के विरोध में उपनिषद् विकसित हुए, जहाँ ज्ञान को संक्षिप्त शब्दों में व्यक्त किया गया। जो केवल विशिष्ट लोगो या दीक्षितों के द्वारा ही बोधगम्य थे तथा इसे मौखिक रूप से प्रसारित किया गया ।

संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् यह विभाजन केवल विषयवस्तु के अनुसार है। इनके विचार वेद के अनुरूप ही हैं। औपनिषदिक विचार संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक से प्रस्फुटित होकर उपनिषदों में पल्लवित और विकसित हुए। एक ग्रन्थ को पूर्ववर्ती ग्रन्थ का उन्नत ग्रन्थ कहा जा सकता है। जैसे - ब्राह्मण,संहिताओं के उन्नत ग्रन्थ हैं।आरण्यक ब्राह्मणों के उन्नत ग्रन्थ हैं तथा उपनिषद् आरण्यकों के उन्नत ग्रन्थ हैं।

1.3 उपनिषदों का रचना काल

उपनिषदों का रचनाकाल एक अत्यन्त जटिल प्रश्न है, इस प्रश्न के उत्तर के समय वैदिक कालीन उपनिषदों तथा परवर्ती उपनिषदों में पर्याप्त पार्थक्य रखना आवश्यक है। इसे ध्यान में रखते हुए उपनिषदों के रचनाकाल को जानने के लिए अनेक मत विद्वानों ने स्थापित किए हैं उनमें से कतिपय मत अधोलिखित हैं¹³ -

- (i) **परम्परागत भारतीय मत** - आस्तिक लोगों का मानना है कि वेदों का आविर्भाव परमात्मा से हुआ है। वेद सृष्टि के आरम्भ में विद्यमान थे, जिन्हें मन्त्रदृष्टा ऋषियों ने साक्षात्कृत कर हमें श्रुति परम्परा द्वारा प्रदान किया। उपनिषद् भी वेद के भाग हैं, अतः ये भी सृष्टि के आदि से ही विद्यमान हैं। इस मत के समर्थक महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा रघुनन्दन शर्मा हैं।
- (ii) **मैक्समूलर का मत** - मैक्समूलर ने गौतम बुद्ध के काल को आधार बनाकर वैदिक साहित्य का काल निर्धारित करने का प्रयास किया। उनके अनुसार वैदिक साहित्य का प्रारम्भ लगभग 1200 ई.पू. में हुआ। इनके अनुसार

ई.पू.	काल	रचना
1200 ई.पू. से 1000 ई.पू.	छन्दकाल	फुटकर वैदिक छन्द रचे गए।
1000 ई.पू. से 800 ई.पू.	मन्त्रकाल	वैदिक संहिताओं की रचना हुई।
800 ई.पू. से 600 ई.पू. -	ब्राह्मण काल उपनिषद् काल	ब्राह्मण ग्रन्थ अस्तित्व में आए। उपनिषद् काल में प्राचीन आरण्यक एवं प्राचीन उपनिषदों की रचना हुई।
600 ई.पू. से 400 ई.पू.	सूत्र काल	सूत्र ग्रन्थों का प्रणयन हुआ।

तालिका 1.1 मैक्समूलर के अनुसार वैदिक रचना काल

इस प्रकार मैक्समूलर 800 ई.पू. से 600 ई.पू. के काल को उपनिषद् साहित्य का रचनाकाल निर्धारित करते हैं, किन्तु मैक्समूलर के काल निर्धारण पर उस समय प्रश्न वाचक चिह्न लग गया जब बोगझकोई 1400 ई.पू. का मितानी अभिलेख प्राप्त हुआ। जिसमें इन्द्र, मित्र, वरूण, नासत्या आदि

ऋग्वैदिक देवों के नाम स्पष्टतः लिखित हैं। अन्ततः मैक्समूलर ने भी माना कि वैदिक साहित्य के काल निर्धारण का कोई भी प्रयास व्यर्थ ही है।

(iii) **डॉ. एम.हिरियन्ना का मत** - प्रसिद्ध दार्शनिक डॉ. मैसूर हिरियन्ना का विचार है कि उपनिषद् वस्तुतः वैदिक साहित्य के अंग नहीं हैं। वेद का मुख्य प्रयोजन विभिन्न देवों की उपासना करना था अतः संहिता भाग में देवताओं की स्तुतियाँ सङ्कलित हैं। आरण्यक उन यज्ञादि कर्मों की आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। यदि सावधानी से अवलोकन करें तो इस समग्र प्रक्रिया में उपनिषदों के दार्शनिक ज्ञान का स्थान नहीं है। वस्तुतः उपनिषद् वैदिक कर्मकाण्डों के विरुद्ध क्रान्ति का प्रतीक थे अतः उनका उदय संहिता के अति प्राचीन भागों के साथ ही हो गया था। कालान्तर में जब श्रुति परम्परा से आगत ग्रन्थों का संकलन किया गया था। तब तक इनके आरम्भ के प्रयोजन तथा समय को विस्मृत किया जा चुका था, इन्हें भी वैदिक साहित्य में स्थान प्राप्त हो गया। इस प्रकार उपनिषदों की रचना संहिता साहित्य के समानान्तर हुई होगी।

(iv) **बाल गंगाधर तिलक का मत** - तिलक ने ज्योतिष की गणना के आधार पर वेदों का रचनाकाल निर्धारित किया है, इन्होंने अपनी गणना का आधार वसन्त सम्पात को माना है। भारतीय ज्योतिषशास्त्र के अनुसार नक्षत्रों की संख्या 27 है। सूर्य का संक्रमण वृत्त 360^0 का है। समस्त नक्षत्रों की पारस्परिक दूरी समान नहीं है तथापि उनको समान मानकर 27 का भाग देने पर $13\frac{1}{3}^0$ प्रत्येक नक्षत्र की दूरी सिद्ध होती है। एक नक्षत्र को एक डिग्री पीछे हटाने में 72 वर्ष लगते हैं। इस प्रकार एक नक्षत्र को $13\frac{1}{3}^0$ पीछे हटाने में (अर्थात् दूसरे नक्षत्र के स्थान पर पहुँचने में) $72 \times 13\frac{1}{3}^0 = 960$ वर्ष लगते हैं। तिलक उपर्युक्त गणना को आधार मानते हुए ऋग्वेद के कतिपय मन्त्रों के आधार पर वसन्त सम्पात मृगशिरा नक्षत्र में मानते हैं तथा पुनः उसे आगे पुनर्वसु नक्षत्र तक ले जाते हैं। जैसा कि विगत अनुच्छेद से स्पष्ट है कि एक नक्षत्र की दूरी पीछे हटाने में 960 वर्ष का समय लगता है। वर्तमान में वसन्त सम्पात पूर्वा भाद्रपद नक्षत्र के चतुर्थ चरण में होता है। इस प्रकार मृगशिरा में वसन्त सम्पात मानने पर ऋग्वेद का रचनाकाल 6480 वर्ष पूर्व लगभग (6500 वर्ष पूर्व) अर्थात् 4500 ई.पू. में सिद्ध होता है। उपर्युक्त विधि के अनुसार यदि पुनर्वसु में वसन्त सम्पात का आधार हम ले तो लगभग 200 वर्ष और बढ़

जायेंगे अर्थात् लगभग 6500 ई.पू.। इसे तिलक ने सुविधा के लिए 600 ई.पू. मानकर वैदिक काल को निर्धारित करने का प्रयास किया। जो इस प्रकार है -

काल	ई.पू.	दृष्ट अथवा प्रणीत ग्रन्थ
अदिति काल	6000-4000	निविद मंत्र (गद्य-पद्यात्मक, याज्ञिक विधिवाक्य युक्त)
मृगशिरा काल	4000-2500	ऋग्वेद के अधिकांश सूक्त
कृत्तिका काल	2500-1400	चारों वेदों का संकलन, तैत्तिरीय संहिता एवं कतिपयब्राह्मण ग्रन्थ
अन्तिम काल	1400-500	उपनिषद्, सूत्रग्रन्थ एवं दर्शन ग्रन्थ

तालिका 1.2 बालगंगाधर तिलक के अनुसार वैदिक रचना काल

- (v) **डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् का मत** - डॉ. एस. राधाकृष्णन् का मत उपनिषदों के रचनाकाल ईसवी को सन् के आरम्भ के निकट तक ले आता है। उन्होंने अपनी पुस्तक भारतीय दर्शन में इस विषय पर चर्चा करते हुए प्रारम्भिक उपनिषदों का निर्माण काल 1000 ई.पू. से 300 ई.पू. के मध्य माना है। यही नहीं उन्होंने कतिपय उन उपनिषदों को जिन पर आचार्य शंकर ने अपना भाष्य लिखा है, उनको भी परवर्ती कालीन माना है। उन्होंने गद्यात्मक उपनिषदों को प्राचीन माना है। कठोपनिषद् को उन्होंने परवर्ती काल की रचना मानते हुए कहा है कि इसमें अन्य उपनिषदों एवं गीता के विचार उद्धृत किये गये हैं, किन्तु राधाकृष्णन् अपने मत समर्थन में पर्याप्त तर्क प्रस्तुत न कर सके। सम्भवतः डॉ. राधाकृष्णन् ने वैष्णवी तन्त्रसार का यह श्लोक विस्मृत कर दिया था, जिसमें गीता रूपी दुग्ध की उत्पत्ति उपनिषद् रूपी गायों से मानी गई है।
- (vi) **डॉ. उमेश मिश्र का मत** - डॉ. उमेश मिश्र ने सर्वप्रथम माना है कि अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग प्रमाणों के अभाव में उपनिषदों का काल सही-सही निर्धारित किया जा सकता है, किन्तु उन्होंने बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर कतिपय उपनिषदों को प्राक् बुद्ध माना है। इन उपनिषदों में छान्दोग्य, बृहदारण्यक, केन, कठ, तैत्तिरीय, कौषीतकि आदि उपनिषद् सम्मिलित हैं। उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता के आधार पर प्राचीन उपनिषदों को गीता से पूर्व का माना है।

उनका विचार है कि गीता महाभारत के युद्ध के समय उपदेशित की गयी थी तथा इसमें प्राचीन उपनिषदों के अनेक विचार उद्धृत किए गए हैं, अतः ये उपनिषद् गीता से पूर्व के सिद्ध होते हैं। उन्होंने महाभारत के युद्ध का समय 3000 ई.पू. माना है। इस आधार पर वे मानते हैं कि प्राचीन उपनिषदों की रचना इससे पूर्व हो चुकी थी।

(vii) **रानाडे का मत** - रानाडे उपनिषदों का रचनाकाल 1200 ई.पू. से 600 ई.पू. स्वीकार करते हैं। रानाडे के अनुसार भाषा, शैली, वाक्यविन्यास और व्याकरण सम्बन्धी विशेषताओं के आधार पर ही उपनिषदों का कालक्रम निर्धारित नहीं किया जा सकता। उन्होंने विविध मतों का उल्लेख करते हुए बृहदारण्यक और छान्दोग्य उपनिषद् को प्राचीन माना है तथा ईश और केन उपनिषद् को इनके बाद का माना है। भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से इन्हें द्वितीय वर्ग में रखा जा सकता है। ऐतरेय, तैत्तिरीय तथा कौषीतकि उपनिषदों को तृतीय वर्ग में रखा जा सकता है। ऐतरेय उपनिषद् पूर्णरूप से प्राचीन नहीं है परन्तु ऋग्वेद से सम्बन्धित होने के कारण इसे अन्य उपनिषदों से प्राचीन माना जा सकता है। कठ, मुण्डक और श्वेताश्वतर को चतुर्थ वर्ग में माना है। मैत्रेयी उपनिषद् को ज्योतिष तथा पौराणिक उद्धरणों के आधार पर पौराणिक प्रारम्भिक काल के पास का माना है। माण्डूक्य उपनिषद् में मैत्रेयी के विचारों का विस्तृत विवेचन किया गया है, इस प्रकार यह उपनिषद् अपनी सूत्रात्मक शैली के कारण अन्तिम वर्ग में आता है।

(viii) **राहुल सांकृत्यायन का मत** - राहुल सांकृत्यायन के अनुसार उपनिषदों का कालक्रम निम्नानुसार है -

(क) प्राचीन उपनिषद् (700 ई. पू.) -	ईश, छान्दोग्य, बृहदारण्यक।
(ख) द्वितीय काल के उपनिषद् (600 ई.पू. से 500 ई.पू.) -	तैत्तिरीय।
(ग) तृतीय काल के उपनिषद् (500 ई.पू. से 400 ई.पू.) -	प्रश्न, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य।
(घ) चतुर्थ काल के उपनिषद् (200 ई.पू. से 100 ई.पू.) -	कौषीतकि, मैत्रायणी, श्वेताश्वर।

उपर्युक्त विचारों का यदि हम परीक्षण करें तो विदित होता है कि कतिपय विचार पूर्वाग्रहों से ग्रस्त है अतः ऐसे मतों को मान्यता देने का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। उपनिषदों के रचनाकाल पर विचार करते समय कतिपय विद्वज्जन बौद्ध काल को निर्धारक के रूप में प्रयोग करते हैं यह उचित भी है क्योंकि बुद्ध के जन्म के साथ ही भारत में तिथिक्रम में आबद्ध इतिहास की परम्परा आरम्भ हो जाती है, किन्तु इस प्रणाली का मुख्य दोष यह है कि इसमें काल निर्धारण का आधार बौद्ध ग्रन्थों को माना जाता है। जिनका परिणाम यह होता है कि उनमें अधिकथित विचारों को हम पूर्ववर्ती मान लेते हैं। उपनिषदों के अनेक विचार बौद्ध साहित्य में मूलभूत सिद्धान्तों के रूप में उपलब्ध होते हैं परिणामतः कतिपय विद्वज्जन भ्रमवश उन्हें बुद्ध के परवर्ती उपनिषदों की संज्ञा देने लगते हैं।

वैदिक काल निर्धारण के सम्बद्ध में हम यद्यपि परम्परागत भारतीय मत से सहमत हैं तथापि हम यह भी मानते हैं कि सृष्टि के आदि से विद्यमान इस ज्ञान का साक्षात्कार किसी न किसी विशिष्ट कालखण्ड में मन्त्रद्रष्टा ऋषिगणों ने किया होगा। इस समय को ज्ञात करने हेतु तिलक का प्रयास सराहनीय है, इन्होंने वैदिक साहित्य के ठोस अन्तरङ्ग प्रमाणों के आधार पर अपना मत उपस्थापित किया है अतः यदि हम यह मान ले कि अधिकांश उपनिषदों की रचना 1400 ई.पू. से 500 ई.पू. के मध्य हुई होगी तो अनुचित नहीं होगा।

1.4 उपनिषदों की संख्या तथा वर्गीकरण

उपनिषदों की संख्या के विषय में विद्वानों में अतिशय मतभेद हैं। कुछ विद्वान् केवल ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य एवं बृहदारण्यक इन दस उपनिषदों को प्रधान उपनिषद् मानते हैं। मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार -

ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्यतित्तिरिः

ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा।¹⁴

इन्हें प्रधान मानने का कारण है कि आचार्य शंकराचार्य ने इन पर भाष्य लिखा है। आचार्य शंकर का भाष्य न होते हुए भी कुछ विद्वान् श्वेताश्वतर उपनिषद् को जोड़कर इनकी संख्या ग्यारह मानते हैं। कुछ इसके साथ कौषीतकि को भी मानते हैं क्योंकि आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र भाष्य में दश उपनिषदों के साथ दोनों को भी उद्धृत

किया है किन्तु दोनों पर भाष्य नहीं लिखा। आर. ह्यूम ने जिन तेरह उपनिषदों का अंग्रेजी में अनुवाद किया है, उनमें इन बारह उपनिषदों के अतिरिक्त मैत्रायणी उपनिषद् भी है। कीथ ने इनमें महानारायण उपनिषद् को सम्मिलित करके चौदह उपनिषदों की सूची इयूसन को दी है। विन्टरनिट्स का कथन है कि इन चौदह उपनिषदों के अतिरिक्त भी बहुत से ग्रन्थ मिलते हैं जो उपनिषद् नाम से प्रसिद्ध हैं, किन्तु इनमें बहुत कम उपनिषदों का वेदों से वास्तविक सम्बन्ध है। इनमें अधिकांश दार्शनिक न होकर धार्मिक हैं और पौराणिक एवं तान्त्रिक युग की रचनाएँ प्रतीत होती हैं। संक्षिप्त रूप से वेद से सम्बद्ध प्रमुख उपनिषद् इस प्रकार हैं¹⁵ -

(i) ऋग्वेद के उपनिषद् -

(क) ऐतरेय उपनिषद्, (ख) कौषीतकि उपनिषद्

(ii) शुक्ल यजुर्वेद के उपनिषद् -

(क) ईशोपनिषद् (ख) बृहदारण्यकोपनिषद्

(iii) कृष्ण यजुर्वेद के उपनिषद् -

(क) तैत्तिरीयोपनिषद्,

(ख) कठोपनिषद्,

(ग) श्वेताश्वतरोपनिषद्

(घ) मैत्रायणी उपनिषद्,

(ङ) महानारायणोपनिषद्

(iv) सामवेद के उपनिषद् - (क) केनोपनिषद्,

(ख) छान्दोग्योपनिषद्

(v) अथर्ववेद के उपनिषद् - (क) मुण्डकोपनिषद्,

(ख) माण्डूक्योपनिषद्

(ग) प्रश्नोपनिषद्

कुछ विद्वानों के अनुसार शंकराचार्य ने ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक तथा नृसिंहपूर्वतापनी इन पर अपना भाष्य लिखा है।¹⁶

कुछ विद्वान् उन सभी ग्रन्थों की उपनिषदों में गणना करते हैं, जिनकी गणना मुक्तिकोपनिषद् में की गई है। मुक्तिकोपनिषद् में चारों वेदों की शाखाओं की संख्या देते हुए प्रत्येक शाखा का एक-एक उपनिषद् होने की बात भी कही गई है -

ऋग्वेदादिविभागेन वेदाश्चत्वारः ईरिताः।
 तेषां शाखा ह्ययनेकाः स्युस्तासूपनिषदस्तथा।
 ऋग्वेदस्य तु शाखाः स्युरेकविंशतिसंख्यकाः।
 नवाधिकशतं शाखा यजुषो मारुतात्मजः॥
 सहस्रसंख्यया जाताः शाखाः साम्नः परन्तप।
 अथर्वणस्य शाखाः स्युः पंचाशद्भेदतो हरे॥
 एकैकस्यास्तु शाखाया एकैकोपनिषन्मता।¹⁷

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चार वैदिक संहिताओं की अनेक शाखाएँ हैं तथा इनके उपनिषद् भी अनेक हैं। ऋग्वेद की 21 शाखाएँ, यजुर्वेद की 109 शाखाएँ, सामवेद की 1000 शाखाएँ तथा अथर्ववेद की 50 शाखाएँ मानी जाती हैं। एक-एक शाखा का एक-एक उपनिषद् माना गया है। इस उक्ति के अनुसार 1180 उपनिषद् होने चाहिए।

मुक्तिकोपनिषद् में लिखा है कि “यदि तुम्हें विदेहमुक्ति प्राप्त करने की इच्छा है, तो एक सौ आठ उपनिषदों का अध्ययन करो। मैं उनके क्रम और इनमें प्राप्त शान्ति मन्त्र का कथन करूँगा, उसे तुम ध्यान पूर्व सुनो”।¹⁰⁸ उपनिषदों की संख्या का क्रम से उल्लेख करने वाला मन्त्र इस प्रकार है -

विदेहमुक्ताविच्छा चेद् अष्टोत्तरशतं पठ।
 तासां क्रमं च शान्तिं च शृणु वक्ष्यामि तत्त्वतः॥
 ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तैत्तिरिः।
 ऐतरेयञ्च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा॥
 ब्रह्मकैवल्यजाबालश्वेताश्वो हंस आरुणिः।
 गर्भो नारायणो हंसो बिन्दुर्नादशिरः शिखा॥
 मैत्रायणी कौषीतकी बृहज्जाबाल तापनी।
 कालाग्निरुद्रमैत्रेयी सुबालक्षुरिमन्त्रिका॥
 सर्वसारं निरालम्बं रहस्यं वज्रसूचिकम्।
 तेजोनादध्यानविद्यायोगतत्त्वात्मबोधकम्॥
 परिव्राट् त्रिशिखी सीता चूडा निर्वाण मण्डलम्।
 दक्षिणा गरभं स्कन्दं महानारायणाहवयम्॥
 रहस्यं रामतपनं वासुदेवं च मुद्गलम्।
 शाण्डिल्यं पैङ्गलं भिक्षुमहच्छारीरकम् शिखा॥
 तुरीयातीत संन्यास परिव्राजाक्षमालिका

अव्यक्तैकाक्षरं पूर्णा सूर्याक्षयध्यात्मकुण्डिका॥
सावित्र्यात्मा पाशुपतं परं ब्रह्मावधूतकम्।
त्रिपुरातपनं देवी त्रिपुराकठभावना।
हृदयं कुण्डली भस्मरूद्राक्षगणदर्शनम्॥
तारसारमहावाक्यपञ्चब्रह्माग्निहोत्रकम्।
गोपालपतनं कृष्णं याज्ञवल्क्यं वराहकम्॥
शाट्यायनी हयग्रीवं दत्तात्रेयं च गारुडम्।
कलिजाबालि सौभाग्यरहस्यऋचमुक्तिका॥
एवमष्टोत्तरशतं भावनात्रयनाशनम्।
ज्ञानवैराग्यदं पुंसां वासनात्रयनाशनम्॥¹⁸

तीन प्रकार की भावनाओं और तीन प्रकार की वासनाओं का नाश करके मनुष्यों को ज्ञान और वैराग्य प्रदान करने वाले निम्नलिखित एक सौ आठ उपनिषद् हैं, जिनको शान्तिमन्त्र के आधार पर वैदिक संहिताओं से सम्बद्ध किया गया है - ऋग्वेद से सम्बन्धित 10 उपनिषद्, जिनका शान्तिमन्त्र 'वाङ् मे मनसि.----- है -

1	ऐतरेय	2	कौषीतकि	3	नादबिन्दु	4	आत्मप्रबोध
5	निर्वाण	6	मुद्गल	7	अक्षमालिका	8	त्रिपुरा
9	सौभाग्यलक्ष्मी	10	बह्वृच				

तालिका 1.3 ऋग्वेद से सम्बन्धित उपनिषद्

शुक्ल यजुर्वेद से सम्बन्धित 19 उपनिषद्, जिनका शांतिमन्त्र 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्----' है -

1	ईशावास्य	2	बृहदारण्यक	3	जाबाल	4	हंस
5	परमहंस	6	मन्त्रिका	7	सुबाल	8	निरालम्ब
9	त्रिशिखीब्राह्मण	10	मण्डल ब्राह्मण	11	अद्वयतारक	12	पैङ्गल
13	भिक्षुक	14	तुरीयातीत	15	अध्यात्म	16	तारसार
17	याज्ञवल्क्य	18	शाट्यायनी	19	मुक्तिक		

तालिका 1.4 शुक्ल यजुर्वेद से सम्बन्धित उपनिषद्

कृष्णयजुर्वेद से सम्बन्धित 32 उपनिषद्, जिनका शान्ति मंत्र 'सह नावतु सह नौ.-----' हैं -

1	कठवल्ली	2	तैत्तिरीयक	3	ब्रह्मबिन्दु	4	कैवल्य
5	श्वेताश्वतर	6	गर्भ	7	नारायण	8	अमृतबिन्दु
9	अमृतनाद	10	कालाग्निरुद्र	11	क्षुरिका	12	सर्वसार
13	शुक्रहस्य	14	तेजोविन्दु	15	ध्यानबिन्दु	16	ब्रह्मविद्या
17	योगतत्त्व	18	दक्षिणामूर्ति	19	स्कन्द	20	शारीरक
21	योगशिखा	22	एकाक्षर	23	अक्षि	24	अवधूत
25	कठ	26	रुद्रहृदय	27	योगकुण्डलिनी	28	पञ्चब्रह्म
29	प्राणाग्निहोत्र	30	वराह	31	कलि-सन्तरण	32	सरस्वती- रहस्यम्

तालिका 1.5 कृष्णयजुर्वेद से सम्बन्धित उपनिषद्

सामवेद से सम्बन्धित 16 उपनिषद्, जिनका शान्ति मंत्र 'आप्यायन्तु ममाङ्गानि.-----' है -

1	केन	2	छान्दोग्य	3	आरुणि	4	मैत्रायणी
5	मैत्रेयी	6	वज्रसूचिका	7	योगचूडामणि	8	वासुदेव
9	महत्	10	संन्यास	11	अव्यक्त	12	कुण्डिका
13	सावित्री	14	रुद्राक्ष	15	जाबालदर्शन	16	जाबालि

तालिका 1.6 सामवेद से सम्बन्धित उपनिषद्

अथर्ववेद से सम्बन्धित 31 उपनिषद्, जिनका शान्ति मंत्र है 'भद्रं कर्णेभिः-----' है -

1	प्रश्न	2	मुण्डक	3	माण्डूक्य	4	अथर्वशिरा
5	अथर्वशिखा	6	बृहज्जाबाल	7	नृसिंहतापनी	8	नारदपरिव्राजक
9	सीता	10	शरभ	11	महानारायण	12	रामरहस्य
13	रामतापनी	14	शाण्डिल	15	परमहंसपरिव्राजक	16	भावना
17	अन्नपूर्णा	18	सूर्य	19	आत्मा	20	पाशुपत
21	परब्रह्म	22	त्रिपुरातापनीय	23	देवी	24	भस्मजाबाल
25	गणपति	26	महावाक्य	27	कृष्ण	28	हयग्रीव
29	दत्तोत्रय	30	गरुड	31	गोपालतापनीय		

तालिका 1.7 अथर्ववेद से सम्बन्धित उपनिषद्

मुक्तिकोपनिषद् में उल्लेखित 108 उपनिषदों का विभाजन वी.केशवलाल शास्त्री ने इन उपनिषदों में वर्णित विषयों के आधार पर किया गया है, जिनमें शांकरभाष्यकृत मुख्य 10 उपनिषद्, 13 वैष्णव उपनिषद्, 23 संन्यास उपनिषद्, 14. शैव उपनिषद्, 9 शाक्त उपनिषद्, 21 वेदान्त उपनिषद् तथा 20 योगोपनिषद् हैं। पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने 108 उपनिषदों का विभाजन उनकी विषय वस्तु के आधार पर किया है। तथा उनको ज्ञान खण्ड, साधनाखण्ड एवं ब्रह्मखण्ड में विभाजित किया है। उनके द्वारा किया गया विभाजन उपनिषदों की वर्तमान में प्रचलन, उनकी उपादेयता, उनके प्रति ज्ञान जिज्ञासा व पिपासा को शान्त करने वाले साधन के रूप प्रतिपादित करता है। पं. श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा ज्ञान खण्ड में निम्न 24 उपनिषदों को सम्मिलित किया गया है -

1	अमृतनादोपनिषद्	9	तैत्तिरीयोपनिषद्	17	अथर्वशिरोपनिषद्
2	ईशावास्योपनिषद्	10	नादबिन्दूपनिषद्	18	मुद्गलोपनिषद्
3	एकाक्षरोपनिषद्	11	निरालम्बोपनिषद्	19	मैत्रायण्युपनिषद्
4	ऐतरेयोपनिषद्	12	प्रणवोपनिषद्	20	शिवसंकल्पोपनिषद्
5	कठोपनिषद्	13	प्रश्नोपनिषद्	21	शुक्रहस्योपनिषद्
6	केनोपनिषद्	14	बृहदारण्यकोपनिषद्	22	श्वेताश्वतरोपनिषद्
7	गायत्र्युपनिषद्	15	मन्त्रिकोपनिषद्	23	सर्वसारोपनिषद्
8	छान्दोग्योपनिषद्	16	माण्डूक्योपनिषद्	24	स्कन्दोपनिषद्

तालिका 1.8 श्रीराम शर्मा द्वारा विभाजित ज्ञानखण्ड में निबद्ध उपनिषद्
ब्रह्मविद्या खण्ड में 35 उपनिषदों को सम्मिलित किया गया है -

1	ब्रह्मोपनिषद्	2	ब्रह्मविद्योपनिषद्	3	क्षुरिकोपनिषद्
4	योगतत्त्वोपनिषद्	5	सुबालोपनिषद्	6	मण्डलब्राह्मण उपनिषद्
7	कौषीतकि ब्राह्मण उपनिषद्	8	जाबालदर्शनोपनिषद्	9	हंसोपनिषद्
10	स्वसंद्योपनिषद्	11	जाबाल्युपनिषद्	12	मैत्रेयी उपनिषद्
13	शाण्डिल्योपनिषद्	14	परब्रह्मोप-निषद्	15	कण्ठरुद्रोपनिषद्
16	कुण्डिकोपनिषद्	17	आरुण्युपनिषद्	18	संन्यास उपनिषद्

19	नारदपरिव्राजकोप- निषद्	20	पैङ्गल उपनिषद्	21	महावाक्योपनिषद्
22	आत्मबोधोपनिषद्	23	कैवल्योपनिषद्	24	ब्रह्मबिन्दूपनिषद्
25	आत्मोपनिषद्	26	पञ्चब्राह्मोप-निषद्	27	शारीरिकोपनिषद्
28	शाट्याय- नीयोपनिषद्	29	याज्ञवल्क्योपनिषद्	30	जाबालोपनिषद्
31	परमहंसोपनिषद्	32	निर्वाण उपनिषद्	33	परमहंस-परिव्राजकोप- निषद्
34	भिक्षुकोप-निषद्	35	अवधूतोपनिषद्		

तालिका 1.9 श्रीराम शर्मा द्वारा विभाजित ब्रह्मविद्या खण्ड में निबद्ध उपनिषद्

साधना खण्ड में 40 उपनिषदों को सम्मिलित किया गया है -

1	योगचूडामण्युपनिषद्	2	महोपनिषद्	3	त्रिशिख - ब्राह्मणोपनिषद्
4	अद्वयतारकोपनिषद्	5	पाशुपत ब्रह्मोपनिषद्	6	प्राणाग्निहोत्रोप- निषद्
7	योगकुण्डल्युपनिषद्	8	ध्यानबिन्दूपनिषद्	9	अक्षमालिकोपनिषद्
10	रुद्राक्षजाबालोपनिषद्	11	रामपूर्वतापिन्युपनिषद्	12	गोपालपूर्वतापि- न्युपनिषद्
13	कृष्णोपनिषद्	14	गणपत्युपनिषद्	15	नृसिंहपूर्वतापिन्युप- निषद्
16	नृसिंहषट्चक्रोपनिषद्	17	दक्षिणामूर्त्युपनिषद्	18	शरभोपनिषद्
19	रुद्रोपनिषद्	20	कालाग्निरुद्रोपनिषद्	21	नीलरुद्रोपनिषद्
22	रुद्रहृदयोपनिषद्	23	लांगूलोपनिषद्	24	गायत्रीरहस्योपनिषद्
25	सावित्र्युपनिषद्	26	सरस्वती रहस्योप- निषद्	27	देव्युपनिषद्
28	बृहवृचोपनिषद्	29	सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्	30	गरुडोपनिषद्

31	त्रिपुरोपनिषद्	32	सीतोपनिषद्	33	राधोपनिषद्
34	तुलस्युपनिषद्	35	नारायणोपनिषद्	36	सूर्योपनिषद्
37	भावनोपनिषद्	38	महोपनिषद्	39	चाक्षुषोपनिषद्
40	कलिसंवतरणोप-निषद्				

तालिका 1.10 श्रीराम शर्मा द्वारा विभाजित साधना खण्ड में निबद्ध उपनिषद्

इन 108 उपनिषदों के अतिरिक्त और भी अनेक उपनिषद् उपलब्ध हैं। ऐसे उपनिषदों का एक संग्रह अड्यार लाइब्रेरी (मद्रास) से निकला है। इस संग्रह में 71 उपनिषद् संगृहीत हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं -

1	योगराजोपनिषद्	2	अद्वैतोपनिषद्	3	आचमनोपनिषद्
4	आत्मपूजोपनिषद्	5	आर्षयोपनिषद्	6	चतुर्वेदोपनिषद्
7	इतिहासोपनिषद्	8	चाक्षुषोपनिषद्	9	छागलेयोपनिषद्
10	तुरीयोपनिषद्	11	द्वयोपनिषद्	12	निरुक्तोपनिषद्
13	पिण्डोपनिषद्	14	प्रणवोपनिषद् (पद्यात्मक)	15	प्रणवोपनिषद् (वाक्यात्मक)
16	वाष्कलमन्त्रोपनिषद्	17	वाष्कल- मन्त्रोपनिषद् (संवृत्तिका)	18	मठाम्नायोपनिषद्
19	विश्रामोपनिषद्	20	शौनकोपनिषद्	21	सूर्यतापिन्युपनिषद्
22	स्वसंवेद्योपनिषद्	23	उर्ध्वपुण्ड्रोपनिषद्	24	काव्ययनोपनिषद्
25	गोपीचन्दोपनिषद्	26	तुलस्युपनिषद्	27	नारदोपनिषद्
28	नारायणपूर्वतापिनी	29	नारायणोत्तर- तापिनी	30	नृसिंहषट्चक्रोपनिषद्
31	पारमात्मिकोपनिषद्	32	यज्ञोपवीतोप-निषद्	33	राधोपनिषद्
34	लाङ्गूलोप-निषद्	35	श्रीकृष्णपुरुषोत्तम- सिद्धान्तोपनिषद्	36	सङ्कर्षणोपनिषद्
37	सामरहस्योपनिषद्	38	सुदर्शनोपनिषद्	39	नीलरुद्रोपनिषद्

40	पारायणोपनिषद्	41	बिल्वोपनिषद्	42	मृत्युलाङ्गूलोपनिषद्
43	रुद्रोपनिषद्	44	लिङ्गोपनिषद्	45	वज्रपञ्जारोपनिषद्
46	वटुकोपनिषद्	47	शिवसङ्कल्पोपनिषद्	48	शिवसङ्कल्पोपनिषद्
49	शिवोपनिषद्	50	सदानन्दोपनिषद्	51	सिद्धान्तशिखोपनिषद्
52	सिद्धान्तसारोपनिषद्	53	हेरम्बोपनिषद्	54	अल्लोपनिषद्
55	आथर्वणद्वितीयोपनिषद्	56	कामराजकीलितोपनिषद्	57	कालिकोपनिषद्
58	कालीमेधादीक्षितोपनिषद्	59	गायत्रीरहस्योपनिषद्	60	गायत्र्युपनिषद्
61	गुह्यकाल्युपनिषद्	62	गुह्यषोढान्यासोपनिषद्	63	पीताम्बरोपनिषद्
64	राजश्यामलारहस्योपनिषद्	65	वनदुर्गोपनिषद्	66	श्यामोपनिषद्
67	श्रीचक्रोपनिषद्	68	श्रीविद्यातारकोपनिषद्	69	षोढोपनिषद्
70	सुमख्युपनिषद्	71	हंसषोढोपनिषद्		

तालिका 1.11 108 उपनिषदों के अतिरिक्त अड्यार लाइब्रेरी द्वारा संगृहीत उपनिषद्

मुक्तिकोपनिषद् में एक सौ आठ उपनिषदों के नाम उल्लेखित हैं वे सभी “निर्णयसागर प्रेस” बम्बई से भी प्रकाशित हैं। इसके साथ ही “अड्यार लाइब्रेरी” मद्रास से भी उपनिषदों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है, जो अनेक भागों में विभक्त है। उस संग्रह में 171 उपनिषदों का प्रकाशन हो गया है। इसके अतिरिक्त “गुजराती प्रिंटिंग प्रेस” बम्बई से मुद्रित उपनिषद् - वाक्य महाकोष में 223 उपनिषदों की नामावली दी गई है। इनमें से दो उपनिषद् उपनिषत्स्तुति तथा देव्युपनिषद्। इसमें से देव्युपनिषद् की चर्चा शिवरहस्य नामक ग्रन्थ में की गई है। ये दोनों अभी तक उपलब्ध नहीं हो सके हैं। शेष 221 उपनिषदों के वाक्यांश इस महाकोष में संकलित हुए हैं। इनमें भी

माण्डूक्यकारिका के चार प्रकरण चार जगह गिने गए हैं। इन सबकी एक संख्या माने तो 218 ही संख्या होती है। कई उपनिषद् एक ही नाम से दो-तीन जगह आए हैं, पर वे स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। इस प्रकार सब पर दृष्टिपात करने से यह कह सकते हैं कि अब तक 220 उपनिषद् प्रकाश में आ चुके हैं और भी प्रकाशित हुए होंगे तथा कितने ही अप्रकाशित रूप में उपलब्ध हो सकते हैं।

कल्याण के उपनिषद् अङ्क में उपलब्ध 220 उपनिषदों की सूची अकारादि क्रम से इस प्रकार है -

1	अक्षमालोपनिषद्	2	अक्षि-उपनिषद्	3	अथर्वशिखोपनिषद्
4	अथर्वशिरोपनिषद्	5	अद्व्यतारकोपनिषद्	6	अद्वैतोपनिषद्
7	अद्वैतभावोपनिषद्	8	अध्यात्मोपनिषद्	9	अनुभवसारोपनिषद्
10	अन्नपूर्णोपनिषद्	11	अमनस्कोपनिषद्	12	अमृतनादोपनिषद्
13	अमृतबिन्दूपनिषद् (ब्रह्मबिन्दूपनिषद्)	14	अरुणोपनिषद्	15	अल्लोपनिषद्
16	अवधूतोपनिषद् (वाक्यात्मक एवं पद्यात्मक)	17	अव्यक्तोपनिषद्	19	आचमनोपनिषद्
20	आत्मपूजोपनिषद्	21	आत्मप्रबोधोपनिषद् (आत्मबोधोपनिषद्)	22	आत्मोपनिषद् (वाक्यात्मक)
23	आत्मोपनिषद् (पद्यात्मक)	24	आथर्वण- द्वितीयोपनिषद् (वाक्यात्मक एवं मन्त्रात्मक)	25	आयुर्वेदोपनिषद्
26	आरुणिकोपनिषद् (आरुण्ययुपनिषद्)	27	आर्षेयोपनिषद्	28	आश्रमोपनिषद्
29	इतिहासोपनिषद् (वाक्यात्मक एवं पद्यात्मक)	30	ईशावास्योपनिषद् उपनिषत्स्तुति (शिवरहस्यान्तर्गत अभी तक अनुपलब्ध)	31	ऊर्ध्वपुण्ड्रोपनिषद् (वाक्यात्मक एवं पद्यात्मक)

32	एकाक्षरोपनिषद्	33	ऐतरेयोपनिषद् (अध्यायात्मक)	34	ऐतरेयोपनिषद् (खण्डात्मक)
35	ऐतरेयोपनिषद् (अध्यायात्मक)	36	कठरुद्रोपनिषद् (कण्ठोपनिषद्)	37	कठोपनिषद्
38	कठश्रुत्युपनिषद्	39	कलिसंतरणोपनिषद् (हरिनामोपनिषद्)	40	कात्यायनोपनिषद्
41	कामराजकीलितो- द्धारोपनिषद्	42	कालाग्निरुद्रोपनिषद्	43	कालिकोपनिषद्
44	कालीमेधादीक्षितोप- निषद्	45	कुण्डिकोपनिषद्	46	कृष्णोपनिषद्
47	केनोपनिषद्	48	कैवल्योपनिषद्	49	कौलोपनिषद्
50	कौषीतकिब्राह्मणो- पनिषद्	51	क्षुरिकोपनिषद्	52	गणपत्यथर्वशीर्षो- पनिषद्
53	गणेशपूर्वतापिन्यु- पनिषद् (वरदपूर्वतापिन्युप- निषद्)	54	गणेशोत्तरतापिन्यु- पनिषद् (वरदोत्तरतापिन्यु- पनिषद्)	55	गर्भोपनिषद्
56	गान्धर्वोपनिषद्	57	गायत्र्युपनिषद्	58	गायत्रीरहस्योपनिषद्
59	गरुडोपनिषद् (वाक्यात्मक एवं मन्त्रात्मक)	60	गुह्यकाल्युप- निषद्	61	गुह्यषोढान्यासोप- निषद्
62	गोपालपूर्वतापिन्युप- निषद्	63	गोपालोत्तरतापि- न्युपनिषद्	64	गोपीचन्दनोप- निषद्
65	चतुर्वेदोपनिषद्	66	चाक्षुषोपनिषद् (चक्षुरुपनिषद्, चक्षूरोगोपनिषद्, नेत्रोपनिषद्)	67	चित्त्युपनिषद्
68	छागलेयोप- निषद्	69	छान्दोग्योपनिषद्	70	जाबालदर्शनोपनिषद्

71	जाबालोपनिषद्	72	जाबाल्युपनिषद्	73	तारसारोपनिषद्
74	तारोपनिषद्	75	तुरीयातीतोपनिषद् (तीतावधूतोपनिषद्)	76	तुरीयोपनिषद्
77	तुलस्युपनिषद्	78	तेजोबिन्दूपनिषद्	79	तैत्तिरीयोपनिषद्
80	त्रिपादविभूति- महानारायणोपनिषद्	81	त्रिपुरातापिन्युपनिषद्	82	त्रिपुरामहोपनिषद्
83	त्रिपुरोपनिषद्	84	त्रिशिखिब्राह्मणोप- निषद्	85	त्रिसुपर्णोपनिषद्
86	दक्षिणामूर्त्युपनिषद्	87	दत्तात्रेयोपनिषद्	88	दत्तोपनिषद्
89	दुर्वासोपनिषद्	90	1.देव्युपनिषद् (पद्यात्मक एवं मन्त्रात्मक) 2.देव्युपनिषद् (शिवरहस्यान्तर्गत अनुपलब्ध)	91	द्वयोपनिषद्
92	नारदोपनिषद्	93	नारायणपूर्वतापिन्यु- पनिषद्	94	नारदपरिव्राजकोप- निषद्
95	नारदोपनिषद्	96	नादबिन्दूपनिषद्	97	नारायणोत्तरतापिन्यु- पनिषद्
98	नारायणोपनिषद् (नारायणाथर्वशीर्ष)	99	निरालम्बोपनिषद्	100	निरुक्तोपनिषद्
101	निर्वाणोपनिषद्	102	नीलरुद्रोपनिषद्	103	नृसिंहपूर्वतापिन्यु- पनिषद्
104	नृसिंहषट्चक्रोप-निषद्	105	नृसिंहोत्तरतापिन्यु- पनिषद्	106	पञ्चब्रह्मोपनिषद्
107	परब्रह्मोपनिषद्	108	परमहंसपरिव्राज- कोपनिषद्	109	परमहंसोपनिषद्
110	पारमात्मिकोपनिषद्	111	पारायणोपनिषद्	112	पाशुपतब्रह्मोप- निषद्

113	पिण्डोपनिषद्	114	पीताम्बरोपनिषद्	115	पुरुषसूक्तोपनिषद्
116	पैङ्गलोपनिषद्	117	प्रणवोपनिषद् (पद्यात्मक)	118	प्रणवोपनिषद् (वाक्यात्मक)
119	प्रश्नोपनिषद्	120	प्राणाग्निहोत्रोप- निषद्	121	बटुकोपनिषद्
122	बह्वृचोपनिषद्	123	वाष्कलमन्त्रोपनिषद्	124	विल्वोपनिषद् (पद्यात्मक)
125	विल्वोपनिषद् (वाक्यात्मक)	126	बृहज्जाबालोपनिषद्	127	बृहदारण्यकोपनिषद्
128	बृहमविद्योपनिषद्	129	ब्रह्मोपनिषद्	130	भगवद्गीतोपनिषद्
131	भवसंतरणोपनिषद्	132	भस्मजाबालोपनिषद्	133	भावनोपनिषद् (कापिलोपनिषद्)
134	मन्त्रिकोपनिषद्	135	मठाम्नायोपनिषद्	136	मण्डलब्राह्मणोप- निषद्
137	मन्त्रिकोपनिषद् (चूलिकोपनिषद्)	138	मल्लायुपनिषद्	139	महानारायणोपनिषद् (बृहन्नारायणोपनिषद्, उत्तरनारायणोप- निषद्)
140	महावाक्योपनिषद्	141	महोपनिषद्	142	माण्डूक्योपनिषद्
143	माण्डूक्योपनिषद् कारिका (क) आगम (ख) अलातशान्ति (ग) वैतथ्य (घ) अद्वैत	144	मुक्तिकोप- निषद्	145	मुण्डकोपनिषद्
146	मुद्गलोपनिषद्	147	मृत्युलाङ्गूलोपनिषद्	148	मैत्रायण्युपनिषद्
149	मैत्रेय्युपनिषद्	150	यज्ञोपवीतोपनिषद्	151	याज्ञवल्क्योपनिषद्
152	योगकुण्डल्योपनिषद्	153	योगचूडामण्युपनिषद्	154	(i) योगतत्त्वोपनिषद्

155	(ii) योगतत्त्वोपनिषद्	156	योगराजोपनिषद्	157	योगशिखोपनिषद्
158	योगोपनिषद्	159	राजश्यामलारहस्योप- निषद्	160	राधिकोपनिषद् (वाक्यात्मक)
161	राधोपनिषद् (प्रपाठात्मक)	162	रामपूर्वतापिन्युपनिषद्	163	रामरहस्योपनिषद्
164	रामोत्तरतापिन्यु- पनिषद्	165	रुद्रहृदयोपनिषद्	166	रुद्राक्षजाबालोपनिषद्
167	रुद्रोपनिषद्	168	लक्ष्म्युपनिषद्	169	लाङ्गूलोपनिषद्
170	लिङ्गोपनिषद्	171	वज्रपञ्जरोपनिषद्	172	वज्रसूचिकोपनिषद्
173	वनदुर्गोपनिषद्	174	वराहोपनिषद्	175	वासुदेवोपनिषद्
176	विश्रामोपनिषद्	177	विष्णुहृदयोपनिषद्	178	शरभोपनिषद्
179	शाट्यायनीयोपनिषद्	180	शाण्डिल्योपनिषद्	181	शारीरकोपनिषद्
182	(i) शिवसंकल्पोपनिषद्	183	(ii)शिवसंकल्पोपनिषद्	184	शिवोपनिषद्
185	शुकरहस्योपनिषद्	186	शौनकोपनिषद्	187	श्यामोपनिषद्
188	श्रीकृष्णपुरुषोत्तम सिद्धान्तोपनिषद्	189	श्रीचक्रोपनिषद्	190	श्रीविद्यातारकोपनिषद्
191	श्रीसूक्तम्	192	श्वेताश्वतरोपनिषद्	193	षोढोपनिषद्
194	सङ्कर्षणोपनिषद्	195	सदानन्दोपनिषद्	196	संध्योपनिषद्
197	संन्यासोपनिषद् (अध्यायात्मक)	198	संन्यासोपनिषद् (वाक्यात्मक)	199	सरस्वतीरहस्योपनिषद्
200	सर्वसारोपनिषद् (सर्वोपनिषद्)	201	सहवै उपनिषद्	202	संहितोपनिषद्
203	सामरहस्योपनिषद्	204	सावित्र्योपनिषद्	205	सिद्धान्तशिखोपनिषद्
206	सिद्धान्तविट्ठलोप- निषद्	207	सिद्धान्तसारोपनिषद्	208	सीतोपनिषद्
209	सुदर्शनोपनिषद्	210	सुबालोपनिषद्	211	सुमुख्युपनिषद्

212	सूर्यतापिन्युपनिषद्	213	सूर्योपनिषद्	214	सौभाग्यलक्ष्म्यु- पनिषद्
215	स्कन्दोपनिषद्	216	स्वसंवेद्योपनिषद्	217	हयग्रीवोपनिषद्
218	हंसषोढोपनिषद्	219	हंसोपनिषद्	220	हेरम्बोपनिषद्

तालिका 1.12 कल्याण उपनिषद् अंक में उल्लेखित 220 उपनिषदों की सूची

डॉ. डायसन ने स्वकल्पित विनिगमक द्वारा परीक्षा कर उपनिषदों के समय क्रम से चार विभाग किए हैं -

- (i) प्राचीन गद्य उपनिषद् - बृहदारण्यकोपनिषद्, छान्दोग्य, ऐतरेय, कौषीतकि, तैत्तिरीय, केन।
- (ii) प्राचीन छन्दोबद्ध उपनिषद् - काठक अथवा कठ, ईश या ईशावास्य, श्वेताश्वतर, महानारायण।
- (iii) पीछे के गद्य उपनिषद् - प्रश्न, मैत्रायणी या मैत्री, माण्डूक्य।
- (iv) आथर्वण उपनिषद् - संन्यास उपनिषद्, योग उपनिषद्, सामान्य वेदान्त उपनिषद्, वैष्णव उपनिषद्, शैव, शाक्त अथवा अन्य छोटे उपनिषद्।

सम्प्रदाय के आधार पर उपनिषदों का वर्गीकरण -

डॉ. नन्दकिशोर देवराज ने अपनी पुस्तक भारतीय दर्शन में¹⁹ उपनिषदों को सम्प्रदाय के आधार पर नौ भागों में विभक्त किया है -

- (i) वेदान्तउपनिषद् (ii) योग उपनिषद् (iii) संन्यास उपनिषद्
- (iv) वैष्णव उपनिषद् (v) शैव उपनिषद् (vi) शाक्त उपनिषद्
- (vii) सौर उपनिषद् (viii) ब्रह्मउपनिषद् (ix) गाणपत्य उपनिषद्।

उद्देश्य तथा विषयवस्तु के आधार पर उपनिषदों का विभाजन -

डॉ. नन्दकिशोर देवराज ने उद्देश्य तथा विषय वस्तु के आधार पर उपनिषदों को छः भागों में विभाजित किया है -

- (i) वेदान्त सिद्धान्त पर आधारित 24 उपनिषद्

(ii)योगसिद्धान्त आधारित 20 उपनिषद्

(iii)संन्यास सिद्धान्त आधारित 17 उपनिषद्

(iv)वैष्णव सिद्धान्त आधारित 14 उपनिषद्

(v)शैव सिद्धान्त आधारित 15 उपनिषद्

(vi)शाक्त तथा अन्य सिद्धान्त आधारित 18 उपनिषद्

एम.विन्टरनिट्स ने उपनिषदों का उनमें वर्णित विषयों के क्रमिक विकास के आधार पर चार विभाग किए हैं -

(i) (क) उपासना को प्रधानता देने वाले ज्ञानप्रतिपादक उपनिषद् -

बृहदारण्यक तथा छान्दोग्य उपनिषद्।

(ख) आचार प्रधान उपनिषद् -

तैत्तिरीय तथा कौषीतकि उपनिषद्।

(ग) सृष्टि वक्ता विकासवादी उपनिषद् -

ऐतरेय तथा प्रश्नोपनिषद्।

(ii) निवृत्ति ज्ञानवादी उपनिषद् -

मुण्डक, कठ, केन उपनिषद्।

(iii) पूर्वकालीन समन्वित साधनाप्रधान उपनिषद् -

श्वेताश्वरतर तथा मैत्रायणी उपनिषद्।

(iv) उत्तरकालीन धर्म साधना प्रधान उपनिषद् -

(क) वेदान्त उपनिषद् (ख) शाक्त उपनिषद्

(ग) योग उपनिषद् (घ) वैष्णव उपनिषद्

(ङ) शैव उपनिषद् (च) अन्य छोटे उपनिषद्

ओमप्रकाश पाण्डेय ने अपनी पुस्तक 'वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरूप' में उपनिषदोंको निम्नलिखित सम्प्रदायों में वर्गीकृत किया है²⁰ -

- (i) **योग उपनिषद् -** अद्वयतारक, अमृतनाद, अमृतबिन्दु, क्षुरिका, तेजोबिन्दु, त्रिशिखब्राह्मण, दर्शनोपनिषद्, ध्यानबिन्दु, नादबिन्दु, पाशुपतब्रह्म, ब्रह्मविद्या, मण्डल ब्राह्मण, महावाक्य, योग कुण्डली, योगचूडामणि, योगतत्त्व, योगशिखा, वराह, शाण्डिल्य, हंस तथा योगराजोपनिषद्।
- (ii) **वेदान्त उपनिषद् -** अक्ष्युपनिषद्, अध्यात्म, अन्नपूर्णा, आत्म, आत्मबोध, एकाक्षर, कौषीतकि, ब्राह्मणोपनिषद्, गर्भ, निरालम्ब, पैंगल, प्राणाग्निहोत्र, मन्त्रिका, महोपनिषद्, मुक्तिका, मुद्गल, मैत्रायणी, व्रजसूचिका, शारीरिक, शुकरहस्य, सर्वसार, सावित्री, सुबाल, सूर्य और स्कन्द उपनिषद्।
- (iii) **शाक्त उपनिषद् -** अल्लोपनिषद्, आथर्वण द्वितीयोपनिषद्, कामराजकीलितोद्धारोपनिषद्, कालिकोपनिषद्, कालीमेधादीक्षित, गायत्रीरहस्य, गायत्री, गुह्यकाली, गुह्यषोढानी, पीताम्बर, राजश्यामलारहस्य, वनदुर्गा, श्यामोपनिषद्, श्रीचक्र, श्रीविद्यातारक, षोढोपनिषद्, सुमुखी, हंसषोढोपनिषद्।
- (iv) **शैव उपनिषद् -** अक्षमालिका, अथर्वशिखा, अथर्वशिरस्, कालाग्निरुद्र, कैवल्य, गणपति, जाबालि, दक्षिणामूर्ति, पञ्चब्रह्म, बृहज्जाबाल, भस्मजाबाल, रुद्रहृदय, शरभ उपनिषद्।
- (v) **वैष्णव उपनिषद् -** अव्यक्तोपनिषद्, कौलसन्तरण, दत्तात्रेय, नारायण, कृष्ण, गरुड, गोपालपूर्वतापिनी-उत्तरतापिनी, तारसार, नृसिंहपूर्वतापिनी-उत्तरतापिनी, रामपूर्वतापिनी-उत्तरतापिनी, त्रिपाद्विभूतिमहानारायण, रामरहस्य, वासुदेव हयग्रीव उपनिषद्।
- (vi) **संन्यास उपनिषद् -** आरुणि, लघुसंन्यास, कुण्डिका, कठश्रुति, परमहंस, जाबाल, ब्रह्म, आश्रम, मैत्रेय, नारदपरिव्राजक, निर्वाण, भिक्षुक, तुरीयातीतावधूत, वृहत् संन्यास, परमहंसपरिव्राजक, परब्रह्म, बृहदेवधूत, याज्ञवल्क्य, शाट्यायनीय, लघ्ववधूत उपनिषद्।

1.5 उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय

(i) ब्रह्म तत्त्व -

सभी उपनिषद् ब्रह्म (परमतत्त्व) की सत्ता को निर्विवाद रूप से स्वीकार करते हैं। ब्रह्माण्ड में सत्य प्रकृति नहीं ब्रह्म है। ब्रह्म तत्त्व ही चेतन और जड़ का मूल संचालक है, इसी परमतत्त्व से पिण्ड और ब्रह्माण्ड की सृष्टि होती है और अन्ततोगत्वा इसी में विलीन हो जाती है -

“यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन ज्ञातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद् ब्रह्मेति”²¹

उपनिषदों में ब्रह्म के दो रूपों का वर्णन मिलता है - निर्गुण और सगुण। निर्गुण ब्रह्म को ‘नेति नेति’ कह कर सम्बोधित किया है। वह परब्रह्म, सच्चिदानन्द, अनिर्वचनीय, अवाङ्मनसगोचर, अग्राह्य, अक्षरब्रह्म है। तैत्तिरीयोपनिषद् में इसे सत्य, ज्ञान और अनन्त कहा है - “सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म”²²

सगुण ब्रह्म को अपरब्रह्म, सोपाधिक, नित्य, विभु, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता तथा सृष्टि का सर्जक, पालक तथा संहारक कहा गया है। छान्दोग्योपनिषद् में सगुणब्रह्म को तज्जलान् कहा गया है, जिसका अर्थ है - तज्ज (जगत् को उत्पन्न करने वाला), तल्ल (जगत् को लीन करने वाला) तदन् (जगद् को धारण करने वाला)।

उपनिषदों में ब्रह्म तत्त्व का विवेचन कर उसकी प्राप्ति के साधनों का भी उल्लेख मिलता है जैसे - ज्ञानयोग, कर्मयोग, उपासनायोग, मन्त्रयोग, तप, स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य आदि। ये दुःखों से मुक्त कर परब्रह्म प्राप्ति के साधन हैं।

(ii) आत्म तत्त्व -

प्राणार्थक आत्मन् शब्द उपनिषदों में जीवात्मा का वाचक है। उपनिषदों में भवसागर से छुटकारा पाने का उपाय आत्मज्ञान को बताया है और उस आत्म तत्त्व का ज्ञान मन और बुद्धि से जान लेने मात्र से नहीं होता, अपितु साक्षात् अपरोक्षरूप से अनुभव करने से होता है। उपनिषदों में आत्मा को अजन्मा, नित्य, व्यापक, सर्वान्तर्यामी तथा सर्वातिशायी बताया है -

“न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥”²³

आत्मा को अणु से भी छोटा और महान् से भी महान् बताया गया है, जो कि समस्त प्राणियों के हृदयरूपी गुहा में स्थित होती है और जिसे परमेश्वर की कृपा से ही जाना जा सकता है -

“अणोरणीयान् महतो महीयान्”²⁴

माण्डूक्योपनिषद् में आत्मा की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय इन चार अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। शुद्ध चैतन्य की अवस्था को तुरीय कहा गया है तथा आत्मा को ही ब्रह्म कहा है- **“अयमात्मा ब्रह्म”²⁵**

(iii) ब्रह्म और आत्मा का ऐक्य -

वैदिकसंहिताओं, ब्राह्मण तथा आरण्यकग्रन्थों में ब्रह्म और आत्मा को अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त किया गया है, किन्तु उपनिषदों में दोनों का ऐक्य स्थापित किया गया है।

‘अहं ब्रह्मास्मि’, ‘तत्त्वमसि’, ‘प्रज्ञानं ब्रह्म’, अयमात्मा ब्रह्म, ‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’ ‘ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या’ ‘जीवो ब्रह्मैव नापरः’ आदि वाक्य ब्रह्म और आत्मा के अद्वैतभाव को प्रमाणित करते हैं। जगत्, जीव, आत्मा सब कुछ दृश्य - अदृश्य ब्रह्म ही है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। यदि ब्रह्म और जीव में भेद है तो वह केवल औपाधिक मात्र है।

(iv) प्राणतत्त्व - प्राण शब्द का प्रयोग आत्मा के लिए भी किया गया है। मन, श्रोत, चक्षु आदि सभी इन्द्रियाँ प्राण हैं और प्राण ही आत्मा है, वही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है -

“प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च”²⁶

प्राण जीवनदायक तत्त्व है। प्राण ही आयु है, वही अजर - अमर आत्मा है

“आयुः प्राणः प्राणो वा आयुः”²⁷

प्रश्नोपनिषद् में प्राणविद्या का प्रतिपादन करते हुए महत्प्राण, विज्ञानप्राण, प्रज्ञानप्राण, भूतप्राण, अव्यक्तप्राण ये पञ्चप्राण बताए गए हैं।

(v) सृष्टिविज्ञान -

जगत् की सृष्टि किस प्रकार हुई? जगत् की उत्पत्ति का कारण क्या है? प्रलय किस प्रकार होता है? इत्यादि सृष्टि विज्ञान से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर उपनिषदों में विशद् रूप से वर्णित हैं।

ब्रह्म को जगत् की उत्पत्ति का कारण बताया गया है। ब्रह्म ही जगत् का निमित्त व उपादान कारण है। जगत् ब्रह्म का ही परिणाम है।

मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि जिस प्रकार मकड़ी जाला बनाती है, फिर उसे अपने में समेट लेती है, जैसे पृथ्वी से औषधियाँ उत्पन्न होती हैं, पुरुष के केश और लोम उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार अक्षरब्रह्म से जगत् उत्पन्न होता है -

“यथोर्णनाभिः सृजते गृहणते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।

यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथा क्षरात्संभवतीह विश्वम्॥”²⁸

ब्रह्म के कारण ही जगत् की सृष्टि एवं प्रलय होता है अर्थात् समस्त दृश्यमान नामरूपात्मक जगत् ब्रह्म से उत्पन्न होता है और उसी में लीन हो जाता है।

उपनिषदों में आत्मा, वायु, अग्नि, आकाश, असत्, अमूर्त पुरुष तथा परमेश्वर से सृष्टि की उत्पत्ति बताई गई है। ये सभी ब्रह्म के ही वाचक हैं।

(vi) कर्मवाद -

उपनिषदों ने निरन्तर मानव को सत्कर्म की प्रेरणा दी है। कर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए कर्मयोग का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। मनुष्य सत्कर्म से पुण्यात्मा और पापकर्म से पापी बनता है “पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनेति”।²⁹ पुरुष काममय है जैसा उसका काम है वैसा ही संकल्प होता है जैसा संकल्प होता है वैसा ही कर्म करता है और जैसा कर्म करता है वैसा उसका भाग्य बनता है -

“स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते”³⁰

निष्काम कर्म के लिए प्रेरित करते हुए कहा गया है कि निष्काम कर्म करते हुए सौ वर्षों तक जीवित रहे ताकि कर्म मनुष्य से लिप्त न हो सके - “कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः”³¹

(vii) पुनर्जन्मवाद -

कर्मवाद के फलस्वरूप पुनर्जन्म सिद्धान्त का विकास हुआ है। ज्ञानी सत्कर्म या ज्ञान द्वारा अमरत्व को प्राप्त करते हैं और अज्ञानी मृत्यु के बन्धन को प्राप्त होते हैं। उपनिषदों में स्वर्ग, नरक, मृत्यु, प्रेत्य आदि का विस्तृत उल्लेख मिलता है। जीवन का जन्म-मरण चक्र निरन्तर चलता रहता है। प्रत्येक प्राणी कर्मानुसार नव जीवन प्राप्त करता है। केवल जीव और ब्रह्म का ऐक्य (अद्वैत) ज्ञान ही मनुष्य को मृत्यु से अमृतत्व की ओर ले जाता है।

अज्ञानतावश जीव मृत्यु के बन्धन में आकर जन्म-मरण के चक्र (पुनर्जन्म) में फंसा रहता है। कौषीतक्युपनिषद् के अनुसार “शरीर त्याग के अन्तर समस्त प्राणी

चन्द्रलोक को जाते हैं और वहाँ से कुछ पितृयान द्वारा ब्रह्मलोक को जाते हैं और कुछ व्यक्ति मर्त्यलोक में पुनः आकर नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेते हैं।”³² सर्वसारोपनिषद् में प्रेतात्मा का स्वरूप, परलोकगमन मार्ग का स्वरूप आदि का विवेचन मिलता है।

उपनिषदों के अनुसार ज्ञान, तप, श्रद्धा, ध्यान, उपासना में लीन व्यक्ति ब्रह्मलोक में जाते हैं, जहाँ से उनका पुनरागमन नहीं होता।

(viii) नैतिकता -

उपनिषद् केवल अध्यात्म के ही स्रोत नहीं हैं, बल्कि नैतिक शिक्षा के भी केन्द्रबिन्दु हैं। ‘सत्यं वद’, ‘धर्मं चर’, “स्वाध्यायान्मा प्रमदः”, ‘अतिथि देवो भव’, ‘सत्यमेव जयते’, ‘मा गृधः, कस्यस्विद्धनम्’, ‘उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत’ आदि का नैतिक उपदेश दिया है। जो मनुष्य को आलस्य, अकर्मण्यता, संकीर्णता का परित्याग कर सत्कर्म हेतु प्रेरित करते हैं। उपनिषदों में तपस्या, दान, आर्जव, सत्य आदि को जीवनरूपी यज्ञ की संज्ञा दी है, जैसे दक्षिणा के बिना यज्ञ व्यर्थ हो जाता है वैसे ही तपस्या, दान आदि के बिना मानव जीवन व्यर्थ है। देवता, मनुष्य तथा असुर इन सभी को ‘द’ का उपदेश दिया है। देवताओं को ‘द’ से दमन (दाम्यत) की, मनुष्यों को ‘द’ से दान (दत्त) की तथा असुरों को ‘द’ से दया (दयध्वम्) की शिक्षा दी है।

उपर्युक्त वर्ण्य विषयों के अलावा और भी उपनिषदों के प्रतिपाद्य हैं जिनका विस्तृत विवेचन किया गया है। जैसे - छान्दोग्योपनिषद् में सामविद्या, मधुविद्या, गायत्री विद्या, शांडिल्य विद्या, प्राणविद्या, प्रणवविद्या, पञ्चाग्निविद्या, उद्गीथविद्या आदि का वर्णन किया गया है। कुछ उपनिषदों में शक्ति के स्वरूप का निरूपण किया गया है जैसे - गायत्री उपनिषद्, दुर्गा उपनिषद्, गुह्यकाली उपनिषद्, वनदुर्गोपनिषद्, हंसषोढोपनिषद् आदि।

कुछ उपनिषदों में विष्णु के विभिन्न अवतारों का वर्णन मिलता है जैसे - सामरहस्योपनिषद्, रामतापिनी उपनिषद्, अव्यक्तोपनिषद् आदि। आरुणि उपनिषद्, कुण्डिका उपनिषद्, परमहंस उपनिषद्, जाबाल उपनिषद् आश्रम उपनिषद् आदि में संन्यास आश्रमों के विभिन्न धर्मों तथा कृत्यों का प्रतिपादन किया गया है। अक्षमालिका उपनिषद्, कालाग्निरुद्र उपनिषद्, अथर्वशिखा उपनिषद्, रुद्रहृदय उपनिषद् आदि शैव उपनिषदों में तो मुख्य प्रतिपाद्य शिव ही हैं।

कुछ उपनिषदों में तो केवल योग का ही प्रतिपादन हुआ है, जिन्हे योग उपनिषद् कहा गया है। जैसे - अद्व्यतारक, अमृतनाद, तेजोबिन्दु, योगकुण्डली,

ध्यानबिन्दु, योगचूडामणि, योगराज आदि उपनिषदों में योगलक्षण, योगांग, योग प्रकार, कुण्डलिनी, प्राण, नाडी, मुद्रा, जप आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है।

उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य ब्रह्म ही है अतः उस ब्रह्म तत्त्व की प्राप्ति के साधनों का भी विस्तारपूर्वक वर्णन उपनिषदों में किया गया है। ये साधन ब्रह्मप्राप्ति, ब्रह्मसाक्षात्कार, ब्रह्मभाव, ब्रह्मदर्शन, मोक्ष आदि में सहायक हैं।

1.6 उपनिषदों की भाषा एवं प्रतिपादन शैली -

उपनिषदों के द्रष्टा आचार्यों ने ब्रह्मानुभूति में लीन होकर गूढ़ विषयों को सरल भाषा में अभिव्यक्त किया है। उपनिषदों की भाषा आडम्बरहीन, प्रवाहशील, प्राञ्जल तथा उपदेशात्मक प्रवृत्ति की है। कुछ वाक्य लघु हैं, तो कुछ दीर्घ हैं परन्तु दीर्घता के कारण वाक्य उद्वेजक न होकर सुसंगठित है। सरल व सहज पद्धति से गूढ़ व कठिन विषयों को भी हृदयंगम कराया गया है। उपनिषदों में प्रायः दीर्घ समासों का अभाव है किन्तु क्लिष्ट पदों और दीर्घसंधियुक्त जटिल रचनाओं का भी प्रदर्शन हुआ है। उपनिषदों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि वैदिक प्रभाव के कारण उस समय ऋषियों में पद्य लेखन की प्रवृत्ति अधिक रही। कुछ उपनिषद् केवल पद्यात्मक हैं तो कुछ गद्यरूप में प्राप्त होते हैं। यहाँ गद्य और पद्य दोनों विधाओं का प्रयोग किया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में गद्य-पद्य दोनों का मिश्रण इस प्रकार किया गया है कि उसे उत्तरवर्ती चम्पूकाव्य का मूल कहा जा सकता है। मुण्डकोपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद् आदि उत्तम काव्यशिल्प के उदाहरण हैं। सभी उपनिषदों का प्रारम्भ और अन्त शान्तिपाठ से किया गया है। शान्तिपाठ के मन्त्र का निर्धारण उपनिषद् जिस वेद से सम्बन्धित है, उस वेद के अनुसार किया गया है। उपनिषदों में रहस्यमय व गूढ़विषयों को सरलरूप में प्रस्तुत करने के लिए भिन्न-भिन्न समय पर विषयानुरूप जिन विविधप्रतिपादन शैलियों का प्रयोग किया गया है वे इस प्रकार हैं -

(i) संवाद शैली -

उपनिषदों में विषय को अनेक बार संवादात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है जैसे - यम-नचिकेता, आरुणि-श्वेतकेतु, याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी, नारद-सनत्कुमार, याज्ञवल्क्य-जनक आदि अनेक गूढ़ विषयों पर चर्चा संवाद शैली में देखने को मिलती है। छान्दोग्योपनिषद् तथा बृहदारण्यकोपनिषद् का अधिकांश भाग संवादों से ही परिपूर्ण है।

(ii) कथा शैली -

उपनिषदों में परमतत्त्व के विवेचन के लिए कथा या आख्यान को आधार बनाया गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् की भृगुवल्ली में ब्रह्मप्राप्ति के मुख्य साधन पंचकोश को समझाने के लिए वरुण और भृगु का आख्यान दिया गया है। छान्दोग्योपनिषद् में ज्ञान और उपासना को समझाने के लिए अनेक स्थलों पर आख्यायिकाएँ दी गई हैं। केनोपनिषद् का यक्षोपाख्यान तथा कठोपनिषद् का नचिकेतोपाख्यान भी प्रमुख हैं।

(iii) समन्वय शैली -

उपनिषदों में अनेक जगह कई दृष्टिकोणों का समन्वय किया गया है जैसे - छान्दोग्योपनिषद् में अश्वपति कैकेय ने सृष्टिविज्ञान के छः सिद्धान्तों का तथा प्रश्नोपनिषद् में पिप्पलाद ऋषि ने छः ऋषियों के मतों का समन्वय किया है।

(iv) अरुन्धती न्याय शैली -

जिज्ञासु शिष्य को शनैः शनैः क्रमशः उच्चतर विद्या का उपदेश देना अरुन्धती न्याय विधि है। तैत्तिरीयोपनिषद् में वरुण ने भृगु को क्रमशः ब्रह्म को अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय बताकर सत्य का उद्घाटन किया। उन्होंने सम्पूर्ण सत्य का उद्घाटन सहसा एक बार में ही नहीं किया।

(v) उपमा शैली -

जो बात तर्क से स्पष्ट नहीं हो पाती उसे उपमा के माध्यम से समझाया जाता है। याज्ञवल्क्य ने आत्मदर्शन की प्रक्रिया को समझाने के लिए ढोल, शंख या वीणा की उपमा दी है। आरुणि ने श्वेतकेतु को अनेक उपमाओं द्वारा तत्त्वमसि की व्याख्या की है।

(vi) निर्वचन शैली -

उपनिषदों में कभी-कभी शब्दों का वास्तविक अर्थ बताने के लिए उसके निर्वचन या निरुक्ति का आश्रय लिया जाता है। बृहदारण्यकोपनिषद् में प्राण, रुद्र, आदित्य आदि शब्दों के निहितार्थ को स्पष्ट करने के लिए निर्वचन किए गए हैं। इससे अर्थ का स्पष्टीकरण और विश्लेषण होता है।

(vii) विश्लेषणात्मक शैली - उपनिषदों के ऋषि किसी वस्तु के कारण, आधार और प्रयोजन की खोज करते हैं। वे कारण के कारण और आधार की खोज करते हुए अन्त में उस तत्त्व तक पहुँचते हैं जो अकारण और निराधार है। याज्ञवल्क्य ने आत्मा का विवेचन शुद्ध विश्लेषणात्मक विधि से किया है।

1.7 उपनिषदों का महत्त्व एवं प्रभाव

उपनिषद् भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं दर्शन ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति की अमूल्य धरोहर हैं। ये तो सकल दार्शनिक विचारों के आदि स्रोत हैं। जैसा कि डायसन ने कहा है कि - “दार्शनिक प्रकाश की चिंगारियाँ ऋग्वेद में प्रकट होती हैं तथा उत्तरोत्तर अधिक दीप्ति के साथ चमकती हुई अन्त में उपनिषदों में पहुँचकर जिस तीव्र ज्योति के रूप में भड़क उठती हैं, वह आज हमें प्रकाश तथा ताप देने में समर्थ है”।³³

सकल वैदिक वाङ्मय में सर्वाधिक लोकप्रिय उपनिषद् हैं क्योंकि उपनिषद् ऐहलौकिक व पारलौकिक कल्याण के लिए श्रेयस्कर हैं। इस महान् ज्ञान भण्डार से चारों आश्रमों व चारों वर्णों के लोग अपनी-अपनी परिस्थितियों और मनोभूमियों के अनुरूप ज्ञान प्राप्त करते आ रहे हैं।

उपनिषदों का परमप्रयोजन ब्रह्म प्राप्ति है। ब्रह्म क्या है?, ब्रह्म और जीवात्मा में क्या सम्बन्ध है? ब्रह्म प्राप्ति कैसे होती है? इन सभी रहस्यों व तत्त्वों का विस्तृत एवं गम्भीर विवेचन उपनिषदों में मिलता है। ब्रह्मप्राप्ति या ब्रह्म साक्षात्कार ही मानव जीवन की सार्थकता है। इस जगत में नानाविध रुचि और अभिवृत्तियों के लोग रहते हैं अतः उपनिषदों में विभिन्न रुचि व संस्कारों वाले अधिकारियों के लिए ब्रह्म प्राप्ति हेतु कर्म, योग, ध्यान, भक्ति, उपासना, सत्य, तप, वैराग्य, श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन आदि साधनों का वर्णन किया गया है। उपनिषद् अध्यात्म के ही प्रकाश पुंज नहीं अपितु ये हमारे नैतिक व व्यावहारिक जीवन से भी जुड़े हुए हैं। उपनिषद् आत्मशक्ति और प्रेरणा देने वाली अक्षय निधि है। ये मानव को अपना नैतिक बल और अस्तित्व बनाए रखने के लिए पथ प्रदर्शक हैं। उपनिषदों में वैदिक कालीन सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवस्था का भी सम्यक् विवेचन किया गया है साथ ही आश्रम व्यवस्था, वर्णव्यवस्था, संस्कार, पञ्चमहायज्ञ, ऋण त्रय आदि का विस्तृत उल्लेख मिलता है। ‘तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनं मा विद्विषावहे’ ‘कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः’ ‘आत्मानं विद्धि’, ‘अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः’, ‘उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत’, ‘अन्नं न निन्द्ययात् अन्नं न परिचक्षीत’, ‘मातृदेवो भव, ‘पितृदेवो भव’, ‘आचार्य देवो भव’, ‘अतिथि देवो भव’ ‘सत्यं वद’, ‘धर्मं चर’, ‘स्वाध्यायान्मा प्रमत्तः’, आदि मानवीय मूल्यों व नीतिपरक उपदेशों के ज्ञान-भण्डार हैं, जो कि प्रत्येक व्यक्ति को आत्मकल्याण व परहित के लिए मार्गदर्शन देते हैं। औपनिषदिक विचार, दर्शन या

चरित्र के अवलम्बन के बिना शायद ही कोई भारतीय ग्रन्थ अस्तित्व में आ पाता। रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृतियाँ, सन्त वाणी या भाष्यकार हो सभी ने उपनिषदों से कुछ ना कुछ अवश्य ग्रहण किया है।

उपनिषद् केवल सांख्य, योग, वेदान्त आदि आस्तिक दर्शनों के ही मूलस्रोत नहीं हैं बल्कि जैन, बौद्ध, चार्वाक आदि नास्तिक दर्शनों के भी मौलिक तथ्यों की आधारशिला हैं। ये भी आधारभूतरूप से उपनिषदों से ही प्रभावित हैं। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक रूप का वास्तविक दिग्दर्शन हमें उपनिषदों से ही प्राप्त होता है।

हालांकि उपनिषद्, जनसामान्य में लोकप्रिय नहीं रहे फिर भी उपनिषदों के सिद्धान्त, कथा, चरित्र आदि की शिक्षा जन-जन में प्रचलित है। मध्यकालीन सूफी भक्तिधारा से आधुनिक भक्ति धाराओं पर उपनिषदों का व्यापक प्रभाव पड़ा है। इनके मूल में उपनिषदों का ही चिन्तन है। भोग, विलासिता का त्याग, मोह व आसक्ति से दूरी, सामाजिक कुरीतियों का विरोध, एकत्वसिद्धान्त आदि विचारों की उपज मूलरूप से उपनिषदों में ही दृष्टिगोचर होती है।

अठारहवीं शताब्दी में समाजसुधारक राजाराम मोहन राय ने मूर्तिपूजा व कर्मकाण्ड का विरोध किया परन्तु उपनिषदों में उनका पूर्ण विश्वास रहा। राजाराम मोहन राय ने उपनिषदों का बंगाली, हिन्दी तथा अंग्रेजी में अनुवाद करवाया तथा ब्रह्म समाज के माध्यम से उनका प्रचार-प्रसार किया।

स्वामी विवेकानन्द ने तो उपनिषदों के ज्ञान को पश्चिमी देशों तक प्रसारित किया। स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक भाषण में कहा था कि - “मैं उपनिषदों को पढ़ता हूँ तो मेरे आँसू बहने लगते हैं। यह कितना महान् ज्ञान है। हमारे लिए यह आवश्यक है कि उपनिषदों से सन्निहित तेजस्विता को अपने जीवन में विशेष रूप से धारण करें। हमें शक्ति चाहिए। शक्ति के बिना काम न चलेगा। यह शक्ति कहाँ से प्राप्त हो? उपनिषद् ही शक्ति की खान है। इनमें ऐसी शक्तियाँ भरी पड़ी हैं जो सम्पूर्ण विश्व को बल, शौर्य एवं नवजीवन प्रदान कर सके। उपनिषद् किसी भी देश, जाति, मत, सम्प्रदाय का भेद किये बिना ही दीन, दुर्बल, दुःखी और दलित प्राणी को पुकार-पुकार कहती है - उठो अपने पैरो पर खड़े होओ और बन्धनों को काट डालो। शारीरिक स्वाधीनता, मानसिक स्वाधीनता, आध्यात्मिक स्वाधीनता, यही उपनिषदों का मूल मन्त्र है।”³⁴

उपनिषदों ने उदात्त भाव, उच्चतम, पवित्रतम, एकान्तिक तथा लोकहितकारी ज्ञान की महिमा को मण्डित किया है। मानव जीवन के दुःखों की ऐकान्तिक और आत्यन्तिक निवृत्ति का मार्ग प्रशस्त करने के कारण ही उपनिषद् पाश्चात्य विद्वानों को भी अपनी ओर आकर्षित करते आ रहे हैं।

जर्मन विद्वान् पाल डायसन ने उपनिषदों का संस्कृत में ही अध्ययन करके 'Philosophy of the Upanisads' नामक ग्रन्थ की रचना की। डायसन ने अपनी पुस्तक में कहा है कि - "Philosophical Conceptions Unequalled in India or Perhaps anywhere else in the world"³⁵

मुगल राजकुमार दाराशिकोह ने सन् 1657 ईस्वी में 52 उपनिषदों का 'सिर-ए-अकबरी' नामक पुस्तक में फारसी अनुवाद करवाया। जर्मन दार्शनिक शापेन हावर ने उपनिषदों से ही शान्ति की प्राप्ति की, वे नित्य सोने से पूर्व उपनिषदों का पाठ किया करते थे। उन्होंने लिखा है कि उपनिषद् मेरे जीवन में शान्ति के साधक रहे हैं और मरणोत्तरकाल में भी मुझे इनसे शान्ति प्राप्ति होगी -

"It has been the solace of My life and will be the solace of my death"

शापने हावर की 'The world as will and Representation' नामक पुस्तक छान्दोग्योपनिषद् पर आधारित है।

अब्राहम ऐन्केटिल ने उपनिषदों का लैटिन अनुवाद 'ओपन खत' नाम से किया। फ्रेडरिक नीत्से, कार्ल गुस्ताव यंग, टी.एस. इलियट, राल्फ वाल्डो, एमर्सन व्हिटमैन, सर विलियम जोन्स, कार्ल ब्रूक, विक्टर कजिन आदि पाश्चात्य दार्शनिकों ने उपनिषदों का अनुवाद किया तथा उपनिषदों से प्रभावित होकर अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किए। ईसा पूर्व पाँचवीं से दूसरी शताब्दी तक के पाइथागोरस, सुकरात, प्लेटो, अरस्तु आदि दार्शनिक भी उपनिषदों से प्रभावित रहे। उनके सिद्धान्तों में उपनिषद् सिद्धान्त परिलक्षित होता है चाहे प्लेटो का 'गुफा का रूपक' सिद्धान्त हो या ग्रीक का 'पुनर्जन्मवाद'।

'Is God Knowable' नामक ग्रन्थ में प्रो. जी. आर्क ने ठीक ही कहा है कि - "मनुष्य की आत्मिक, मानसिक और सामाजिक गुणधर्मों किस प्रकार सुलझ सकती हैं, इसका ज्ञान उपनिषदों में ही मिल सकता है। वह शिक्षा इतनी सत्य, शिव और सुन्दर है कि अन्तरात्मा की गहराई तक उसका प्रवेश होता है। जब मनुष्य सांसारिक दुःखों और चिन्ताओं से घिरा हो तो शान्ति और सहारा देने के लिए अमोघ साधन के रूप में उपनिषद् ही सहायक हो सकते हैं।"³⁶

उपनिषद् आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी सत्य के उस स्वरूप का निरूपण करने में समर्थ हैं, जो विज्ञान, दर्शन तथा धर्म के सिद्धान्तों से समन्वित है। आज मनुष्य की वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक प्रत्याकांक्षाओं की परितुष्टि उपनिषद् ही कर सकते हैं।



सन्दर्भ सूची

- 1 ईशावास्योपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 1997, शांकर भाष्य भूमिका
- 2 कठोपनिषद् की शांकर भाष्य भूमिका, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2008
- 3 आचार्य पाणिनि, अष्टाध्यायी सूत्र 1.4.79, खेमराज कृष्णदास, मुम्बई, सं. 1954, पृ. 13
- 4 छान्दोग्योपनिषद् 3/5/2, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2080, पृ. 233
- 5 कठोपनिषद् 1/3/17, पूर्वोक्त, पृ. 103
- 6 छान्दोग्योपनिषद् 3/11/5, पूर्वोक्त, पृ. 255
- 7 तैत्तिरीयोपनिषद् 1/3 शांकर भाष्य, ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2080, पृ. 910
- 8 सरस्वती मधुसूदन, अद्वैतसिद्धि: प्रथम भाग - 1/1, श्री सरिता प्रेस, वाराणसी, 1984, पृ. 2 मंजरी,
- 9 संक्षेपशारीरक 1/103
- 10 महाभारत, शान्तिपूर्व, मोक्षधर्म 251/11-12
- 11 डॉ. राधाकृष्णन्, भारतीय दर्शन - 1, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 2023पृ. 117
- 12 तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/8/1, पूर्वोक्त, पृ. 1043
- 13 कल्याण उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2080, पृ. 155-158
- 14 मुक्तिकोपनिषद् 1/30, कल्याण उपनिषद् अंक, गीताप्रेस, सं. 2080, पृ. 647
- 15 द्विवेदी, पारसनाथ, वैदिक साहित्य का इतिहास, चौखम्बा सुरभारती वाराणसी, 2005, पृ. 150
- 16 उपाध्याय बलदेव, भारतीय दर्शन, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2022, पृ. 37-38
- 17 मुक्तिकोपनिषद् 11-14, पूर्वोक्त, पृ. 646
- 18 मुक्तिकोपनिषद् 29-40, पूर्वोक्त, पृ. 648
- 19 देवराज, नन्दकिशोर, भारतीय दर्शन, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2002, पृ. 59
- 20 पाण्डेय, ओमप्रकाश, वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरूप, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृ. 212-214
- 21 तैत्तिरीयोपनिषद् 3/1/1, पूर्वोक्त, पृ. 1073
- 22 तैत्तिरीयोपनिषद् 2/1/1, पूर्वोक्त, पृ. 966
- 23 कठोपनिषद् 1/2/18, पूर्वोक्त, पृ. 71
- 24 कठोपनिषद् 1/2/20, पूर्वोक्त, पृ. 73

-
- 25 माण्डूक्योपनिषद् 2, कल्याण उपनिषद् अंक, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2080, पृ. 296
 - 26 छान्दोग्योपनिषद् 5/1/1, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2080, पृ. 410
 - 27 कौषीतक्युपनिषद् 3/2, कल्याण उपनिषद् अंक, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2080, पृ. 543
 - 28 मुण्डकोपनिषद् 1/1/7, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2080, पृ. 469
 - 29 बृहदारण्यकोपनिषद् 3/2/23, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2080, पृ. 665
 - 30 बृहदारण्यकोपनिषद् 4/4/5, उपर्युक्त, पृ. 1039
 - 31 ईशावास्योपनिषद् 2, ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2080, पृ. 28
 - 32 कौषीतक्युपनिषद् 1/2/2, पूर्वोक्त, पृ. 531
 - 33 Deussen, Dr. Paul, The system of Vedanta, Motilal Banarsidas, Varanasi, 1972 P-18
 - 34 आचार्य, श्रीराम, 108 उपनिषद्, ज्ञानकाण्ड, भूमिका, संस्कृति संस्थान, बरेली, 2023, पृ. 7-8
 - 35 Deussen, Paul and Geden, A.S., The Philosophy of the Upanisads, T. and T. Clark, Edinburgh, 1906, P. 86
 - 36 आचार्य, श्रीराम, 108 उपनिषद्, ज्ञानकाण्ड, भूमिका, पूर्वोक्त पृ. 9

द्वितीय अध्याय

योग : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उद्देश्य एवं महत्त्व

द्वितीय अध्याय

योग : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उद्देश्य एवं महत्त्व

2.1 योग का अर्थ व परिभाषा

योग शब्द युज् धातु से घञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। पाणिनीय धातुपाठ में युज् धातु तीन अर्थों में प्रयुक्त हुई है (i) युजिर् योगे रुधादिगणीय युज् धातु संयोग, जोड़ना तथा मिलाना अर्थों में प्रयोग हुई है। जीवात्मा का परमात्मा से संयोग, मेल, मिलाप ही योग है अर्थात् दुःख रूपी संसार से वियोग तथा ईश्वर से संयोग योग है। योग याज्ञवल्क्य ने योग का संयोग अर्थ मानकर ही कहा है- **“संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः।”**¹ योग का यही अर्थ मानकर गीता में श्री कृष्ण ने कहा है- **“तं विद्यात् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्”**² अर्थात् दुःख रूपी संसार के संयोग से रहित होना ही योग है। (ii) युज् समाधौ दिवादिगणीय युज् धातु समाधि अर्थ में है, जिसका शाब्दिक अर्थ है सम्यक् स्थापना। योग सूत्रकार पतञ्जलि ने योग का समाधि अर्थ माना है- **“योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः”**³ योग का समाधि अर्थ मानकर ही सम्प्रज्ञातसमाधि व असम्प्रज्ञातसमाधि योग के दो प्रकार बताए हैं। योगसूत्र भाष्यकार व्यास ने योगसूत्र पर कहा है कि **“योगः समाधिः स च सार्वभौमिकश्चित्तस्य धर्मः”**⁴ अर्थात् समाधि द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार करना ही योग है। (iii) युज् संयमने चुरादिगणीय युज् धातु नियमन, संयमन अर्थ में है। इस प्रकार मन को नियन्त्रित या संयमित करने की विद्या योग है।

योग शब्द का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ -

- (i) **‘युज्यते एतत् इति योगः’** इस व्युत्पत्ति के अनुसार कर्म कारक में योग शब्द का उद्देश्य अर्थ में प्रयोग किया गया है। चित्त की वह अवस्था जब चित्त की समस्त वृत्तियों में एकाग्रता आ जाती है। इस व्युत्पत्ति से योग का अर्थ हुआ चित्त वृत्तियों में एकाग्रता आना।

- (ii) 'युज्यते अनेन इति योगः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार करण कारक में योग शब्द साधन अर्थ में है। जिससे या जिसके द्वारा चित्तवृत्तियों में एकाग्रता लाई जाती है।
- (iii) 'युज्यतेऽस्मिन् इति योगः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार अधिकरण कारक आधार अर्थ में योग शब्द का प्रयोग हुआ है। जिस स्थान पर या जहाँ चित्त की वृत्तियों की एकाग्रता उत्पन्न की जाती है।

योग की परिभाषाएँ -

- ❖ कठोपनिषद् में स्थिर इन्द्रिय धारणा को योग कहा है-

“तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।

अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥”⁵

अर्थात् इन्द्रियों की स्थिर अवस्था को मुनिजन योग मानते हैं। उस समय योगी प्रमोद रहित और इन्द्रियों की वासना से भी रहित हो जाता है। योग से ज्ञान की उत्पत्ति होती है और कर्म का नाश हो जाता है।

- ❖ श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार

“ समत्वं योग उच्यते ”⁶

समस्त आसक्तियों का परित्याग कर समभाव या समता से निष्काम कर्म करना और इसी समता का नाम योग है।

“योगः कर्मसु कौशलम्”⁷

कर्मों में कुशलता का नाम ही योग है अर्थात् योग से कार्य क्षमता और व्यवहार कुशलता में वृद्धि होती है।

“तं विद्यात् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ”⁸

दुःखों के संयोग का वियोग होना ही योग है अतः अनिर्विण्ण (उद्वेग न हो) चित्त से निश्चयपूर्वक योग करना चाहिए। समस्त इन्द्रियों को वश में रखते हुए परमतत्त्व में मन को एकाग्र करना ही योग है। गीता में मुख्य रूप से ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग इन तीन योग मार्गों का विस्तृत रूप में वर्णन किया गया है।

- ❖ निर्वाणोपनिषद् में कहा गया है कि योग से परब्रह्म के सदानन्द स्वरूप का दर्शन किया जाता है-

“योगेन सदानन्दस्वरूपदर्शनम् ”⁹

- ❖ महोपनिषद् में मन को शान्त करने के उपाय को योग कहा है-

“ मनः प्रशमनोपायो योग इत्यभिधीयते”¹⁰

- ❖ योगवाशिष्ठ के अनुसार योग वह युक्ति है जिसके द्वारा भवसागर को पार किया जा सकता है-

"संसारोत्तरेण युक्तिर्योग शब्देन कथ्यते"¹¹

- ❖ अर्थशास्त्र में योग शब्द का अर्थ अधिक धन प्राप्ति, चिकित्सकों तथा राजाओं को वश में करने के अर्थ में किया गया है-

"योगपुरुषाश्चात्र पूर्वमतिमात्रं ददयुः"¹² (अधिक धन प्राप्ति अर्थ में)

" अभिव्यक्तं वा दंशयित्वा योगदर्शनं प्रतिकरणम्"¹³ (चिकित्सा से विष को दूर करने के अर्थ में)

"सिद्धव्यंजनरूपो वा योगमास्थाय पार्थिवं लभेत दूब्धवा द्रव्येषु दाण्डकर्मिकमाचरेत्"¹⁴ (राजा को वश में करने के अर्थ में)

- ❖ वैदिक योगसूत्र नामक ग्रन्थ में पं. हरिशंकर जोशी ने कहा है-

"योगश्च पुरुषस्य त्रिपादामृतस्याविष्कारो ज्योतेः"¹⁵

पुरुष की सर्वाङ्गीण त्रिपादामृत ज्योति की अनुभूति या साक्षात्कार का नाम योग है। इस त्रिपादामृत ज्योति का घृत आत्मा है, शरीर दीपक है तथा अङ्ग या पञ्चात्माएँ जिन्हें अध्यात्म या प्राण कहते हैं, वे सब वर्तिकाएँ हैं।

- ❖ अमरकोश के अनुसार योग शब्द का अर्थ है-

'योगः सन्नहनोपायध्यानसङ्गतियुक्तिषु"¹⁶

सन्नहन - सन्नद्ध हो जाने, कवच पहनने और हथियार उठाने के अर्थ में योगो योगः प्रयोग हुआ है। उपाय- वैद्य नुस्खे में रोग को दूर करने के अर्थ में इत्येको योगः, इति द्वितीयो योगः। ध्यान अर्थ में, सङ्गति- दो वस्तुओं के मिलन या सङ्गम अर्थ में, युक्ति- उपाय अर्थ में।

- ❖ विष्णु पुराण के अनुसार -

"आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।

तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते।।"¹⁷

आत्मज्ञान के प्रयत्न यम, नियम, प्राणायाम आदि की अपेक्षा रखने वाले मन की विशिष्ट गति है, उस विशिष्ट गति वाले मन का ब्रह्म के साथ संयोग होना ही योग है।

- ❖ अग्नि पुराण में चित्त की एकाग्रता को योग कहा है-

"ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं योगस्तत्रैक चित्तता।

चित्तवृत्ति निरोधश्च जीवब्रह्मात्मनोः परः।।"¹⁸

चित्त की ब्रह्म में एकाग्रता अर्थात् चित्त को एक जगह स्थापित करना ही योग है।

❖ लिङ्ग पुराण के अनुसार-

‘सर्वार्थ विषयप्राप्तिरात्मनो योग उच्यते’

आत्मा को समस्त विषयों की प्राप्ति होना योग है।

‘योगनिरोधो वृत्तेस्तु चित्तस्य द्विजसत्तमा’

चित्त की सभी वृत्तियों का निरोध हो जाना, उसे पूर्ण समाप्त कर देना योग है।

❖ गरुड़ पुराण में कहा गया है कि -

“ब्रह्मात्मनोर्यदैकत्वं स योगश्चोत्तमोत्तमः”¹⁹

ब्रह्म और आत्मा का एकत्व (अभेद) ही सबसे उत्तम योग है।

❖ सांख्य दर्शन में कहा गया है-

‘युं प्रकृत्योर्वियोगेऽपि योग इत्यभिधीयते’

पुरुष-प्रकृति का पृथक्त्व स्थापित कर प्रकृति-पुरुष का वियोग करके पुरुष का स्वरूप में स्थित हो जाना योग है।

❖ याज्ञवल्क्य स्मृति में महर्षि याज्ञवल्क्य ने योग को परम धर्म कहा है-

“अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्”²⁰

जिस योग साधना के द्वारा आत्म दर्शन या ब्रह्म साक्षात्कार हो वही परम धर्म है।

‘संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मात्मनोः’ जीवात्मा-परमात्मा के मिलन को योग कहते हैं।

❖ योग वाशिष्ठ के अनुसार -

चित्त वृत्ति निरोध को योग कहते हैं।

‘योगो वृत्तिनिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम्’

योग वह युक्ति है जिसके द्वारा भवसागर को पार किया जा सकता है। जीव और आत्मा की एकता को योग कहा गया है।

‘संसारोत्तारणे युक्तिर्योगशब्देन कथ्यते।

ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योग योगविशारदाः॥’

❖ श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार बहिर्गामी इन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटाकर इनकी प्रवृत्ति को अन्तर्मुखी करना योग है -

“योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया ।

ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्।”²¹

मनुष्यों का आत्यन्तिक कल्याण करने हेतु श्री कृष्ण ने तीन योग बताएँ हैं- ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग। इन तीनों के अलावा दूसरा कोई कल्याण का मार्ग नहीं है अर्थात् ये तीनों योग ही कल्याणप्रद तथा श्रेयस्कर हैं।

❖ स्कन्द पुराण में आत्मा-परमात्मा के अपृथक्त्व या एकत्व भाव को ही योग कहा है-

‘परमात्मात्मनो योऽयमविभागः परन्तपः।

स एव तु परो योगः समासात्कथितस्तव ॥’

आत्मा- परमात्मा की अभिन्नता को परम योग कहा गया है।

‘आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्तच्च योगादृते न हि’ अर्थात् आत्म ज्ञान के द्वारा ही मुक्ति होती है और आत्म ज्ञान योग के बिना सम्भव नहीं है।

❖ योग दर्शन के अनुसार योग-

‘योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः’

चित्त (अन्तःकरण) की वृत्तियों का निरोध करना ही योग है। चित्त वृत्तियों का निरोध होने पर आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाती है अर्थात् कैवल्य अवस्था को प्राप्त हो जाती है।

❖ व्यास भाष्य में योग सूत्र भाष्यकार महर्षि व्यास ने समाधि की स्थिति को योग कहा है-

‘योगः समाधिः’

❖ आत्मोपनिषद् में समाधि को योग कहा गया है-

“तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरिति कथ्यते”²²

जब मन वृत्ति शून्य होकर आत्मा के साथ ऐक्य को प्राप्त कर लेता है तो मन की उस अवस्था का नाम समाधि है।

❖ शिव संहिता में आत्मा में परमात्मा के दर्शन को योग कहा है-

“आत्मनमात्मनो योगी पश्यत्यात्मनि निश्चितम्”²³

अर्थात् योगी आत्मा से आत्मा को आत्मा में देखता है।

❖ चरक संहिता में योग को मोक्ष प्रवर्तक कहा है-

“योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामावर्तनम्।

मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा योगो मोक्षप्रवर्तकः॥”²⁴

आत्मा को मन और इन्द्रियों के साथ विषयों के सम्पर्क से सुख-दुःख अनुभूत होते हैं। जब मन आत्मा में स्थिर हो जाता है, तब सुख-दुःख की अनुभूति नहीं होती। मन के आत्मा-परमात्मा में लीन हो जाने की अवस्था को योगियों ने योग कहा है -

आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानां सन्निकर्षात् प्रवर्तते।

सुखं दुःखमनारम्भादात्मस्थे मनसि स्थिरे॥

निवर्तते तदुभयं वशित्वं चोपजायते।

सशरीरस्य योगज्ञास्तं योगमृषयो विदुः॥'

❖ दक्ष स्मृति में कहा गया है-

“लोको वशीकृतो येन येन चात्मावशीकृतः।

इन्द्रियार्थो जितो येन तं योगं प्रब्रवीम्यहम् ॥”²⁵

जिसके द्वारा सम्पूर्ण लोक को और स्वयं को वश में कर सकते हैं तथा इन्द्रिय अर्थों को जीत सकते हैं, उसे योग कहते हैं।

❖ मनुस्मृति में कहा गया है कि योग द्वारा आत्मा को जाना या देखा जाता है। मनु के अनुसार प्राणों का नियमन ही मुख्य योग है।

“सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः”²⁶

❖ महाभारत के शान्ति पर्व एवं अनुशासन पर्व में योग प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है-

“अजं पुराणमजरं सनातनं यदिन्द्रियैरुपलभते निश्चलैः।

अणोरणीयो महतो महत्तरं तदात्मना पश्यति मुक्तमात्मवान्॥”²⁷

योग साधना के सिद्ध हो जाने पर योगी आत्मा से परमात्मा का अनुभव करने लगता है।

❖ गोरक्ष शतक में योग को मुक्ति का मार्ग बताया है-

“एतद् विमुक्तिसोपानमेतत् कालस्य वञ्चनम्।

यद् व्यावृत्तं मनो भोगादासक्तं परमात्मनि॥”²⁸

योग मुक्ति प्राप्ति का सोपान है। इस सोपान पर चलकर व्यक्ति कालजयी हो जाता है। इस योग ज्ञान के द्वारा मन विषय भोगों के रसास्वादन से निवृत्त होकर भगवच्चिन्तन में लग जाता है।

❖ घेरण्ड संहिता में बताया गया है कि योगाभ्यास से तत्त्व ज्ञान या आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है-

“तथा योगं समासाद्य तत्त्वज्ञानं च लक्ष्यते”²⁹

योगाग्नि के द्वारा ही शरीर परिपक्व किया जा सकता है तथा योग से बढ़कर कोई बल नहीं है- 'योगानलेन संदह्य घटशुद्धि समाचरेत्' 'नास्ति योगात्परं बलम्'

- ❖ कैवल्योपनिषद् के अनुसार श्रद्धा, भक्ति, ध्यान द्वारा आत्मा का ज्ञान होना योग है-

“श्रद्धाभक्तिध्यानयोगावदेहि”³⁰

- ❖ योगशिखोपनिषद् में एकता या संयोग को योग कहा है-

“योऽपानप्राणयोरैक्यं स्वरजोरेतसोस्तथा।

सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः ॥

एवं तु द्वन्द्वजालस्य संयोगो योग उच्यते।”³¹

अर्थात् प्राण और अपान वायु की एकता, रज-वीर्य की एकता, सूर्य और चन्द्रमा की एकता तथा जीवात्मा और परमात्मा की एकता आदि अन्य युग्मों की परस्पर एकता या संयोग को योग कहते हैं।

- ❖ मैत्रायणी उपनिषद् के अनुसार -

“एवं प्राणमथोङ्कारं यस्मात्सर्वमनेकधा,

युनक्ति युञ्जते वापि तस्माद्योग इति स्मृतः।

एकत्वं प्राणमनसोरिन्द्रियाणां तथैव च।

सर्वभावपरित्यागो योग इत्यभिधीयते॥”

अर्थात् जो साधना प्राण और ओङ्कार को तथा मन व इन्द्रिय आदि सबको अनेक बार संयुक्त कर देती है, उस साधना को योग कहते हैं। इन्द्रियाँ, मन और प्राण की एकता के साथ ही समस्त भावों का परित्याग उस साधना में होता है अतः उसे योग कहते हैं।

- ❖ वैशेषिक दर्शन के अनुसार योग-

‘तदनारम्भ आत्मस्थे मनसि शरीरस्य दुःखाभावः स योगः’

सुख-दुःख के आरम्भ से रहित आत्म स्वरूप में स्थित मन के योग से जिस अवस्था में देह विशिष्ट आत्मा को दुःख नहीं होता वह योग है अर्थात् जब मन आत्मा में स्थित हो जाता है तो दुःखों का अभाव होना ही योग है।

आधुनिक आचार्यों द्वारा प्रदत्त योग की परिभाषाएँ -

- ❖ डॉ. राधाकृष्णन् - अपनी आध्यात्मिक शक्तियों को एक जगह इकट्ठा करना, उन्हें सन्तुलित करना और बढ़ाना ही योग है।
- ❖ महर्षि अरविन्द - अपने आप से जुड़ना ही योग है।

- ❖ **स्वामी विवेकानन्द** - योग व्यक्ति के विकास को उसकी शारीरिक सत्ता के एक जीवन या कुछ घण्टों में संरक्षित कर देने का साधन है।
- ❖ **स्वामी दयानन्द सरस्वती** - सजगता का विज्ञान योग है।
- ❖ **रांगेय राघव** - शिव व शक्ति का मिलन योग है।
- ❖ **गुरु ग्रन्थ साहिब** - निःस्वार्थ भावना से कर्म करना, सच्चे धर्म का पालन है और यही वास्तविक योग है।
- ❖ **पं. श्रीराम शर्मा आचार्य** - जीवन जीने की कला योग है।
- ❖ **श्रीरामकृष्ण परमहंस** - परमात्मा की शाश्वत और अखण्ड ज्योति के साथ अपनी ज्योति को मिला देना ही योग है।
- ❖ **प्रो. रामहर्ष** - मनुष्य के व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक पक्षों का एकीकरण है साथ ही मनुष्य का इसके साथ समन्वय योग है।
- ❖ **परमहंस योगानन्द** - योग आज की आवश्यक और आने वाले कल की संस्कृति है।
- ❖ **भारती कृष्णतीर्थ** - नर का नारायण के साथ एकात्म हो जाने के साधन को योग कहते हैं।
- ❖ **सम्पूर्णानन्द (चिदविलास)** - आत्मसाक्षात्कार का एकमात्र उपाय योग है।

2.2 योग का इतिहास एवं परम्पराएँ

भारतवर्ष द्वारा प्रदत्त योग एक जगत् कल्याणकारिणी अमूल्य निधि है, जो प्रत्येक व्यक्ति, राष्ट्र, धर्म, जाति, लिङ्ग की जीवन पद्धति से जुड़ी है। योग एक जीवन विज्ञान है, एक जीवनशैली है, जीने की उत्कृष्ट कला है। यह कब, कहाँ और किसके द्वारा प्रतिपादित किया गया, यह निर्विवाद विषय नहीं है।

सर्वप्रथम विश्व के प्राचीनतम साहित्य वेद में योग सम्बन्धी विचारधारा के उल्लेख मिलते हैं। पं. हरिशंकर जोशी ने 'वैदिक योगसूत्र' नामक पुस्तक में बताया है कि वेदों का पूर्ण विषय योगमय ही है। वैदिक ऋषियों ने योगसाधना द्वारा ध्यान की उच्चावस्था में समाधिस्थ होकर ही मन्त्रों का साक्षात् दर्शन किया इसलिए वैदिक ऋषि साक्षात्कृतधर्मा अर्थात् मन्त्रदृष्टा कहलाए -

‘साक्षात्कृत धर्माण ऋषयो बभूवुः’, ‘ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः न तु कर्तारः’

इस प्रकार वैदिक ऋषियों ने अपने विलक्षण ध्यानयोग द्वारा पारलौकिक शक्तियों का अनुभव किया तथा सम्पूर्ण जगत् के सृष्टिविज्ञान को मानव कल्याण हेतु प्रकट किया। वेद का मुख्यप्रतिपाद्य ब्रह्म ज्ञान रहा, अन्य कर्म तो ब्रह्म ज्ञान प्रेरित करने के लिए थे जैसा कि ऋग्वेद के इस मन्त्र में कहा गया है -

“ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वेनिषेदुः।

यस्तन्न वेद किमुचा करिष्यति य इत्तद्विदस्त इमे समासतेः॥” ³²

अर्थात् जिसे ब्रह्म कहते हैं जिसका अधिष्ठान परम व्योम है, इसी में वेदों की ऋचाएँ एवं विश्व के सम्पूर्ण देवों का वास है। जो इस ब्रह्म तत्त्व को नहीं जानता, उसके लिए ऋचाएँ व्यर्थ हैं। जो उस अक्षर ब्रह्म को जानता है, वहीं ब्रह्म सम्बन्धी चर्चाओं में स्थान पाने योग्य है।

इससे इस बात की पृष्टि होती है कि वैदिक कालीन लोग इहलौकिक सुख की कामना से ही देवी-देवताओं की स्तुति व यज्ञादि कर्म भी नहीं किया करते थे, बल्कि चित्त की शुद्धता के लिए कर्मकाण्डात्मक यज्ञादिकर्म सम्पादित करते थे ताकि चित्त शुद्धि द्वारा ज्ञानग्रहण की योग्यता उत्पन्न हो सकें अर्थात् चित्त शुद्ध कर चित्त को परमात्मा के ध्यान में लगा सकें। ऋग्वेदादि में योग के संकेत मिलते हैं इससे यह बात तो सिद्ध होती है कि योग का प्रारम्भ ऋग्वैदिक काल से पूर्व ही हो गया था अतः यह कहना उचित होगा कि सृष्टि के आरम्भ काल से ही योग विद्या का प्रचलन था। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि योग विद्या सिन्धु कालीन सभ्यता की देन है। वे इसे वेद से पूर्व की सभ्यता मानकर योग का अभ्युदय इस सभ्यता से मानते हैं परन्तु मोहनजोदड़ो से प्राप्त धार्मिक अवशेषों में केवल माँ भगवती की मूर्तियाँ ही नहीं हैं बल्कि एक नरदेवता की भी मूर्ति प्राप्त हुई है, जो आदिनाथ शिव की प्रतीत होती है। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक सभ्यता के स्रोत सिन्धुघाटी सभ्यता से भी पुरातन हैं। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के महानिदेशक रहे सर जॉन मार्शल ने अपनी पुस्तक ‘मोहनजोदड़ो एण्ड द इण्डस सिविलिजेशन’ में कहा है कि ‘मोहनजोदड़ो में जिस नरदेवता की मूर्ति मिली है, वह त्रिमुखी है। वह देवता एक कम ऊँचे पीठासन पर योगमुद्रा में बैठा है। उसके दोनों पैर इस प्रकार मुड़े हुए हैं कि एड़ी से एड़ी मिल रही है, अंगूठे नीचे की ओर मुड़े हुए हैं एवं हाथ घुटने के ऊपर आगे की ओर फैले हुए हैं।’³³

आधुनिक शोधों से यह स्पष्ट हो गया है कि सिन्धु सभ्यता वैदिक सभ्यता के बाद होने वाली वैदिक मूलक सभ्यता है। यह सभ्यता मिश्रित संस्कृति से युक्त थी।

स्थान एवं संस्कृति की भिन्नता के कारण इनमें थोड़ी बहुत भाषा सम्बन्धी भिन्नता एवं शारीरिक भिन्नता दिखाई देती है। इसी विभिन्नता के आधार पर विदेशी विद्वानों ने इन्हें आर्य एवं अनार्य के रूप में बाँट दिया। इस विषय पर महर्षि अरविन्द कहते हैं कि -

“आर्यों एवं अनार्यों के बीच का भेद जिस पर इतना सब कुछ निर्भर है। अनेक प्रमाणों से विदित होता है कि कोई जातीय भेद नहीं अपितु सांस्कृतिक भेद था।

स्वामी शंकरानन्द ने सिन्धुघाटी सभ्यता को वैदिक सभ्यता का ही अंग बताया है -

“उत्खनन में प्राप्त देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ आध्यात्मिक प्रतीक चिह्न आदि वैदिक-कालीन चिह्नों से समीकृत किए जा सकते हैं तथा अन्त्येष्टि संस्कार एवं अनेक सामाजिक आचार-विचारों की समानताएँ इनमें निहित मूलभूत एकता का समर्थन करती हैं। इन कारकों के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप यह विचार अभिव्यक्त किया गया है कि मोहनजोदड़ो व हड़प्पा की सभ्यता वैदिक सभ्यता से नितान्त भिन्न नहीं थी अपितु ये सभ्यताएँ वैदिक सभ्यता का ही अंग थी।³⁴

अतः स्पष्ट हो जाता है कि वैदिकसभ्यता से पूर्व योग विद्या विद्यमान थी। वह ऋग्वेद की रचना से पूर्व ही फल-फूल चुकी थी और अब प्रौढावस्था को प्राप्त हो रही थी। इसी योग विद्या के परिणामस्वरूप वैदिक मन्त्रों की रचना हुई। वैदिक कालीन ऋषियों ने सृष्टि के आदि में निहित इस विद्या का सत्य दर्शन कर इसे वैदिक मन्त्रों में प्रकट किया जैसा कि निरुक्तकार ने कहा है -

“तद्यदेनांस्तपस्यमानान्ब्रह्म स्वयम्भवभ्यानर्षत् तदृश्योभवस्तदृशीणां ऋषित्वमिति विज्ञायते।” अर्थात् तपस्यालीन व्यक्तियों के हृदय में स्वयम्भू ब्रह्मा आविर्भूत हुए इसलिए वे ऋषि कहलाए।

अतः यही कहना उचित होगा कि सृष्टि के आरम्भ से ही योग का प्रचलन रहा। इसे किसी काल से सम्बद्ध करना उचित नहीं है, यह तो काल की परिसीमाओं से परे है तथा प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा से सम्बन्धित ज्ञान है।

योग का प्रथम वक्ता -

अब इस विषय पर विचार करना आवश्यक है कि सर्वप्रथम योग का वर्णन किसके द्वारा किया गया? योग के आदि वक्ता या प्रवर्तक कौन थे? सर्वप्रथम योग किसने प्रारम्भ किया? परन्तु यह निर्विवाद विषय नहीं है। नाथ सम्प्रदाय के लोग योगी आदिनाथ शिव को योग का प्रथम वक्ता मानते हैं। उनके अनुसार सृष्टि के

आरम्भ में शिव ने पार्वती को योग का उपदेश दिया फिर शिव ने मत्स्येन्द्रनाथ को दिया। हठयोग प्रदीपिका में शिव ही योग के उपदेष्टा बताएँ गए हैं -

“श्री आदिनाथाय नमोस्तु तस्मै येनोपदिष्टा”³⁵

भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि - “हे अर्जुन, मैंने ही इस योग का उपदेश सृष्टि के आरम्भ में सूर्य देवता को दिया था, इसके पश्चात् सूर्य ने अपने पुत्र मनु को यह योग सिखाया तथा मनु द्वारा यह योगविद्या इक्ष्वाकु को दी गई और फिर एक राजर्षियों की लम्बी परम्परा चलती गई और अन्त में वह योग लुप्त हो गया था, जिसको आज मैंने पुनः तुम्हारे सामने प्रस्तुत किया है।”³⁶

विभिन्न शास्त्रों में योग के आदि वक्ता या प्रवर्तक हिरण्यगर्भ को जाना जाता है। बृहदयोगी याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार हिरण्यगर्भ योग के आदि वक्ता हैं अन्य कोई नहीं - “हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः”³⁷ महाभारत में भी योग के आदि वक्ता हिरण्यगर्भ ही बताए गए हैं -

“सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षि स उच्यते।

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः॥”³⁸

श्रीमद्भागवत में भी इसी बात की पुष्टि की गई है -

“इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवान्जगाद् यत्।

यदन्तकाले त्वपि निर्गुण मने, भक्त्या दीधितोज्झित दुष्कलेवरः॥”

अर्थात् हे योगेश्वर! मनुष्य अनन्त काल में देहाभिमान त्याग कर आपके निर्गुण स्वरूप में चित्त लगाएं, इसी को भगवान् हिरण्यगर्भ ने योग की सबसे बड़ी कुशलता बताई है।

इस प्रकार योग के आदि वक्ता हिरण्यगर्भ है यह तो स्पष्ट हो जाता है परन्तु हिरण्यगर्भ कौन है? इस विषय पर अनेक मान्यताएँ प्रचलित हैं। प्राचीन शास्त्रों में हिरण्यगर्भ का तत्त्वरूप में व ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में उल्लेख मिलता है।

हिरण्यगर्भ का शाब्दिक अर्थ है स्वर्णबीज, स्वर्णमय आलोक का आदि स्रोत तथा विश्वात्मा, जिससे जगत् की सकल शक्तियों का उद्गम हुआ है। बाद में इसका अर्थ सृष्टिकर्ता ब्रह्मा माना जाने लगा।

सामान्यतः शास्त्रों में सात हिरण्यगर्भों का उल्लेख मिलता है जिनका संक्षेप वर्णन निम्नानुसार है -

हिरण्यगर्भ प्रथम -

सूर्य को प्रथम हिरण्यगर्भ माना गया है। सूर्य तत्त्वरूप में तथा आचार्य सूर्य व्यक्ति के रूप में प्राप्त होते हैं। आचार्य सूर्य द्वारा रचित 'योगमार्तण्ड' अनुपलब्ध है तथा सूर्य देवता (तत्त्वरूप) योग के आदि वक्ता है। यह प्रमाणित नहीं हो सका अतः प्रमाणाभाव से सूर्य (देवता या व्यक्ति) को योग का आदि वक्ता नहीं कहा जा सकता।

हिरण्यगर्भ द्वितीय -

भौतिक तत्त्व महत् (बुद्धि) को दूसरा हिरण्यगर्भ माना जाता है जैसा कि महाभारत में कहा गया है - 'हिरण्यगर्भो भगवानेष बुद्धिरिति स्मृतः'। परन्तु योग के आदि वक्ता भौतिक तत्त्व को नहीं कहा जा सकता।

हिरण्यगर्भ तृतीय -

योगी अहिर्बुध्न्य ने अहिर्बुध्न्यसंहिता (प्राकृत मण्डल 12/39) में हिरण्यगर्भ की दो रचनाओं कर्मयोगसंहिता तथा निरोधसंहिता का उल्लेख किया है परन्तु अहिर्बुध्न्य संहिता में उल्लेखित हिरण्यगर्भ योग के आदि प्रवक्ता नहीं माने जा सकते क्योंकि योग अहिर्बुध्न्यसंहिता से पूर्व भी श्रुति, स्मृति आदि में मिलता है।

हिरण्यगर्भ चतुर्थ -

योगशिखोपनिषद् (1/1-2) के अनुसार शिव के शिष्य हिरण्यगर्भ को योग का आदि वक्ता माना गया है परन्तु इनके द्वारा रचित योगशास्त्र का प्रमाण न होने के कारण इन्हें योग का आदि वक्ता नहीं माना जा सकता।

हिरण्यगर्भ पञ्चम -

यह उत्तम नामक मन्वन्तर के ऊर्जा ऋषि के पिता के नाम से जाने जाते हैं परन्तु वैदिककाल में इनका कोई सूक्त, मन्त्र या रचना नहीं मिलती अतः ये भी आदि वक्ता हिरण्यगर्भ नहीं हैं।

हिरण्यगर्भ षष्ठ -

प्रजापति के पुत्र ऋग्वेदीय मन्त्र दृष्टा हिरण्यगर्भ को योग का आदि वक्ता माना जाता है परन्तु हिरण्यगर्भसूक्त ऋग्वेद के 10 वें मण्डल के 121 वें सूक्त के 10 मन्त्रों में योग विषयक कोई स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता है।

हिरण्यगर्भ सप्तम -

प्रजापति ब्रह्मा को वेद का ज्ञाता माना जाता है। ब्रह्मा ने सृष्टि निर्माण हेतु सर्वप्रथम योगरूप तप किया तथा योगविद्या से सृष्टि की उत्पत्ति की। आदिकालिक देव और वेदज्ञ ब्रह्मा ने वैदिक मन्त्रों में योगविद्या का प्रतिपादन किया तथा ब्रह्मा

ने 'ब्रह्म संहिता' नामक ग्रन्थ की रचना की अतः यह स्पष्ट होता है कि हिरण्यगर्भ रूप से ब्रह्मा का अभिधान किया गया है। योग का आदि वक्ता ब्रह्मा को माना जाता है, जिन्होंने सर्वप्रथम ऋषि-मुनियों को योग का उपदेश दिया। जैसा कि हिरण्यगर्भ का ब्रह्मा के रूप में वेदों में भी उल्लेख मिलता है -

“हिरण्यगर्भः समवर्तताऽग्रेभूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।”³⁹

अर्थात् सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ ही उत्पन्न हुए, जो सम्पूर्ण विश्व के एकमात्र पति हैं, जिन्होंने स्वर्ग व पृथिवी को धारण किया, उन प्रजापति देव का हम हव्य द्वारा पूजन करते हैं।

परन्तु शंकराचार्य, वाचस्पति मिश्र आदि ने योग के आदि उपदेष्टा के रूप में हिरण्यगर्भ नाम से विख्यात सांख्याचार्य कपिल मुनि को माना है -

“कपिलोऽग्रज इति पुराणवचनात् कपिलो हिरण्यगर्भो वा व्यपदिश्यते।”

वाचस्पति मिश्र ने तत्त्ववैशारदी में कपिल मुनि को हिरण्यगर्भ बताया है -

“कपिलो नाम विष्णोरवतारविशेषः प्रसिद्धः स्वयम्भूर्हिरण्यगर्भस्तस्यापि सांख्ययोगप्राप्तिर्वेदे श्रूयते। स एवेश्वर आदिविद्वान् कपिलो विष्णुः स्वयम्भूरिति भावः”

श्रीमद्भागवतपुराण में कपिलमुनि के मत को 'आत्मयोग गुह्य' कहा गया है। महाभारत में भी कपिलमुनि को हिरण्यगर्भ योगरति ब्रह्म कहा गया है।

इस प्रकार सांख्यदर्शन के प्रणेता कपिल मुनि को योग का आदि वक्ता बताया गया है। सांख्य और योग के ऐक्य का उद्घोष करते हुए गीता में कहा गया है कि -

“सांख्ययोगो पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।

एकमप्यास्थितः सम्यग्भयो विन्दते फलम्।।”⁴⁰

सांख्य एवं योग दोनों दर्शनों की मौलिक अभिन्नता के प्रमाणस्वरूप ही योगसूत्र भाष्यकार व्यास ने अपने भाष्य का नाम 'सांख्यप्रवचनभाष्य' रखा। कदाचित् सांख्य एवं योग दोनों पुरातन काल में एक ही दर्शन के सम्मिलित नाम रहे होंगे। एक तत्त्व सिद्धान्त था तो दूसरा उस सिद्धान्त को साक्षात्कार करने का साधन। सांख्य तथा योग एक ही दर्शन के सैद्धान्तिक एवं क्रियात्मक पक्ष थे।

पञ्चशिखसूत्र, बुद्धचरित (12/20) तथा जैन धर्मग्रन्थ 'औपपतिक सूत्र' की उक्ति 'कपिलं सांख्ययोगी' भी इसी तथ्य का समर्थन करती है कि कपिलमुनि या हिरण्यगर्भ सांख्य और योग के मूल प्रवर्तक हैं।

योग परम्पराएँ -

भारतीय योग विद्या की महानता व विशिष्टता है कि इसमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग योग की साधना पद्धतियाँ हैं। योग विद्या के लिए प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है कि वह पात्रता, संस्कार और संकल्प अनुसार किसी भी परम्परा का अनुसरण कर शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दुःखों से निवृत्त होकर ब्रह्मसाक्षात्कार कर सकता है।

मुख्य रूप से योग की आगम तथा निगम दो परम्पराएँ हैं। निगम परम्परा निगम द्वारा निर्दिष्ट वैदिक परम्परा है तथा आगम परम्परा आगम द्वारा निर्दिष्ट तन्त्र की योग परम्परा है।

हालाँकि प्राचीन काल से भारतीय योग की अनेक परम्पराएँ प्रचलित रही हैं, फिर भी अध्ययन सुविधा की दृष्टि से विद्वानों ने योग की विभिन्न शाखाओं को तीन प्रमुख परम्पराओं में वर्गीकृत किया है। सृष्टि की सृजन (ब्रह्मा), पालन (विष्णु) तथा संहार (शिव) इन तीन शक्तियों से योग की प्रमुख तीन परम्पराओं का प्रादुर्भाव हुआ माना जाता है जो निम्नानुसार हैं -

(i) ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता) -

ब्रह्मा को सृष्टि का आदिपुरुष तथा राजपुरुष माना जाता है तथा इनसे उत्पन्न योग राजयोग है। ब्रह्मा द्वारा उद्भूत राजयोग की परम्परा के प्रतिष्ठापन और उन्नयन के लिए पतञ्जलि द्वारा रचित पातञ्जल योग सूत्र है।

(ii) विष्णु (पालनकर्ता) -

विष्णु वैदिक परम्परा के आदि प्रवर्तक माने जाते हैं। विष्णु से उद्भूत वैदिक योग है। इस वैदिक योग परम्परा को सुव्यवस्थित रूप देने के लिए विष्णु के अवतार भगवान् श्रीकृष्ण की गीता है।

(iii) शिव (संहारकर्ता) -

आदिनाथ शिव इस परम्परा के प्रवर्तक माने जाते हैं। इनसे जो योग उत्पन्न हुआ, वह हठयोग है तथा इस परम्परा को गोरक्षनाथ ने समुन्नत रूप दिया। हठयोग से सम्बन्धित गोरक्षनाथ द्वारा विरचित ग्रन्थ गोरक्षसंहिता, योगबीज, सिद्धसिद्धान्तपद्धति हैं।

इस प्रकार योग की अन्य कर्मयोग, भक्तियोग, मन्त्रयोग, लययोग आदि शाखा-प्रशाखाएँ इन तीन प्रमुख योग परम्पराओं में ही समाविष्ट हो जाती हैं।

2.3 योग का विकास एवं प्रमुख यौगिक ग्रन्थ

योग विद्या की परम्परा अत्यन्त प्राचीन रही है। मानव सभ्यता के प्रारम्भ होने के साथ ही योग विद्या की उत्पत्ति हुई है। सभ्यताओं से प्राप्त अवशेषों के ऐतिहासिक साक्ष्यों से योग की प्राचीनता सिद्ध होती है। जिसका विस्तृत उल्लेख इस अध्याय में किया जा चुका है।

लिखित रूप में वैदिक ऋचाओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यक, उपनिषद्, दर्शन, पुराण आदि में योगतत्त्व दृष्टिगोचर होता है। जो कि योग की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं। उपनिषदों में तो विशेष रूप से योग पर विस्तृत उल्लेख मिलता है। योग से सम्बन्धित 21 योग उपनिषद् प्राप्त होते हैं, जो विशेषरूप से योग के महत्त्व को स्पष्ट करते हैं। जिनमें योग के विभिन्न पहलुओं को व्यवस्थित रूप से संकलित किया गया है। उपनिषदों में योग प्राण विज्ञान और जीवन विज्ञान के रूप में वर्णित है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि योग की उत्पत्ति वेदों से हुई तथा उसका पालन-पोषण उपनिषदों में हुआ।

500 ई. पूर्व से 800 ईस्वी तक का काल योग विकास का श्रेष्ठ काल माना जाता है अतः इस अवधि को योग शास्त्रीय काल भी कहा जाता है। इस अवधि में योग विषयक अनेक ग्रन्थ लिखे गए हैं। इसी अवधि में बौद्धधर्म का अष्टांगमार्ग, जैन धर्म का पञ्चमहाव्रत तथा भगवद्गीता के ज्ञानयोग कर्मयोग एवं भक्तियोग को विस्तार मिला। पतञ्जलि ने योगसूत्र में अष्टांग योग का विस्तृत विवेचन किया। पतञ्जलि ने योग को एक व्यवस्थित, चिन्तनशील और व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रदान किया।

योग सूत्र पर 30 से अधिक टीकाकारों ने महत्त्वपूर्ण टीकाएँ लिखी हैं, जो कि पातञ्जलयोगसूत्र की लोकप्रियता व उसके महत्त्व को सिद्ध करती हैं।

800 ई. से 1700 ईस्वी के मध्य उत्तरशास्त्रीय काल में योग के अनेक आचार्यों ने योग के विकास में महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। तात्कालिक शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य, सुदर्शन, तुलसीदास पुरन्दरदास, मीराबाई आदि ने वेदान्त और भक्तियोग उपदेशों के माध्यम से योग के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसी कालावधि में हठयोग के आचार्य मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, गौरांगी नाथ, स्वात्माराम सूरि, घरेण्ड, श्रीनिवास भट्ट आदि ने हठयोग को लोकप्रिय बनाया।

1700ईस्वी से आधुनिक काल के योगाचार्य स्वामी विवेकानन्द, रमण महर्षि, रामकृष्ण परमहंस, योगानन्द परमहंस, माधवदास आदि ने राजयोग को विकसित

किया। इस कालावधि में राजयोग तथा हठयोग योग का विकसित रूप देखने को मिलता है। श्री टी. कृष्णमाचार्य, स्वामी कुवलयानन्द, योगेन्द्र, स्वामीराम, अरविन्द, महर्षि महेश योगी, आचार्य रजनीश, बी. के. एस. अयंगर, स्वामी सत्येन्द्र सरस्वती, पट्टाभिजोड़स, श्रीराम शर्मा आचार्य, बाबा रामदेव आदि ने योग को पूरी दुनिया में प्रचारित किया फलस्वरूप आज योग सम्पूर्ण विश्व में व्यापक रूप से अपनाया जा रहा है। शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उपयोगिता के कारण आज योग समग्र दुनिया में लोकप्रिय हो गया है परिणामस्वरूप 11 दिसम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में घोषित किया है। जिसे एक अन्तर्राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाया जा रहा है।

योग के प्रमुख ग्रन्थ -

श्रीमद्भगवद्गीता	वेदव्यास	500 ई.पू.
योगदर्शन	पतञ्जलि	400 ई.पू.
योग भाष्य	वेदव्यास	द्वितीय शताब्दी
इष्टोपदेश	पूज्यपाद	5वीं शताब्दी
योगबिन्दु, योगद्रिस्ति समुच्चाया, योग शतक, योगविंशिका	आचार्य हरिभद्र सूरी	8वीं शताब्दी
योगसार	आचार्य जोन्दु	8वीं शताब्दी
तत्त्ववैशारदी	वाचस्पति मिश्र	8वीं शताब्दी
योगयाज्ञवल्क्य	याज्ञवल्क्य	9-10वीं शताब्दी
भोजवृत्ति	राजा भोज	11 वीं शताब्दी
योगशास्त्र	हेमचन्द्र	11 वीं शताब्दी
अमृतसिद्धि	अज्ञात	11 वीं शताब्दी
दत्तात्रेय योग शास्त्र	ऋषिकपिला	12वीं शताब्दी
गोरक्षशतक	गोरखनाथ	12वीं शताब्दी
सिद्ध सिद्धान्त पद्धति	गोरखनाथ	12 वीं शताब्दी
योग बीज	अज्ञात	13-14वीं शताब्दी
शिवसंहिता	आर्यवीर रुद्र	13-15 वीं शताब्दी

हठयोगप्रदीपिका	स्वात्माराम	15-16 वीं शताब्दी
योगवार्तिक, योगसारसंग्रह	विज्ञानभिक्षु	16 वीं शताब्दी
सूत्रवृत्ति	गणेशभावा	17 वीं शताब्दी
योगसूत्रवृत्ति	नागेशभट्ट	17 वीं शताब्दी
घेरण्ड संहिता	घेरण्ड	17 वीं शताब्दी
हठरत्नावली	श्री निवास भट्ट	17 वीं शताब्दी
योगचिन्तामणि	शिवानन्द सरस्वती	17वीं शताब्दी
जोगप्रदीपिका	जयतराम	1737 ईस्वी
मणिप्रभा	रामानन्द यति	18 वीं शताब्दी
सूत्रार्थप्रबोधिनी	नारायण तीर्थ	18 वीं शताब्दी
श्रीतत्त्वनिधि	कृष्णराज वाडियार	1800 ईस्वी
सचित्र योग साधना	शिवमुनि	20 वीं शताब्दी
योग मकरन्द	कृष्णमाचार्य	1934 ईस्वी
योगदर्शन	स्वामी सत्यपति परिव्राजक	21 वीं शताब्दी

तालिका 2.1 प्रमुख यौगिक ग्रन्थ सूची

इसके अलावा पं. धनराज शास्त्री ने स्मृति संग्रह नामक ग्रन्थ में प्राचीन नौ योग ग्रन्थों का उल्लेख किया है जो इस प्रकार हैं - जनक कृत 'योग प्रभा', अंगिरा कृत 'योगप्रदीप', कश्यप कृत 'योगरत्नाकर', महर्षि कौत्स कृत 'योगविलास', मरीचि कृत 'योगसिद्धान्त', आचार्य संजय कृत 'प्रदर्शन योग', आचार्य कौशिकी कृत 'योगनिदर्शन', योग मार्तण्ड, मरीचि कृत 'योगविलास'।

2.4 वेद में योग का स्वरूप

'सर्वज्ञानमयो हि सः' संसार की सकल विद्याओं का मूल वेदों में सन्निहित है। वेदों का मूल विषय ज्ञान है अर्थात् लौकिक व अलौकिक विषयों का ज्ञान वेदों में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। आत्म, अध्यात्म, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, खगोल, भूगोल, ज्योतिष, अभियान्त्रिक, गणित, रसायन, भौतिक, औषधि, इतिहास, संस्कृति, धर्म तथा योग इत्यादि विषयों के सम्बन्धित ज्ञान से वेद परिपूर्ण हैं।

योग प्राचीन महर्षियों तथा तत्त्ववेत्ताओं द्वारा प्रतिपादित एक सर्वोत्कृष्ट विद्या है, जिसमें कि सम्पूर्ण मानव जाति के समग्र उत्थान, विकास एवं उत्कर्ष के लिए अनेकानेक उपायोपागम सन्नियोजित हैं। इस प्रकार योग जीवन का एक शान्ति पथ है, जिस पथ पर चलकर मनुष्य एक सुव्यवस्थित तथा आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकता है।

योग परम्परा तो अनादि काल से ही सृष्टि में किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। वैदिक ऋषियों ने योग साधना द्वारा ध्यान की उच्चावस्था में समाधिस्थ होकर ही मन्त्रों का साक्षात् दर्शन किया। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के उत्खनन से प्राप्त प्राचीन अवशेषों, योग साधना करती मूर्तियों व मुद्राओं (सिक्कों) पर उत्कीर्ण ध्यानमुद्रा, नासाग्रदृष्टिमुद्रा, कायोत्सर्गमुद्रादि से योग की प्राचीनता के बारे में जानकारी मिलती है, जो इस बात को प्रमाणित करती हैं कि वैदिक ऋषियों ने योग साधना से ही आत्म तत्त्व तथा सृष्टि विज्ञान को जाना। वैदिक संहिताओं में योग तत्त्व निगूढरूप में विद्यमान है। योग का बीज व फल वेद ही है जैसा कि गोरक्ष शतक में कहा गया है-

“द्विजसेवितशाखस्य श्रुतिकल्पतरोः फलम्।

शमनं भवतापस्य योगं भजति सज्जनः ॥”⁴¹

अर्थात् वेदरूपी कल्पवृक्ष का फल योगशास्त्र है। इस योगशास्त्र के सेवन से संसार के त्रिविध तापों (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक) का शमन होता है।

वैदिक योग साधना का मुख्य ध्येय है आत्मा का परमात्मा के साथ ऐक्य होना। जैसा कि ऋग्वेद में कहा है- हे अग्निदेव ! तुम हमारे और हम तुम्हारे बन जाएँ अर्थात् एक हो जाएँ और तेरी कृपा से हमारा जीवन सत्कर्म में प्रवृत्त हो जाए

“यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्।

स्युष्टे सत्या इहाशिषः॥”⁴²

वेद में योग को एक यज्ञ माना है। जो मुख्य रूप से दो प्रकार का है - जिन ब्रह्मादि सूर्यादि नित्य तत्त्वों से अनित्य तत्त्वों का उत्तरोत्तर विकास होता है, उसे सृष्टि यज्ञ कहते हैं तथा जिन अनित्य तत्त्वों से योग द्वारा नित्य तत्त्वों की सृष्टि करके अनुभूति की जाती है, उसे अतिसृष्टि या योगयज्ञ कहते हैं सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय इन्हीं दो प्रकार की सृष्टिओं से ओतप्रोत है। वैदिक ऋषियों ने सृष्टि और अतिसृष्टि के तत्त्वों का साक्षात्कार या अनुभव किया था-

"को ददर्श प्रथमं जायमानम्"⁴³

"अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्"⁴⁴

मैंने उस प्राण रूप गायों के स्वामी को साक्षात् करके देखा है।

"अपश्यं ग्रामं वहमानमारादचक्रया स्वधया वर्तमानम्"⁴⁵

अनादि काल से प्रकृति प्राणी समूह को वहन कर रही है और वहन करते हुए मैंने उस पुरुष को देखा है।

"नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम्। दिवो न सद्यमखसम्॥"⁴⁶

मैंने तुमको अपने मन से ज्ञात करते या अनुभूति लेते साक्षात् देखा। मैंने प्राणों की समाधि में मन के द्वारा तुम्हें साक्षात् देखा।

"एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममन्धि ।

आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् ॥"⁴⁷

हमारे प्राण-अपान शरीररूपी रथ से योजित दो वृषभों के समान हैं। हे परमात्मा! तू इन्हें कभी शरीर से अलग न करे। उस जीव के सूक्ष्म प्राण ही उसे लक्ष्य तक पहुँचाते हैं।

इन दो प्रकार की सृष्टियों को वैदिक ऋषियों ने द्वे चक्रे, द्वे अरणी, द्वे सुती आदि नामों से पुकारा है- 'ते द्वे अरणी ययोर्जन्मज्जन्मन्निहितो जातवेदाः' इन्हीं को देवमार्ग (उत्तरायण), पितृ और मनुष्य मार्ग (दक्षिणायन) कहा है। योगी लोग दक्षिणायनीय आत्मा को ध्यान आदि प्रक्रियाओं से अतिसृष्टि करके उसकी अनुभूति करते हैं अर्थात् उसका साक्षात्कार करते हैं। उसमें नित्य मग्न रहते हैं। ध्यानादि प्रक्रिया में प्राण तत्त्वों को विश्व देवताओं की उपासना में लगा देते हैं। ऋत्विज् का मुख्य कार्य अपने-अपने देवता को उद्दीप्त करना है। सब के देवता उद्दीप्त होते ही समाधि योग यज्ञ को प्रस्तुत करके इनके शरीर उद्दीप्त सोम का पान करने लगते हैं। पुरुष या सोम का भोक्ता नाम इसी योग का पृथक् नाम है। जब योगी सोम का पान करता है तो सोम भी उस योगी के आत्मेन्द्रिय मन आदि का भोग करता है। यह भोग सब करते हैं। आत्मेन्द्रिय मन भी सोम पान की उन्मादकता रूप भोग पाए बिना नहीं रह सकता। इस भोग अवस्था का ही नाम विष्णु का परम पद या परागति कहा जाता है -

"तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥"⁴⁸

प्राण रूप योगी ऋषि जाग्रत रहकर योग प्रक्रिया में संलग्न होकर विष्णु के परम पद को उद्दीप्त करते हैं अर्थात् प्राणों द्वारा अपने आत्मा रूपी देवताओं की अतिसृष्टि करना है।

“कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः।”⁴⁹

अश्विनी कुमारों की स्तुति करते हुए कहा गया है कि कब प्राण का योग रसमय ब्रह्म के साथ हो सकेगा, जिससे हे नासत्य! तुम उस सत्य नामक अमृत तत्त्व को प्राप्त हो सकोगे। यहाँ योग शब्द जोड़ने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। योगमय कर्म ही श्रेष्ठ हैं। योगानुष्ठान के बिना कर्मों को करना अनुचित बताया है-

“यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन। स धीनां योगमिन्वति॥”⁵⁰

जिस सदसस्पति देव की दया के बिना विद्वान् का यज्ञ भी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर पाता। वह देव सब मनुष्यों की बुद्धि और कर्मों के योग (संयोग) को जानता है अतः जानियों को अपनी बुद्धि एवं कर्मों का योग करना चाहिए।

योग से विवेकख्याति व ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति होती है जैसा कि इन्द्र की स्तुति करते हुए कहा गया है-

“स घा नो योग अ भुवत्स राये स पुरंध्याम्। गमद्वाजेभिरा स नः ॥”⁵¹

इन्द्र अपनी विभिन्न शक्तियों द्वारा हमें प्राप्त हो, जिससे हम विवेकख्याति व ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त कर सकें अर्थात् वह इन्द्र हमारे योग का साधन या साध्य हो।

सविता देव की स्तुति करते हुए कहा गया है कि जैसे महान् स्तुति का पात्र सभी मार्गों का ज्ञाता सविता देव अकेले ही यज्ञ को धारण करता है अर्थात् चित्त को धारण करता है वैसे ही बुद्धिमान् योगीजन सम्पूर्ण जगत् के उत्पन्न करने वाले सम्पूर्ण जगत् के प्रकाशक परमात्मा में मन और बुद्धि को युक्त करते हैं अर्थात् लगाते हैं -

“युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।

वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥”⁵²

यजुर्वेद के सोहलवें (रूद्राध्याय) में यौगिक मुद्राओं का उल्लेख मिलता है तथा ग्यारहवें अध्याय के प्रारम्भिक सात मन्त्रों में योगाभ्यास का उपदेश दिया गया है। योगाभ्यास से आत्मा को परमात्मा से जोड़कर अविद्या आदि क्लेशों से मुक्त होकर दिव्य गुणों को उत्पन्न करता है अर्थात् नित्य सुखों को भोगता है।

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्या व शक्त्या ॥⁵³

युजे वां ब्रह्म पूर्वं नमोभिर्वि श्लोकऽएतु पथ्येव सूरैः।

शृण्वन्तु विश्वेऽमृतस्य पुत्राऽआ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥⁵⁴

योगाभ्यास के ज्ञान को चाहने वाले मनुष्यों को चाहिए कि योग में कुशल विद्वानों का सङ्ग करें। उनके सङ्ग से योग की विधि को जानकर ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करें जैसे विद्वान् का प्रकाशित किया हुआ धर्म मार्ग सब को सुख से प्राप्त होता है, वैसे ही योगाभ्यासियों के सङ्ग से योगविधि सहज में प्राप्त होती है। कोई भी जीवात्मा इस सङ्ग और ब्रह्मज्ञान के अभ्यास के बिना पवित्र होकर सब सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए उस योगविधि के साथ ही सब मनुष्य परब्रह्म की उपासना करें।

योग का नाम योगक्षेम (अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति कराने वाला) भी है क्योंकि योग ही कल्याण या श्रेय का एक मात्र उपाय है-

‘योगक्षेमो नः कल्पताम्’ “योगो वै क्षेम”

योग साधना में आने वाले विघ्नों को दूर करने के लिए इन्द्र से प्रार्थना की गई है-

“योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमृतये ॥”⁵⁵

हम मित्र के समान शक्तिशाली इन्द्र का आह्वान करते हैं, जो उन्नति व अति कठिनता से प्राप्त होने वाले पदार्थ (योगे योगे) अर्थात् प्रत्येक उत्तम कार्य में हमारी सहायता करें।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में सप्तनद्यः (सप्त नादियों) का उल्लेख मिलता है-

“तव त्वे सोम पवमान निण्ये विश्वेदेवास्त्रम एकादशासः ।

दश स्वधामिरधि सानौ अव्ये मृजन्ति त्वा नद्यः सप्त यहवीः ॥”⁵⁶

हे परमात्मा (सोम)! आपके लिए सम्पूर्ण तैंतीस देव पाँच सूक्ष्म भूत और पाँच स्थूल भूतों की सूक्ष्म शक्तियों द्वारा आपके उच्च स्वरूप को शोधित करते हैं तथा सात नदियाँ संस्कार करती हैं। इस मन्त्र में योगविद्या का वर्णन किया गया है और सप्तनद्यः से तात्पर्य सात प्रकार की नादियों से है। सात प्रकार की नादियाँ इड़ा-पिंगला आदि जो मनुष्य के शरीर में विद्यमान रहती हैं। योगी पुरुष इन नादियों के द्वारा संयम करके परमात्मा को प्राप्त करता है।

सामवेद में कहा गया है कि ॐ प्रणव है। साम का रस ही यह उद्गीथ है। ॐ प्रणव संगीत विद्या से ही उपजा है और ओंकार योग में एकाग्रता के लिए

परमावश्यक माना है। जब मन की संगीतमय संगति हो जाती है तब जीव परमात्मा के सच्चिदानन्द स्वरूप की अनुभूति करने लगता है।

अथर्ववेद में मानव शरीर का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया गया है, जिसमें यौगिक तत्त्वों के स्वरूप का दिग्दर्शन होता है -

“अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।

तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽवृतः ॥”⁵⁷

यह मानव शरीर आठ चक्रों (मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूरक चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र, ललना चक्र, आज्ञा चक्र तथा सहस्रार चक्र) तथा नौ द्वारों (दो आँख, दो नासिका छिद्र, दो कान, एक मुख, दो मल-मूत्र के द्वार) से युक्त देवों की (अयोध्या) कभी पराजित न होने वाली नगरी है, इसी नगरी में ज्योति से ढका हुआ हिरण्यमयकोश (हृदय) है, जिसमें ज्योति से परिपूर्ण आत्मिक आनन्द का भण्डार परमात्मा विराजमान है। योगी लोग योग-साधना के द्वारा इन चक्रों का भेदन करते हुए उस ज्योतिस्वरूप परमात्मा के दर्शन करते हैं।

“तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ।

तस्मिन् यद् यक्षमात्मवत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥”⁵⁸

तीन अरों से युक्त, तीन केन्द्रों में स्थित, तेजस्वी हिरण्यमय कोश में जो यजन योग्य आत्मा का स्थान है, उसके अस्तित्व का ज्ञान ब्रह्मविद् व्यक्ति को ही हो सकता है। सामान्य जन अपनी आत्मविस्मृति में ही जीवन जीते हैं। यह अज्ञानता ही जीवात्मा को जन्म-मरण के चक्र में डालने वाली है। योगाभ्यास के द्वारा जब जीवात्मा को स्वस्वरूप का ज्ञान हो जाता है, तो वह जन्म-मरण के इस चक्र से बाहर हो जाता है।

“अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।

योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥”⁵⁹

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अथर्ववेद के इस मन्त्र के ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासना विषय पर कहा है कि हे परमेश्वर ! अष्टाईस तत्त्व (दश इन्द्रियाँ, दश प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, विद्या, स्वभाव, शरीर और बल) कल्याणकारक और सुखकारक होकर एक साथ मेरे उपासना योग को करें। उस योग को और रक्षा को मैं प्राप्त होऊँ अर्थात् योग के द्वारा रक्षा को प्राप्त होऊँ और रक्षा को और योग को अर्थात् रक्षा से योग को मैं प्राप्त होऊँ, इसलिये मेरा तुमको दिन-रात नमस्कार होवे अर्थात् ये अष्टाईस तत्त्व हमारी योग साधना के अनुकूल हों ताकि हम अध्यात्म

योग साधना का अभ्यास कर सकें। इससे हम रक्षा को और उस रक्षा से योग में पूर्णता को प्राप्त कर सकें।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि वैदिक कालीन लोगों की योगमय जीवन शैली थी। उनका प्रत्येक कर्म योग से निबद्ध था तथा उनके विविध क्रियाकलापों व आयामों में सर्वत्र योग विद्यमान था। वे अन्तः करण की शुद्धता के लिए देवताओं की संस्तुति करते थे ताकि वे परम तत्त्व को प्राप्त कर सकें साथ ही श्रुतिपरम्परा द्वारा इस योगविद्या को लोक कल्याण हेतु प्रसारित किया।

2.5 प्रमुख उपनिषदों में योग तत्त्व

योग का जो स्वरूप वैदिक संहिता, ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों में देखने को मिलता है, उसका स्पष्ट, व्यवस्थित तथा दार्शनिक रूप उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है। उपनिषदों का मुख्य विषय ब्रह्म (परमात्मा) है तथा परम प्रयोजन ब्रह्मज्ञान या ब्रह्मप्राप्ति है अतः ब्रह्म प्राप्ति हेतु उपनिषदों में ज्ञान, तप, ब्रह्मचर्य, ध्यान, भक्ति, उपासना, कर्म आदि साधनों का वर्णन किया गया है साथ ही चित्त की अवस्थाओं, योग लक्षण, आसन, योग सिद्धि आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। ज्ञानयोग द्वारा जीवात्मा सब बन्धनों से मुक्त होकर शुद्ध, बुद्ध और मुक्त होकर परमात्मा में विलीन हो जाती है।

श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन ये साक्षात् ब्रह्मसाक्षात्कार के साधन हैं। 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' अर्थात् आत्मा को देखना चाहिए, सुनना चाहिए, मनन करना चाहिए क्योंकि आत्म ज्ञान ही विद्या है, जिससे अलौकिक और वास्तविक आनन्द मिलता है। योग से आत्मदर्शन होता है और केवल परमात्मा ही दृष्टिगोचर होने लगता है, यह संसार तिरोहित हो जाता है -

“तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति

तपसानाशकेनैतमेव विदित्वा मुनिर्भवति॥”⁶⁰

ईशावास्योपनिषद् में निष्काम कर्म करते हुए सौ वर्षों तक जीने की कामना की गई है अर्थात् कर्मयोग का उपदेश दिया गया है -

“कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः”⁶¹

छान्दोग्योपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद्, तथा श्वेताश्वतरोपनिषद् में तो विषय का आरम्भ ही 'ब्रह्म वादिनो वदन्ति' वाक्य से करके निर्देश दिया है कि इनके सभी विषय योग परक ही वर्णित हैं। जिसमें साम, सोमरस, गायत्री, प्राणः, द्वा, अक्षरे

चतुष्फलपादः, वैश्वानरः, उत्तमप्राण ये सब ज्ञान योग के विषय हैं। जब जीवात्मा ब्रह्म का आत्म साक्षात्कार कर लेती है तब उसे ऐसी अनुभूति या प्रतीति होती है-

**"अहमेवाधस्तादहमुपरिष्ठादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदं सर्वं
यादिदं किञ्च" ⁶²**

मैं ही नीचे हूँ, मैं ही ऊपर हूँ, मैं ही पूर्व हूँ, मैं ही उत्तर हूँ, मैं ही पश्चिम हूँ, मैं ही दक्षिण हूँ, मैं ही जो कुछ भी है वह सब कुछ हूँ।

कठोपनिषद् में योग को केवल शारीरिक प्रक्रिया के रूप में ही नहीं बल्कि एक व्यापक आध्यात्मिक प्रक्रिया के रूप में वर्णित किया गया है। योग को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि इन्द्रियों की स्थिर धारणा अवस्था ही योग है अर्थात् इन्द्रियों की चंचलता को समाप्त कर उन्हें स्थिर करना ही योग है।

योग द्वारा इन्द्रियों और मन को संयमित कर ब्रह्मप्राप्ति बताई है -

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।

मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥ ⁶³

जब वही जीवात्मा योगाभ्यास में संलग्न होती है, तब प्राण वायु को वह ऊपर की ओर रोकती है और अधोद्वार में चलने वाली अपान वायु को पेट में फँकती है। उस समय नित्य प्रशस्त जीवात्मा की सारी इन्द्रियाँ सेवन करती हैं, अर्थात् जिस प्रकार सम्पूर्ण प्रजा राजा की आज्ञा का पालन करती हैं, उसी प्रकार योगाभ्यास करने वाले मनुष्य की समस्त इन्द्रियाँ उसके वश में रहती हैं।

इस प्रकार जब पञ्च पञ्च त्रिविध प्राण निश्चल हो जाते हैं, मन भी अविचल हो जाता है तथा बुद्धि भी चेष्टा हीन हो जाती है तब ऐसी स्थिति को स्थिर धारणा, परम गति या परागति कहा गया है।

“यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।

बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥” ⁶⁴

जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ आत्मा में स्थित हो जाएँ और बुद्धि भी चेष्टा न करे, उसी अवस्था को समाधि, परमगति या जीवन्मुक्त दशा कहते हैं।

अर्थात् इन्द्रियों की स्थिर अवस्था को मुनिजन योग मानते हैं। उस समय योगी प्रमोद रहित होकर इन्द्रियों की वासना से रहित हो जाता है, योग में ज्ञान की उत्पत्ति होती है और कर्म का नाश हो जाता है।

कठोपनिषद् में बताया गया है कि मुक्ति प्राप्ति का उपाय या मरण समय में योगी को क्या करना चाहिए-

“शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभि निःसृतैका।

तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥”⁶⁵

शरीर में हृदय के अन्दर कुल मिलाकर एक सौ एक नाड़ियाँ हैं। उनमें से एक नाड़ी मूर्धा, कपाल की ओर निकली हुई है अर्थात् हृदय से चलकर मस्तिष्क में जाती है इसे ही सुषुम्ना नाड़ी कहते हैं। उसके द्वारा ऊपर के लोकों में जाकर मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है। दूसरी सौ नाड़ियाँ मरणकाल में जीव को नाना प्रकार की योनियों में ले जाने की हेतु होती हैं अर्थात् जीवात्मा जन्म-मरण को प्राप्त करती है।

इस प्रकार कठोपनिषद् में योग का स्वरूप, योगी का लक्षण, योग से अमृतपद की प्राप्ति आदि का उल्लेख किया गया है साथ ही शरीर को एकादश द्वार वाला कहा गया है, दस प्राणों का वर्णन किया गया है तथा शरीर में एक सौ एक नाड़ियाँ बताई गई हैं।

“तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।

अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति॥”⁶⁶

जो योग माया के पर्दे में छुपे हुए, सर्वव्यापी, सबके हृदयरूप गुफा में स्थित, संसाररूप गहन वन में रहने वाले, सनातन तथा कठिनता से देखे जाने वाले परमात्मा को अध्यात्म योग के द्वारा जान लेता है वह धीर पुरुष हर्ष और शोक को त्याग देता है अर्थात् उस योगी के अन्तःकरण से हर्ष-शोकादि के विकार नष्ट हो जाते हैं। वह योगी पुरुष सर्वत्र सर्वव्यापी ब्रह्म को पाकर उस परमात्म तत्त्व में प्रवेश कर जाता है।

छान्दोग्योपनिषद् में अध्याय सात के 15 खण्डों में उपासना योग का विस्तृत वर्णन किया गया है। नाम, वाक्, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, जल, तेज, आकाश, स्मरण, आशा और प्राण की ब्रह्म रूप में उपासना की गई हैं। मुण्डकोपनिषद् में ज्ञानयोग का वर्णन करते हुए कहा गया है कि -

“न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मण वा।

ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः॥”⁶⁷

वह परमात्मा न नेत्रों से, न वाणी से, न इन्द्रियों से और न ही तप से अथवा कर्मों से ग्रहण किया जा सकता। उस अवयवरहित परमात्मा को तो विशुद्ध अन्तःकरण वाला साधक निरन्तर ध्यान करता हुआ ज्ञान की निर्मलता से देख सकता है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में ध्यानयोग की विधि और उसका महत्त्व, प्राणायाम का क्रम और उसकी महत्ता, ध्यान के लिए उपयुक्त स्थान, योग सिद्धि या तत्त्व का प्रभाव, योग सिद्धि की स्थिति, योग सिद्धि के पूर्व लक्षण, मनोनिग्रह और अन्तःकरण शुद्धि के विषयों पर विस्तृत चर्चा की गई है।

ध्यान योग की साधना करने वाले को किस प्रकार बैठकर कैसे ध्यान करना चाहिए, इस सम्बन्ध में कहा गया है-

“त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य।

ब्रह्मोदुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि॥”⁶⁸

योगी को ध्यान के समय सिर, गला और छाती को ऊँचा उठा कर शरीर को सीधा और स्थिर रखना चाहिए। समस्त इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर मन के द्वारा हृदय में निरोध करके ओंकार रूपी नौका द्वारा समस्त भयानक प्रवाहों को पार कर लेना चाहिए अर्थात् परमात्मा का ध्यान करके अमरपद को प्राप्त करना चाहिए।

निश्चित ही योग शब्द मनोनिरोध वाचक है और मनोनिरोध के बिना ज्ञान, भक्ति, और वैराग्यादि नित्य सत्कर्म सभी व्यर्थ हो जाते हैं।

“प्राणान्प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छवसीत।

दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः॥”⁶⁹

अर्थात् प्राणों का आयाम करके तत्परता के साथ शुद्ध प्राण वायु हो जाने पर नासिका से उच्छवास ले, जैसे सारथी दुष्ट घोड़ों की लगाम को खिंचकर उनको नियन्त्रित करता है वैसे ही योगी को मन का निग्रह करना चाहिए।

“लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च।

गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥”⁷⁰

अर्थात् शरीर का हल्का होना, आरोग्य, अलोलुपता (विषयासक्ति की निवृत्ति), शरीरकान्ति, मधुरस्वर, सुगन्ध, मल-मूत्र की कमी ये सभी लक्षण प्रथम योगवृत्ति के हैं अर्थात् ये सब योग मार्ग की प्रारम्भिक सिद्धियाँ हैं। इस उपनिषद् में योगतत्त्व के साधन के फल का भी निर्देश दिया है -

“न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्”⁷¹

योगाग्निमय शरीर जिसको प्राप्त होता है, उसे कोई रोग नहीं होता, बुढ़ापा नहीं आता और मृत्यु भी नहीं होती अर्थात् उसकी इच्छा के बिना उसका शरीर नष्ट नहीं हो सकता।

“ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्”⁷²

ध्यान योग का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि वेदज्ञों ने ध्यान योग से परमात्मा का साक्षात्कार किया अर्थात् ध्यान में स्थित होकर अपने गुणों से ढकी हुई परमात्मा की स्वल्पभूत अचिन्त्य शक्ति का साक्षात्कार किया।

योग साधक की उन्नति या सफलता को स्पष्ट रूप से सूचित करने वाले लक्षण इस प्रकार बताए गए हैं -

“नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम्।

एतानि रूपाणि पुरःसराणिब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे॥”⁷³

जब साधक ब्रह्म प्राप्ति के लिए ध्यानयोग साधना आरम्भ करता है तब कुहरा, धूआँ, सूर्य, वायु और अग्नि सदृश जुगनू, बिजली, स्फटिक मणि और चन्द्रमा के सदृश बहुत से दृश्य योगी के समक्ष दिखलायी पड़ते हैं अर्थात् इनके रूप ब्रह्म की अभिव्यक्ति करने वाले होते हैं।

योग सिद्धि या योगतत्त्व ज्ञान का प्रभाव -

“यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भाजते तत् सुधान्तम्।

तद्वाऽऽत्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः॥”⁷⁴

जिस प्रकार मृतिका से मलिन हुआ सोने या चाँदी का टुकड़ा शोधन करने पर तेजोमय होकर चमकने लगता है, उसी प्रकार जीव आत्मतत्त्व का साक्षात्कार कर अद्वितीय, कृतकृत्य और शोक रहित हो जाता है।

2.6 योग के विविध प्रकार

योग परम तत्त्व की प्राप्ति है और इसके लिए अनेक साधनों या उपायों का उपयोग किया जाता है। इन साधनों को भी योग कहा जाता है। परम्परागत योग की पद्धतियों में अनेक योग विधाओं या साधनों को स्वीकार किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता, संस्कार, समय तथा क्षेत्र के अनुसार किसी भी विधा को स्वीकार कर परम तत्त्व की प्राप्ति कर सकता है। इस हेतु योग की कई शाखाएँ या प्रकार हैं। यहाँ कुछ मुख्य प्रकारों का वर्णन किया जा रहा है, जो निम्न प्रकार से हैं -

(i) ज्ञान योग -

जिस साधना में ज्ञान को माध्यम बना कर परमतत्त्व की प्राप्ति की जाती है, उसे ज्ञानयोग कहते हैं। इसके द्वारा सर्वोच्च अवस्था की प्राप्ति की जा सकती है।

यह आध्यात्मिक ज्ञान व प्रज्ञा का मार्ग है। भौतिक पदार्थों को जानना मात्र ही ज्ञानयोग नहीं होता, यहाँ ज्ञान का तात्पर्य ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान से है।

ज्ञानयोग का मार्ग निवृत्ति मार्ग है। यह अविद्या, मिथ्या व अज्ञान को दूर कर स्व विशुद्ध चेतना (परमतत्त्व) का बोध कराता है। श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन इसके प्रमुख साधन हैं। भगवद्गीता में सांख्ययोग को भी ज्ञानयोग कहा गया है -

“ज्ञानयोगेन संख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्”⁷⁵

ज्ञानयोग में सृष्टि रचना के पच्चीस तत्त्वों का निरूपण किया गया है। परमतत्त्व की प्राप्ति के लिए इन तत्त्वों का ज्ञान आवश्यक है। कुछ लोग वेदान्त की साधना को ही ज्ञानयोग मानते हैं। ज्ञानयोग के सिद्धान्तानुसार आत्मा ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही सत्य है। ब्रह्म के अतिरिक्त निखिल जगत् में किसी और की सत्ता नहीं है। ब्रह्म स्वयं ही प्रकाशमान, अनन्त, अखण्ड, अनादि, अविनाशी और चेतन स्वरूप होकर सम्पूर्ण जीवों की अन्तरात्मा में नाना रूपों में प्रकट होता है -

“अग्निर्यथको भुवनं प्रविष्टो, रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा”⁷⁶

ज्ञानयोग के अनुसार ब्रह्म की प्राप्ति और शोक निवृत्ति हो जाना ही मोक्ष है अर्थात् जीव को ब्रह्म की एकता का ज्ञान हो जाना ही मोक्ष है।

जीव अज्ञानतावश अपने को अलग समझ बैठता है परन्तु वास्तव में जीव ब्रह्म ही है और ब्रह्म को जानने पर जीव भी ब्रह्म ही हो जाता है -

“ स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति”⁷⁷

यह ब्रह्म भाव की स्थिति मोक्ष कहलाती है। इस ब्रह्मभाव की स्थिति को प्राप्त करना ही ज्ञानयोग की साधना का संलक्ष्य है और यह साधना उच्च कोटि की मानी गई है।

(ii) कर्मयोग -

कर्म मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। कोई भी मनुष्य एक क्षण के लिए भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता है जैसा कि गीता में कहा गया है -

“ न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्”⁷⁸

कर्म ही बन्धन का कारण है और इस कर्म बन्धन से मुक्ति का उपाय निष्काम कर्मयोग है अतः फल की इच्छा किए बिना कर्म करते हुए भगवत्प्राप्ति के मार्ग को ही कर्मयोग कहा जाता है अर्थात् कर्तव्यरूपी समस्त विहित कर्म करते हुए कर्मफल को ईश्वर के प्रति समर्पण करते हुए अनासक्त निष्काम भाव से व्यवहार करना ही कर्मयोग है।

कर्मयोगी पुरुष साधना की प्रथम अवस्था में कर्मों को फल की इच्छा से रहित होकर करता है -

“युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकम्”⁷⁹

जब फल की आशा से रहित होकर कर्मों को भी भगवान् को अर्पित कर देता है, तब यह कर्मयोगी पुरुष की साधना की दूसरी अवस्था होती है -

“यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्”⁸⁰

कर्मयोगी पुरुष साधना की तीसरी अवस्था में स्वयं को कर्ता भी नहीं समझता है अर्थात् अपने समस्त कर्मों को ईश्वर द्वारा कृत मानता है। इस अवस्था में साधक कर्तापन या कर्तृभावना से भी रहित हो जाता है। यह पुरुषार्थ, स्वतन्त्रता व स्वात्मबल का मार्ग है। इसमें शरणागति भाव, समत्वभाव, निस्पृहभाव, कर्तव्यभाव, सेवाभाव तथा ऋण मुक्ति भाव आदि उदात्त भावनाओं के साथ कर्म किया जाना चाहिए।

(iii) भक्तियोग -

यह भावना प्रधान साधना है तथा भगवत्प्राप्ति का सबसे सरल एवं स्वाभाविक मार्ग है। यह योग भक्ति, श्रद्धा तथा तर्पण पर आधारित है। भक्तियोग कर्मयोग की उच्च अवस्था है जिसमें साधक प्रत्येक कार्य ईश्वर को समर्पित होकर करता है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार सच्चे और निष्कपट भाव से ईश्वर की खोज को भक्तियोग कहते हैं। ईश्वर के प्रति प्रेममय होकर उसके साथ एकीभूत हो जाना ही भक्तियोग का लक्ष्य है -

“ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः।

अनन्ये नैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।

भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेत्तसाम्॥”⁸¹

आचार्य रामानुज ने भक्ति की प्राप्ति विवेक, विमोक्ष, अभ्यास, कल्याण, अवसाद और अनुद्धर्ष से बतायी है।

भगवान् के प्रति परम अनुराग से साधक में अन्य वस्तुओं के प्रति वैराग्य बढ़ता जाता है, इस प्रकार साधक ईशभक्ति से अपने को बन्धन मुक्त कर लेता है।

नारद भक्ति सूत्र में भगवान् की पूजा अर्चना व उपासना में अनुराग होना भक्ति बताया गया है -

“पूजादष्टिरनुराग इति पराशर्यः”⁸²

(iv) मन्त्रयोग -

निर्मल चित्त होकर योग्य गुरु के अनुशासन में गोपनीयता के साथ किसी बीजाक्षर मन्त्र या वाक्य का बार-बार विधिवत् लयबद्ध पुनरावर्तन (लय) करना मन्त्रयोग है। मन्त्रयोग को जपयोग के नाम से भी जाना जाता है। मन्त्र के जप के द्वारा परम लक्ष्य की प्राप्ति करने को जपयोग कहते हैं। साधक मन्त्रजप के अभ्यास से परम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। मूर्तिपूजा, मन्त्रपूजा, पीठपूजा एवं तान्त्रिक साधना मन्त्रयोग के अनुसार ही की जाती है। मन्त्रजप से साधक की इष्टदेव के प्रति श्रद्धा और भक्ति भावना बढ़ जाती है तथा मन एकाग्र होकर स्थिर हो जाता है। मन्त्रयोग भावपूर्ण स्थूल साधना की विधि है। मन्त्रसिद्धि द्वारा मन, मन्त्र तथा इष्टदेव ये तीनों एक दूसरों में लीन हो जाते हैं। इनके पार्थक्य का बोध साधक को नहीं रहता अर्थात् ध्याता, ध्यान और ध्येय रूपी त्रिपुटी का लय हो जाता है।

‘मन्त्रजपान्मनोलयो मन्त्रयोगः’ अर्थात् अभीष्ट मन्त्र का जप करते-करते मन अपने आराध्य देव के ध्यान में तन्मयता को प्राप्त कर लय भाव को प्राप्त कर लेता है, तब उसी अवस्था को मन्त्रयोग के नाम से जाना जाता है। मन्त्रमहोदधि के अनुसार यह संसार नामरूपात्मक है। नाम और रूप से जीव अविद्या रूपी बन्धन से जकड़ा रहता है। इस प्रकार नाममय शब्द तथा भावमय रूप के अवलम्बन की साधना मन्त्रयोग है।

भक्ति, शुद्धि, आसन, पञ्चांगसेवन, आचार, धारणा, दिव्यदेशसेवन, प्राणक्रिया, मुद्रा, तर्पण, हवन, बलि, योग, जप, ध्यान तथा समाधि ये मन्त्रयोग के सोलह अंग हैं।

(v) लययोग -

सब चिन्ताओं को त्यागकर सावधान होकर अनहद नादों को सुनना लय योग है अर्थात् नादमय (मनोबिन्दु, प्राणबिन्दु, अहंबिन्दु आदि) सम्पूर्ण बिन्दुओं को तथा भूमिकाओं को त्यागकर स्वस्वरूप में स्थित होकर लीन हो जाना लययोग है।

लययोग में सबसे पहले मन को किसी आवाज में लगाया जाता है, ऐसा करने पर प्राण सूक्ष्म हो जाता है और शरीर पुलकित हो जाता है। नाभि, हृदय, कण्ठ और तालु में हलचल होने लगती है, नाद में मन विलीन होने लगता है और अन्त में नाद भी परिपक्वावस्था में प्राणवायु और मन्त्र दोनों ही लय हो जाते हैं तथा ब्रह्म पद ही शेष रह जाता है। नादबिन्दु, अमृतबिन्दु, ध्यानबिन्दु तथा योगतत्त्वोपनिषद् में लययोग के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। कुछ विद्वान् लययोग को तन्त्रयोग

का ही एक पक्ष मानते हैं तथा कुछ कुण्डलिनी योग को लययोग के अन्तर्गत मानते हैं। कुण्डलिनी योग के अनुसार मनुष्य पिण्ड के आधार पीठ में कुण्डलिनी नामक ब्रह्मशक्ति प्रसुप्त रहकर अविद्या के प्रभाव से सृष्टि क्रिया करती है। ज्ञान का मूल केन्द्र सहस्रार चक्र है और कार्य का मूल केन्द्र मूलाधार चक्र है। सहस्रार चक्र में शिव का तथा मूलाधार चक्र में शक्ति का वास है। मूलाधार चक्र में एक गोलाकार सर्पाकार कुण्डलिनी की भाँति नाड़ी तन्तु है। इस तन्तु में शक्ति प्रसुप्त अवस्था में विद्यमान है।

मनुष्य के शरीर में सप्तम चक्र मस्तक में स्थित सहस्रदल में जिस योग द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को ले जाकर ब्रह्मरूपी सदा शिव के साथ मिला दिया जाता है, उस शक्ति का लय कर आत्मबोध प्राप्त करने के साधन का नाम लययोग है। इस योग में सर्वप्रथम शक्ति को जाग्रत किया जाता है, फिर कुण्डलिनी शक्ति का उत्थान, चक्रों का भेदन करके अन्त में सहस्रार चक्र में स्थित शिव से शक्ति का मिलन होता है।

योगकुण्डल्युनिषद्, योगशिखोपनिषद्, घेरण्डसंहिता, हठयोगप्रदीपिका, ज्ञानार्णवतन्त्र, कुण्डलिनीशक्ति, वाकेश्वरतन्त्र आदि ग्रन्थों में कुण्डलिनी योग का उल्लेख मिलता है।

(vi) हठयोग -

हठयोग के आदि प्रवर्तक शिव माने जाते हैं। हठयोग में 'ह' का अर्थ पिंगला नाड़ी (सूर्यस्वर) या प्राणवायु होता है तथा 'ठ' का अर्थ इडा नाड़ी (चन्द्रस्वर) या अपान वायु होता है। इन सूर्य और चन्द्र स्वरों अर्थात् प्राणवायु और अपान वायु के मेल को हठयोग कहते हैं।

हकार कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।

सूर्यचन्द्रमसोर्योगाद्धठयोगो निगद्यते॥

हठयोग का सम्बन्ध शरीर और प्राण से है। जो योग के आठ अंगों में से आसन और प्राणायाम के अन्दर आ जाते हैं। हठयोग राजयोग का साधन मात्र है। हठयोग का मुख्य उद्देश्य शारीरिक तथा मानसिक उन्नति है। हठयोग के सात अंग हैं - षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि।

हठयोग में शरीर और मन को एक दूसरे से सम्बन्धित माना गया है तथा इसकी साधना से शरीर तथा प्राणों पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

(vii) राजयोग -

प्रत्येक प्रकार के योग की कुछ न कुछ सामग्री इसमें मिलती है अतः इसे राजयोग कहा जाता है। यह योग सब प्रकार के योगों में उत्तम है तथा जनसामान्य के लिए सुलभ व सुगम है। राजयोग का मार्ग व्यावहारिक तथा यथार्थवादी है। राजयोग का मुख्य उद्देश्य मानव की सुषुप्त शक्तियों को जगाना है। राजयोग का प्रचलन मूलरूप से वैदिककाल से ही रहा है, जिसको कालान्तर में महर्षि पतञ्जलि ने वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है अतः वर्तमान में महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित योग ही राजयोग है। राजयोग के सूत्र महर्षि पतञ्जलि द्वारा विरचित ग्रन्थ योगदर्शन में चार भागों (समाधिपाद, साधनापाद, विभूतिपाद तथा कैवल्यपाद) में विभक्त हैं।

राजयोग या पातञ्जलयोग के आठ अंग हैं अतः इसे अष्टांगयोग भी कहते हैं। चित्तवृत्तियों का निरोध करना योग बताया गया है। जिसे अभ्यास तथा वैराग्य से किया जाता है। राजयोग के आठ अंग-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि हैं। इन सभी का विस्तारपूर्वक अध्ययन पञ्चम अध्याय में किया गया है।

2.7 योग का उद्देश्य एवं महत्त्व

योग जीवन जीने की कला है, जीवन दर्शन है, विज्ञान है। योग विज्ञान का एक शान्तिपथ है, जिस पर चलकर मनुष्य एक सुव्यवस्थित तथा आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकता है। व्यक्ति का सर्वांगीण विकास कर संयमित, शान्त, सन्तुलित व स्वस्थ समाज का निर्माण करना तथा परम तत्त्व की अनुभूति कराना ही योग का उद्देश्य रहा है। व्यक्ति का आध्यात्मिक एवं भौतिक विकास योग से ही संभव है इसी उद्देश्य से ही प्राचीन काल से इसे जानने के लिए हमारे ऋषि-महर्षियों ने श्रेष्ठ स्तर के प्रयास किए हैं। इस योगरूपी विद्या के महत्त्व व उपयोगिता को जानकर ही हमारे पूर्वजों ने इस विद्या को जगत् कल्याण हेतु एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में सम्प्रेषित कर इस विद्या को संरक्षित व संवर्धित किया तथा आरोग्ययुक्त होकर हमारे लिए सौ वर्षों तक जीवित रहने की कामना की है -

“जीवेम शरदः शतम्। बुध्येम शरदः शतम्। पुषेम शरदः शतम्”⁸³

इस प्रकार योग विद्या सबसे प्राचीन पद्धति है, जिसके द्वारा व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक क्षमताओं का उच्चतम विकास किया

जाता है। मन की अनियन्त्रित प्रवृत्तियाँ ही सकल दुःखों का कारण हैं और इनके कारण ही सभी प्रकार के बुरे कर्म, दुराचार, अत्याचार आदि होते हैं परिणामस्वरूप व्यक्ति का व्यक्तित्व और सम्पूर्ण समाज का वातावरण प्रदूषित हो जाता है। मन की इन अनियन्त्रित और अव्यवस्थित प्रवृत्तियों को नियन्त्रण में लाने का कार्य योग के माध्यम से ही संभव है। इन पर नियन्त्रण करने से एक ओर जहाँ समाज में सुव्यवस्था आती है तो वहीं दूसरी ओर व्यक्ति अपनी सुप्त शक्तियों और क्षमताओं का विकास करके आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित होता है। आत्मा का यही प्रकाश उसके मोक्ष का कारण बनता है।

योग व्यक्ति की विभिन्न सुप्त शक्तियों को जाग्रत करता है। जिससे मनुष्य में कर्म करने की अद्भुत क्षमता आती है और उसकी अतीन्द्रिय क्षमताएँ भी विकसित होती हैं, जिससे वह अनेक प्रकार की सिद्धियों का स्वामी बन जाता है। इसके अभ्यास से मनुष्य की चेतना का विकास होता है और वह महामानव बन सकता है अतः योग साधना ही उत्तम एवं अलौकिक जीवन की एकमात्र विधि है।

आज की भागमभाग भरी जिन्दगी में हम मोटापा, दुर्बलता, थकान, बेचैनी, चिन्ता, तनाव, अनिद्रा, ईर्ष्या तथा चिड़चिड़ापन आदि मानसिक बीमारियों से जूझ रहे हैं, जो हमारे व्यक्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही हैं परिणामस्वरूप हम सामाजिक समायोजन कर पाने में विफल होते जा रहे हैं इसलिए यह आवश्यक है कि हम सभी दुःखों से निवृत्त होकर प्रसन्नता का प्रतीक बने। इसके लिए हमें हमारी दैनिक चर्या में योग को अपनाना होगा।

योग का उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना है, जिनका भावनात्मक स्तर दिव्य आकांक्षाओं, दिव्य मान्यताओं तथा दिव्य योजनाओं से जगमगाता रहे, जिससे की उनका चिन्तन, क्रियाकलाप ऐसा हो जैसा कि योगियों का होता है क्योंकि ऐसे व्यक्तियों में क्षमताएँ, कुशलताएँ तथा विभूतियाँ भी उच्चस्तरीय होती हैं। वे सामान्य व्यक्तियों की तुलना में निश्चित ही अधिक आत्मविश्वासी, शान्त, धैर्यवान, स्वस्थ होते हैं।

योग मन, शरीर तथा चेतना के बीच उचित तालमेल रखने की एक वैज्ञानिक जीवन शैली है। योग विद्या की यदि अलग-अलग विधाओं पर हम दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि हठयोग साधना का उद्देश्य स्थूल स्तर द्वारा होने वाले विक्षेपों को जो मन को क्षुब्ध करते हैं पूर्णतया वश में करना है। स्नायुविक धाराओं एवं संवेगों को वश में करके एक स्वस्थ शरीर का गठन करना है। यदि हम अष्टांग योग के

अन्तर्गत आते हैं तो पाते हैं कि इसमें शरीर शुद्धि के साथ-साथ चरित्र की शुद्धि का भी उपाय बताया गया है। यम-नियम हमारे चिन्तन, चरित्र और व्यवहार को शुद्ध सात्त्विक व निर्मल बनाते हैं। यम-नियम का मूल उद्देश्य चारित्र्यिक स्वास्थ्य है, आसन-प्राणायाम का उद्देश्य शारीरिक स्वास्थ्य है, प्रत्याहार संयमित जीवन शैली के लिए आवश्यक है, धारणा एवं ध्यान का उद्देश्य मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति है तथा समाधि द्वारा आत्मसाक्षात्कार किया जाता है।

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता व रुचि अनुसार योग की कर्मयोग, ज्ञानयोग भक्तियोग, राजयोग, हठयोग आदि अनेक पद्धतियाँ हमारे पूर्वजों द्वारा हमें उपहार स्वरूप प्रदत्त की गई हैं।

आसन, ध्यान प्राणायाम, शारीरिक व्यायाम, मुद्रा आदि क्रिया विशेष का नाम ही योग नहीं है बल्कि योग एक सम्पूर्ण जीवन दर्शन है। यह तो चित्त में निहित सम्पूर्ण शंकाओं, जिज्ञासाओं तथा समस्याओं का एकमात्र समाधान है। प्राणायाम, आसनादि तो योग अवस्था तक पहुँचने के सोपान मात्र हैं। यदि हम इन प्राणायाम, आसनादि को भी जीवन में अपनाते हैं, तो इहलोक में भी त्रिविध दुःखों से निवृत्त होकर अपना जीवन आनन्ददायी व अमृतमय बना सकते हैं।

हाल ही में कोरोना महामारी के दौर में योग की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। योग को कोरोना से लड़ने के लिए एक प्रभावी पूरक चिकित्सा पद्धति के रूप में अपनाया गया। इस संक्रमण काल के दौरान योग ने पारिवारिक सम्बन्धों को मजबूत किया तथा घरों में बन्द लोगों में एक सकारात्मक ऊर्जा का संचार किया। कई शोध और अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि योग कोरोना संक्रमित लोगों के मनोवैज्ञानिक व सामाजिक स्तर के सुधार में कारगर साबित हुआ है। ध्यान, आसन, मुद्रा, प्राणायाम आदि अभ्यास कोरोना संक्रमण में उपचार रोकथाम के प्रभावी साधन बनें। रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, मानसिक तनाव कम करने, श्वसन तंत्र को मजबूती प्रदान करने तथा सकारात्मकता व धैर्य बढ़ाने में योगाभ्यास उपयोगी सिद्ध हुआ।

योग का एक ही लक्ष्य है मनुष्य को दिव्य जीवन प्रदान करना। जिससे कि जीवन के वास्तविक आनन्द की प्राप्ति हो सके। यह हमारे तन, मन और आत्मशक्ति का सर्वांगीण विकास कर एक अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करता है। योग हम सभी के लिए अत्यन्त उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है क्योंकि योग शरीर को लचीला बनाता है, मांसपेशियों को सुदृढ़ कर शरीर को मजबूती प्रदान करता है, शरीर में रक्तसंचार के प्रवाह को ठीक बनाए रखता है, शरीर से नकारात्मक ऊर्जा को

निकालकर सकारात्मक ऊर्जा को संचारित करता है, शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि कर रोगों से बचाता है तथा आत्मविश्वास, धैर्य, एकाग्रता, तनावमुक्त जीवन प्रदान कर शरीर, मन तथा चेतना के विकास हेतु एक साथ कार्य करता है। आज हम पाश्चात्य जीवन शैली की चकाचौंध में आकर हमारे पूर्वजों द्वारा प्रदत्त अमूल्य व अक्षय ज्ञान-विज्ञान निधि को भूल गए हैं परिणामस्वरूप बच्चे, नौजवान व बूढ़े सभी व्याकुलता, चिन्ता, तनाव, अस्थिरता, निराशा, नकारात्मकता, अकर्मण्यता आदि मनोविकृतियों के आगोश में फंसते जा रहे हैं। आज हम आरोग्य हेतु स्थायी, दुष्परिणामयुक्त, सफल व सस्ते चिकित्सकीय उपचार की आवश्यकता महसूस कर रहे हैं। विभिन्न चिकित्सा पद्धतियाँ आज चिकित्सा पूरक के रूप में योग को अपना रही हैं। मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक महत्त्व की वजह से ही आज योग सम्पूर्ण विश्व में दिनोदिन लोकप्रिय होता जा रहा है।



सन्दर्भ सूची

- 1 शास्त्री के. साम्बशिव, योग याज्ञवल्क्य (याज्ञवल्क्य), सुपरिटेन्डेंट गवर्नमेंट प्रेस, त्रिवेन्द्रम, 1938, पृ. 5 1/44
- 2 कौशिक, अशोक, श्रीमद्भगवद्गीता, 6/23 (वेदव्यास), स्टार पब्लिकेशन प्रा. लि. नई दिल्ली, 1993, पृ. 159
- 3 अग्रवाल, वीना, योग सूत्र, 1/2 (पतंजलि), जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2014 पृ. 7
- 4 योग सूत्र व्यास भाष्य 1/1
- 5 कठोपनिषद् 2/3/11, ईशादि नौ उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2080, पृ. 327
- 6 श्रीमद्भगवद्गीता 2/48, पूर्वोक्त, पृ. 61
- 7 श्रीमद्भगवद्गीता 2/50, पूर्वोक्त, पृ. 62
- 8 श्रीमद्भगवद्गीता 6/23, पूर्वोक्त, पृ. 159
- 9 निर्वाणोपनिषद् श्लोक सं. 2
- 10 आचार्य, श्रीराम शर्मा, महोपनिषद्, 5/42, 108, उपनिषद् साधना खण्ड संस्कृति संस्थान, बरेली, 2023, पृ. 153
- 11 योगवासिष्ठ 6/13/3
- 12 गैरोला, वाचस्पति, अर्थ शास्त्र, (कौटिल्य), 5/92/2, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 2013, पृ. 415
- 13 अर्थ शास्त्र 5/90/2, उपर्युक्त, पृ. 416
- 14 अर्थ शास्त्र 5/6/95, उपर्युक्त, पृ. 437
- 15 जोशी, हरिशंकर, वैदिक योग सूत्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 2024
- 16 अमरकोष, 3/22
- 17 विष्णु पुराण 6/7/31
- 18 अग्नि पुराण 372/1-2
- 19 गरुड़ पुराण 1/35/53
- 20 याज्ञवल्क्य स्मृति 1/1/8
- 21 श्रीमद्भागवत महापुराण 11/20/6
- 22 आत्मोपनिषद् 4/5/141
- 23 राघव, राघवेन्द्र शर्मा, शिव संहिता 1/166, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2020, पृ. 12
- 24 चरकसंहिता, शरीर स्थान 1/44

-
- 25 दक्ष स्मृति 7/1
 - 26 मनुस्मृति 6/65
 - 27 महाभारत शान्ति पर्व 240/35
 - 28 गोरक्ष शतकश्लोक सं. 5
 - 29 सरस्वती, निरंजनानन्द, घेरण्ड संहिता 1/5 योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुगेर, बिहारी, 2011, पृ. 9
 - 30 आचार्य, श्रीराम शर्मा, कैवल्योपनिषद् 1/2, 102 उपनिषद्-ब्रह्मविद्या खण्ड, संस्कृति संस्थान बरेली, 2023, पृ. 409
 - 31 योगशिखोपनिषद् 1/68
 - 32 तीर्थ, आचार्य वेदान्त (व्यख्याकार) ऋग्वेद 1/164/39, भाग-1 मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2023, पृ. 346
 - 33 Marshall, Jhon, Mohan Jo-dera and the indus civilication, Asian Educationa services, New Delhi [1931] P.52-53
 - 34 Pre historic Regvedic Cultture of the Prehistoric Indus, Das Gupta and Con Calcutta, 1943, P.36-P38
 - 35 त्रिपाठी, हरिहरप्रसाद, हठयोग प्रदीपिका 1/1 (स्वात्माराम), चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2014, पृ. 101-102
 - 36 भगवद्गीता 4/1-3 पूर्वोक्त, पृ. 101-102
 - 37 बह्मयोगी याज्ञवल्क्य स्मृति 12/5
 - 38 महाभारत 12/394/65
 - 39 ऋग्वेद 10/121/, भाग-4, पूर्वोक्त, पृ. 489
 - 40 भगवद्गीता 5/4, पूर्वोक्त, पृ. 130
 - 41 गोरक्ष शतक श्लोक सं. 6, गोरक्षनाथ मन्दिर, गोरखपुर, 2017, पृ. 3
 - 42 ऋग्वेद 8/44/23, भाग-3, पूर्वोक्त, पृ. 331
 - 43 ऋग्वेद 1/164/4, भाग-1, पूर्वोक्त, पृ. 239
 - 44 ऋग्वेद 1/164/31, भाग-2, पूर्वोक्त, पृ. 344
 - 45 ऋग्वेद 10/27/19, भाग-4, पूर्वोक्त, पृ. 263
 - 46 ऋग्वेद 1/18/9, भाग-1, पूर्वोक्त, पृ. 50
 - 47 ऋग्वेद 10/27/20, भाग-4, पूर्वोक्त, पृ. 263
 - 48 ऋग्वेद 1/22/21, भाग-1, पूर्वोक्त, पृ. 57
 - 49 ऋग्वेद 1/34/9, भाग-1, पूर्वोक्त, पृ.87
 - 50 ऋग्वेद 1/18/7, भाग-1, पूर्वोक्त, पृ. 50
 - 51 ऋग्वेद 1/5/3, सामवेद 30/2/10 तथा अथर्ववेद 20/29/1
 - 52 ऋग्वेद 5/81/1 तथा यजुर्वेद 11/4

-
- 53 तीर्थ, आचार्य वेदान्त (व्याख्या), यजुर्वेद 11/2, मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2023, पृ. 139
- 54 यजुर्वेद 11/5, उपर्युक्त, पृ. 140
- 55 ऋग्वेद 1/30/7, भाग-2, पूर्वोक्त, पृ. 74
- 56 ऋग्वेद 9/92/4, भाग-4, पूर्वोक्त, पृ. 192
- 57 तीर्थ, आचार्य वेदान्त (व्याख्या), अथर्ववेद 10/2/31, भाग-4, मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2023, पृ. 544
- 58 अथर्ववेद 10/2/32, भाग-1, उपर्युक्त, पृ. 544
- 59 अथर्ववेद 19/8/2, भाग-2, उपर्युक्त, पृ. 312,
- 60 बृहदारण्यकोपनिषद् 4/4/22, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2080, पृ. 1091
- 61 ईशोपनिषद् -2, ईशादि नौ उपनिषद् गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2080, पृ. 28
- 62 छान्दोग्योपनिषद् 7/25/1, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2080, पृ. 753
- 63 कठोपनिषद् 2/2/3, ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2080, पृ. 299
- 64 कठोपनिषद् 2/3/10, उपर्युक्त, पृ. 326
- 65 कठोपनिषद् 2/3/16, उपर्युक्त, पृ. 335
- 66 कठोपनिषद् 1/2/12, उपर्युक्त, पृ. 241
- 67 मुण्डकोपनिषद् 3/1/8, ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2080, पृ. 538
- 68 श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/8, उपर्युक्त, पृ. 1226
- 69 श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/9, उपर्युक्त, पृ.1236
- 70 श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/13, उपर्युक्त, पृ.1235
- 71 श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/12, उपर्युक्त, पृ.1235
- 72 श्वेताश्वतरोपनिषद् 1/3, उपर्युक्त, पृ. 1161
- 73 श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/11, उपर्युक्त, पृ. 1234
- 74 श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/14, उपर्युक्त, पृ. 1237
- 75 भगवद्गीता 3/3, पूर्वोक्त, पृ. 77
- 76 कठोपनिषद् 2/2/9, पूर्वोक्त, पृ.325
- 77 मुण्डकोपनिषद् 3/2/9, पूर्वोक्त, पृ.553
- 78 भगवद्गीता 3/5, पूर्वोक्त, पृ. 79
- 79 भगवद्गीता 5/12, पूर्वोक्त, पृ. 134
- 80 भगवद्गीता 9/27, पूर्वोक्त, पृ. 226
- 81 भगवद्गीता 12/6-7, पूर्वोक्त, पृ. 288-289

-
- 82 नारदभक्तिसूत्र 16
83 अथर्ववेद 19/67, भाग-2, पूर्वोक्त, पृ. 384

तृतीय अध्याय

योग उपनिषद् : सामान्य परिचय

तृतीय अध्याय

योग उपनिषद् : सामान्य परिचय

3.1 योग उपनिषद् का तात्पर्य

उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म है और इस ब्रह्म तत्त्व के साक्षात्कार या प्राप्ति के साधन रूप में योग तत्त्व का विवेचन उपनिषदों में किसी न किसी रूप में अवश्य प्राप्त होता है किन्तु कुछ उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय तो योग ही है, जो योग के आधारभूत तथ्यों की स्पष्ट व्याख्या करते हैं। योग के विभिन्न मार्गों व सिद्धान्तों से सम्बन्धित विशेष उपनिषदों को योग उपनिषदों के अन्तर्गत रखा गया है। इन उपनिषदों को योग उपनिषद् के नाम से जाना जाता है।

इन उपनिषदों में विभिन्न यौगिक प्रक्रियाओं, साधनाओं तथा सिद्धान्तों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, जो कि योग के गूढ़ रहस्यों को प्रकट करते हैं तथा आध्यात्मिक साधकों के लिए मार्गदर्शक हैं। एस.एन.दास गुप्ता के अनुसार “योग उपनिषदों ने दर्शन की कोई सुव्यवस्थित प्रणाली नहीं अपनायी बल्कि प्रारम्भिक युग की दार्शनिक संस्कृति और चिन्तन का ही प्रतिनिधित्व किया है।”¹

एस.एन. दास गुप्ता ने ‘भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग -1, नामक पुस्तक में कहा है कि प्रमुख और प्रारम्भिक उपनिषद् आत्म के एकत्ववाद पर विशेष बल देते हैं तथा अन्य उपनिषद् योग, तप, शैव तथा वैष्णव अथवा शरीर विज्ञान पर बल देते हैं, यही कारण है कि योग विशेष पर बल देने के कारण इन उपनिषदों को योग उपनिषद् का नाम दिया गया।

योग उपनिषदों में चक्र, नाड़ी, मुद्रा, बन्ध, अष्टांग योग, षडंग योग, कुण्डलिनी जागरण, मंत्रयोग, लययोग, हठयोग, राजयोग, ध्यानयोग, प्रवणोपासना तथा चित्त की अवस्थाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है।

इन उपनिषदों का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को जाग्रत कर आत्म साक्षात्कार कराना है तथा योग के विभिन्न आयामों को स्पष्ट करते हुए साधक के लिए एक सुव्यवस्थित मार्ग प्रदान करना है।

पाल इयूसन के अनुसार “योग उपनिषद् भारतीय यौगिक और दार्शनिक परम्पराओं का अमूल्य हिस्सा हैं, जो आत्मसाक्षात्कार के व्यावहारिक मार्गों का

विवरण प्रस्तुत करते हैं। ये योग के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित करते हैं अतः इनका अध्ययन करते समय इनके अर्थों को शाब्दिक अर्थों में न लेकर इनके आध्यात्मिक अर्थों को भी समझने की आवश्यकता है।”²

योग उपनिषद् शरीरविज्ञान और एकाग्रता प्राप्त करने के व्यावहारिक पक्षों का वर्णन करते हैं। इन्होंने दार्शनिक पहलू को काफी हद तक एक विस्तृत भौतिक प्रक्रियाओं के अधीन कर दिया। जब योग सिद्धान्तों को व्यवस्थित दर्शन में संगठित किया गया तो ध्यान का ब्रह्म ईश्वर में परिवर्तित हो गया इसलिए ब्रह्म की अवधारणा योग उपनिषदों में पाई जाती है। ये उपनिषद् ब्रह्म की अवधारणा को जोड़ने के कारण योग के एक वैदान्तिक पक्ष का वर्णन करते हैं। इस प्रकार ये उपनिषद् पहले के मुख्य उपनिषदों पर आधारित हैं।

ये ब्रह्म प्राप्ति की विधि के रूप में ध्यान योग और ज्ञानयोग पर अधिक जोर देते हैं तथा कर्मयोग और भक्तियोग को सहायक विधियों के रूप में स्वीकार करते हैं।

3.2 योग उपनिषदों का रचना काल

योग उपनिषदों का काल निर्धारण करना कठिन कार्य है क्योंकि कुछ योग उपनिषद् मुख्य उपनिषदों के समय लिखे गए तथा कुछ बाद के लिखे हुए माने जाते हैं अतः इनका समय स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं है।

योग उपनिषद् अद्वैत वेदान्त, सांख्य दर्शन तथा तंत्र शास्त्रों के सिद्धान्तों के साथ जुड़े हुए हैं। योग उपनिषदों पर तन्त्र और हठयोग परम्पराओं का भी गहरा प्रभाव दिखाई देता है।

अधिकांश योग उपनिषद् मैत्रायणी उपनिषद् तथा पातंजलदर्शन के बाद के माने जाते हैं। योग उपनिषदों पर शंकराचार्य द्वारा भाष्य नहीं लिखा गया इसलिए संभवतः ये शंकराचार्य (788-820 ई.) के बाद के हो सकते हैं अथवा हो सकता है ये स्पष्ट या सरल प्रतीत हुए होंगे इसलिए इन पर भाष्य या टीका की आवश्यकता नहीं समझी गई होगी। जापानी विद्वान हाजीमे नाकामुरा के अनुसार योग उपनिषदों का रचना काल 700-750 ई. है।

विलियम के. महोनी के अनुसार “योग उपनिषदों का समय संभवतः 100 ई. पू. से 1100 ईस्वी के बीच रहा होगा।”³

गैविन डी. फ्लड ने “योग उपनिषदों को 100 ई.पू. से 300 ईस्वी की अवधि के माने हैं।”⁴

जैम्स मैलिन्सन के अनुसार “18 वीं शताब्दी में हठयोग के उदय के बाद योग उपनिषदों में पुनः परिवर्तन किया गया तथा इनमें नाथ सम्प्रदाय के हठयोगिक विचारों को शामिल किया गया।”⁵

प्रसिद्ध वैदान्तिक विद्यारण्य (1314 ई.) द्वारा रचित जीवन्मुक्तिविवेक में अमृतबिन्दूपनिषद् तथा अमृतनादोपनिषद् को बार-बार उद्धृत किया गया है। जैकब विल्हेम हॉयर के अनुसार योग उपनिषद् बौद्धधर्म के उदय के बहुत बाद में नहीं लिखे गए थे।

यदि इन उपनिषदों को तन्त्र परम्परा से जोड़ा जाए तो इनका रचना काल मध्य माना जा सकता है क्योंकि बिन्दु की गूढ़ धारणा तन्त्र की शब्दावली से सम्बन्धित प्रतीत होती है परन्तु ‘पानी की बूँद’ इस पारम्परिक अर्थ में भी बिन्दु शब्द किसी भी मुख्य उपनिषदों में नहीं आता। यह पहली बार मैत्रायणी उपनिषद् में पाया जाता है- “तस्यात्मा बिन्दुरिव पुष्करा इति”।⁶

इन योग उपनिषदों के कुछ विशिष्ट शब्दों और श्लोकों की तुलना पुराणों से करने पर कुछ योग उपनिषद् बौद्धशून्यवाद (200-700 ई.) और बौद्ध विज्ञानवाद (450-800 ई.) से पूर्णतः प्रभावित होते प्रतीत होते हैं। जैसे -

“अशून्यं शून्यभावं तु शून्यातीतं हृदि स्थितम्”।⁷

“न शून्यं नापि च अशून्यं नान्त करणसंसृति”⁸

माया, प्रकृति, स्थान, समय, विषय, शरीर आदि को अस्तित्वहीन बताया गया है। इस प्रकार का नकारात्मकतावाद शून्यवाद का ही प्रमाण हो सकता है। साथ ही इन उपनिषदों में शून्य की अवधारणा को ब्रह्म की अवधारणा में बदल दिया गया है।

वराहोपनिषद्⁹ में वर्णित शुभेच्छा आदि ज्ञान की सात भूमियों का उल्लेख योगवसिष्ठ¹⁰ (700-800 ई.) में भी किया गया है। इसी प्रकार शाण्डिल्योपनिषद् और दर्शनोपनिषद् में वर्णित दस यम, नियमों का उल्लेख स्कन्दपुराण (700 ई.) के प्रथम अध्याय में भी मिलता है। जादुनाथ सिन्हा के अनुसार “योग उपनिषद् 300 से 1000 ई. के मध्य या उसके बाद की कई शताब्दियों को आवरित करते हैं।”¹¹

मुक्तिकोपनिषद् में सूचीबद्ध 108 उपनिषदों में इन उपनिषदों का नामोल्लेख किया गया है अतः ये स्पष्ट रूप से मुक्तिकोपनिषद् से पूर्व लिखे जा चुके थे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि योग उपनिषद् एक निश्चित कालावधि की रचना नहीं माने जा सकते क्योंकि कुछ योग उपनिषद् मुख्य उपनिषद् के साथ की रचना हैं, कुछ महाभारत काल के दौरान लिखे गए, कुछ योग वाशिष्ठ से संग्रह करके लिखे गए तथा कुछ तो इससे भी बाद की रचनाएँ हैं, इस प्रकार योग उपनिषद् कई शताब्दियों को आवरित करते हैं। यदि इनका रचना काल निर्धारित करने का प्रयास किया जाए तो इनका समय 100 ई.पू. से 1100 ईस्वी के मध्य माना जा सकता है।

3.3 योग उपनिषदों की संख्या एवं वर्गीकरण

ए. बेवर ने योग उपनिषदों की संख्या 26 बताई है, जो इस प्रकार है - तारकोपनिषद्, शाकल्योपनिषद्, जाबालोपनिषद्, कथाश्रुति उपनिषद्, आरुणिकोपनिषद्, अल्लवी उपनिषद्, संवर्तसुति उपनिषद्, संन्यासोपनिषद्, परमहंसोपनिषद्, हंसोपनिषद्, आश्रमोपनिषद्, श्रीमद्भक्तोपनिषद्, अथर्वशिखोपनिषद्, ब्रह्मबिन्दूपनिषद्, ब्रह्मविद्योपनिषद्, शौनकोपनिषद्, प्रणवोपनिषद्, हंसनदोपनिषद्, क्षुरिकोपनिषद्, नादबिन्दूपनिषद्, ध्यानबिन्दूपनिषद्, योगशिखोपनिषद्, योगतत्त्वोपनिषद्, कुलिकोपनिषद्, तेजोबिन्दूपनिषद्।¹²

ए. बेवर के अनुसार योग उपनिषदों के वर्ग में कई अन्य उपनिषदों को भी शामिल किया जा सकता है। मैत्रायणी उपनिषद् और श्वेताश्वतरोपनिषद् जो 13 मुख्य उपनिषदों में गिने जाते हैं। ये भी योग विषय से सम्बन्धित होने के कारण योग उपनिषदों में सम्मिलित किए जा सकते हैं। ए.एस. गोडेन और पॉल डायसन¹³ ने उपनिषदों को चार क्रमिक युगों की रचना माना है। योग उपनिषदों को चतुर्थ क्रमिक युग (परवर्ती अथर्ववेदीय उपनिषद्) के अन्तर्गत रखा है अर्थात् योग उपनिषदों को नितान्त अर्वाचीन माना है। इनकी भाषा-शैली ऐसी है कि ये आसानी से समझे जा सकते हैं। ये योग के सभी अंगों से भरे पड़े हैं तथा परवर्ती योग विषयक ग्रन्थ हठयोग प्रदीपिका, गोरक्षसंहिता, शिवसंहिता आदि इन्हीं के आधार पर रचित हैं। पॉल डायसन ने 11 उपनिषदों को अथर्ववेदीय योग उपनिषदों के अन्तर्गत शामिल किया है¹⁴ -

ब्रह्मविद्योपनिषद्, क्षुरिकोपनिषद्, कुलिकोपनिषद्, नादबिन्दूपनिषद्, ब्रह्मबिन्दूपनिषद्, अमृतबिन्दूपनिषद्, ध्यानबिन्दूपनिषद्, तेजोबिन्दूपनिषद्, योगशिखोपनिषद्, योगतत्त्वोपनिषद् तथा हंसोपनिषद्।

के. नारायण स्वामी अय्यर ने 30 लघु उपनिषदों में से 9 उपनिषदों को योग उपनिषद् के¹⁵ वर्ग में सम्मिलित किया है -

अथर्ववेदीय उपनिषद्	-	शाण्डिल्योपनिषद्।
कृष्ण यजुर्वेदीय उपनिषद्	-	योगतत्त्वोपनिषद्, अमृतनादोपनिषद्, वराहोपनिषद् योगकुण्डली उपनिषद्।
शुक्लयजुर्वेदीय उपनिषद्	-	ध्यानबिन्दूपनिषद्, हंसोपनिषद्, मण्डलब्राह्मणोपनिषद्
ऋग्वेदीय उपनिषद्	-	नादबिन्दूपनिषद्।

इन नौ योग उपनिषदों के अतिरिक्त अमृतबिन्दूपनिषद् और तेजोपनिषद् को नारायण स्वामी ने सामान्य वेदान्त उपनिषद् के वर्ग में शामिल किया है।

अड्यार लाइब्रेरी मद्रास द्वारा 108 उपनिषदों को उपनिषद् ब्रह्मयोगी की संस्कृत व्याख्या सहित आठ खण्डों में प्रकाशित किया गया। सन् 1920 में अड्यार लाइब्रेरी के निर्देशक पं. ए. महादेव शास्त्री ने इनमें से 20 योग उपनिषदों को दो खण्डों में मूल उपनिषद् सहित उपनिषद् ब्रह्मयोगी की संस्कृत व्याख्या सहित प्रकाशित किया। योगराज उपनिषद् का प्रकाशन भी बाद में अड्यार लाइब्रेरी द्वारा किया गया।

इस प्रकार अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास द्वारा प्रकाशित योग उपनिषदों की संख्या 21 है। जो इस प्रकार हैं -

अमृतबिन्दूपनिषद्, अद्वयतारकोपनिषद्, अमृतनादोपनिषद्, क्षुरिकोपनिषद्, तेजोबिन्दूपनिषद्, त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, दर्शनोपनिषद्, ध्यानबिन्दूपनिषद्, नादबिन्दूपनिषद्, पाशुपतब्रह्मोपनिषद्, ब्रह्मविद्योपनिषद्, मण्डलब्राह्मणोपनिषद्, महावाक्योपनिषद्, योगकुण्डल्युपनिषद्, योगचूडामण्युपनिषद्, योगतत्त्वोपनिषद्, योगशिखोपनिषद् वराहोपनिषद्, शाण्डिल्योपनिषद्, हंसोपनिषद्, योगराजोपनिषद्।

परन्तु पं.ए. महादेव शास्त्री द्वारा सम्पादित ग्रन्थ में 20 ही योग उपनिषद् हैं। सन् 1938 में अड्यार लाइब्रेरी द्वारा ही टी.आर. श्रीनिवास अयंगर की "The Yoga Upanisads" नामक पुस्तक 20 योग उपनिषदों पर अंग्रेजी व्याख्या सहित प्रकाशित की गई।

प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय¹⁶ ने उपनिषदों का विभाजन योग, वेदान्त, शैव, वैष्णव तथा शाक्त साम्प्रदायिक विषय के आधार पर किया है, जिसमें योग सम्प्रदाय में 20 योग उपनिषदों के अतिरिक्त योगराज उपनिषद् को भी स्थान दिया।

डॉ. नन्दकिशोर¹⁷ ने भी उपनिषदों को वेदान्त, योग, संन्यास, वैष्णव, शैव, शाक्त, ब्रह्म, सौर तथा गाणपत्य सम्प्रदाय के आधार पर नौ भागों में विभक्त किया है तथा योग सम्प्रदाय के अन्तर्गत 21 योग उपनिषदों को सम्मिलित किया है।

मुक्तिकोपनिषद्¹⁸ में सूचीबद्ध 20 योग उपनिषद् क्रमानुसार निम्न प्रकार से हैं-

हंसोपनिषद्, ब्रह्मबिन्दूपनिषद्, अमृतनादोपनिषद्, क्षुरिकोपनिषद्, तेजोबिन्दूपनिषद्, नादबिन्दूपनिषद्, ध्यानबिन्दूपनिषद्, ब्रह्मविद्योपनिषद्, योगतत्त्वोपनिषद्, त्रिशिखब्रह्मणोपनिषद्, योगचूडामण्युपनिषद्, मण्डलब्रह्मणोपनिषद्, अद्व्यतारकोपनिषद्, शाण्डिल्योपनिषद्, योगशिखोपनिषद्, पाशुपतब्रह्मोपनिषद्, योगकुण्डलिन्युपनिषद्, जाबालोपनिषद्, महावाक्योपनिषद्, वराहोपनिषद्।

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा तीन खण्डों में सम्पादित '108 उपनिषद्' नामक पुस्तक में 18 योग उपनिषदों का हिन्दी अनुवाद किया गया है, जो इस प्रकार हैं -

ज्ञानखण्ड में योग उपनिषद् - अमृतनादोपनिषद्,
नादबिन्दूपनिषद्,
योगराजोपनिषद्।

ब्रह्मखण्ड में योग उपनिषद् - ब्रह्मविद्योपनिषद्,
क्षुरिकोपनिषद्,
योगतत्त्वोपनिषद्,
मण्डलब्रह्मणोपनिषद्,
हंसोपनिषद्,
शाण्डिल्योपनिषद्,
महावाक्योपनिषद्,
ब्रह्मबिन्दूपनिषद्,
जाबालोपनिषद्।

साधना खण्ड में योग उपनिषद् - योगचूडामण्युपनिषद्,
त्रिशिखब्रह्मणोपनिषद्,
अद्व्यतारकोपनिषद्,

पाशुपतब्रह्मोपनिषद्,

योगकुण्डल्युपनिषद्,

ध्यानबिन्दुपनिषद्।

अन्य उपनिषदों की भाँति इन 20 योग उपनिषदों को भी शान्तिपाठ के आधार पर विभिन्न वैदिक शाखाओं से सम्बद्ध किया गया है परन्तु योगराजोपनिषद् का मुक्तिकोपनिषद् में उल्लेख नहीं है और न ही इस उपनिषद् में शान्तिपाठ दिया गया है अतः इसे किसी वेद से सम्बद्ध नहीं किया गया है। अन्य 20 योग उपनिषद् किसी न किसी वैदिक संहिता से सम्बन्धित हैं। ये उपनिषद् जिस वैदिक संहिता से सम्बन्धित हैं उनका विवरण इस प्रकार है -

ऋग्वेद	-	नादबिन्दूपनिषद्।
शुक्ल यजुर्वेद	-	हंसोपनिषद्, मण्डलब्राह्मणोपनिषद्, अद्व्यतारकोपनिषद्।
कृष्णयजुर्वेद	-	अमृतनादोपनिषद्, तेजोबिन्दूपनिषद्, ध्यानबिन्दूपनिषद्, ब्रह्मविद्योपनिषद्, योगतत्त्वोपनिषद्, त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद्, क्षुरिकोपनिषद्, योगशिखोपनिषद्, योगकुण्डलिन्युपनिषद्, वराहोपनिषद्, ब्रह्मबिन्दूपनिषद् (अमृतबिन्दूपनिषद्)।
सामवेद	-	योगचूडामण्युपनिषद्, दर्शनोपनिषद् (जाबालदर्शनोपनिषद्)।
अथर्ववेद	-	पाशुपतब्रह्मोपनिषद्, महावाक्योपनिषद्, शाण्डिल्योपनिषद्।

परन्तु वासुदेव लक्ष्मण पणसीकर हंसोपनिषद्, ब्रह्मबिन्दूपनिषद् तथा क्षुरिकोपनिषद् को अथर्ववेद से सम्बन्धित मानते हैं तथा श्रीराम शर्मा आचार्य शाण्डिल्योपनिषद् को सामवेद से सम्बन्धित मानते हैं।

इस प्रकार योग उपनिषदों की संख्या 21 मानी गई है, जिनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

3.4 योग उपनिषदों का संक्षिप्त परिचय

(i) तेजोबिन्दूपनिषद् -

मन्त्र संख्या -

प्रथम अध्याय	-	50 मन्त्र
द्वितीय अध्याय	-	43 मन्त्र
तृतीय अध्याय	-	74 मन्त्र
चतुर्थ अध्याय	-	81 मन्त्र
पञ्चम अध्याय	-	105 मन्त्र
षष्ठ अध्याय	-	110 मन्त्र
कुल मन्त्र संख्या	-	462 शांतिपाठ सहित - 465

उपक्रम - मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार यह उपनिषद् कृष्णयजुर्वेद की कठ शाखा से सम्बद्ध है तथा कृष्ण यजुर्वेद के अन्य उपनिषदों के समान इसमें भी 'सहनावतु सह नौ भुनक्तु' आदि शान्तिपाठ का प्रयोग प्रथम अध्याय और समाप्ति के समय किया गया है।

मंगलाचरण में गुरु एवं शिष्य दोनों ही परमतत्त्व से प्रार्थना करते हैं। प्रथम अध्याय में उपनिषत्कार स्वयं ही विषय का प्रतिपादन प्रारम्भ करता है, जबकि द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय में जिज्ञासु षडानन कुमार कार्तिकेय हैं एवं उत्तरदाता स्वयं शिव हैं, जो ज्ञानयोग (अद्वैतवेदान्त) विषय का प्रतिपादन करते हैं। पञ्चम एवं षष्ठ अध्याय में इसी का विस्तार ऋभु द्वारा निदाघ के प्रश्नों के समाधान के रूप में किया गया है।

प्रतिपाद्य विषय -

तेजोबिन्दूपनिषद् का प्रतिपाद्य विषय ज्ञानयोग अर्थात् अद्वैतवेदान्त है। तेजोबिन्दूपनिषद् का उद्देश्य प्रायः इस उपनिषद् के प्रारम्भ में प्रयोग किए जाने वाले

एक प्रार्थना पद्य में मिलता है। जिसका अर्थ है - साधक को अखण्ड एकरस ब्रह्मभाव की प्राप्ति। वह श्लोक इस प्रकार है -

“यत्र चिन्मात्रकलना यात्यपहनवमञ्जसा।

तच्चिन्मात्रमखण्डैकरसं ब्रह्म भवायहम्॥”¹⁹

प्रथम अध्याय में सर्वप्रथम तेजोबिन्दूपनिषद् का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है कि-

“ॐ तेजोबिन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम्।

आणवं शांभवं शान्तं स्थूलं सूक्ष्मं परं च यत्॥”²⁰

अर्थात् तेजोबिन्दु शब्द का अर्थ हृदय में स्थित प्रतिमान विश्व के आत्मस्वरूप का ध्यान है। यह आत्मस्वरूप परमाणु है, कल्याणमय है, शान्त है, स्थूल एवं सूक्ष्म से परे है अथवा यह भी कह सकते हैं कि वह स्थूल भी है, और सूक्ष्म भी है, क्योंकि अत्यन्त सूक्ष्म होते हुए भी वह दृश्यमान् जगत् के रूप में स्थूल दिखता है।

इस उपनिषद् में योग के अंग, समाधि के विघ्न, ज्ञानावस्था, जीवन्मुक्त, विदेहमुक्त, स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर, तुरीयावस्था, आत्म एवं अनात्मपदार्थ, सच्चिदानन्द ब्रह्म इत्यादि विषयों का विस्तारपूर्वक समाधान शैली में वर्णन किया गया है।

इस उपनिषद् के अनुसार यम, नियम, त्याग भाव, देश और काल, मौन, आसन, मूलबन्ध, देहसाम्य, दृक् स्थिति, प्राणसंयम, प्रत्याहार, धारणा, आत्मध्यान तथा समाधि ये सब योग के अंग हैं ।

“यमो हि नियमस्त्यागो मौनं देशश्च कालतः।

आसनं मूलबन्धश्च देहसाम्यं च दृक्स्थितिः॥

प्राणसंयमनं चेव प्रत्याहारश्च धारणा।

आत्मध्यानं समाधिश्च प्रोक्तान्मङ्कानि वै क्रमात्॥”

उपसंहार - अन्त में इस उपनिषद् को महाशास्त्र की संज्ञा देते हुए आचार्य शंकर का अद्वैत वेदान्त ग्रन्थ बताया है तथा उपदेशक भी योग्य होना चाहिए तथा अधिकारी नास्तिक, कृतघ्न, दुराचारी और दुर्जन कभी न हो, ऐसा निषेध किया गया है।

“शांकरीयं महाशास्त्रं न देयं यस्य कस्यचित्।

नास्तिकाय कृतघ्नाय दुर्वृत्ताय दुरात्मने॥”²¹

उपदेशक के विषय में कहते हैं कि जो गुरु के प्रति भक्ति रखता है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, ऐसे पुरुष को एक महीने, छः महीने या वर्ष भर में भली प्रकार परीक्षा करके उपदेशित करें -

“गुरुभक्तविशुद्धान्तः करणाय महात्मने

सम्यक् परीक्ष्यं दातव्यं मासं षण्मासवत्सरम्॥”²²

(ii) ब्रह्मबिन्दूपनिषद् (अमृतबिन्दूपनिषद्) -

मन्त्र संख्या -

यह एक लघु उपनिषद् है, जिसमें केवल 22 मन्त्र हैं।

उपक्रम -

ब्रह्मबिन्दूपनिषद् के प्रारम्भ एवं अन्त में शान्ति पाठ किया गया है। शान्तिमन्त्र एवं मुक्तिकोपनिषद् में प्राप्त गणना के अनुसार कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित उपनिषद् है। बिन्दुपद का अर्थ है - अति अल्प में अतिशय का होना। इस उपनिषद् में उपनिषत्कार ने अत्यन्त संक्षेप में ब्रह्मविद्या का वर्णन किया है।

प्रतिपाद्य विषय -

“मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः”²³

अर्थात् मनुष्यों के बन्धन एवं मोक्ष का कारण मन है। उपनिषत्कार निर्विवाद रूप से स्वीकार करते हैं कि जीव के बन्धन एवं मोक्ष का कारण मन है। मन को शुद्ध एवं अशुद्ध मन के रूप में बताया गया है। जो मन इन्द्रियों के प्रति आसक्त है, विषय वासनाओं में लिप्त रहना चाहता है वह अशुद्ध मन है तथा ‘कामविवर्जितम् मनः’ शुद्ध मन है। जब यह मन इन्द्रियों की भोग लिप्सा से निर्विषय नहीं हो जायेगा तब तक उसकी मुक्ति नहीं हो पायेगी अतः मुक्ति की इच्छा रखने वाले साधक को चाहिए कि वह वैराग्य भावना को दृढ़ कर विषयों के प्रति आसक्ति को सम्पूर्णतया मिटा दे। इस आसक्ति से विरक्त होते ही साधक के लिए मुक्ति का मार्ग खुल जाता है, जैसा कि लिखा है -

“निरस्तविषयासङ्गं संनिरुद्धं मनो हृदि

यदा यात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम्॥”²⁴

अर्थात् जब विषयों के प्रति मन की आसक्ति सम्पूर्णतया समाप्त हो जाती है और वह हृदय में अर्थात् चित्त में प्रतिबिम्बित आत्मतत्त्व में स्थिर हो जाता है व उसकी चंचलता विलीन हो जाती है तब मन के इस उन्मनी भाव को ही परमपद कहा जाता है।

योगदर्शन में इसे ही प्रत्यक् चेतनाधिगम कहा गया है, जिसकी प्राप्ति प्रणव जपरूप ईश्वर प्राणिधान के फलस्वरूप स्वीकार की गई है।

“ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च”²⁵

परमपद की प्राप्ति को ही योगदर्शन में समाधि की स्थिति कहा गया है। इस अवस्था में साधक के लिए कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रहता है, न ही कोई प्राप्तव्य रहता है, न कुछ त्याज्य। पक्षपात भेदबुद्धि का समूल नाश होकर साधक ब्रह्मरूप हो जाता है।

इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए साधक को प्रणव साधना करनी चाहिए।

“स्वरेण सन्धयेद्योगमस्वरं भावयेत्परम्।

अस्वरेण हि भावेन भावो नाभाव इष्यते॥”²⁶

अर्थात् चित्त की एकाग्रता हेतु साधना स्वर अर्थात् प्रणव मंत्र के जप द्वारा करें। इस साधना क्रम में अस्वर अर्थात् प्रणवनाम से भिन्न नाम, दूसरे शब्दों में प्रणवनाम के अर्थ भूत ब्रह्म की भावना करें।

ब्रह्म निष्कल, निर्विकल्प, पाप-पुण्य से निर्लेप, अनन्त, कारण-कार्य सम्बन्ध से रहित अप्रेमय है। शरीर में स्थित रह कर क्रियाशील होने वाला व दुःख का भोग करने वाला चेतन तत्त्व जिसे जीव कहा जाता है, ब्रह्म से भिन्न नहीं है, तद्रूप ही है। केवल माया के आवरण के कारण वह उसी प्रकार ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है जैसे घड़े में विद्यमान आकाश बाहरी आकाश से भिन्न नहीं होता किन्तु घड़े के आवरण के कारण वह भिन्न प्रतीत होता है तथा जब घड़ा टूट जाता है तब घड़े का आकाश किसी भी प्रकार के परिवर्तन के बिना ही मुख्य आकाश में मिल जाता है -

“घटसंवृतमाकाशं लीयमाने घटे यथा

घटो लीयते नाकाशं तद्वज्जीवो नभोपमः॥

घटवत् विविधाकारं भिद्यमानं पुनः पुनः

तद्गगनं न च जानाति स जानाति च नित्यशः॥”²⁷

आत्मा एवं परमात्मा जिसे जीव और ब्रह्म कहते हैं, उपनिषत्कार के अनुसार परस्पर भिन्न नहीं हैं। माया के आवरण के कारण भेद की केवल मिथ्या प्रतीति होती है, अवास्तविक भेद का केवल आभास होता है। इस भेद के मिट जाने पर ब्रह्मभाव की प्राप्ति या मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इसके बाद कुछ भी शेष नहीं रहता।

इस प्रकार इस उपनिषद् के अनुसार जानने योग्य दो ही पदार्थ हैं - शब्दब्रह्म एवं परब्रह्म। शब्द की ब्रह्म साधना से परब्रह्म तक पहुँचा जा सकता है।

उपसंहार -

शब्द ब्रह्म अर्थात् ऊँकार की निरन्तर साधना से, इन्द्रियों को विषय से हटाकर तथा प्रणव अर्थ की भावना करने से योगी स्वयं में समस्त प्राणियों को और समस्त प्राणियों में स्वयं की अनुभूति करता है। कर्म-विकर्म के सम्बन्ध में उसको कोई सन्देह नहीं रहता है। सर्वात्मभाव के फलस्वरूप एकत्व अर्थात् अभेद की चित्त में प्रतिष्ठा हो जाने पर उसे कभी मोह और शोक नहीं ग्रस पाते हैं। वह सभी प्राणियों के प्रति अनुग्रह भाव वाला हो जाता है, स्वयं वासुदेव स्वरूप हो जाता है।

(iii) वराहोपनिषद्

मन्त्र संख्या -

प्रथम अध्याय	-	17 मन्त्र
द्वितीय अध्याय	-	83 मन्त्र
तृतीय अध्याय	-	30 मन्त्र
चतुर्थ अध्याय	-	44 मन्त्र
पञ्चम अध्याय	-	75 मन्त्र

कुल मन्त्र संख्या - 249, अन्तिम शान्ति मन्त्रसहित - 250

उपक्रम -

मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार वराह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है और कृष्ण यजुर्वेदीय अन्य उपनिषदों के समान इसमें भी शान्ति पाठ (मङ्गलाचरण) 'ऊँ' सहनाववतु सह नौ भुनक्तु' इत्यादि मन्त्र से किया गया है।

इस उपनिषद् का वराह नामकरण का कारण है कि ऋभु ने ब्रह्म विद्या की जिज्ञासा से बारह देव वर्षों अर्थात् $432 \times 12 = 5184$ (पाँच हजार एक सौ चौरासी) वर्ष पर्यन्त तप किया। बाहरवें देव वर्ष के पूर्ण होने पर भगवान् वराह के रूप में प्रकट हुए एवं महामुनि ऋभु को उपदेश दिया। वराह रूप में भगवान् का उपदेश प्रथम तीन अध्यायों में है, यही उपनिषद् का मुख्य वर्ण्य विषय है। शेष चौथे एवं पाँचवें अध्याय में वक्ता वराह न होकर ऋभु है, जो कि जिज्ञासु निदाघ को उनके द्वारा जीवन्मुक्त एवं योग विद्या के विषय में पूछे गए प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करते हैं। चूँकि ऋभु प्रभु वराह के शिष्य हैं एवं उनके द्वारा प्रदत्त एवं पोषित ज्ञान द्वारा ही वे निदाघ को उपदेश देते हैं इसलिए इस उपनिषद् का नाम वराहोपनिषद् है।

प्रतिपाद्य विषय -

ॐकार के साथ अथ शब्द का मंगलवाचक के रूप में प्रयोग किया गया है। पाँच हजार एक सौ चौरासी वर्षों तक तपस्या करने के बाद वराह रूप में भगवान् प्रकट होते हैं एवं कहते हैं- 'उतिष्ठ उतिष्ठ परं वृणीष्वेति' । तब नमस्कार करके ऋभु कहते हैं -

“भगवन्कामिभिर्यदयत्कामितं तत्तत्त्वत्सकाशात्स्वप्नेऽपि न याचे।²⁸
समस्तवेदशास्त्रेतिहासपुराणानि समस्तविद्याजालानि ब्रह्मादयः सुराः सर्वे त्वद्रूप
ज्ञानान्मुक्तिमाहुः। अतस्त्वद्रूपप्रतिपादिकां ब्रह्मविद्यां ब्रूहीति होवाच।”

अर्थात् ऋभु उठ गए और उनको प्रणाम करके बोले। भगवन् कामी लोग किसकी कामना करते हैं, वह मैं आपसे स्वप्न में भी नहीं माँगूंगा । समस्त वेदशास्त्र, इतिहास, पुराण, सभी विद्याएँ, ब्रह्मा आदि देवता भी कहते हैं कि आपके स्वरूप का ज्ञान होने से मुक्ति होती है, इसलिए आपके स्वरूप को बताने वाली ब्रह्मविद्या का उपदेश मुझे दीजिए।” तब वराहरूप धारी ईश्वर कहते हैं कि -

“चतुर्विंशतितत्त्वानि केचिदिच्छन्ति वादिनः

केचित्षट्त्रिंशत्तत्त्वानि केचित्षण्णवतीनि च।।”²⁹

अर्थात् सृष्टि का निर्माण कुछ लोग 24 तत्त्वों से, कुछ 36 तत्त्व एवं कुछ 96 तत्त्वों से मानते हैं। जो इन सभी तत्त्वों को जानता है, उसकी मुक्ति हो जाती है। ये 96 तत्त्व निम्नानुसार हैं -

- 24 तत्त्व -** 5 ज्ञानेन्द्रियाँ + 5 कर्मेन्द्रियाँ + 5 प्राण + 5 तन्मात्राएँ + मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार (4 अन्तःकरण)
- 36 तत्त्व -** पूर्व वर्णित 24 तत्त्व + पञ्चमहाभूत + जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था + सूक्ष्म, स्थूल, कारण शरीर, + चतुर्थ समाधि।
- 96 तत्त्व -** पूर्व वर्णित 36 तत्त्व + 6 भाव (उत्पत्ति, स्थिति, परिणाम, वृद्धि, अपक्षय, विनाश) + 6 ऊर्मि (सुधा, बिपासा, शोक, मोह, जरा और मृत्यु) + 7 धातुएँ (त्वचा, रक्त, मांस, मेदस्, मज्जा, अस्थिमज्जा, वीर्य) + पञ्च कोश (मनोमय, प्राणमय अन्नमय, विज्ञानमय, आनन्दमय) + 6 शत्रु (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य) + 3 जीव (विश्व, तैजस्, प्राज्ञ) + 3 गुण (सत्त्व, रजस्, तमस्)। 3 कर्माशय (प्रारब्ध, आगामी (क्रियमाण), संचित) + 5 क्रियाएँ (वचन, आदान, गमन, विसर्ग, आनन्द) + 4 कर्म (संकल्प करना, निश्चय

करना, अभिमान, अवधारणा) + 4 परिकर्म (मुदिता, करुणा, मैत्री, उपेक्षा), दिशाएँ, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विन, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मृत्यु (यम), चन्द्र, ब्रह्मा, रुद्र, क्षेत्रज्ञ और ईश्वर।

अन्त में कहा गया है कि वराहरूपधारी भगवान् का भक्तिपूर्वक भजन करने से तथा छियानवे तत्त्वों को जानने वाले की मुक्ति में संशय नहीं है।

द्वितीय अध्याय में ऋभु नामक महायोगी ने वराहरूपी विष्णु से प्रार्थना की कि मुझे सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मविद्या का उपदेश दीजिए -

“ऋभुर्नाम महायोगी क्रीडरूपं रमापतिम्

वरिष्ठां ब्रह्मविद्यां त्वमधीहि भगवन्मम॥”³⁰

वराह रूप धारी भगवान् ने कहा कि प्रथमतया वर्णधर्म एवं आश्रम धर्म का पालन करने से तपश्चर्या, गुरु कृपा, मनुष्य चतुर्विध वैराग्य यतमान संज्ञा, एकेन्द्रिय संज्ञा और वशीकार संज्ञा, वैराग्य, नित्य - अनित्य, आत्म-अनात्म पदार्थों का विवेक, लौकिक-पारलौकिक पदार्थों के प्रति वैराग्य का शम, दया, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधि आदि का अभ्यास करो अर्थात् ब्रह्मविद्या का उपदेश एवं उपरोक्त का अभ्यास करने वाला ही अधिकारी होता है। तब ही सर्वत्र ममतामयी बुद्धि को छोड़कर ब्रह्म में ही ब्रह्म को स्थिर करें। इस प्रकार मोक्ष का यही एकमात्र उपाय है। आगे शेष तिरासी मन्त्रों तक अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिष्ठापन किया गया है।

इस प्रकार आगे स्वयं को पूर्ण आत्मा, माया-ईश्वर से विलक्षण सत् चित् चित् आनन्द स्वरूप बताया है। मुक्ति का एक मात्र मार्ग वेदान्त की दृष्टि को अपनाना ही बताया है। ऋभु को जगत्स्वरूप बताते हुए कहते हैं कि यह जगत् अपने स्वरूप (चिन्मात्र स्वरूप) से भिन्न रूप में प्रतीत हो रहा है। इसे निज आत्ममात्र के रूप में जानों। साधक को चाहिए कि प्रपञ्च का अनुभव कभी न करे अपितु सर्वदा अपने स्वरूप का बोध करे, तभी वह बन्धन में नहीं बन्धेगा।

तृतीय अध्याय में भी चिन्मात्र स्वरूप का वर्णन करते हुए भगवत्स्मरण को ही जन्म-मरण से मुक्ति का उपाय बताया है। इस प्रकार भक्तियोग के सिद्धान्त को इस अध्याय में प्रबलता के साथ मिश्रित कर दिया गया है।

चतुर्थ अध्याय में ऋभु ने निदाघ को जीवन्मुक्ति का लक्षण विस्तार से उपदेशित किया है। योग की सात ज्ञान भूमियों, विशेष अवस्थाओं अथवा स्तरों की विवेचना की गई है। सात ज्ञान भूमियों में शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा ये तीन साधन भूमियाँ

हैं। सातवीं ज्ञान भूमि तुरीयगा को प्राप्त योगी 'ब्रह्मविद् वरिष्ठ' कहलाता है तथा वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

अन्तिम पञ्चम अध्याय में योगाभ्यास की विधि बताई गई है। योग के तीन मन्त्र, लय तथा हठ ये प्रकार बताएँ हैं -

“मृदुमध्यममन्त्रेषु क्रमान्मन्त्रं लयं हठम्।

लयमन्त्र हठा योगा योगो ह्यष्टाङ्गसंयुतः॥”³¹

साथ ही अष्टांग योग के अन्तर्गत दस यम, दस नियम, ग्यारह आसन प्राणायाम के तीन अंग, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि का विवेचन किया गया है। बन्धों में मूलबन्ध को श्रेष्ठ बताकर इसे सम्पुटयोग कहा गया है -

“अयं च सम्पुटो योगो मूलबन्धोऽयं मतः”³²।

सम्पुट योग के अभ्यास से ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति बताई है साथ ही विघ्न निवृत्ति के लिए प्रणव जप का अभ्यास बताया है।

योग की आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति ये चार अवस्थाएँ बताई है -

“आरम्भश्च घटश्चैव पुनः परिचयस्तथा।

निष्पत्तिश्चेति कथिताश्चतस्रः भूमिकाः॥”³³

अन्त में उपनिषद् का फल बताते हुए कहा गया है -

“एतदुपनिषदं योऽधीते सोऽग्निपूतो भवति। स वायुपूतो भवति। सुरापानात् पूतो भवति। स्वर्णस्तेयात् पूतो भवति। स जीवन्मुक्तो भवति।”³⁴

अर्थात् यह उपनिषद् पढ़ने वाला कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करके प्राणवायु के स्पर्श से सहस्रार में पवित्र हो जाता है तथा सहस्रार से टपकते अमृत का पान करके सभी पापों से मुक्त होकर जीवन्मुक्त हो जाता है।

उपसंहार - प्रस्तुत उपनिषद् में सांख्ययोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, मन्त्रयोग, लययोग तथा हठयोग के बारे में बताया गया है। छियानवे तत्त्वों का विवेचन, भगवद् भक्ति से मुक्ति, साधक चतुष्टय सम्पत्ति, ओऽम् की व्याख्या, ज्ञान की सप्तभूमियाँ, सम्पुटयोग, प्रणव जप, योग की चार अवस्थाओं का सम्यक् निर्वचन किया गया है। अद्वैत सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार इस उपनिषद् में आध्यात्मिक विचारों के साथ-साथ दार्शनिक सिद्धान्तों को भी व्याख्यायित किया गया है।

(iv) योगराजोपनिषद् -

मन्त्र संख्या - 21

उपक्रम -

प्रस्तुत उपनिषद् में “योगराजं प्रवक्ष्यामि” पंक्ति द्वारा किसी वक्ता का संकेत तो किया गया है किन्तु वक्ता या श्रोता के नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं है। मुक्तिकोपनिषद् में परिगणित उपनिषदों में इसका नामोल्लेख नहीं है। न ही इस उपनिषद् में अन्य उपनिषदों की भाँति शान्ति पाठ का निबन्धन है अतः इसे किसी वेद से सम्बद्ध नहीं कहा जा सकता है। इस उपनिषद् में ब्रह्मचक्र से प्रारम्भ करके व्योम चक्र तक नवचक्रों का विवरण है।

प्रतिपाद्य विषय -

प्रस्तुत उपनिषद् में योग के चार प्रकार बताए गए हैं -

"मन्त्रयोगो लयश्चैव राजयोगो हठस्तथा।।

योगश्चतुर्विधः प्रोक्तो योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।"³⁵

उपनिषत्कार ने मन्त्रयोग, लययोग, राजयोग एवं हठयोग का नामोल्लेख करके आसन, प्राणसंरोध (प्राणायाम), ध्यान व समाधि इन चार योगांगों को सभी साधना के सम्प्रदायों में स्वीकृत बतलाया है।

उपनिषत्कार के अनुसार विष्णु, ब्रह्मा, शिव आदि देवों के मन्त्रों का श्रद्धा पूर्वक निरन्तर जप करना मन्त्रयोग है। वत्सराज आदि ने मन्त्रयोग की साधना से सिद्धि प्राप्त की है। कृष्णद्वैपायन आदि ने नव चक्रों में ही प्राण मन का लय करके लययोग की सिद्धि प्राप्त कर लोक-परलोक को आनन्दमय बनाया।

इस उपनिषद् का प्रचलन संभवतः योगियों की परम्परा में लययोग के संक्षिप्त साधना मार्ग के रूप में रहा होगा। इसमें यद्यपि चित्तलय के लिए चक्रों में ध्यान करते हुए साधना का विधान है, किन्तु चक्रों की संख्या और उनके स्वरूप के सम्बन्ध में चक्र विज्ञान के दो प्रमुख ग्रन्थ पूर्णानन्द स्वामीकृत ‘षट्चक्रनिरूपण’ एवं स्वामी विश्वेवर ब्रह्मचारी कृत योगरत्नाकर (ब्रह्मनिर्वाण तन्त्र) से मेल नहीं खाता। उपरोक्त ग्रन्थों में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र इन छः चक्रों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है जबकि योगराजोपनिषद् में ब्रह्मचक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, नाभिचक्र, हृदयचक्र, कण्ठचक्र, तालुका चक्र, भूचक्र, ब्रह्मरन्ध्र चक्र, व्योम चक्र इन नौ चक्रों का वर्णन है। ग्रन्थकार के अनुसार नवचक्रों में एक-एक का

क्रमशः ध्यान करने से साधक मुनि को अनेक सिद्धियों के साथ मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

उपनिषत्कार ने प्रथम चक्र के ध्यान का प्रयोजन मुक्ति कहा है, मध्य के चक्रों के ध्यान से अनेक सिद्धियों की प्राप्ति का संकेत करके पुनः आज्ञाचक्र, ब्रह्मचक्र व व्योम चक्र के ध्यान का भी फल मुक्ति लाभ ही बताया है।

उपान्त्य मन्त्र में ग्रन्थकार ने रहस्यपूर्ण शैली में ज्ञान योग अर्थात् वेदान्त की ओर संकेत किया है कि वस्तुतः ब्रह्म एक है, किन्तु अविद्यावश जीव के पृथग्भाव के साथ नानात्व का भ्रम होता है। अविद्या के नष्ट होने पर मध्य में जब भासित नानात्व भी नष्ट हो जाता है और साधक को ब्रह्मलोक की प्राप्ति हो जाती है, जो भ्रमवश ब्रह्माण्ड के रूप में भासमान ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं है।

उपसंहार -

उपनिषत्कार ने उपनिषद् की प्रस्तावना में चार प्रकार के योगों की चार योगांगों के साथ चर्चा की है, परन्तु मन्त्रयोग के सम्बन्ध में केवल संकेत मात्र दिया है तथा लययोग के विषय में शरीरस्थ नव लय स्थानों का संक्षिप्त परिचय देकर उन स्थानों में चित्त का लय करने का निर्देश दिया है। योग के दो अन्य प्रकार राजयोग व हठयोग की तथा चार योगांगों की चर्चा भी नहीं की गई है। यह स्थिति अस्वाभाविक सी लगती है अतः यह कहना अनुचित न होगा कि यह उपनिषद् अपूर्ण सा प्रतीत होता है।

षट्चक्र निरूपण के रचयिता पूर्णानन्द स्वामी तथा योगरत्नाकर के लेखक द्वारा दिया गया और परम्परा से स्वीकृत ब्रह्मनिर्वाण तन्त्र को भी तान्त्रिक मानना उचित होगा। इस प्रकार चक्र साधना के निर्देशक इन दो ग्रन्थों के समान इस उपनिषद् में चक्र साधना का प्रधानतया संक्षिप्त संकेत होने से इसे लययोग सम्बन्धी तन्त्र साधना का लघुग्रन्थ माना जा सकता है।

ग्रन्थ के अन्त में एक मन्त्र में प्राणायाम से कुण्डलिनी जागरण की विधि का भी संकेत उपनिषत्कार ने किया है, जिसका संकेत भगवद्गीता में भी प्राप्त होता है -

“अपाने जुहवति प्राणं प्राणोऽपानं तथापरे।

प्राणापानगती रूद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥”³⁶

कुण्डलिनी जागरण से ज्ञानशक्ति जिसे मध्यशक्ति से अभिहित किया गया है। इसके प्रबोधन से ही परमसुख की प्राप्ति होती है। “जायते परं सुखम्” पंक्ति की पुनरावृत्ति के साथ उपनिषद् की इति होती है।

(V) अद्वयतारकोपनिषद् -

मन्त्र संख्या -

यह उपनिषद् गद्यात्मक स्वरूप में है। दीर्घ एवं लघु पंक्तिबद्ध यह उपनिषद् कुल 13 गद्यांशों में निबद्ध है।

उपक्रम -

द्वैतसंभवविज्ञान, संसिद्धाद्वयतारकम्।

तारकं ब्रह्मेति गीतं वन्दे श्रीरामवैभवम्॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

ईशावास्योपनिषद् के मन्त्र द्वारा उपनिषद् के आरम्भ एवं अन्त में शान्ति पाठ किया गया है।

प्रतिपाद्य विषय -

मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार अद्वयतारकोपनिषद् शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित है। इस उपनिषद् में राजयोग का वर्णन है। “अद्वय” का अर्थ ब्रह्म है। यह उपनिषद् सांसारिक दुःख भोग आदि भयों से दूर कर साधक को तार देता है और ब्रह्मविद्या का ज्ञान कराता है। उपनिषद् पढ़ने का अधिकारी शास्त्राध्ययन में पारंगत, जितेन्द्रिय तथा शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान इत्यादि गुणों से युक्त होना चाहिए।

इस उपनिषद् के वक्ता के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं किन्तु इस उपनिषद् का श्रोता या पाठक कोई शास्त्रज्ञाता एवं संयमी पुरुष अवश्य होना चाहिए।

यह उपनिषद् गर्भ में रहने, जन्म लेने, बुढ़ापे, मृत्यु एवं सभी प्रकार के सांसारिक भोगों से मुक्ति प्रदान करता है। इस उपनिषद् का सिद्धान्त वेदान्ती है, जिसके अनुसार यह जगत् मायामयी है, क्षणिक है और जो सत् है वह केवल अद्वितीय ब्रह्म है।

अद्वितीय ब्रह्ममय होने का उपाय तारक योगसाधना एवं योगसिद्धि है। दोनों भूमध्य (आज्ञा चक्र) पर दृष्टि केन्द्रित करने से ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर जो तेजोमण्डल प्रकट होता है वही तारकयोग है। तारक दो प्रकार का बताया गया है - पूर्वार्ध तारक और उत्तरार्ध तारक या अमनस्क तारक।

दोनों भौंहों को कुछ ऊपर उठाकर तेजोमण्डल के साथ मन एकाग्र कर दृष्टि को आज्ञाचक्र पर लगाना पूर्वतारक योग होता है तथा तालुमूल के ऊपरी भाग में

किरणों के ज्योतिपुंज पर ध्यान लगाना उत्तर तारक योग या अमनस्क तारक कहलाता है। इसके ध्यान से साधक को अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है -

“भूयुगममध्यबिले दृष्टिं तद् द्वारा ऊर्ध्वस्थिततेज आविभूर्तं तारकयोगो भवति। तेन सहमनोयुक्तं तारकं सुसंयोज्य प्रयत्नेन भूयुगमं सावधानतया किञ्चिद् ऊर्ध्वम् उत्क्षेपयेत् इति पूर्वतारकयोगः। उत्तरं तु अमूर्तिमत् अमनस्कम् इति उच्यते तालुमूल ऊर्ध्व भागे महान् ज्योतिः मयूखो वर्तते। तत् योगिभिः ध्येयम्। तस्मात् अणिमादि सिद्धिः भवति।”³⁷

योगी को अपने मस्तक स्थित आकाश में सूर्य-चन्द्र का ध्यान करना चाहिए अर्थात् अन्तर्दृष्टि से ब्रह्म साक्षात् या तारक योग का अभ्यास करना चाहिए। मूर्त और अमूर्त के भेद से दो प्रकार के तारक योग का अभ्यास बताया गया है - “तत् तारकं द्विविधं मूर्तितारकं अमूर्तितारकं च इति। यत् इन्द्रियान्तं तत् मूर्तिमत् यत् भूयुगातीतं तत् अमूर्तिमत्।”³⁸

ब्रह्म शुक्लतेज सम्पन्न है अतः इस ब्रह्म को मनसहित अन्तर्दृष्टि से ही देखा जा सकता है और यह अभ्यास अमूर्तितारकयोग का अभ्यास है साथ ही ब्रह्म की प्राप्ति के तीन लक्ष्यों आन्तरिक, मध्य एवं बाह्य के बारे में बताया गया है। विविध प्रकार की मुद्राओं अर्थात् ध्यान एवं समाधि के अतिरिक्त योग के अन्य अंगों को यहाँ स्थान नहीं दिया गया है क्योंकि इस उपनिषद् का साधक यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार इन सभी योगांगों में सिद्ध होना चाहिए। निर्विकल्पक समाधि, अनाहतनाद, बहिर्लक्ष्यलक्षण, मध्यलक्ष्यलक्षण, तारकयोगसिद्धि (अर्थात् अज्ञान से पार कर देने वाला विवेक ज्ञान है। यह विवेक ज्ञान स्व प्रतिभा से ही उत्पन्न हो सकता है इसलिए इसे प्रतिभज्ञान भी कहते हैं। यह ज्ञान विवेक-ख्याति के लिए परमावश्यक है।) मूर्त और अमूर्त के भेद से दो प्रकार का अभ्यास, शाम्भवीमुद्रा, अन्तर्लक्ष्य के विकल्प, षोडशान्त, तुरीयचैतन्य, तुर्यगावस्था और आचार्य के लक्षण इत्यादि विषयों पर उपनिषद् में विस्तार से चर्चा की गई है।

बुद्धिगुहा में स्थित चित् स्वरूप या चैतन्य स्वरूप ज्योति अथवा षोडशान्त में स्थित तुरीयचैतन्य ये तीन अन्तर्लक्ष्य हैं। इन सभी अन्तर्लक्ष्यों को केवल आचार्य या गुरु की कृपा से ही देखा जा सकता है। षोडशान्त से तात्पर्य भी सांख्यदर्शन के अनुसार माने गए 16 तत्त्वों से है।

उपनिषद् न केवल पढ़ने के अधिकारी की ही योग्यता का वर्णन करता है, अपितु आचार्य लक्षणों की भी चर्चा करता है। गुरु शब्द के अर्थ को बताते हुए गुरु माहात्म्य को वर्णित किया गया है -

“गुशब्दस्त्वन्धकारः स्यात् रुशब्दस्तन्निरोधकः।

अन्धकारनिरोधित्वात् गुरुरित्यभिधीयते॥

गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव परा गतिः।

गुरुरेव परा विद्या गुरुरेव परायणम्॥

गुरुरेव परा काष्ठा गुरुरेव परं धनम्।

यस्मात्तदुपदेष्टाऽसौ तस्माद् गुरुतरो गुरुरिति॥”³⁹

अर्थात् ‘गु’ शब्द का अर्थ अन्धकार है और ‘रु’ शब्द का अर्थ अन्धकार दूर करने वाला है। इस प्रकार गुरु का शाब्दिक अर्थ अज्ञान के अन्धकार को दूर करने वाला है। गुरु ही परब्रह्म है, सर्वोत्कृष्ट विद्या का दाता है, परायण है, शरण है इसलिए गुरु अत्यन्त महान और पूजनीय है।

उपसंहार -

उपनिषद् के अन्त में उपनिषद् के अभ्यास का फल बताया गया है -

“यः सकृद् उच्चारयति तस्य संसारमोचनं भवति। सर्वजन्मकृतं पापं तत् क्षणादेव नश्यति। सर्वान् कामान् अवाप्नोति। सर्वपुरुषार्थसिद्धिः भवति। य एव वेदेत्युपनिषत्॥”

उपनिषत्कार के अनुसार जो इस उपनिषद् को एक बार पढ़ लेता है, उसकी संसार से मुक्ति हो जाती है। सारे जन्म के पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। सभी प्रकार के पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं।

तारकयोग द्वारा मोक्ष या कैवल्य प्राप्ति ही एकमात्र उद्देश्य इस उपनिषद् को लिखने का है। “सर्वान् कामान् अवाप्नोति” इस पंक्ति के माध्यम से यह उपनिषद् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार इत्यादि से रहित सामान्य पाठकों की इच्छाओं को भी पूरा करता है संभवतया यही कहने का प्रयास किया गया है।

‘ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं -----’ मन्त्र द्वारा अन्त में शान्ति पाठ किया गया है।

(VI) महावाक्योपनिषद् -

मन्त्र संख्या -

इस उपनिषद् में केवल 11 वाँ मन्त्र है। शेष भाग गद्य रूप में है। एक-एक पंक्तियों के गद्य मिलाकर कुल 12 हैं। यह अत्यन्त लघु उपनिषद् है।

उपक्रम -

‘ओ३म् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम’ मन्त्र द्वारा इस उपनिषद् के प्रारम्भ में शान्ति पाठ किया गया है। मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार यह उपनिषद् अथर्ववेद से सम्बन्ध रखता है। यह उपनिषद् ब्रह्मा द्वारा अपरोक्ष अनुभव सिद्ध है। ब्रह्मा द्वारा इसका प्रतिपादन किया गया है किन्तु इस उपनिषद् के गोपनीय ज्ञान को धारण करने वाला कोई उत्तम शिष्य नहीं प्राप्त हुआ ऐसा बताया गया है।

उपनिषद् के अनुसार इसका ज्ञान साधारण व्यक्ति को नहीं देना चाहिए। जो सात्त्विक वृत्ति वाला, ध्यानयोगी व गुरुसेवा परायणी हो उसे ही उपनिषद् का ज्ञान देना चाहिए।

विषयवस्तु -

ब्रह्मा इसके वक्ता है। उनके अनुसार ब्रह्म ही परम सत्य है। जीवन्मुक्ति के लिए ब्रह्म ज्ञान परमावश्यक है।

विद्या-अविद्या का स्वरूप व कार्य, हंस विद्या के अभ्यास से परमात्म दर्शन, तत्त्वज्ञान की वृत्ति का स्वरूप, प्रणव हंस ज्योति का ध्यान तथा फल इस उपनिषद् के प्रतिपाद्य विषय हैं।

अविद्या चक्षु बन्धन एवं विद्या चक्षु मोक्ष का कारण है। उपनिषद् के अनुसार हंसविद्या के अभ्यास से ही परमात्म ब्रह्म प्राप्ति संभव है।

पाशुपतब्रह्मोपनिषद् में जिस हंस विद्या का उल्लेख है, इस उपनिषद् में भी उसी हंस विद्या के माध्यम से परमात्म दर्शन प्राप्ति होना बताया है। श्वास-प्रश्वास के द्वारा, अनुलोम-विलोम प्राणायाम के द्वारा तथा प्राण और अपान वायुओं से हंस-हंस का अजपा जप होता रहता है। नासिका से श्वास निकलने पर ‘हं’ जैसा शब्द तथा श्वास भरने पर ‘स’ जैसा शब्द निकलता है। इस अजपा जप हंस-हंस की ध्वनि का 21,600 बार जप करने से सच्चिदानन्द परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है -

“असावादित्यो ब्रह्मेत्यजपयोपहितं हंस सोऽहम्। प्राणापानाभ्यां प्रतिलोमानुलोमाभ्यां समुपलभ्यैवं सा चिरं लब्ध्वा त्रिवृदात्मनि ब्रह्मण्यभिध्यायमाने सच्चिदानन्दः परमात्मविर्भवति।”⁴⁰

उपनिषद् में तत्त्वज्ञान की वृत्ति का स्वरूप ब्रह्मरूप बताया गया है। तत्त्वज्ञानवृत्ति हजारों सूर्यों की ज्योति के समान व निस्तरंग समुद्र की जलराशि के समान ब्रह्मभाव रस से परिपूर्ण होने के कारण ब्रह्मरूप ही है। यह वृत्ति लय से हीन है। न समाधि है, न योग सिद्धि है और न ही मनोलय है। तत्त्वज्ञान की यह वृत्ति तो ब्रह्म के साथ एकता है। जो विद्वान् अपने से भिन्न अविद्या और इसके दिखाई देने वाले कार्यों को मिथ्या जानकर ब्रह्म मात्र को ही सत्य मानता है, वह ब्रह्मवित् हो जाता है -

“सोऽहमर्कः परं ज्योतिरर्कज्योतिरहं शिवः।

आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योतिरसावदोम्॥”⁴¹

चैतन्य सूर्य की ज्योति का ध्यान करने से निर्गुण ब्रह्म का ध्यान होता है। प्राणायाम द्वारा हंस-हंस की ध्वनि के साथ परमहंस सूर्य ज्योति का ध्यान करना चाहिए। हंस ज्योति का प्रातः, दोपहर एवं सन्ध्या के समय ध्यान करने से समस्त पापों का विनाश हो जाता है यही हंस ज्योति के ध्यान का फल है।

स्पष्ट है ध्यान की निरन्तरता है, जो जीवन और पुरातन जीवन के सभी पापों को नष्ट करेगी। हंस-हंस के प्राणायाम के माध्यम से जप करने को कहा गया है, इस कारण ही इस उपनिषद् को योग उपनिषद् में सम्मिलित किया गया है।

उपसंहार -

हंस विद्या का फल सर्ववेदपारायण पुण्य का लाभ बताया गया है। ‘महाविष्णुसायुज्यमवाप्नोति’ अर्थात् प्रणव हंस ज्योति का ध्यान करने से व्यक्ति महाविष्णु सायुज्य या स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

इस फल वर्णन के साथ ही उपनिषद् का उपसंहार किया गया है। अन्त में शान्ति पाठ प्राप्त नहीं होता।

(VII) पाशुपतब्रह्मोपनिषद् -

मन्त्र संख्या -

32 गद्य पूर्वकाण्ड में तथा उत्तरकाण्ड पद्यात्मक है, जिसमें 46 मन्त्र हैं।

यह उपनिषद् दो काण्डों में विभक्त है - पूर्वकाण्ड और उत्तरकाण्ड।

“ओ३म् भद्रं कर्णेभिः” इस मन्त्र द्वारा उपनिषद् के प्रारम्भ में शान्ति पाठ किया गया है।

उपक्रम -

मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार यह उपनिषद् अथर्ववेद से सम्बद्ध है। इस उपनिषद् के वक्ता स्वयं ब्रह्मा है तथा श्रोता ब्रह्मा के पुत्र वैश्रवण बालखिल्य है। अपने पुत्र द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर ही इसमें ब्रह्मा द्वारा दिया गया है।

प्रतिपाद्य विषय -

शान्ति पाठ के पश्चात् किए गए मंगलाचरण में पाशुपत को ब्रह्मविद्या बताया गया है, जिसके द्वारा ही परमश्रेष्ठ अविनाशी परमात्मा को जाना जा सकता है। पूर्वकाण्ड में बताया गया है कि ब्रह्मा के मन में प्रजा को उत्पन्न करने की इच्छा के परिणाम में उन्होंने वैश्रवण नामक पुत्र को उत्पन्न किया जिन्हें वैश्रवण बालखिल्य ऋषि के नाम से जाना जाता है। बालखिल्य ऋषि द्वारा सृष्टि, देवता, सूर्य, चन्द्र आदि विषयों से सम्बद्ध जगत् विद्या क्या है? देवता कौन हैं? काल का क्या प्रमाण है? सूर्य चन्द्रादि किसकी आज्ञा से प्रकाशित होते हैं? आकाश स्वरूप महिमा किसकी है? ये 7 प्रश्न पूछे गए जिनका एक-एक करके ब्रह्मा उत्तर देते हैं। इन प्रश्नोत्तर में ही उपनिषद् की विषय वस्तु समाहित है। स्वयम्भू ब्रह्मा ने क्रमशः सातों प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार बताए हैं -

जगत् की विद्या मातृका है अर्थात् अ से लेकर क्ष तक अक्षरों वाली मातृका विद्या है, जो वाक् शक्ति का आधार है। चार मात्रा वाला ओंकार मेरा प्राणरूप देव है। जाग्रत अवस्था से लेकर तुरीयान्त तक तीनों लोकों का मैं ही एकमात्र देव हूँ। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् मेरे ही वश में है। काल का प्रमाण या अवधि कल्प के अन्त तक है। सूर्य चन्द्रादि मेरे ही रूप हैं तथा ये मेरे ही तेजस्वी रूप से चमकते हैं। आकाश मेरी तीन ब्रह्मा, विष्णु, महेश शक्तिवाली माया का रूप है। तत्पश्चात् सृष्टियज्ञ में कर्ता का वर्णन किया गया है। जिसमें समस्त यज्ञों के कर्ता पशुपति रुद्र को बताया गया है। महेश्वर का मानस रूप ब्रह्म यज्ञ को भोगने वाला देवता है तथा उस मानस ब्रह्म का रूप 'हंसः सोऽहं' इस तन्मयता को प्राप्त करने के लिए जो यज्ञ किया जाता है, वह नादानुसन्धान तन्मयता का विकार ही जीव है।

इस प्रकार नादानुसन्धान यज्ञ, परमात्मा का हंस रूप, यज्ञसूत्र व ब्रह्मसूत्र में समानता, प्रणव हंस का यज्ञ, ब्रह्म सन्ध्या का क्रिया रूप, मानसिक यज्ञ, हंस तथा प्रणव का अभेद अनुसन्धान, छियानवे अंगुल का हंस सूत्र, प्रणवरूप हंसात्मक विद्या से मुक्ति, बाह्य यज्ञ की अपेक्षा आन्तरिक यज्ञ की श्रेष्ठता तथा तारक हंस ज्योति का वर्णन किया गया है।

पूर्वकाण्ड के अन्त में बताया गया है कि इस उपनिषद् में जिस हंस ज्योति को वर्णित किया गया है, वही रुद्र है और प्रणव ही पशुपति है -

“रूद्रो ब्रह्मोपनिषदो हंस ज्योतिः पशुपतिः प्रणवस्तारकः स एवं वेद”⁴²

द्वितीय अध्याय उत्तरकाण्ड में सर्वप्रथम ब्रह्मसम्पत्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि -

“हंसात्ममालिका वर्णब्रह्मकालप्रचोदिता।

परमात्मा पुमानिति ब्रह्मसंपत्तिकारिणी॥”⁴³

अर्थात् हंस का जप ही वर्ण ब्रह्म है, इसी से ब्रह्म की प्राप्ति होती है। परमात्मा और पुरुष भी यही है।

तत्पश्चात् माया से उत्पन्न परब्रह्म में जगत् की रचना, हंस ज्योति प्रणव ध्यान की विधि, शिव द्वारा मन और इन्द्रियों की प्रेरणा, माया से उत्पन्न आत्मा में परब्रह्म का अनुभव, ज्ञानी पुरुष की ब्रह्मात्मता, सत्य आदि श्रेष्ठ ज्ञान का साधन, आत्मज्ञानी का जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति, आत्मज्ञानी के लिए भक्ष्य-अभक्ष्य के विवेक की व्यर्थता तथा अन्त में ज्ञानी पुरुष का अपने में ही सब कुछ देखने की स्थिति आदि को विवेचित किया गया है। इस प्रकार ब्रह्म सम्बन्धी गूढ़ सिद्धान्तों का अत्यन्त विशद वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

आत्मज्ञान से ब्रह्म सदृश होने का तथा प्रणवरूपी नाद से हंस का ज्ञान प्राप्त करने का उपदेश दिया है -

“ब्रह्मसूत्रपदं ब्राह्मं विद्ध्युक्तयक्षणम्।

हंसार्कप्रणवध्यानमित्युक्तो ज्ञानसागरे॥”⁴⁴

अर्थात् जगत् के सूत्र रूप ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए तथा हंस रूपी सूर्य का प्रणव सहित ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार की ज्ञानप्राप्ति होने से ही ज्ञान सागर के पार पहुँचा जा सकता है।

‘पाशुपत ब्रह्मोपनिषद्’ में सात प्रश्नोत्तरों के अतिरिक्त ‘नादानुसन्धान यज्ञ’ का संक्षिप्त उल्लेख प्राप्त होता है। “सोऽहम्” के नाद के साथ ‘अजपा जप’ श्वास-प्रश्वास के साथ करने को कहा गया है, जिसे हम प्राणायाम भी कह सकते हैं। ‘सोऽहम्’ की उल्टी ध्वनि को ‘हंस-हंस’ की ध्वनि कहा गया है। यही नादानुसन्धान यज्ञ है। इस उपनिषद् में प्रणवरूप हंस ज्योति विद्या को वर्णित किया गया है। यह प्रणव ही पशुपति है और हंस का जप ही ब्रह्म है। इस पाशुपत योग द्वारा ही ब्रह्म

की प्राप्ति बताई गई है। संभवतः इसी प्रक्रिया के कारण इस उपनिषद् को योग उपनिषद् में सम्मिलित किया गया है।

उपसंहार -

उपनिषद् के अन्त में आत्मज्ञानी के लिए भक्ष्य-अभक्ष्य के विवेक की व्यर्थता को सिद्ध कर स्वस्वरूप में ही सब कुछ देखने की स्थिति का वर्णन किया गया है। माया की सत्ता को अस्वीकार कर ब्रह्म को ही वास्तविक सत्ता बताया गया है। नादानुसन्धान यज्ञ 'सोऽहम्' के जप से ही तत्त्व ज्ञान होने "स्वतत्त्वज्ञानेन स्वातिरिक्तभ्रमं हन्ति अपहनवं करोति इति हंसः परमात्मा भवति" स्वरूप वाले परमात्मा से साक्षात्कार होता है। यही इस उपनिषद् का संदेश है।

यह उपनिषद् शैव धर्म के पाशुपत सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। यह पाशुपत योग द्वारा मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बताता है साथ ही ब्रह्म और आत्मा के बीच ऐक्य को दर्शाता है।

(VIII) त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् -

मन्त्र संख्या -

165 मन्त्र, इन मन्त्रों के साथ ही उपनिषद् के आरम्भ में नौ गद्य भी हैं।

उपक्रम -

मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार यह उपनिषद् शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित है।

'ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदम्' यह शांति पाठ उपनिषद् के आरम्भ में किया गया है।

योगज्ञानैकसंसिद्धशिवतत्त्वतयोज्ज्वलम्।

प्रतियोगिविनिर्मुक्तं परं ब्रह्म भवाम्यहम्॥

अर्थात् शिवतत्त्व की आराधना से परब्रह्ममय हो जाऊँगा। उपनिषद् के वक्ता स्वयं भगवान् आदित्य हैं, जो त्रिशिखि नाम वाले ब्राह्मण द्वारा शरीर, प्राण और आत्म क्या है? इनका मूल कारण क्या है? विषयक पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

प्रतिपाद्य विषय -

भगवान् आदित्य त्रिशिखि ब्राह्मण को उत्तर देते हैं - "स होवाच सर्वमिदं शिव एव विजानीहि। किन्तु नित्यः शुद्धो निरञ्जनो विभुः अद्वयानन्दः शिव एकः स्वेन भासेदं सर्वं सृष्ट्वा तप्तायः पिण्डवत् ऐक्यं भिन्नवत् अवभासते। तद् भासकं किमिति चेत् उच्यते। सत् शब्द वाच्यं अविद्याशबलं ब्रह्म॥"⁴⁵

अर्थात् सब कुछ शिव को ही जानो। नित्य, शुद्ध, निरञ्जन अर्थात् निर्गुण, सर्वव्यापक शिव एक ही है। जिसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड रचा है, जो गर्म लोहे के गोले की तरह एक हो कर भी अलग-अलग सा प्रतीत होता है। यह शिव सत् शब्द से वाच्य है और शबल ब्रह्म है।

इस उपनिषद् का चिन्तन शैव दर्शन से सम्बद्ध रखता है साथ ही सृष्टि उत्पत्ति सांख्य जैसी है तथा पञ्चीकरण प्रक्रिया वेदान्त जैसी प्रतीत होती है।

निर्विशेष ब्रह्म को जानने का उपाय योगदर्शन जैसा है। शैव, सांख्य, वेदान्त एवं योग के मुख्य सिद्धान्तों की मान्यता वाला यह उपनिषद् अष्टांग योग के माध्यम से जीव की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

उपनिषद् के प्रारम्भ में सृष्टि का कारण शिव को बताया गया है। वह एक शिव रूप पिण्ड ही अनेक विभागों में हो गया। आकाशादि के रूप में उसी शिव के अनेक अंश हो गए परिणामस्वरूप यह चराचरात्मक विश्वसृष्टि हुई। इस उपनिषद् में मनुष्य शरीर की चार अवस्थाओं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय का वर्णन है। मनुष्य दक्षिणायन एवं उत्तरायण मार्ग का चयन करके ही अपने जीवन का चरम लक्ष्य निर्धारित कर लेता है। दक्षिणायन गामी सांसारिक वस्तुओं का भोग कर चन्द्रलोक तक जाकर पुनः संसार में लौट आते हैं, जबकि कर्मयोगी एवं ज्ञानयोगी निर्विशेष ब्रह्ममय होने की ओर अग्रसर होते हैं। निर्विशेष ब्रह्म प्राप्ति या मुक्ति का उपाय अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) बताया है। इन आठ अंगों का अत्यन्त संक्षिप्त परिचय देकर दस यम, विविध आसनों, प्राणायाम की विविध मुद्राओं, श्वास-प्रश्वास व आयु, अग्नि मण्डल का स्वरूप, कन्दस्थान, नाडी चक्र में जीव की गति, कुण्डली का स्थान और उसके कार्य, नाड़ियों में चलने वाली वायु, नाडी शुद्धि, योगाभ्यास का स्थान एवं विधि, चिन्मुद्रासहित केवल कुम्भक, नाडी शोधक प्राणायाम, प्राणायाम का फल, प्राणायाम से रोगों का नाश, षण्मुखी मुद्रा से मनोजय, प्राणगति के ज्ञान से योग प्राप्ति, मृत्यु का दिन जानना, योगबल से देह त्याग, मर्मस्थानों पर प्राण का प्रत्याहार, धारण का प्रकार, देह के अंगों के पंच भूतों की धारणा, परमात्मा का ध्यान और उसका फल, सगुण ध्यान एवं निर्गुण ध्यान (समाधि) का वर्णन है। इस उपनिषद् का शोधार्थी द्वारा प्रमुख योग उपनिषदों के अन्तर्गत चयन किया गया है अतः चतुर्थ अध्याय में इस उपनिषद् का विस्तृत विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है।

उपसंहार -

“जीवात्मनः परस्यापि यद्येवमुभयोरपि

अहमेव परं ब्रह्म ब्रह्माहमिति संस्थितिः॥”⁴⁶

जीवात्मा और परब्रह्म इन दोनों का वास्तविक स्वरूप एक ही है। जीवात्मा की वास्तविक स्थिति “मैं परब्रह्म स्वरूप” ही हूँ। इस प्रकार की अवस्था मन के सभी वृत्तियों से शून्य होने पर होती है, यही समाधि है। जिसके बाद योगी ब्रह्म को प्राप्त करके पुनर्जन्म नहीं लेता। वह योगी इस संसार को स्वप्नवत् मिथ्या जान लेता है तथा भाव से विचलित न होकर मोक्ष पद को प्राप्त कर परमसुख का अनुभव करता है।

इस प्रकार उपनिषद् में समाधि को सभी वृत्तियों और इच्छाओं की समाप्ति के रूप में वर्णित किया है।

कैवल्य प्राप्ति तक मनुष्य का मार्ग प्रशस्त करने के साथ ही उपनिषद् का उपसंहार होता है। उपनिषद् के प्रारम्भ में वक्ता श्रोता का नाम एक बार ही प्राप्त होता है मध्य एवं अन्त में उनका किसी प्रकार का संवाद उपनिषद् में नहीं है, न ही वक्ता की किसी ओर प्रकार की जिज्ञासा को यहाँ बताया गया है। अन्त में शान्ति पाठ भी प्राप्त नहीं होता।

(IX) नादबिन्दूपनिषद्

मन्त्र संख्या -

मन्त्र - 56, उपनिषद् के प्रारम्भ एवं अन्त में गद्यरूप में शान्तिपाठ किया गया है।

उपक्रम - नादबिन्दूपनिषद् के शान्तिपाठ एवं मुक्तिकोपनिषद् में की गई गणना के अनुसार यह उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद से सम्बन्धित है।

किन्तु ‘ओ३म् वाङ् मे मनसि’ यह शान्तिपाठ ऋग्वेद में भी प्राप्त होता है। ऋग्वेद से सम्बद्ध ऐतरेयोपनिषद् के प्रारम्भ में भी यही शान्तिपाठ किया गया है। नाद से तात्पर्य अनाहतनाद, ओंकार-ध्वनि या प्रणव ध्वनि से है। बिन्दु से तात्पर्य ईश्वर है अर्थात् निरन्तर अनाहतनाद/प्रणव/ओंकार का अभ्यास करने से चैतन्य परमात्मा की प्राप्ति होती है। इस सम्पूर्ण उपनिषद् में प्रणव या ऊँकार के ध्यान से परमतत्त्व की प्राप्ति का वर्णन है।

प्रतिपाद्य विषय -

ओंकार के स्वरूप के वर्णन से उपनिषद् का प्रारम्भ होता है। वक्ता ने स्वयं की रक्षा हेतु शान्ति पाठ किया है किन्तु शिष्य का कहीं उल्लेख नहीं है। वक्ता स्वयं भी शिष्य या अध्येता हो सकता है। चूंकि शान्ति पाठ में वह अपने अध्ययन में कठिन परिश्रम या साधना हेतु कह रहा है किन्तु उपनिषद् में किसी वक्ता/शिष्य या अध्येता का नामशः उल्लेख नहीं है।

उपनिषद् के प्रारम्भ में ओंकार को हंस के रूप में अभिव्यक्त कर ॐ के पादादि गुणों का एवं शरीर तत्त्व का वर्णन किया गया है तथा अन्त में नादानुभूति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए मनोलय की स्थिति की वर्णित किया गया है। शरीर को प्रणव स्वरूप मानते हुए सत्त्व, रजस्, तमस् आदि 16 तत्त्व इसमें बताए गए हैं। प्रणव को सहस्रार अर्ण (बिन्दु) युक्त मंत्र बताकर प्रणव सिद्धि को ही मुक्ति बताया है, यही विराट् विद्या का फल है -

“सहस्रार्णमती वाऽत्र मन्त्र एष प्रदर्शितः।

एवमेतां समारूढो हंसं योग विचक्षणः॥

न भिद्यते कर्मचारैः पापकोटिशतैरपि।”⁴⁷

अर्थात् बारह मात्राओं वाले महाविराट् प्रणव रूपी हंस का अनुसन्धान करना हंस योग है तथा इसमें निपुण योगी पर पूर्वजन्मों के कर्मों के पापों का प्रभाव नहीं पड़ता।

प्रणव के व्यष्टि और समष्टि स्वरूप की बारह मात्राएँ बताई गई हैं, जो इस प्रकार हैं - घोषिणी, विद्युत, पतंगिनी, वायुवेगिनी, नामधेया, ऐन्द्री, वैष्णवी, शांकरी, महती, धृति, नारी और ब्राह्मी। प्रणव की प्रधान चार मात्राओं ‘अ की आग्नेयी मात्रा, ‘उ’ अक्षर की वायवी, ‘म’ की बीजात्मा (सूर्य मण्डल के समान) तथा चौथी अर्धमात्रा वारुणी को प्रत्येक मात्रा के तीन-तीन अर्थात् कलारूप से प्रणव को बारह कलाओं से युक्त बताया गया है। ब्रह्मज्ञानी के प्रारब्ध कर्मों का विचार, तुरीयावस्था प्राप्ति का उपाय नादानुसन्धान, अनाहतनाद, मन पर नियन्त्रण करने में अनाहतनाद का सामर्थ्य, अनाहतनाद का स्वरूप, नादारूढ़ योगियों की विदेह मुक्ति इत्यादि विषय नादबिन्दूपनिषद् के प्रमुख प्रतिपाद्य हैं।

उपनिषद् के अनुसार ब्रह्मविद् योगी अपने ज्ञान से सगुण और निर्गुण ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप जान लेने पर अनाहतनाद योग के द्वारा अपने यज्ञ, अध्ययन और दान इन तीनों प्रकार के कर्मों को नष्ट करके विदेहमुक्ति की स्थिति प्राप्त करने

का प्रयत्न करता है। यह उपनिषद् विदेह मुक्ति का मार्ग बतलाता है। अन्तर्विराट् और प्रणव को मिलाकर बारह मात्राओं वाला महाविराट् प्रणव बनता है। ब्रह्म का विराट् स्वरूप चेतन तत्त्व और स्थूल जगत् के संयोगवाला होता है। इस महाविराट् के स्थूल जगत् का द्योतक ओंकार का 'अ' अक्षर है, जो प्रणव का दायाँ पक्ष है और 'उ' अक्षर सूक्ष्म जगत् का द्योतक बायाँ पक्ष है। ओ३म् का म् अक्षर सृष्टि के बीज का द्योतक है। ओ३म् की आधी मात्रा या हलन्त प्रणव के शरीर का मस्तिष्क है। जिन 16 तत्त्वों से मिलकर शरीर बना है। वराहोपनिषद् के प्रथम अध्याय में भी इस प्रकार इन तत्त्वों का उल्लेख मिलता है।

उपनिषद् में परब्रह्म के नाद स्वरूप को वर्णित करते हुए कहा गया है कि ऊँकार स्वरूप ब्रह्म का आत्मा से तादात्म्य हो जाने पर नादानुभूति होने लगती है अतः साधक को चाहिए कि नाद श्रवण से अतिरिक्त सभी विषय वासनाओं का त्याग कर निरन्तर अभ्यास द्वारा मन को नाद में लीन कर देना चाहिए -

“सर्वचिन्तां समुत्सृज्य सर्वचेष्टाविवर्जितः।

नादमेवानुसंदध्यान्नादे चित्तं विलीयते॥”⁴⁸

अर्थात् साधक को निरन्तर चिन्तन करते हुए समस्त चिन्ताओं का त्याग कर, समस्त चेष्टाओं से मन को तटस्थ कर नादानुसन्धान करना चाहिए क्योंकि नाद लय में लीन साधक विषय-वासनाओं की आकांक्षा नहीं रखता, वह निःशब्द हो जाता है और उसका मन परमब्रह्म के परमात्मतत्त्व का अनुभव करने लगता है। जब तक नाद है तब तक मन का अस्तित्व है। नाद के समापन हो जाने पर मन भी शून्यवत् हो जाता है -

“निःशब्दं तत् परं ब्रह्म परमात्मा समीयते।

नादो यावन्मनस्तावन्नादान्ते तु मनोन्मयी॥”⁴⁹

उपसंहार -

उपनिषद् का अन्त जीवन्मुक्त या विदेहमुक्त के लक्षणों को बताते हुए किया गया है। उपनिषत्कार के अनुसार नादानुसन्धान का निरन्तर अभ्यास करने से मनुष्य योगी हो जाता है तथा उसकी वासनाएँ क्षीण होकर वह विदेहमुक्त हो जाता है जो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति सभी अवस्थाओं के प्रति उदासीन रहता है तथा सांसारिक विषयों को ग्रहण नहीं करता। विदेहमुक्ति की स्थिति में ही चतुर्थावस्था में नादरूप शेष रह जाना ही जीवन का लक्ष्य है। प्रारम्भ में किए गए शान्ति पाठ के साथ उपनिषद् की इति होती है।

(X) क्षुरिकोपनिषद् -

मन्त्र संख्या -

25 मन्त्र, “सह नावतु सह नौ भुनक्तु” मन्त्र द्वारा शान्ति पाठ किया गया है।

उपक्रम -

क्षुरिकोपनिषद् का उल्लेख मुक्तिकोपनिषद् में प्राप्त होता है। कृष्णयजुर्वेद से यह सम्बद्ध है। इस उपनिषद् के प्रणेता एवं अध्येता का नामोल्लेख उपनिषद् में कहीं भी प्राप्त नहीं होता, फिर भी कुछ विद्वानों ने परमेश्वर द्वारा इसका उपदेश किया गया है, ऐसा उल्लेख किया है। तत्त्वज्ञान के विघ्नों को दूर करने के लिए योगशास्त्र से सम्बद्ध यह उपनिषद् है। अनेक बार क्षुरिका का उपमा के रूप में प्रयोग करने के कारण इस उपनिषद् का नाम क्षुरिकोपनिषद् पड़ा है।

विषय वस्तु - क्षुरिका का अर्थ छुरी होता है। इस उपनिषद् के प्रारम्भ में वक्ता ने कहा है - “ओ३म् क्षुरिकां सम्प्रवक्ष्यामि धारणां योगसिद्धये।”⁵⁰ अर्थात् योगसाधना में साधकों को सिद्धि प्राप्त हो, इस उद्देश्य से मैं क्षुरिका धारणा का कथन करूँगा। क्षुरिका धारणा को प्राप्त करके योगयुक्त योगी पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है। यहाँ योग को छुरी के समान बताया है क्योंकि योग ही इहलौकिक आसक्ति के बन्धनों को काटकर मुक्ति प्रदान करता है।

उपनिषद् में योगसिद्धि अथवा मोक्ष प्राप्ति के लिए आसन एवं प्राणायाम को प्रारम्भिक सीढ़ी बताया है और फिर प्रत्याहार का क्रम, धारणा, ध्यान, समाधि, योगसाधना और इसका अधिकारी इत्यादि विषयों पर चर्चा है।

मोक्ष प्राप्ति के क्रम में पुनः पुनः क्षुरिका अर्थात् तेजधार वाले योग रूपी छुरे का उपमा के रूप में प्रयोग किया गया है। सूक्ष्म धाररूप तेज के छुरे से कैवल्य नाड़ी में दृष्टि, मन व प्राणों को प्रवेश करने की बात कही गई है, आगे कामनाओं एवं बन्धनों को क्षुरी की धार से काटने की बात कही है तथा सुषुम्ना नाड़ी को छोड़कर सभी नाड़ियों को तीक्ष्ण व निर्मल योगरूपी छुरे की धार से छेदन करने को कहा गया है। आसन, प्राणायाम से प्रारम्भ कर विषय-वासनाओं एषणाओं को काटने के बाद प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि की अवस्था तक पहुँचने के लिए जिस निर्मल, शुद्ध अन्तःकरण की प्राप्ति के लिए कहा गया, वह योग रूपी क्षुरिका से ही संभव है।

“पाशं छित्त्वा यथा हंसो निर्विशङ्कं खमुत्क्रमेत्।

छिन्नपाशस्तथा जीवः संसारं तरते सदा॥

यथा निर्वाणकाले तु दीपो दग्ध्वा लयं व्रजेत्।

तथा सर्वाणि कर्माणि योगी दग्ध्वा लयं व्रजेत्॥”⁵¹

अर्थात् सांसारिक बन्धनों को नष्ट कर जीव उसी प्रकार संसार को पार कर जाता है, जिस प्रकार एक हंस जाल को काट कर निःशंक होकर आकाश में उड़ जाता है।

इसी प्रकार जैसे दीपक बुझने से पहिले सम्पूर्ण रूप से जल कर विलीन हो जाता है वैसे ही योगी अपने सम्पूर्ण कर्मों को दग्ध करके लय को प्राप्त कर लेता है।

हंस और दीपक के उदाहरण से योग से किस प्रकार योगी वैरागी होकर आसक्ति त्याग कर संसार के समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है, यह बताकर योग की महत्ता का प्रतिपादन किया है।

उपसंहार -

“अमृतत्वं समाप्नोति यदा कामात् स मुच्यते।

सर्वेषणाविनिर्मुक्तश्चित्त्वा तं तु न बध्यते॥”⁵²

जब योगी मन की सभी कामनाओं को सर्वथा त्याग देता है, तब वह अमरत्व प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार क्षुरिका रूपी योग के निरन्तर अभ्यास से सभी प्रकार की ऐषणाओं अर्थात् कामनाओं और आशाओं से मुक्त योगी संसार के बन्धनों को सदा के लिए काट डालता है।

अन्त में वक्ता ने योगसाधना किस प्रकार करनी चाहिए एवं आसक्ति, मोह आदि को त्यागने वाला ही मोक्ष का अधिकारी होगा, यह बताया गया है। उपनिषद् के अनुसार वैराग्य की शिला पर अपने जन्म-जन्मान्तरों के अच्छे बुरे सभी कर्मों को नष्ट करके योगी संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

(XI) ध्यानबिन्दूपनिषद् -

मन्त्रसंख्या -

106 मंत्र तथा 15 गद्य भाग, उपनिषद् के प्रारम्भ एवं अन्त में “सह नाववतु” यह शान्ति पाठ किया गया है।

उपक्रम -

मुक्तिकोपनिषद् में की गई गणना के अनुसार यह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित है। उपनिषद् के वक्ता के सम्बन्ध में कहीं भी नामोल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

‘बिन्दु’ से तात्पर्य इस उपनिषद् के अन्त में स्वयं उपनिषत्कार ने बताया है -

“स्वात्मानं पुरुषं पश्येन्मनस्तत्र लयं गतम्।

रत्नानि ज्योत्स्नि नादं तु बिन्दु माहेश्वरं पदम्॥”⁵³

य एवं वेद पुरुषः स कैवल्यं समश्नुते॥”⁵⁴

अर्थात् कुण्डलिनी के जागरण के पश्चात् जब पुरुष अपनी आत्मा का दर्शन करता है तो मन, रत्नचन्द्रिका, नाद सभी का लय हो जाता है, यही बिन्दु है। यही माहेश्वर पद है, जो इसको जानता है वह कैवल्य को प्राप्त कर लेता है तथा ध्यान से तात्पर्य ब्रह्मचर्य, त्याग एवं विभिन्न मुद्राओं के अभ्यास से कुण्डलिनी जागरण करना है। ‘बीजाक्षर’ के ध्यान के सम्बन्ध में वक्ता ने सम्पूर्ण उपनिषद् में वर्णन किया है।

प्रतिपाद्य विषय -

“यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।

भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन॥”⁵⁵

अर्थात् यदि अनेक योजन विस्तीर्ण पर्वत के समान विशाल पाप भी हो तो वह भी ध्यान योग से छिन्न-भिन्न हो जाता है। ध्यान योग के अतिरिक्त अन्य कोई पाप भेदन का उपाय नहीं है। बीजाक्षर (अ, उ म्), बिन्दु, सशब्द नाद, वर्णध्वनि के क्षीण होने पर निःशब्द परम पद को अर्थात् अनाहत नाद को और उससे भी परे ब्रह्म प्राप्ति कर सभी संशयों का नाश हो जाने के मार्ग को प्रशस्त करना इस उपनिषद् का प्रतिपाद्य है। चूंकि अनाहत नाद नित्य है। वह हृदय में उत्पन्न होता है। वही निर्गुण ब्रह्म है।

“बीजाक्षरं परं बिन्दु नादं तस्योपरि स्थितम्।

सशब्दश्चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्॥

अनाहतं तु यच्छब्दं तस्य शब्दस्य यत् परम्।

तत्परं विन्दते यस्तु स योगी छिन्नसंशयः॥”⁵⁶

अर्थात् प्रणव या ओंकार ही बीजाक्षर है। प्रणव के ऊपर अनाहत नाद का एक अंश आ जाने पर यह सशब्द हो जाता है और जब अनाहत नाद का यह अंश दुर्बल हो जाता है या अपने आधार परमब्रह्म में लीन हो जाता है तब प्रणव निःशब्द हो जाता है। यह निःशब्द प्रणव ही ब्रह्म का स्वरूप है अतः प्रणव का मानसिक जप करने से परमपद की प्राप्ति होती है तथा अनाहत नाद के सशब्द रूप प्रणव से परे जो निर्विशेषब्रह्म है, उसे जानकर योगी विदेह मुक्त हो जाता है।

“अन्तर्बर्हिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः” श्रुति के अनुसार संसार के अन्दर व बाह्य व्याप्त करके सभी वस्तुओं में नारायण व्याप्त है। ध्यानबिन्दूपनिषदनुसार भी प्राणियों में ब्रह्म मणियों में धागे के समान व्याप्त है।

इस प्रकार इस उपनिषद् में ब्रह्मध्यान योग की महिमा, अत्यन्त सूक्ष्म एवं सर्वव्यापक ब्रह्म, प्रणव का स्वरूप, प्रणव ध्यान की विधि, प्राणायाम के साथ प्रणव ध्यान, सविशेष ब्रह्म का ध्यान, त्रिमूर्ति का ध्यान, हृदय में ध्यान का फल, योग के छः अंग (आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि), योनिस्थान, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर चक्र, नाडीचक्र, प्राण-अपान के वश में जीव, योगाभ्यास के समय प्राण-अपान का मिलना, अजपा हंसविद्या, शक्ति चालन मुद्रा, ब्रह्मचर्य आदि से कुण्डलिनी जागरण, मूलबन्ध, खेचरी मुद्रा, महामुद्रा, हृदय में आत्मसाक्षात्कार, आत्मदर्शन का उपाय, नादानुसन्धान से आत्मदर्शन इत्यादि विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

कुछ गद्यांशों में आत्म विषयक व्याख्यान है जैसे - “हृदिस्थाने अष्टदलपद्मं वर्तते। तन्मध्ये रेखावलयं कृत्वा जीवात्मरूपं ज्योतीरूपमणुमात्रं वर्तते तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितं भवति, सर्वं जानाति, सर्वं करोति, सर्वमेतच्चरितमहं कर्ताऽहं भोक्ता सुखी दुःखी काणः खञ्जो बधिरो मूकः कृशः स्थूलोऽनेन प्रकारेण स्वतन्त्रवादेन वर्तते।”⁵⁷ अर्थात् हृदय में अष्टदल कमल है। इसके मध्य में ज्योतिस्वरूप अणुमात्र सूक्ष्म आत्मा है। इस जीवात्मा में ही सब क्रियाएँ और कार्यशक्ति निहित है। वह जानता है कि शरीर के इन सब कार्यों को करने वाला मैं ही हूँ, मैं भोक्ता हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं काना, लंगड़ा, गूंगा, पतला-मोटा हूँ इस प्रकार जीवात्मा स्वतन्त्ररूप से हमारे शरीर में रहता है।

आत्मा के विश्राम करने से जीवात्मा किस प्रकार के स्वभाव की बनती है, इसका भी विस्तृत वर्णन है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीयावस्थाओं में जीव की वलय रेखाओं के निर्माण एवं उसके निमज्जन की अवस्थाओं का वर्णन है साथ ही तुरीयावस्था को आनन्दमय बताया गया है।

उपनिषद् के अनुसार प्रणव ध्यान से, त्रिमूर्ति का ध्यान करते हुए, योगासनों एवं विविध मुद्राओं के माध्यम से योगी निरञ्जन होगा, आत्मवित् होगा। आत्मदर्शन करेगा सगुण-निर्गुण ब्रह्मदर्शन करेगा, तब ही उसकी मुक्ति होगी। चूँकि श्रुति कहती है- “ब्रह्मविद् ब्रह्ममैव भवति”

इस प्रकार इस उपनिषद् में ध्यान को विशेष रूप से व्याख्यायित किया गया है। उपनिषद् का प्रारम्भ ब्रह्म ध्यान योग से होता है। उसके बाद प्रणव ध्यान, हृदय में ब्रह्म का ध्यान, योग द्वारा ध्यान, नादब्रह्मध्यान आदि का व्यावहारिक विवेचन किया गया है।

उपसंहार -

उपनिषद् के अन्त में आत्मदर्शन का वर्णन किया गया है। उपनिषत्कार के अनुसार जिस प्रकार आकाश में सूर्य सुशोभित होता है, उसी प्रकार चार द्वारयुक्त कपालकुहर के मध्य में आत्मा सुशोभित होती है -

“कपालकुहरे मध्ये चतुर्द्वारस्य मध्यमे

तदात्मा राजते तत्र यथा व्योम्नि दिवाकरः॥”⁵⁸

पुरुष निज आत्मा का दर्शन कुण्डलिनी जागरण के फलस्वरूप ही कर पाता है। इसके बाद मन का भी लय हो जाता है, यही बिन्दु है, यही माहेश्वर (शिवपद) है। इसका साक्षात्कार होना ही कैवल्य प्राप्ति है। यही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है।

“सह नाववतु सह नौ भुनक्तु--” इस शान्ति मन्त्र के साथ ही उपनिषद् की इति होती है।

(XII) योगचूडामणि उपनिषद् -

मन्त्रसंख्या -

121 मन्त्र व कुछ गद्यात्मक भाग है।

उपक्रम -

यह उपनिषद् सामवेद से सम्बद्ध है। आप्यायन्तु --- इति मन्त्र द्वारा इस उपनिषद् के प्रारम्भ में शान्ति पाठ किया गया है। उपनिषद् के प्रारम्भ में गुरु या वक्ता एवं श्रोता या शिष्य के नाम का कहीं उल्लेख नहीं है किन्तु वक्ता द्वारा योगचूडामणि उपनिषद् के विषय एवं उद्देश्य का अवश्य कथन किया गया है -

“योगचूडामणिं वक्ष्ये योगिनां हितकाम्यया

कैवल्यसिद्धिदं गूढं सेवितं योगवित्तमैः॥”⁵⁹

अर्थात् इस उपनिषद् का उद्देश्य योगियों को योग में सहयोग करना है। इस उपनिषद् के गूढ ज्ञान द्वारा योगियों को कैवल्यसिद्धि प्राप्त होगी।

प्रतिपाद्य विषय -

उपनिषद् के प्रारम्भ में शान्ति पाठ के पश्चात् श्रीरामचन्द्र का भी स्मरण किया गया है। वहाँ कहा गया है -

मूलाधारादि षट्चक्रं सहस्रारोपरि स्थितम्।

योगज्ञानैकफलकं रामचन्द्रपदं भजे॥

श्रीरामचन्द्र मूलाधार आदि छः चक्रों एवं उनसे भी ऊपर परमज्ञान है। रामचन्द्र एक ही हैं अतः उनका स्मरण करना चाहिए।

इस उपनिषद् में योग के षडंगों (आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि) को विस्तार से बताया गया है। यम एवं नियम को छोड़ दिया गया है क्योंकि वक्ता का मानना है कि इस उपनिषद् में वर्णित विषय-वस्तु का ज्ञान उनके लिए ही है, जो यम-नियम का अभ्यास कर आगे के योग के षडंगों का अभ्यास करने के लिए सन्नद्ध हो।

इस उपनिषद् में षोडशाधार कौनसे होते हैं? यह सबसे पहले बताया गया है फिर मूलाधारादि चक्रों के स्वरूप के बारे में वर्णन है। आगे वक्ता योनिस्थान परमज्योति क्या है? यह बताते हैं। जो इसके दर्शन करता है, वही योगी है। योनिस्थान जहाँ पर कुण्डलिनी शक्ति सोई रहती है। यह कुण्डलिनी हमारे जीवन का आधार तथा मोक्ष का द्वार है -

“समाधौ परमं ज्योतिरनन्तं विश्वतो मुखम्।

तस्मिन् दृष्टे महायोगे यातायातो न विद्यते॥”⁶⁰

अर्थात् कालाग्नि का स्थान त्रिकोण लिंगमूल पर समाधि में मन एकाग्र करने से अनन्त ज्योति प्रकट होती है। यही ज्योति कालाग्नि है। इस ज्योति का साक्षात्कार हो जाने पर योगी जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है।

स्वाधिष्ठान आदि चक्रों के लक्षण, दस मुख्य नाडियाँ, नाडियों में चलने वाली वायु और उनके कार्य, प्राणों के चलने या ना चलने से जीव की गति, अजपा जप, कुण्डलिनी, शक्तिचालन मुद्रा, मिताहार, तीनबन्ध (मूल, उड्डीयान तथा जालन्धर) खेचरी मुद्रा, वीर्य का महत्त्व, महामुद्रा के लाभ, प्रणव अभ्यास, प्राणायाम, नाड़ी शुद्धि से प्राणायाम सिद्धि, नाड़ीशोधन प्राणायाम की विधि, मात्रा के नियम से प्राणायाम, षण्मुखी मुद्रा, अनाहत नाद, प्रत्याहार आदि के बारे में बताया गया है।

यद्यपि उपनिषद् के प्रारम्भ में षडंगों के बारे में कहा गया है किन्तु उपनिषद् में प्रत्याहार के पश्चात् धारणा, ध्यान, समाधि के बारे में कुछ नहीं कहा गया है।

प्रणव को परमज्योति रूप परब्रह्म कहा गया है तथा उसी परमात्मा से पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति का वर्णन भी उपनिषद् में गद्यरूप में प्राप्त होता है। मनुष्य व पशु-पक्षियों के शरीर की उत्पत्ति तथा उनमें ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, जाग्रत-स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय अवस्थाओं का भी संकेत किया गया है।

प्रस्तुत योग उपनिषद् का विस्तृत विवेचनात्मक अध्ययन इस शोधकार्य के चतुर्थ अध्याय में किया गया है।

उपसंहार -

उपनिषद् के अन्त में प्रत्याहार के बारे में बताया गया है। ज्ञानेन्द्रियों को भौतिक कर्मों से हटाकर आध्यात्मिक कर्मों में लगाना प्रत्याहार है। उपनिषत्कार के अनुसार जैसे सूर्य तीसरे प्रहर में अपनी गर्मी और चमक वापस ले लेता है, वैसे ही आसन और प्राणायाम का अभ्यास करने के बाद योगी तीसरे अंग प्रत्याहार के अभ्यास से मन के दोष दूर करता है।

इसके साथ ही उपनिषद् का उपसंहार हो जाता है। अन्त में शान्ति पाठ भी नहीं किया गया। ना ही जितनी विषय-वस्तु का उल्लेख उपनिषद् के प्रारम्भ में किया गया है, उसका पूर्ण वर्णन नहीं मिलता है। उपनिषद् में प्रत्याहार के सम्बन्ध में मात्र 2 श्लोकों में वर्णन है व ध्यान एवं समाधि का उल्लेख नहीं है। सम्भवतः यह उपनिषद् अधूरा हो अथवा पूर्ण प्राप्त नहीं हो पाया हो।

(XIII) दर्शनोपनिषद् -

मन्त्र संख्या -

कुल अध्याय	-	दश खण्ड
प्रथम खण्ड	-	25 मन्त्र।
द्वितीय खण्ड	-	16 मन्त्र।
तृतीय खण्ड	-	16 1/2 मन्त्र।
चतुर्थ खण्ड	-	63 मन्त्र।
पंचम खण्ड	-	14 मन्त्र।
षष्ठ खण्ड	-	51 मन्त्र।
सप्तम खण्ड	-	14 मन्त्र।
अष्टम खण्ड	-	9 मन्त्र।
नवम खण्ड	-	6 मन्त्र।
दशम खण्ड	-	13 मन्त्र।
कुल मन्त्र संख्या	-	227 1/2 मन्त्र।

उपक्रम -

मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार यह उपनिषद् सामवेद से सम्बद्ध है।

“दत्तात्रेयो महायोगी भगवान् भूतभावनः।

चतुर्भुजो महाविष्णु योगसाम्राज्यदीक्षितः॥

तस्य शिष्यो मुनिवरः सांकृतिः नाम भक्तिमान्॥”⁶¹

यह उपनिषद् गुरु दत्तात्रेय जो प्राणियों की रक्षा करने वाले तथा चतुर्भुज विष्णु में दीक्षित थे। उनके शिष्य सांकृति ने अतिशय भक्ति से अनुरोध किया कि आप मुझे अष्टांग योग एवं उसकी विधियाँ सिखाइए, जिससे मैं जीवन्मुक्त हो जाऊँ। गुरु दत्तात्रेय ने शिष्य को कैवल्य पद प्राप्ति ब्रह्मज्ञान के साधनरूप में जो अष्टांग योग का जो उपदेश दिया। वही इस उपनिषद् में निबद्ध है।

प्रतिपाद्य विषय -

गुरु दत्तात्रेय ने शिष्य सांकृति को अष्टांग योग का उपदेश देते हुए कहा -

“यमश्च नियमश्चैव तथैवासनमेव च

प्राणायामस्तथा ब्रह्मन् प्रत्याहारस्ततः परम्

धारणा च तथा ध्यानं समाधिश्चाष्टमं मुनेः॥”⁶²

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि ये आठ योग के अंग बताए हैं। प्रथम खण्ड में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, सरल व्यवहार, क्षमा, धैर्य, मिताहार, शौच इन दस यमों का विस्तार से वर्णन किया गया है तथा अन्त में बताया गया है कि इन दस यमों अहिंसा आदि साधनों से पूरी तरह प्रयत्न करके अपने को और अविनाशी ब्रह्म को ज्ञानपूर्वक जानों अर्थात् यम ब्रह्म को जानने का प्रथम सोपान है।

“तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मुनेऽहिंसादिसाधनैः।

आत्मानमक्षरं ब्रह्म विद्धि ज्ञानात् वेदनात्॥”⁶³

द्वितीय खण्ड में दस नियमों का क्रमशः उपदेश किया है -

“तपः सन्तोषमास्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्

सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो व्रतम्॥

एते च नियमाः प्रोक्ता तान् वक्ष्यामि क्रमात् शृणु॥”⁶⁴

अर्थात् तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, ईश्वर भक्ति, शास्त्रश्रवण, लज्जा सदबुद्धि, जप और व्रत ये दस नियम हैं। साथ ही गुरु दत्तात्रेय ने यह भी बताया कि प्रणव आदि मन्त्रों का दीर्घकाल तक नियमपूर्वक जप करने से मन ब्रह्मजीव हो जाता

है। मन्त्रयोग का यही उद्देश्य है। इससे मोक्ष लाभ होता है तथा मन्त्रयोग के उपदेष्टा भृगु, कश्यप आदि ऋषि हैं।

तृतीय खण्ड में योग के तृतीय अंग का उपदेश देते हुए कहते हैं -

“स्वस्तिकं गोमुखं पद्मं वीरसिंहासनं तथा।

भद्रं मुक्तासनं चैव मयूरासनमेव च॥

सुखासनसमाख्यं च नवमं मुनिपुंगव।”⁶⁵

अर्थात् नौ मुख्य आसन हैं - स्वस्तिकासन, गोमुखासन, पद्मासन, वीरासन, सिंहासन, भद्रासन, मुक्तासन, मयूरासन तथा सुखासन। इन नौ आसनों का उपदेश एवं उसका फल भी बताया है। गुरु दत्तात्रेय कहते हैं कि ‘आसनं विजितं येन तेन जितं जगत् त्रयम्।’ अर्थात् जो साधक अच्छी तरह आसन करने लगता है, उसे योगाभ्यास में सफलता मिलती है।

चतुर्थ खण्ड में प्राणायाम के प्रकार एवं क्रिया विधि से पहले गुरु ने शिष्य को देह प्रमाण, नाड़ी परिगणना, नाड़ियों के देवता, नाड़ियों में सूर्य एवं चन्द्रमा की गति, नाड़ियों में वर्ष के अनुसार प्राण और सूर्य की गति, शरीर में तीर्थ, आत्मा में शिवदर्शन, ब्रह्मदर्शन से ब्रह्मभाव इत्यादि विषयों के गूढ़ ज्ञान का उपदेश किया है।

गुदा से दो अंगुल ऊपर और लिंगमूल से दो अंगुल नीचे मनुष्य के शरीर का मध्य भाग तथा मूलाधार से नौ अंगुली ऊपर कन्द स्थान बताया है। कन्द के बीच सुषुम्ना नाड़ी बताई है। जिसके चारों तरफ 72 हजार नाड़ियाँ हैं, जिनमें से सुषुम्ना, पिंगला, इडा, सरस्वती, पूषा, वरुणा, हस्तिजिह्वा, यशस्विनी, अलम्बुसा, कुहू, विश्वोदरा, पयस्विनी, शंखिनी और गान्धारी ये मुख्य चौदह नाड़ियाँ हैं। इनमें भी सुषुम्ना, इडा व पिंगला ये तीन प्रधान नाड़ियाँ हैं। नाड़ियों में दस प्राण वायु आती-जाती हैं तथा इन प्राणवायु से शरीर गति (कार्य) करता है। जब प्राण वायु एक नाड़ी से दूसरी नाड़ी में जाता है तो उत्तरायण, दक्षिणायन, अमावस्या, आदि विषुव, अन्त्य विषुव, चन्द्रग्रहण व सूर्यग्रहण आदि होते हैं। शरीरस्थ श्रीपर्वत, केदारनाथ, वाराणसी, कुरूक्षेत्र, प्रयाग, चिदम्बर और कमलालय तीर्थ हैं। योगी बाहर के तीर्थों की अपेक्षा शरीरस्थ तीर्थों का ही आत्मदर्शन करता है। क्योंकि -

“बहिस्तीर्थात् परं तीर्थमन्तस्तीर्थं महामुने।

आत्मतीर्थं महातीर्थमन्यतीर्थं निरर्थकम्॥”⁶⁶

अर्थात् बाहरी तीर्थों की अपेक्षा शरीरस्थ तीर्थ श्रेष्ठ हैं। आत्मदर्शन का तीर्थ सबसे बड़ा तीर्थ होता है, अन्य सब बाहरी तीर्थ व्यर्थ हैं। परमात्मा हमारे अन्दर ही है। योगी अपने अन्तःकरण में विराजमान परमात्मा के साक्षात् दर्शन करते हैं।

पञ्चम खण्ड में नाडीशोधन प्राणायाम, नाडी शुद्धि की पहचान तथा इनसे ही अपनी आत्मा की शुद्धि करना बताया है। साधक को पर्वत, नदी किनारे या पेड़ के नीचे साफ-सुथरे और मनोरम स्थान पर बैठकर एकाग्र मन से पूर्व या उत्तर दिशा में मुख करके, गर्दन, सिर व शरीर को सीधा रख कर मुख बन्द करके निश्चल भाव से बैठना चाहिए। नासिकाग्र पर ध्यान लगाना चाहिए। इडा नाडी से पूरक करके शरीर मध्य अग्नि का ध्यान करना चाहिए तथा कुम्भक के समय बिन्दु और नाद से युक्त अग्नि बीज का ध्यान करना चाहिए फिर पिंगला से रेचक करना चाहिए इसी प्रकार पिंगला से पूरक करते हुए रेचक करना चाहिए। नाडी शोधन प्राणायाम एकान्त में प्रातः, शाम व रात को तीन-चार दिन तक तीन-चार बार करना चाहिए।

जब नाडी शोधन प्राणायाम से नस-नाड़ियों का मैल दूर हो जाता है तो शरीर हल्का हो जाता है, पाचन शक्ति बढ़ जाती है और शरीर में अनाहत नाद सुनाई देने लगता है।

पञ्चम खण्ड के अन्त में उपनिषत्कार ने नाडीशोधन की अपेक्षा आत्मशुद्धि पर जोर देकर ज्ञान से आत्मा की शुद्धि करने का निर्देश दिया है।

षष्ठ खण्ड में प्राणायाम के लक्षण - रेचक, पूरक, कुम्भक, प्राणायाम की सिद्धियाँ, प्राणायाम से मनोजवित्व सिद्धि, शरीर को रोगों से बचाने वाले व रोगों को नष्ट करने वाले प्राणायाम, षण्मुखी मुद्रा, प्राणवायु जय के चिह्न, प्राणवायु पर अधिकार से रोगों व पापों का नाश और वैराग्य हो जाने के कारण बताए गए हैं उपनिषत्कार के अनुसार प्रणव में ही प्राणायाम समाहित है। प्राणायाम के अंग रेचक, पूरक व कुम्भक में तीन-तीन अक्षर होते हैं वैसे ही प्रणव में अ, उ, म् ये तीन अक्षर होते हैं -

“वर्णत्रयात्मकाः प्रोक्ता रेचकपूरककुम्भकाः।

स एष प्रणवः प्रोक्तः प्राणायामश्च तन्मयः॥”⁶⁷

प्राणायाम की मात्रा का निर्देश देते हुए कहते हैं कि 16 मात्रा तक पूरक, 64 मात्रा तक कुम्भक तथा 32 मात्रा तक पूरक करना चाहिए। प्राणायाम के तीन स्तर बताए हैं - उत्तम, मध्यम तथा अधम। प्राणायाम के फल को वर्णित करते हुए कहते हैं कि -

“प्राणायामेव चित्तं तु शुद्धं भवति सुव्रत।

चित्ते शुद्धेः शुचिः साक्षात् प्रत्यग्ज्योतिर्व्यवस्थितः॥”⁶⁸

अर्थात् प्राणायाम अभ्यास से चित्त शुद्ध होता है तथा चित्त शुद्धि हो जाने पर ईश्वर की ज्योति का साक्षात् दर्शन होने लगता है। नियमित व निष्ठापूर्वक प्राणायाम करने वाले साधक को मनोजवित्व सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है।

षण्मुखी मुद्रा व तीनों बन्धों के साथ प्राणायाम का अभ्यास करने से विभिन्न रोगों व पापों का नाश हो जाता है साथ ही सांसारिक व आध्यात्मिक भोग- ऐश्वर्यों के प्रति हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। वैरागी साधक के लिए ज्ञान प्राप्त करना ही कैवल्य का उपाय है। सदाशिव ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त वैरागी संसार के समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है। आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर अज्ञान नष्ट हो जाता है तथा अज्ञान के नष्ट हो जाने पर राग, द्वेष मान-अपमान, पाप-पुण्य आदि विचार मन से निकल जाते हैं। इस प्रकार आत्म ज्ञान से जन्म-मृत्यु का बन्धन सदा के लिए छूट जाता है।

सप्तम खण्ड में प्रत्याहार के लक्षण और भेद, प्रत्याहार का फल, वायुधारणात्मक प्रत्याहार तथा वेदान्तसम्मत प्रत्याहार को वर्णित किया है। प्रत्याहार को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि इन्द्रियों को स्वविषयों की ओर जाने से रोकना प्रत्याहार है। समाधिस्थ योगियों को यह संसार ब्रह्म ही दिखता है अतः ब्रह्मविद् योगियों का यही प्रत्याहार है। समस्त कर्मों को ब्रह्म के प्रति अर्पण कर देना प्रत्याहार है अथवा प्राणवायु को शरीर के एक भाग से दूसरे भाग पर केन्द्रित करना प्रत्याहार कहलाता है। इस प्रकार उपनिषत्कार ने प्रत्याहार को चार लक्षणों द्वारा परिभाषित किया है।

विधिपूर्वक प्रत्याहार के अभ्यास से समस्त पाप व जन्म-मरण का बन्धन नष्ट हो जाता है, यह प्रत्याहार का फल बताया गया है। अन्त में वेदान्त सम्मत प्रत्याहार को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि -

“देहे त्वात्ममतिं विद्वान् समाकृष्य समाहितः।

आत्मनाऽऽत्मनि निर्द्वन्द्वे निर्विकल्पे विरोधयेत्॥

प्रत्याहारः समाख्यातः साक्षाद् वेदान्तवेदिभिः॥”⁶⁹

अर्थात् ज्ञानी पुरुष को आत्मा को द्वन्द्वों रहित व संकल्प-विकल्पों से शून्य मानकर परमतत्त्व ब्रह्म में ध्यान लगाना चाहिए।

अष्टम खण्ड में पञ्चभूतों में धारणा व आत्मा में धारणा का उपदेश दिया है। शरीरस्थ पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश इन पाँच भूतों में पञ्चमहाभूतों की धारणा करते समय पञ्चमहाभूतों के बीजाक्षरों हं, यं, रं, वं, और नं का क्रमशः उच्चारण करने का निर्देश दिया है। पञ्चभूतों की धारणा का अभ्यास करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। शरीर में पञ्चमहाभूतों का स्थान व देवता को भी बताया गया है। अन्त में परमात्मा की धारणा की बात कही गई है कि बुद्धिमान साधक को समस्त पापों की निवृत्ति हेतु चिदानन्दमय परमात्मा की धारणा करनी चाहिए।

नवम खण्ड में सविशेष ब्रह्म का ध्यान, निर्विशेष ब्रह्म का ध्यान तथा ध्यान का फल बताया गया है। साधक को परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करना चाहिए। यह सविशेष (सगुण) परब्रह्म ऋत और सत्य स्वरूप है तथा संसार के समस्त दुःखों से मुक्ति प्रदान करता है अथवा साधक को मुक्ति के लिए निर्विशेष (निर्गुण) ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए। निर्गुण ब्रह्म सत्यस्वरूप, अद्वय, विशुद्ध, अव्यक्त, नित्य तथा सच्चिदानन्द स्वरूप है। इस देहातीत ब्रह्म को 'मैं उस ब्रह्म का ही अंश हूँ' इस रूप में ध्यान करना चाहिए। अन्त में ध्यान का फल बताते हुए कहा गया है कि इस प्रकार के अभ्यास से साधक को वेदान्त शास्त्र का ज्ञान (अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म) हो जाता है।

दशम खण्ड में समाधि का स्वरूप व निरन्तर समाधि से ब्रह्ममात्रावशेष रह जाना बताया गया है। दत्तात्रेय मुनि माया रूप संसार की कल्पना को नष्ट करने वाली समाधि का उपदेश देते हुए कहते हैं कि समाधिस्थ योगी दूसरे प्राणियों को भी अपना मानता है। माया के भ्रम से परमात्मा, जीव, आत्मा, ईश्वर आदि को अलग-अलग मानता है जबकि वास्तव में जीव, आत्मा व परमात्मा एक ही है -

“नाहं देहो न च प्राणो नेन्द्रियाणि मनो न हि॥

सदा साक्षिस्वरूपत्वात् शिव एवास्मि केवलः।

इति धीः या मुनिश्रेष्ठ सा समाधिः इहोच्यते॥”⁷⁰

अर्थात् जब साधक की बुद्धि में यह भावना हो जाती है कि मैं न तो देह हूँ, न प्राण हूँ, न इन्द्रियाँ हूँ, न मन हूँ। परमात्मा सदा द्रष्टा ही है और मैं भी परमात्मा का ही अंश हूँ इसलिए मैं भी शिव ही हूँ तब यह भावना समाधि कहलाती है। जब योगी में परमात्मा का प्रत्यग्भूत भाव जाग जाता है तथा मैं ब्रह्म ही हूँ, यह अनुभव करने लगता है तब वह स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। वह सभी प्राणियों को अपना मानता है और सब प्राणियों में अपना अनुभव करता है। समाधिस्थ योगी जब किसी भी प्राणी

को नहीं देखता और सभी प्राणियों से एकीभाव या आत्मभाव हो जाता है, तब वह स्वयं ब्रह्ममात्रावशेष हो जाता है। सम्पूर्ण संसार को मायामय जानकर वह केवल आत्मस्वरूप को देखता है।

उपसंहार -

“एवमुक्त्वा स भगवान् दत्तात्रेयो महामुनिः

सांकृतिः स्वस्वरूपेण सुखमास्तेऽतिनिर्भयः॥”⁷¹

उपनिषद् के अन्त में बताया गया है कि भगवान् दत्तात्रेय के अष्टांग योग का उपदेश सुनकर सांकृति मुनि ने निर्भय होकर अपने स्वरूप को प्राप्ति कर लिया। उपनिषद् के प्रारम्भ व अन्त में शान्ति पाठ नहीं किया गया है।

(XIV) अमृतनादोपनिषद्

मन्त्र संख्या - 39 मन्त्र

उपक्रम - “ॐ सह नावतु सह नौ भुनक्तु” इस मन्त्र द्वारा शान्ति पाठ किया गया है। मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार अमृतनादोपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है। पुरुषार्थ की सिद्धि होना इस उपनिषद् का मुख्य उद्देश्य है। उपनिषद् के कर्ता या वक्ता का स्पष्टतः उल्लेख नहीं प्राप्त होता।

प्रतिपाद्य विषय -

उपनिषद् का प्रथम मन्त्र प्रारम्भ होने से पहले ही किस प्रकार की विषय-वस्तु का प्रतिपादन इसमें किया जायेगा, इसका संकेत करते हुए कहा है -

अमृतनादोपनिषत्प्रतिपाद्यं पराक्षरम्।

त्रैपदानन्दसाम्राज्यं हृदि मे भातु संततम्॥

इस उपनिषद् के ज्ञान को सुनकर और इस पर विचार करने से निर्मल चित्त व्यक्ति के पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं। जिनका मन निर्मल नहीं है, उन्हें ब्रह्मोपासना के साथ-साथ योग के 6 अंगों का अभ्यास निरन्तर करने से पुरुषार्थ की सिद्धि हो जाती है। इस उपनिषद् में इसी विषय का मुख्य रूप से प्रतिपादन किया गया है।

उपनिषत्कार के अनुसार प्रारम्भ में मेधावी व्यक्ति को शास्त्रों का अध्ययन करते हुए स्वसन्देहों, संशयों आदि को दूर कर परमब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। ब्रह्म भाव की प्राप्ति होने पर शास्त्रों के ज्ञान का सहारा लेना भी छोड़ देना चाहिए। प्रणव की उपासना में भी जब प्रणव जप के निरन्तर अभ्यास से मन में ईश्वर की भावना बनने लगे तब साधक को प्रणव जप की आवश्यकता नहीं रहती

अतः प्रणव रूपी रथ जब साधक को लक्ष्य तक पहुँचा दे तब उस प्रणव रूपी रथ को छोड़कर ब्रह्म का साक्षात् करने का प्रयत्न करना चाहिए।

विषय-वस्तु के प्रतिपादन में मन्त्रों का क्रम भंग सा प्रतीत होता है क्योंकि छः योगांगों में से प्रथम योगांग का लक्षण बताकर फिर छः योगांगों को परिगणित कराया गया है। इसमें वर्णित 6 योगांगों के नाम भी पतञ्जलि योग सूत्र से भिन्न प्रतीत होते हैं - प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क और समाधि।

ध्यान का गणन प्रत्याहार से पूर्व किया गया है तथा प्राणायाम को प्रत्याहार एवं ध्यान के बाद गिनाया गया है। तर्क नामक नया योगांग समाहित किया गया है।

प्राणायाम का फल बता कर धारणा के स्वरूप को बताया गया है। उसके बाद प्राणायाम के तीन अंग-पूरक, कुम्भक व रेचक को बताया गया है तथा प्राणायाम लक्षण क्रमशः बताया गया है। रेचक, पूरक, कुम्भक के लक्षण के बाद प्रशान्त का लक्षण किया गया है, जो कुम्भक का ही अंश है।

उपर पहले ही धारणा के स्वरूप की चर्चा की जा चुकी थी फिर प्राणायाम का सांगोपांग कथन करने के पश्चात् पुनः धारणा का लक्षण किया गया है। तर्क का संक्षिप्त लक्षण एवं समाधि का भी संक्षिप्त लक्षण किया गया है।

समाधि सिद्धि के उपायों को बताया गया है। समाधि के पश्चात् जो आत्मदर्शन होते हैं, वे हृदय, वायु, मूर्ध, मोक्ष, बिल, सुषिर व मण्डल इन सात द्वारों से होता है। भय, क्रोध, आलस्य आदि का त्याग, योगाभ्यास का फल, योग के चिन्तनीय विषय, चिन्तन की विधि, श्वास का प्रमाण, प्राण आदि वायु के स्थान, प्राण आदि के रंग तथा योगाभ्यास का उत्कृष्ट फल इत्यादि विषयों की चर्चा की गई है।

इस उपनिषद् का चयन शोधकार्य हेतु किया गया है अतः इसकी विस्तृत विवेचना चतुर्थ अध्याय में की जायेगी।

उपसंहार -

यह उपनिषद् वर्णन शैली की दृष्टि से न्यून प्रतीत होता है। विषय-वर्णन में क्रमबद्धता का सर्वथा अभाव है। तर्क जो अब तक योगांग में कहीं नहीं दर्शाया गया, वह इस उपनिषद् में समाहित किया गया है किन्तु उसे भी एक पंक्ति में परिभाषित कर इति श्री कर दी गई है। उपनिषद् के अन्त में

“यस्येदं मण्डलं भित्वा मारुतो याति मूर्धनि।

यत्र यत्र म्रियेत् वापि न स भूयोऽभिजायते न स भूयोऽभिजायते॥”

अर्थात् योगी की प्राण वायु छः चक्रों को भेद कर सहस्रार में पहुँचती है तो उसे पर वैराग्य हो जाता है। ऐसा योगी मर कर पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता। प्रणव ही अमृत है, उसका नाद विविध चक्रों से निकलकर सहस्रार चक्र में नाद करता है, वही अमृतनाद है, संभवतः यही इस उपनिषद् के नामकरण का कारण रहा होगा।

“सह नाववतु सह नौ भुनक्तु” मन्त्र से उपनिषद् के अन्त में शान्ति पाठ किया गया है।

(XV) ब्रह्मविद्योपनिषद् -

मन्त्र संख्या - 110 मन्त्र

उपक्रम - मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार इस उपनिषद् का कृष्ण यजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध है। ‘ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु’ मन्त्र से उपनिषद् के आरम्भ में शान्ति पाठ किया गया है।

स्वाविद्या तत्कार्यजातं यद्विद्यापहनं गतम्।

तद् हंसविद्यानिष्पन्नं रामचन्द्रं भजे॥⁷²

साथ ही रामचन्द्र भगवान् का स्मरण भी किया गया है, जो हंसविद्या में निष्णात हैं। यह हंसविद्या वही है, जो अज्ञान से उत्पन्न कार्यो को नष्ट करती है।

‘अहम्’ कर्ता पद एवं ‘अस्मि’ क्रिया पद का अनेक बार प्रयोग किया गया है। भाषा उत्तम पुरुषात्मक है एवं निषेधात्मक व विधेयात्मक वाक्यों का प्रयोग किया गया है। अनेक शब्दों एवं शब्दार्थों की पुनरावृत्ति है, जो प्रशस्त नहीं मानी जाती है जिससे कि इस उपनिषद् के प्राचीन होने एवं ऋषि रचित होने में सन्देह होता है। ‘अहं’ एवं ‘अस्मि’ का प्रयोग होने पर भी ग्रन्थ के कर्ता का कहीं भी नामोल्लेख नहीं है किन्तु मन्त्र संख्या 53 में ‘प्रत्यक्षयजनं देहे संक्षेपाच्छृणु गौतम’। ‘गौतम’ शब्द का उल्लेख है। जो संभवतया किसी ‘गौतम’ गौत्रीय शिष्य के लिए हो।

विषय वस्तु - जैसा कि शान्ति पाठ के पश्चात् किए गए मंगलाचरण में हंसविद्या को ही मोक्ष प्राप्ति या अज्ञान को दूर करने का कारण बताया गया है। इस विद्या का वर्णन ही इस उपनिषद् का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

जिस प्रकार सामवेद के केनोपनिषद् में ब्रह्म की शक्तियों का विशद वर्णन करते हुए ब्रह्म का परिचय दिया गया है, उस शैली का प्रयोग इस उपनिषद् में नहीं हुआ है। प्रस्तुत उपनिषद् में तो निषेधात्मक एवं विधेयात्मक भाषा में ब्रह्मा के गुणों का वर्णन किया गया है।

“ब्रह्मविद्योपनिषद्” यह नाम संभवतया इसलिए रखा गया क्योंकि यहाँ प्रथम श्लोक ‘ओमित्याक्षरं ब्रह्म’ से ही उपनिषद् प्रारम्भ होता है। उपनिषद् में मुख्य रूप से हंसविद्या का प्रतिपादन किया गया है किन्तु यहाँ हंसविद्या पाशुपतोपनिषद् एवं महावाक्योपनिषद् से पूर्णरूप से साम्य नहीं रखती। यहाँ हंस से तात्पर्य आत्म-परमात्मा-ब्रह्म से है। उसमें श्वास एवं प्रश्वास के साथ हंस-हंस का जप करने को कहा गया है। इस उपनिषद् में हंस-मन्त्र से तात्पर्य है - ‘सोऽहम्’। इसमें कहा गया है कि -

“अनाहतध्वनियुतं हंसं यो वेद हृद्गतम्।

स्वप्रकाशचिदानन्दं स हंस इति गीयते॥

रेचकं पूरकं मुक्त्वा कुम्भकेन स्थितः सुधीः॥”⁷³

अर्थात् हृदयाकाश में विराजमान शुद्ध परमात्मस्वरूप का ध्यान करके योगी सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है। जो साधक अपने हृदय में अनाहत नाद से संयुक्त हंस (जीवात्मा) को जान लेता है। वह चैतन्य व आनन्दस्वरूप परमात्मा में लीन हो जाता है अतः ज्ञानी पुरुष को कुम्भक में स्थित रहकर प्राण-अपान को मिला कर मस्तक में स्थित अमृत का पान करते हुए ‘हंसं हंसं’ का जाप करना चाहिए क्योंकि -

“ईश्वरत्वमवाप्नोति सदाऽभ्यासरतः पुमान्।

बहवो नैकमार्गेण प्राप्ता नित्यत्वमागताः॥

हंसविद्यामृते लोके नास्ति नित्यत्वसाधनम्॥”⁷⁴

अर्थात् हंसविद्या के निरन्तर अभ्यास से योगी ईश्वर तुल्य हो जाता है। अनेक साधक इसी हंसविद्या के मार्ग से नित्य पद (मोक्ष) को प्राप्त हो चुके हैं। हंस विद्या के अतिरिक्त जन्म-मरण के चक्र से छुटने का कोई अन्य साधन नहीं है।

इस प्रकार इस उपनिषद् में ब्रह्मविद्या के रहस्य भरे अर्थ वाले प्रणव ब्रह्म, प्रणव की चार मात्राओं, सुषुम्ना योग से सूर्य नाड़ी भेदन, प्रणव नाद के लय से मोक्ष प्राप्ति, जीव का स्वरूप निरूपण, बन्धन और मुक्ति का कारण, हंस विद्या से परमेश्वर की प्राप्ति, हंस विद्या के गुरु की पूजा विधि, विद्वानों द्वारा आत्मा की एकता का ज्ञान, सकल-निष्कल देवता का विवेक ज्ञान, परम गोपनीय योग विद्या, योग-विद्या के ज्ञान से पाप-पुण्य का नाश, चोदक, बोधक व मोक्षद तीन प्रकार के आचार्यों का स्वरूप, प्रणव और हंस जप द्वारा प्रत्यक्ष यज्ञ, हंसयोग से प्राप्त ज्ञान द्वारा सायुज्य प्राप्ति, हंस की प्राप्ति का स्थान, हंस मन्त्र के जप के साथ समाधि

का स्थान, हंस के स्थान का निरूपण, हंस योग के अभ्यास का क्रम, हंस योगी द्वारा आत्मस्वरूप का अनुसंधान इत्यादि विषय-वस्तुओं का वर्णन किया गया है।

उपनिषद् में क्रमबद्धता का अभाव प्रतीत होता है। प्रणव नाद के लय द्वारा मोक्ष प्राप्ति की बात प्रारम्भ में कहकर बाद में बन्धन एवं मोक्ष का कारण बताया गया है। हंस-परमात्मा जीवात्म है तथा 'सोऽहम्' यह हंस मन्त्र है तो ओम् को ब्रह्म कहने से क्या अर्थ है। कुम्भक द्वारा सोऽहम् का जाप करना या ओम् इस अक्षर का अर्थ स्पष्ट नहीं है।

उपसंहार -

“सच्चिदानन्दमात्रोऽहं स्वप्रकाशोऽस्मि चिद्घनः।

सत्त्वस्वरूपसन्मात्रसिद्ध सर्वात्मकोऽस्म्यहम्॥”⁷⁵

उपनिषद् के अन्तिम 30 पद्यों में हंसयोगी के आत्मस्वरूप के अनुसन्धान या दर्शनानुभव हैं। हंसयोगी स्वयं को मात्र सत्, चिद्, आनन्द, प्रकाश सत्त्व स्वरूप समझता है व अनुभव करता है तथा सभी प्राणियों का आश्रय स्थल, सत्ता मात्र, बन्धन काटने वाला उत्पत्ति एवं लय कारक मानने लगता है वस्तुतः स्वयं ब्रह्ममय हो जाता है साधक द्वारा परमात्म स्वरूप को वस्तुतः जान लेना ही हंसविद्या का उद्देश्य है। 'ॐ सह नावतु सह नौ भुनक्तु' इस शान्ति पाठ के साथ उपनिषद् की समाप्ति होती है।

(XVI) मण्डलब्राह्मणोपनिषद् -

मन्त्रसंख्या -

यह उपनिषद् ब्राह्मण, खण्ड व मन्त्र में विभक्त है तथा उपनिषद् का स्वरूप मुख्यतः गद्यात्मक है।

प्रथम ब्राह्मण - प्रथम खण्ड - 11 गद्य (कुछ सूत्र शैली में)

द्वितीय खण्ड	-	7 सूत्र , 1 मन्त्र, 6 गद्य
तृतीय खण्ड	-	5 गद्य, 1 मन्त्र
चतुर्थ खण्ड	-	4 गद्य

द्वितीय ब्राह्मण - प्रथम खण्ड - 8 गद्य, 2 मन्त्र

द्वितीय खण्ड	-	5 गद्य
तृतीय खण्ड	-	7 गद्य
चतुर्थ खण्ड	-	6 गद्य
पञ्चम खण्ड	-	4 गद्य

तृतीय ब्राह्मण- प्रथम खण्ड - 6 गद्य

द्वितीय खण्ड - 1 गद्य, 1 मन्त्र

चतुर्थ ब्राह्मण - 4 गद्य, 1 मन्त्र

पञ्चम ब्राह्मण - 7 गद्य, 2 मन्त्र

कुल पांच ब्राह्मण, 11 खण्ड

उपक्रम -

मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार यह उपनिषद् शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित है। प्रारम्भ एवं अन्त में शान्तिपाठ नहीं मिलता। मंगलाचरण के रूप में रामचन्द्र की उपासना का यह श्लोक प्राप्त होता है -

बाह्यान्तस्तारकाकारं व्योमपञ्चकविग्रहम्।

राजयोगैकसंसिद्धं रामचन्द्रमुपास्महे॥

“याज्ञवल्क्यो ह वै महामुनिरादित्यलोकं जगाम। तमादित्यं नत्वा भो भगवन्नादित्य आत्मतत्त्वमनुब्रूहीति।”⁷⁶

इस उपनिषद् में महामुनि याज्ञवल्क्य जिज्ञासु हैं, जिन्होंने आदित्यलोक जाकर भगवान् आदित्य को प्रणाम करके आत्मतत्त्व का उपदेश देने को कहा।

विषय वस्तु -

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा आत्मतत्त्व विषयक प्रश्न पूछे जाने पर भगवान् आदित्य ने ब्रह्मज्ञान सहित संक्षेप में अष्टांग योग का उपदेश दिया है। प्रथम ब्राह्मण के प्रथम मण्डल में अष्टांग योग को सूत्र शैली द्वारा प्रतिपादित किया गया है। चार यम बताए हैं - शीत, उष्णता, आहार और निद्रा पर विजय प्राप्त करना, मन की शान्ति, मन की निश्चलता तथा इन्द्रियों पर नियन्त्रण। नौ नियम - गुरुभक्ति, सत्यमार्ग की अनुरक्ति, सन्तोष, अनासक्ति, एकान्तवास मनोनिवृत्ति, फल की इच्छा का अभाव तथा वैराग्य। सुखपूर्वक लम्बे समय तक एक ही स्थिति में बैठना आसन - **“सुखासनवृत्तिश्चिरवासश्चैवमासननियमो भवति”⁷⁷** सोलह मात्रा का पूरक, चौसठ मात्रा का कुम्भक और बत्तीस मात्रा का रेचक प्राणायाम बताया है। इन्द्रियों के स्वविषयों से मन को खींचना प्रत्याहार है। सांसारिक विषयों से मन को हटाकर चैतन्य ब्रह्म में लगाना धारणा है। सब प्राणियों में एकमात्र चैतन्य ही है, ऐसी भावना ध्यान है तथा ध्यान को भी भूल जाना समाधि है। इस खण्ड के अन्त में अष्टांग योग का फल बताते हुए भगवान् नारायण कहते हैं - **“एवं सूक्ष्मांगानि। य एवं वेद स**

मुक्तिभागभवति।”⁷⁸ अर्थात् सूक्ष्म अष्टांग योग के इन आठ अंगों को जानने वाला मुक्ति को पाने वाला हो जाता है।

द्वितीय खण्ड में शरीर के पांच दोषों, तारक ध्यान का फल, अन्तर्लक्ष्यदर्शन-बहिर्लक्ष्य दर्शन - मध्यलक्ष्यदर्शन इन तीन लक्ष्यों का ध्यान करके तारक ब्रह्म की प्राप्ति के विषयों का प्रतिपादन है। तृतीय खण्ड में तारक और अमनस्क योग, मन लगाने की विधि, पूर्वतारक योग, उत्तर तारक योग, उत्तर तारक से शाम्भवी मुद्रा की सिद्धि तथा अन्त में अन्तर्लक्ष्य का लक्षण बताया गया है। चतुर्थ खण्ड में अन्तर्लक्ष्य के सम्बन्ध में पाए जाने वाले मतभेद, सभी लक्ष्यों में आत्मदर्शन की विधि तथा आत्मनिष्ठ योगी को ब्रह्मभाव की प्राप्ति इन विषयों के प्रतिपादन के साथ ही प्रथम ब्राह्मण समाप्त होता है।

द्वितीय ब्राह्मण के प्रथम खण्ड में ऋषि याज्ञवल्क्य पूछते हैं कि आपने अन्तर्लक्ष्य की चर्चा तो कई बार की किन्तु मैं इसका अर्थ बिल्कुल भी नहीं समझा तब नारायण देव ने शाम्भवी मुद्रा से परमात्मा की प्राप्ति, पूर्णिमा दृष्टि की विधि, पूर्णिमा दृष्टि की शाम्भवी मुद्रा में समाप्ति, मुद्रा सिद्धि के चिह्न आदि को विस्तार से बताया है। द्वितीय खण्ड में प्रणवस्वरूप प्रत्यक्प्रकाश का अनुभव और इसके चिह्न, षण्मुखी मुद्रा से प्रणव प्राप्ति, उन्मनी अवस्था द्वारा अमनस्क सिद्धि, अमनस्क की पूजा विधि वर्णित है। तृतीय खण्ड में ब्रह्म के अनुसन्धान से कैवल्यप्राप्ति, ब्रह्मवित् का स्वरूप, ब्रह्मवित्, सुषुप्ति और समाधि में भेद, ब्रह्मवित् का ब्रह्मभाव, संकल्पत्यागपूर्वक परमात्मा के ध्यान से मुक्ति बताई गई है। चतुर्थ खण्ड में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, तुरीयातीत इन पांच अवस्थाओं, प्रवृत्ति संकल्प, निवृत्ति संकल्प, संसारतरण का मार्ग, बन्धन एवं मोक्ष का कारण मन को बताया है। पञ्चमखण्ड में निर्विकल्पक समाधि के अभ्यास से ब्रह्मवित् अवस्था की प्राप्ति व अपरिच्छिन्नानन्दरूप ब्रह्म की प्राप्ति इत्यादि विषय वस्तुओं का उपदेश किया गया है।

तृतीय ब्राह्मण के प्रथम खण्ड में शाम्भवी मुद्रा सहित अमनस् को पुनः बताते हुए कहते हैं कि -

“तथेति मण्डलपुरुषोऽब्रवीत्। इदममनस्कमतिरहस्यम्। यज्ज्ञानेन कृतार्थो भवति तन्नित्यं शाम्भवीमुद्राऽन्वितम्।।”⁷⁹

अर्थात् यह अमनस्क बड़ा गुप्त है। इसे जानकर व्यक्ति जीवन में सफल हो जाता है और अमनस्क अवस्था शाम्भवी मुद्रा सहित होती है।

परमात्मा प्रतीति के लक्ष्य दर्शन से अमनस्क प्राप्ति, मनोन्मनी से संसार के प्रति उदासीनता, तारक मार्ग से इन्द्रिय योगी का ब्रह्मात्मभाव इत्यादि विषय वस्तुओं का उपदेश इस खण्ड में किया है। इस ब्राह्मण में कुछ विषयों की पुनरावृत्ति है क्योंकि ऋषि याज्ञवल्क्य कुछ उपदेश भूल गए थे इन्हें नारायण/आदित्य भगवान् को फिर से देने को कहा।

चतुर्थ ब्राह्मण में आकाश, पराकाश, महाकाश, सूर्याकाश और परमाकाश इन पांच आकाशों को जानने का फल तथा राजयोग के सर्वस्व को जानने वाला ही परम योगी है। इस प्रकार राजयोग के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए मण्डल पुरुष (नारायण) कहते हैं -

“नवचक्रं षडाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।

सम्यगेतन्नजानाति स योगी नामतो भवेत्॥”⁸⁰

अर्थात् जो योगी मूलाधारादि छः चक्रों व तालु, आकाश, भू, इन तीन चक्रों, हृदय, नाभि आदि शरीर के छः स्थानों या आधारों, अन्तर् बहिः व मध्य इन तीन लक्ष्यों तथा आकाश, पराकाश आदि पाँच आकाशों को नहीं जानता वह नाम का ही योगी होता है। इन विषय वस्तुओं को समाविष्ट कर मण्डल पुरुष ने ऋषि याज्ञवल्क्य को उपदेश दिया।

पञ्चम ब्राह्मण में परमात्मा में मनोलय की अभ्यास विधि तथा अमनस्क अभ्यास से ब्रह्मावस्थान सिद्धि विषयक उपदेश है। इन सभी विषय वस्तु के साथ उपनिषद् की इति होती है।

उपसंहार - अन्त में बताया गया है कि साधक की जब अमनस्क अवस्था के अभ्यास से निर्विकल्पक समाधि लग जाती है तो वह स्वयं परमहंस अवधूत हो जाता है। स्वयं को तो ब्रह्मभाव की प्राप्ति होती है इसके साथ ही ऐसे योगी के दर्शन से सारा जगत् पवित्र हो जाता है तथा वह योगी अपने कुल की एक सौ एक पीढ़ियों को भी भवसागर के पार उतार देता है।

वस्तुतः इस उपनिषद् के प्रथम ब्राह्मण में ही योग विषयक उपदेश है, कहीं कहीं केवल शाम्भवी मुद्रा का वर्णन भी प्राप्त होता है। शेष ब्राह्मणों में वेदान्त विषयक सामग्री अधिक प्राप्त होती है और ना ही उपनिषद् के अन्त में शान्ति पाठ नहीं होता है।

(XVII) योगकुण्डल्युपनिषद्

मन्त्र संख्या - प्रथम अध्याय - 67 मन्त्र

द्वितीय अध्याय - 49 मन्त्र

तृतीय अध्याय - 35 मन्त्र

कुल - 151 मन्त्र

उपक्रम - यह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेदीय परम्परा से सम्बद्ध है। 'ओ३म् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु' मन्त्र द्वारा उपनिषद् के प्रारम्भ में शान्ति पाठ किया गया है। अधोलिखित श्लोक मंगलाचरण के रूप में प्राप्त होता है-

योगकुण्डल्युपनिषद्योगसिद्धिहृदासनम्।

निर्विशेषब्रह्मतत्त्वं स्वमात्रमिति चिन्तये॥

इसमें उपनिषद् के वक्ता/उपदेष्टा तथा श्रोता/ शिष्य का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। योगसिद्धि चाहने वाले साधकों के लिए यह उपनिषद् बहुत उपयोगी है। यह निर्विशेष ब्रह्मतत्त्व का वर्णन करता है

विषयवस्तु - इसमें कुल तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में सर्वप्रथम वायुजय (प्राणायाम सिद्धि) के तीन उपाय - मिताहार, आसन शक्तिचालिनी मुद्रा बताए गए हैं। तदुपरान्त सरस्वती चालन, प्राणायाम के भेद-सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका आदि। तीन बन्ध- मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध तथा जालन्धर बन्ध, योगाभ्यास के विघ्न और उनसे बचाव, योगाभ्यास के द्वारा कुण्डलिनी जागरण, तीन ग्रन्थियों (ब्रह्म ग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि तथा रुद्र ग्रन्थि) का भेदन करके कुण्डलिनी का सहस्रार चक्र में प्रवेश, प्राणादि का शिवतत्त्व में विलीन होना, समाधि अवस्था में सर्वत्र चैतन्य तत्त्व की अनुभूति और समाधि योग जैसे विषयों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय का शुभारम्भ खेचरी मुद्रा के विशद विवेचन से हुआ है। जिसमें खेचरी का स्वरूप, उसकी फुलश्रुति, मन्त्र जप से खेचरी की सिद्धि, खेचरी का अभ्यास क्रम आदि का विस्तृत वर्णन है।

तृतीय अध्याय में खेचरी मेलन (खेचरी सिद्धि) का मन्त्र उल्लेखित है। तदुपरान्त अमावस्या, प्रतिपदा और पूर्णिमा के दृष्टान्त से साधक की दृष्टि का उल्लेख है। साथ ही प्राणायाम के अभ्यास से विराट् के रूप में उत्पत्ति (सिद्धि), अभ्यास के बिना आत्मा का प्रकाश असम्भव, सद्गुरु के उपदेश से ब्रह्म का ज्ञान, ब्रह्म के विविध अधिष्ठान (वाक् वृत्ति, विश्वादि प्रपञ्च), परात्परब्रह्म का स्वरूप,

ब्रह्म प्राप्ति का उपाय ध्यान तथा अन्त में जीवन्मुक्ति एवं विदेहमुक्ति आदि विषयों का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार योग के सभी प्रमुख विषयों को प्रस्तुत करते हुए उपनिषद् को पूर्णता प्रदान की गई है।

प्रस्तुत योग उपनिषद् को चतुर्थ अध्याय में प्रमुख योग उपनिषद् के अन्तर्गत विस्तार से विवेचित किया गया है।

उपसंहार -

“जीवन्मुक्तपदं त्यक्त्वा स्वदेहे कालसात्कृते

विशत्यदेहमुक्तित्वं पवनोऽस्पन्दतामिव।।”⁸¹

उपनिषद् के अन्त में जीवनमुक्त की अवस्था का वर्णन किया गया है। जीवन्मुक्त देह का त्याग करके निस्पन्द भाव वाला हो जाता है। आत्मा शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श से सभी परिवर्तनशीलता से रहित हो कर अनन्त महान् से भरे ध्रुव एवं निरामय निर्मल अवस्था में रहती है। यही योग सिद्धि का फल है।

“ओ३म् सह नावतु सह नौ भुनक्तु” शान्ति पाठ से उपनिषद् की इति होती है।

(XVIII) योगतत्त्वोपनिषद् -

मन्त्र संख्या - 141 मन्त्र

उपक्रम - मुक्तिकोपनिषद् की गणना के अनुसार योगतत्त्वोपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित है। इस उपनिषद् के प्रारम्भ एवं अन्त में ‘ॐ सह नावतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै’ मन्त्र द्वारा शान्ति पाठ किया गया है। यह उपनिषद् ब्रह्मा एवं विष्णु के संवाद के रूप में निबद्ध है। इसमें ब्रह्मा प्रश्नकर्ता और विष्णु उत्तरदाता हैं। उपनिषत्कार ने महान् तेजस्वी और महायोगी विष्णु को तत्त्वज्ञान के लिए प्रदीप के समान स्वीकार किया है तथा पुरुषोत्तम बताया है। पितामह ब्रह्मा योगतत्त्व की जिज्ञासा से भगवान् विष्णु के पास गए। भगवान् विष्णु ने सुख-दुःखों से युक्त माया जाल में फंसे लोगों के जाल को काटने वाले अष्टांग सहित योगतत्त्व का कथन किया।

विषयवस्तु - भगवान् विष्णु कहते हैं कि कैवल्य प्राप्ति का मार्ग शास्त्र द्वारा जानना कठिन है। देवता भी उस अवर्णनीय मोक्षपद का वर्णन नहीं कर सकते क्योंकि यह स्वात्मप्रकाशस्वरूप है, जो निष्कल, निर्मल, सर्वातीत, निरामय तत्त्व जीवरूप में पुण्य और पाप के फलों से मुक्त हो जाता है -

“निष्कलं निर्मलं शान्तं सर्वातीतं निरामयम्।
तदेव जीवरूपेण पुण्यपापफलैर्वृतम्॥
परमात्मपदं नित्यं तत्कथं जीवतां गतम्।
सर्वभावपदातीतं ज्ञानरूपं निरञ्जनम्॥”⁸²

सुख-दुःख से युक्त चैतन्य जीवात्मा है। यह जीवात्मा विशुद्ध परमात्मा का ही अंश है। काम क्रोध आदि दोषों से रहित जीव केवल ब्रह्म है। जिसे योग द्वारा स्वानुभूत किया जा सकता है। ब्रह्मा पूछते हैं - ‘परमात्मा ही जीव के रूप में कहलाता है, किन्तु जीव में कुछ दोष होते हैं, जिन्हें दूर करने का उपाय है - ज्ञानयुक्त योग। ज्ञान एवं योग दोनों आवश्यक है। योग का स्वरूप पूछने पर विष्णु कहते हैं - योग अनेक प्रकार का है, इसमें मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग मुख्य हैं।

मातृका आदि से युक्त मंत्र का जप मन्त्रयोग, चित्त का लय होना लययोग तथा महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध आदि हठयोग के अंग हैं।

अष्टांग योग (राजयोग) के आठ अंग हैं - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। यमों में मिताहार को तथा नियमों में अहिंसा को मुख्य माना, आसनों में पद्मासन एवं भद्रासन मुख्य हैं। साधक को योग साधनों से पूर्व योग के विघ्नों को भी जान लेना चाहिए फिर पद्मासन का अभ्यास करके प्राणायाम की साधना में प्रवृत्त होना चाहिए। साधना के लिए स्थान का महत्त्व भी बताया गया है। रेचक, पूरक एवं कुम्भक के विशेष महत्त्व का प्रतिपादन किया है। उपनिषत्कार के अनुसार प्राणायाम का तीन मास तक अभ्यास करने से नाड़ी शुद्धि हो जाती है। साधक के योग में विघ्न उसका आहार-विहार है अतः पथ्य-अपथ्य के विचार व यौगिक दिनचर्या को भी उल्लेखित किया गया है। साधक योगी के योग साधना के आरम्भिक दिनों में शारीरिक अवस्थाओं का भी वर्णन है, जैसे - अधिक स्वेद, कम्पन, मल-मूत्र का कम आना, निद्रा की आवश्यकता कम हो जाना आदि।

योग साधना की चार अवस्थाओं - 1 आरम्भावस्था 2. घटावस्था 3. परिचयावस्था तथा 4. निष्पत्ति अवस्था को भी वर्णित किया गया है।

जब प्राण और अपान, मन और बुद्धि तथा जीवात्मा एवं परमात्मा में एकता स्थापित हो जाती है तब इसी अवस्था में साधक को प्रत्याहार की साधना करनी होती है। प्रत्याहार एवं धारणा के बाद समाधि को बताया है। सिद्धयोगी द्वारा अपनी इच्छा से देह को छोड़ने या ना छोड़ने के बारे में भी निर्देश है। महावेध का लक्षण, खेचरी

मुद्रा, जालन्धर बन्ध, उड्डीयान बन्ध और मूलबन्ध इत्यादि की विधि एवं लाभ को वर्णित किया गया है। इसके अनन्तर ग्रन्थकार ने नाद योग की संक्षिप्त चर्चा करके केवल कुम्भक को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

इस उपनिषद् की विशद विवेचना चतुर्थ अध्याय में प्रमुख योग उपनिषदों के अन्तर्गत की जाएगी।

उपसंहार

“निषिद्धैर्नवभिद्वारैर्निर्जने निरूपद्रवे।

निश्चितं त्वात्ममात्रेणावशिष्टं योग सेवयेत् इत्युपनिषद्।।”⁸³

नवमार्गों से अवरूद्ध होकर प्राणों के पूर्ण शांत और स्थिर हो जाने पर योग साधना के द्वारा योगी आत्ममात्र अवशिष्ट रहकर निश्चित हो जाता है।

उपनिषद् के अन्त में जीवन्मुक्त अवस्था को दर्शाया गया है। इस उपनिषद् में योगतत्त्व के अनेक महत्वपूर्ण साधना विधियों का विशेषतः केवल कुम्भक की साधना विधि का वर्णन करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु वह उतना स्पष्ट नहीं है जितना कि दत्तात्रेय योगशास्त्र में स्पष्ट है। ‘ओ३म् सह नावतु’ मन्त्र से अन्त में शान्तिपाठ किया गया है।

(XIX) शाण्डिल्योपनिषद् -

मन्त्र संख्या - प्रथम अध्याय

प्रथम खण्ड	-	13 सूत्र
द्वितीय खण्ड	-	11 सूत्र
तृतीय खण्ड	-	15 मन्त्र
चतुर्थ खण्ड	-	14 गद्य (पृथक् विषयानुसार)
पञ्चम खण्ड	-	4 गद्य
षष्ठ खण्ड	-	5 गद्य
सप्तम खण्ड	-	51 (गद्य एवं पद्य मिश्रित)
अष्टम खण्ड	-	2 गद्य-पद्य
नवम खण्ड	-	1 गद्य
दशम खण्ड	-	1 गद्य
एकादश खण्ड	-	1 गद्य

द्वितीय अध्याय - 6 गद्य

तृतीय अध्याय - प्रथम खण्ड - 6 गद्य

द्वितीय खण्ड - 15 गद्य-पद्य मिश्रित

कुल - तीन अध्याय, 13 खण्ड

उपक्रम - मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार शाण्डिल्योपनिषद् अथर्ववेद से सम्बन्धित है।

“ओ३म् भद्रं कर्णेभिरिति” मन्त्र द्वारा उपनिषद् के प्रारम्भ में शान्ति पाठ किया गया है। उपनिषद् में शाण्डिल्य ने अथर्वन् ऋषि से निवेदन किया कि आप मुझे आत्मज्ञान कराने वाले अष्टांग योग का उपदेश दीजिए।

“शाण्डिल्यो ह वा अथर्वाणं पप्रच्छ - आत्मलाभोपायं भूतम् अष्टाङ्गयोगम् अनुब्रूहीति।”⁸⁴

विषयवस्तु - प्रस्तुत उपनिषद् की विषयवस्तु को तीन अध्यायों में बाँटा गया है। प्रथम अध्याय ग्यारह खण्डों में विभक्त है। इस अध्याय के प्रारम्भ में अथर्वन् ऋषि ने अष्टांग योग को बताया है। आगे ऋषि इनके प्रकारों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि -

“तत्र दश यमाः। तथा नियमाः। आसनानि अष्टौ। यः प्राणायामाः। पञ्च प्रत्याहाराः। तथा धारणा। द्विप्रकारं ध्यानम्। समाधिस्त्वेकरूपः।”⁸⁵ अर्थात् दस यम-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, जप, क्षमा, धृति, मिताहार और शौच। दस नियम - तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, ईश्वरपूजन, शास्त्रसिद्धान्त श्रवण, लज्जा, सदबुद्धि, जप और व्रत पालन। आठ आसन - स्वस्तिक, गोमुख, पद्म, वीर, सिंह, भद्र, मुक्त और मयूर। तीन प्राणायाम - रेचक, पूरक और कुम्भक। पाँच प्रत्याहार - योग विषयों में लगी इन्द्रियों को प्रयत्नपूर्वक भोगों से हटाना, जो कुछ दिखता है वह सब आत्मा का ही रूप है ऐसा विचार करना, नित्यकर्मों और शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट विहित कर्मों के फल का त्याग, सभी सांसारिक विषयों के प्रति उदासीन रहना तथा शरीर के अठारह मर्म स्थानों से क्रमपूर्वक मन को हटाना। पाँच धारणा - आत्मा में मन लगाना, हृदय पुण्डरीक के आकाश (दहराकाश) में बाहर के आकाश की धारणा तथा पञ्च तत्त्वों में मन लगाना पंचमूर्ति धारणा। दो प्रकार का ध्यान - सगुण व निर्गुण। समाधि एक प्रकार की है। जीवात्मा और परमात्मा की एकता से ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता (त्रिपुटी) रहित परमानन्द स्वरूप शुद्ध चैतन्य अवस्था समाधि है। आगे के खण्डों में इन सभी के प्रकारों का एक-एक करके उपदेश करते हैं। शाण्डिल्य ऋषि अथर्वा से पूछते हैं कि नाडियों की संख्या कितनी है? तथा उनका मल कैसे दूर किया जा सकता

है? ये कैसे उत्पन्न होती हैं? इनमें कौन-कौन सी प्राणवायु रहती हैं? इन प्राणवायु के स्थान कहाँ पर हैं? इनके क्या कार्य हैं? अथवा इन सभी प्रश्नों के उत्तर देते हैं।

नाभिचक्र में जीवात्मा का भ्रमण, कुण्डलिनी का स्वरूप और उसकी चेष्टा, चौदह मुख्य नाडियाँ, प्राण आदि दस वायुओं के स्थान और कार्य, योग के अधिकारी और योगमठ के लक्षण, नाड़ी शोधन प्राणायाम, प्राणायाम के अभ्यास की विधि, प्रतिदिन किए जाने वाले प्राणायाम, प्राणायाम में प्रगति, अभ्यास के समय भोजन का नियम, प्राणायाम के अभ्यास में सावधानी, नाड़ी शुद्धि से मनोन्मनी अवस्था, तीन बन्धों का प्रयोग, प्राण-अपान मिलन का परिणाम, कपाल शोधन, सीत्कारी-शीतली, उज्जायी प्राणायाम, दो प्रकार के कुम्भक प्राणायाम, उसके अभ्यास का फल, वैष्णवी मुद्रा तथा खेचरी मुद्रा से ब्रह्मदर्शन, उन्मनी मुद्रा, ब्रह्मप्राप्ति का साधन, मन के लय से ब्रह्म प्राप्ति, योग और ज्ञान से मनोलय, मन के लय से प्राणस्पन्द का निरोध, प्राणों का गतिविच्छेद, कुम्भक प्राणायाम से सुषुम्ना भेद के द्वारा परमपद की प्राप्ति, मन से युक्त प्राणवायु को सुषुम्ना में लेने जाने की विधि, खेचरी मुद्रा का अभ्यास एवं विधि, महाबन्ध, सभी रोगों को नष्ट करने की साधना विशेष धारणा, नासाग्र आदि पर संयम करने से अनेक सिद्धियों की प्राप्ति, प्रत्याहार, पाँच प्रकार की धारणा, ध्यान एवं समाधि के स्वरूप के वर्णन के साथ प्रथम अध्याय की विषय वस्तु अष्टांग योग का उपदेश समाप्त होता है।

द्वितीय अध्याय की विषय वस्तु को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय को प्रथम या तृतीय अध्याय की भाँति खण्डों में विभाजित नहीं किया गया। इस अध्याय में अथर्वन् ऋषि ने निर्विशेष ब्रह्म के स्वरूप, ब्रह्म का अनिर्देश्यत्व, ब्रह्म के वाणी व मन से परत्व, परमात्म स्वरूप, गुरु उपदेश का ज्ञान प्राप्ति में महत्त्व इत्यादि विषयों का उपदेश दिया है। यह अध्याय मुख्य रूप ब्रह्म विद्या का प्रतिपादन करता है। अथवा ऋषि ने ब्रह्मस्वरूप को इस प्रकार व्याख्यायित किया है -

“सत्यं विज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यस्मिन्निदमोतं च प्रोतं च। यस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं यस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति।”⁸⁶

अर्थात् ब्रह्म सत्यस्वरूप, विज्ञानस्वरूप और अनन्त है। इस ब्रह्म में यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ओत-प्रोत है। इसी से सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न होती है और इसी में लीन हो जाती है। इस ब्रह्म को भली-भाँति जान लेने पर सब जान लिया जाता है।

तृतीय अध्याय को दो खण्डों में विभाजित किया गया है। इस अध्याय में शाण्डिल्य ऋषि द्वारा पूछे जाने पर कि अविनाशी, निष्क्रिय, कल्याणकारी सत्तामात्र

परब्रह्म सृष्टि कैसे उत्पन्न होती है? उत्पन्न होने के बाद कैसे बनी रहती है? और प्रलय काल में उसी ब्रह्म में कैसे लीन हो जाती है? इन्हीं प्रश्नों का समाधान ब्रह्मा के निष्कल, सकल और सकल - निष्कल इन तीन स्वरूपों के वर्णन से किया।

उपनिषद् के अन्तिम तृतीय अध्याय के द्वितीय खण्ड में शाण्डिल्य ने अथर्वा ऋषि से ब्रह्म विषयक अनेक प्रश्न पूछे कि ब्रह्म को परब्रह्म क्यों कहते हैं? ब्रह्म को आत्मा क्यों कहा जाता है? ब्रह्म को महेश्वर क्यों कहते हैं? ब्रह्म को दत्तात्रेय क्यों कहते हैं? उत्तररूप में अथर्वा ऋषि ने इन प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया है।

उपसंहार - उपनिषद् के अन्त में अथर्वा ऋषि ने बताया है कि -

“दत्तात्रेयं शिवं शान्तमिन्द्रनीलनिभं प्रभुम्

आत्ममायारतं देवमवधूतं दिगम्बरम्॥

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं जटाजूटधरं विभूम्।

चतुर्बाहुमुदाराङ्गं प्रफुल्लकमलेक्षणम्॥”⁸⁷

अर्थात् दत्तात्रेय स्वरूप कल्याणकारी, शान्त, नीलकान्त मणि की प्रभा से युक्त, अपनी माया में मग्न, निर्वस्त्र अवधूत ब्रह्म, सम्पूर्ण शरीर पर भस्म लगाए हुए, जटाजूटधारी, सर्वत्र व्याप्त, चार भुजाओं और सुन्दर अंगों से खिले हुए कमल पुष्प के समान आँखों वाले विश्व गुरु ब्रह्म का ध्यान करके सभी पापों से व्यक्ति छुटकारा पा जाता है। ब्रह्म के इस प्रकार के सत्यस्वरूप के वर्णन के साथ शाण्डिल्य उपनिषद् समाप्त होता है। अन्त में शान्ति पाठ प्राप्त नहीं होता।

(XX) योगशिखोपनिषद् -

मन्त्र संख्या - प्रथम अध्याय -	178 मन्त्र
द्वितीय अध्याय -	22 मन्त्र
तृतीय अध्याय -	25 मन्त्र
चतुर्थ अध्याय -	24 मन्त्र
पंचम अध्याय -	62 मन्त्र
षष्ठम अध्याय -	79 मन्त्र

कुल मन्त्र संख्या - 310 मन्त्र (6 अध्याय)

कुछ मन्त्रों की पुनरुक्ति भी है, उन्हें हटा देने से मन्त्र संख्या कुछ कम हो सकती है किन्तु वह मन्त्र प्रसंगवश है, जिन्हें दोषस्वरूप नहीं माना जा सकता।

उपक्रम - मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार योगशिखोपनिषद् का सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेद से है। “ॐ सह नावतु सह नौ भुनक्तु” मन्त्र से उपनिषद् के प्रारम्भ एवं अन्त में शान्ति पाठ किया गया है।

इस उपनिषद् का प्रारम्भ कथानक के रूप में हुआ है। हिरण्यगर्भ ब्रह्मा महेश्वर के पास जाकर उनसे मायाजाल को काटने वाले, सब प्रकार की सिद्धि देने वाले तथा जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि को नष्ट करके आनन्द प्रदान करने वाले मार्ग के सम्बन्ध में जिज्ञासा करते हैं। इस जिज्ञासा के शमन के क्रम में ही महेश्वर के उपदेश के रूप में योगशिखोपनिषद् का प्रारम्भ हुआ है। छठे अध्याय में उपासना विधि के सम्बन्ध में जिज्ञासा की है। हिरण्यगर्भ ब्रह्मा की जिज्ञासा के शमन के रूप में ही उपनिषद् की विषय-वस्तु का पल्लवन हुआ है।

विषयवस्तु - उपनिषद् को कहीं-कहीं ‘योग-संन्यास उपनिषद्’ भी कहा गया है। इसका प्रथम अध्याय सबसे विशाल है और इसमें विस्तार पूर्वक साधना से सम्बद्ध प्रायः सभी पक्षों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस उपनिषद् को योग की किसी एक शाखा में नहीं बांधा जा सकता और न ही किसी एक साधना विधि में, उपनिषत्कार का मानना है कि योग साधना और ब्रह्मज्ञान दोनों मिलकर ही मोक्ष प्रदान कर सकते हैं -

“योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीह भो।

योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि॥

तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत्॥”⁸⁸

इसलिए ब्रह्म विषयक उपदेश देते हुए शिव ने निर्मल, शान्त, सर्वातीत, निरामय, निष्कल आत्म तत्त्व में पाप-पुण्य से आवृत्त होने पर जीव तथा काम क्रोधादि से रहित जीव में शिव तत्त्व को बताया है। मुक्तिमार्ग की जिज्ञासा से यह सब उपदेश ब्रह्मा को महेश्वर देते हैं। ब्रह्म का जीवन बतलाकर ज्ञान और योग दोनों से जीव में कालुष्य का नाश होता है, यह बताते हैं। आगे ज्ञान का स्वरूप एवं उसके फल का विशद विवेचन करते हुए कहते हैं कि सब अनर्थों का जड़ अहंकार है -

“अहंकृतिर्यदा यस्य नष्टा भवति तस्य वै॥

देहस्त्वयि भवेन्नष्टो व्याधयश्चास्य किं पुनः।

जलाग्निशस्त्रखातादि बाधा कस्य भविष्यति॥”⁸⁹

अर्थात् ज्ञान से जब साधक का अहं भाव नष्ट हो जाता है तब उसका अपने शरीर के प्रति मोह भी नष्ट हो जाता है साथ ही रोग, जल, अग्नि, शस्त्र आदि

बाधाओं की चिन्ता भी नहीं सताती अर्थात् शरीर के प्रति अहंकार न रहने पर शरीर में दुःख का अनुभव नहीं होता। योगसिद्ध व्यक्ति ही ईश्वरत्व एवं जीवन्मुक्त हो सकता है। ज्ञान का अभिमान करने वालों की निन्दा, ज्ञानी की सिद्ध संगति से सद्गति तथा ज्ञान एवं योग की महिमा बताते हुए कहते हैं कि योगाभ्यास रहित मनुष्य को ज्ञान से मोक्ष नहीं मिलता। इसी प्रकार ज्ञान के बिना योगाभ्यास में सफलता नहीं मिलती। मोक्ष प्राप्ति के लिए योग से श्रेष्ठ और कोई उपाय नहीं है। योग से श्रेष्ठ पुण्य कार्य नहीं, न ही अन्य कोई कल्याणकारी है। योग से अधिक सूक्ष्म विद्या कोई नहीं तथा योग से श्रेष्ठ संसार में कुछ भी नहीं है -

“योगात् परतरं पुण्यं योगात्परतरं शिवम्।

योगात्परतरं सूक्ष्मं योगात्परतरं नहि।।”⁹⁰

इसी अध्याय में सर्वोत्कृष्ट ज्ञान योगाशिखा का उपदेश किया है जिसमें नवद्वारों का वर्णन किया है। साथ ही योगाभ्यास की सफलता से आत्मस्वरूप का ज्ञान, प्राणायाम सिद्ध योगी को प्रसन्न करना, सरस्वती चालन, शक्ति चालन से तीन ग्रन्थियों का भेदन चार कुम्भक प्राणायाम, सूर्य कुम्भक का लक्षण, उज्जायी कुम्भक, शीतली प्राणायाम, भस्त्रिका कुम्भक का लक्षण, मूल बन्ध, जालन्धर बन्ध, उड्डीयान बन्ध, कुण्डली से तीन ग्रन्थियों के भेदने से निर्विकल्प प्राप्ति, सुषुम्ना से मोक्षमार्ग और काल-विजय, सुषुम्ना योग से ब्रह्मज्ञानसिद्धि, योगाभ्यास से स्वरूपावस्थिति का क्रम, मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग ये चतुर्विध योग के प्रकार महायोग की अन्तः भूमिकाएँ हैं और ये सब मिलकर एक महायोग कहा जाता है।

(i) **मन्त्रयोग** - सभी जीव निरन्तर श्वास भरते और छोड़ते हुए ‘हंस’ ‘हंस’ इस मन्त्र को जपते रहते हैं। सद्गुरु की कृपा से ‘हंस’ ‘हंस’ का अजपा जप सुषुम्ना में उल्टा होने लगता है। तब योगी ‘सोऽहम्’ का जप करने लगता है। यही मन्त्रयोग कहलाता है-

“हंस हंसेति मन्त्रोऽयं सर्वजीवैश्च जप्यते।

गुरुवाक्यात् सुषुम्नायां विपरीतो भवेज्जपः

सोऽहं सोऽमिति यः स्यान्मन्त्रयोगः उच्यते।”⁹¹

(ii) **हठयोग** - ‘ह’ एकाक्षर पद सूर्य का वाचक है और ‘ठ’ चन्द्रमा का। सूर्य और चन्द्रमा की एकता को ही हठयोग कहते हैं।

“हकारेण तु सूर्यः स्यात् सकारेणन्दुरुच्यते।

सूर्याचन्द्रमसोरैक्यं हठ इत्यभिधीयते।।”⁹²

(iii) लययोग - हठयोग के अभ्यास से अविद्या नष्ट हो जाती है तथा परमात्मा और जीवात्मा में एकता स्थापित हो जाने पर चित्त लीन (लय) हो जाता है। लययोग का उदय होने पर प्राण स्थिर हो जाते हैं।

“तदैक्ये साधिते ब्रह्मं चित्तं याति विलीनताम्।

पवनः स्थैर्यमायाति लययोगोदये सति॥”⁹³

(iv) राजयोग - रज और वीर्य के संयोग को राजयोग कहते हैं।

“रजसो रेतसो योगात् इति स्मृतः॥”⁹⁴

योगाभ्यास से मुक्ति, योगी को सिद्धि लाभ, स्वाभाविक और कृत्रिम सिद्धियाँ, शरीर रहने पर भी ज्ञानी की विदेह मुक्ति, शरीर की मन्दिर स्वरूप में स्थापना, देह के 6 चक्र (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा चक्र) चार पीठ तथा 6 मण्डल के उपदेश के साथ प्रथम अध्याय की इति होती है।

द्वितीय अध्याय में ब्रह्मा जी शंकर भगवान् से कहते हैं कि मैं फिर से योग की महत्ता सुनना चाहता हूँ। तब शिव प्रणवमन्त्र की महिमा व प्रणवमन्त्र का निर्वचन करते हैं -

“मननात् प्राणनाच्चेव मद्रूपस्यावबोधनात्॥

मन्त्रमित्युच्यते ब्रह्मन् मदधिष्ठानतोऽपि वा।

मूलत्वात् सर्वमन्त्राणां मूलाधारात् समुद्भवात्॥

मूलस्वरूपलिङ्गत्वान्मूलमन्त्र इति स्मृतः॥”⁹⁵

अर्थात् प्रणव मन्त्र का मनन करने के कारण, प्राणपद होने से, शिव के रूप का ज्ञान कराने के कारण तथा शिव में ही प्रतिष्ठित होने के कारण प्रणव को मन्त्र कहते हैं। सभी मन्त्रों का मूल होने से, मूलाधार से उत्पन्न होने से तथा मूल स्वरूप का लिंग होने से इसे मूलमन्त्र कहा जाता है। साथ ही नादलिंग का निर्वचन, सूत्रत्व का निर्वचन, प्रणव की बिन्दुपीठ, निर्विशेष प्रणव ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय, बिन्दुपीठ, नाद, स्थूल-सूक्ष्म-बीजरूप ब्रह्म, परब्रह्म की अभिव्यक्ति के चिह्न, नादानुसन्धान की महिमा इत्यादि का उपदेश देते हैं, जो द्वितीय अध्याय में निबद्ध है।

तृतीय अध्याय में महेश्वर चैतन्य स्वरूप के विषय में, वैखरी स्वरूप, वैखरी साक्षात्कार से वाक्सिद्धि, परमाक्षर का स्वरूप इत्यादि का गूढ़ ज्ञान प्रदान करते हैं।

चतुर्थ अध्याय में जीव का असद्भाव, सम्पूर्ण सृष्टि का ब्रह्ममयत्व, ब्रह्म से अतिरिक्त समझने पर अनर्थ का भय, संसार का मिथ्यात्व, अज्ञान से आत्मा में देह की भ्रान्ति इत्यादि अज्ञान का निराकरण कर सत्य अनन्त ज्ञान का उपदेश करते हैं।

पंचम अध्याय प्रथम अध्याय के विषय की पुनरावृत्ति से प्रारम्भ होता है। देह मन्दिर, छः आधार एवं चारपीठ, इन विषयों पर पहले दिए हुए ज्ञान को प्रसंगवश दोहराया गया है। आगे नाडीचक्रों का स्वरूप विस्तार से समझाते हैं। कुण्डली जागरण, खेचरी मुद्रा का अभ्यास, सहस्रार में नारायण चिन्तन, समाधि से सिद्धियाँ, गुरु का महत्त्व आदि विषयों पर उपदेश किया है।

छठे अध्याय में ब्रह्मा परमेश्वर से कुण्डलिनी की उपासना विधि के विषय में पूछते हैं तब सर्वेश्वर सुषुम्ना का स्वरूप, सर्वाधार सुषुम्ना का विस्तार पूर्वक उपदेश, षट्चक्रों में देवों के ध्यान से ब्रह्मरन्ध्र प्रवेश, हंस या प्राण, सुषुम्ना योग की महिमा, चित्त शक्ति और जीव का स्थान, कुण्डली की अवस्था बदलने से बन्ध या मुक्ति, प्राण सबका आधार, चित्त से ही बन्धन-मुक्ति, प्राण और चित्त का अविनाभाव, नादानुसन्धान से मनोलय, मन सहित प्राणायाम की विधि, गुरु के उपदेश के बिना ज्ञानोदय न होना तथा गुरु के महत्त्व वर्णन के साथ षष्ठ अध्याय की समाप्ति होती है तथा उपनिषद् की भी।

उपसंहार - उपनिषद् में योग तत्त्व का विस्तार से वर्णन है। कैवल्य प्राप्ति का एकांगी नहीं अपितु सांगोपांग वर्णन किया गया है, जिसमें योग एवं ब्रह्मज्ञान को समान स्थान दिया गया है। सभी तत्त्वों का उपदेश करने के बाद गुरु की महिमा का उपनिषद् के अन्त में वर्णन किया गया है, जो यह स्पष्ट संकेत देता है कि गुरु ज्ञान एवं गुरु कृपा से ही ब्रह्मज्ञान योग से मोक्ष प्राप्ति संभव है तथा भव सागर से पार उतारने में गुरु उपदेश का विशेष महत्त्व है।

“ओ३म् सह नावतु” इस शान्ति मन्त्र का पाठ अन्त में किया गया है।

(XXI) हंसोपनिषद् -

मन्त्रसंख्या - कुल मन्त्र -10, कुल गद्य - 12

उपक्रम - मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार यह उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद से सम्बन्धित है। ईशावास्योपनिषद् के समान इस उपनिषद् के प्रारम्भ में शान्तिपाठ किया गया है -

“ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥”

इस उपनिषद् की विषय वस्तु गौतम ऋषि द्वारा ऋषि सनत्कुमार से ब्रह्म विद्या के ज्ञान को जानने के उपाय से पल्लवित होती है। गौतम ऋषि पूछते हैं -

“ब्रह्मविद्याप्रबोधो हि केनोपायेन जायते”।⁹⁶

गद्य एवं पद्य स्वरूप में संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित रूप में सनत्कुमार द्वारा दिए गए ब्रह्मज्ञान विषयक उपदेश को इस उपनिषद् में निबद्ध किया गया है।

विषयवस्तु -

ऋषि सनत्कुमार कहते हैं कि मैंने सभी धर्मों पर विचार किया है। भगवान् शिवजी ने माता पार्वती को जो तत्त्वज्ञान दिया, उसे जानकर मैं जिस निश्चय पर पहुँचा हूँ, उसे ही मैं तुम्हें सुनाता हूँ। सनत्कुमार हंस के स्वरूप का वर्णन करते हैं, जो काष्ठ में अग्निवत् व तिलों में तैलवत् सर्वव्यापक है। हंसज्ञान प्राप्ति का एक मात्र उपाय योग ही है। सनत्कुमार के अनुसार गौतम चूँकि ब्रह्मचारी हैं, इसलिए परमहंस (हंस ज्ञान) को जानने के अधिकारी हैं। प्राणायाम व कुण्डलिनी जागरण से हंसज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। योग के आठ अंगों यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि का हंस प्राप्ति में महती भूमिका का उन्होंने प्रतिपादन किया। इनके द्वारा हृदय कमल में हंस भावना करने से तुर्य (चतुर्थ) आत्म के दर्शन होते हैं।

यहाँ भी पाशुपत उपनिषद् के समान ही हंस से तात्पर्य श्वास छोड़ते समय निकलने वाली ‘ह’ ध्वनि तथा भरते समय ‘स’ की ध्वनि निकलने को ही बताया गया है। अजपाजप हंस मन्त्र को निरन्तर जपते रहने से परमहंस देवता की प्राप्ति होती है। सगुण हंस के ध्यान से परमात्मा के दर्शन, अजपा जप के दस प्रकार के अनाहत नादों का अनुभव साथ ही इन नादों के अनुभव का फल बताया गया है।

हंस मन्त्र का अजपाजप एक करोड़ बार करने पर साधक अनाहत चक्र में अनाहत नाद का अनुभव करता है तथा अनाहत नाद का अनुभव दस प्रकार का बताया है। प्रारम्भिक नौ नादों को छोड़कर दसवें नाद (बादल की गरज जैसा अनुभव) को सुनने का अभ्यास करना चाहिए क्योंकि इसी से ब्रह्म का सान्निध्य प्राप्त होता है -

“दशमं च परं ब्रह्म भवेत् ब्रह्मात्मसन्निधौ”।⁹⁷

अन्त में मनोलय से ब्रह्मात्मप्रकाश का स्वरूप इत्यादि विषयों का उपदेश सनत्कुमार ऋषि द्वारा किया गया है।

उपसंहार - यह उपनिषद् हंस जप द्वारा परमात्मदर्शन होने का उपदेश देता है। मूलतः हंस जप से तात्पर्य श्वास-प्रश्वास से ही है। योग के अष्टांग में प्राणायाम अंग को विशेष स्थान दिया है। श्वास छोड़ने से 'ह' ध्वनि व लेते समय 'स' ध्वनि के निरन्तर अभ्यास से समाधि की प्राप्ति होती है धीरे-धीरे बाह्य विषयों से मन ब्रह्म में लीन हो जाता है तथा सर्वत्र विराजमान, कल्याणस्वरूप, स्वयं प्रकाशस्वरूप, शुद्ध, पवित्र, मुक्त, चैतन्य, निर्लेप ब्रह्म का स्वरूप हृदय में प्रकट हो जाता है, इसे ही वेदज्ञान का सार कहा है। वस्तुतः इस उपनिषद् में ब्रह्मज्ञान के स्थान पर योग को महत्त्व दिया है।

“ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं” इस मन्त्र के शान्तिपाठ के साथ उपनिषद् का अन्त होता है।

3.5 योग उपनिषदों की भाषा एवं प्रतिपादन शैली -

यौगिक सिद्धान्तों व विचारों को सुव्यवस्थित ढंग से एकत्रित करने के लिए ऋषियों द्वारा योग उपनिषदों की पृथक् से रचना की गई। इन उपनिषदों में योगरूपी रहस्यमयी व गूढ़विद्या को सहज व सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है। इन उपनिषदों की भाषा सरल, प्रवाहशील तथा उपदेशात्मक है। प्रायः सभी योग उपनिषदों में दीर्घसमास व क्लिष्टपदों का सर्वथा अभाव है। अधिकांशतः योग उपनिषद् पद्यात्मक हैं तथा अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध हैं। कुछ गद्य-विधा में लिखे गए हैं, जैसे- अद्वयतारकोपनिषद्, पाशुपतब्राह्मणोपनिषद्, मण्डलब्राह्मणोपनिषद् महावाक्योपनिषद् तथा हंसोपनिषद्। कुछ गद्य-पद्य मिश्रित है जैसे - वराहोपनिषद्, शाण्डिल्योपनिषद् आदि।

कहीं कहीं पर श्लोकों का रहस्यपूर्ण अर्थ है तथा श्लोकों का बहुत अधिक दोहराव भी है। योगराजोपनिषद् को छोड़कर सभी योग उपनिषदों में शान्तिपाठ दिया गया है।

इन उपनिषदों को वर्णनात्मक, उपदेशात्मक तथा संवादात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है, जैसे - मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में याज्ञवल्क्य तथा आदित्य (मण्डल पुरुष) का संवाद, वराहोपनिषद् में वराहरूप भगवान विष्णु का ऋभु ऋषि को ब्रह्मविद्या का उपदेश, शाण्डिल्योपनिषद् में अथर्वा ऋषि का शाण्डिल्य को अष्टांग योग तथा ब्रह्मविद्या उपदेश, योगशिखोपनिषद् में शंकर का हिरण्यगर्भ को मुक्तिमार्ग तथा ब्रह्मस्वरूप का उपदेश, हंसोपनिषद् में सनत्कुमार का गौतम को

ब्रह्मविद्या का उपदेश, तेजोबिन्दूपनिषद् में भगवान् शिव का कुमार कार्तिकेय को ब्रह्मस्वरूप का उपदेश, त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में आदित्य का त्रिशिखि को आत्मा और ब्रह्म विषयक उपदेश तथा दर्शनोपनिषद् में दत्तात्रेय का शिष्य सांकृति को अष्टांग योग का उपदेश दिया गया है।

योगचूडामण्युपनिषद्, योगकुण्डल्युपनिषद्, अमृतबिन्दूपनिषद्, अद्व्यतारकोपनिषद्, ध्यानबिन्दूपनिषद् आदि वर्णनात्मक शैली में लिखे गए हैं।

गूढ़ तथा रहस्यमय विषयों को दृष्टान्त या उपमा द्वारा सरलरूप में स्पष्ट किया गया है, जैसे - रस्सी से बंधे हुए पक्षी की तरह मन प्राण से बंधा हुआ है -

“चित्तं प्राणेन सम्बद्धं सर्वजीवेषु संस्थितम्।

रज्ज्वा यद्वत् सुसम्बद्धः पक्षी तद्वदिदं मनः॥”⁹⁸

संसार में जो कुछ दृश्यरूप है, वह खरगोश के सींग की तरह मिथ्या बताया गया है-

“इदं प्रपञ्च यत्किञ्चित् यत् यज्जगति विद्यते।

दृश्यरूपं च दृग्रूपं सर्वं शशविषाणवत्॥”⁹⁹

कुछ योग उपनिषद् तो बहुत ही लघु आकार के हैं जैसे - पाशुपतब्रह्मोपनिषद्, महावाक्योपनिषद्, हंसोपनिषद्, नादबिन्दूपनिषद्, अमृतबिन्दूपनिषद्, अद्व्यतारकोपनिषद्। कुछ ही दीर्घाकार हैं, जैसे - योगशिखोपनिषद्, वराहोपनिषद्, तेजोबिन्दूपनिषद्, महावाक्योपनिषद्।

कुछ उपनिषदों में विषयवस्तु को अध्यायों में विभक्त किया गया है जैसे - तेजोबिन्दूपनिषद्, दर्शनोपनिषद्, मण्डलब्राह्मणोपनिषद्, योगकुण्डल्युपनिषद्, योगशिखोपनिषद्, वराहोपनिषद्, शाण्डिल्योपनिषद् तथा कुछ अध्यायहीन हैं, जैसे - अमृतबिन्दूपनिषद्, अद्व्यतारकोपनिषद्, अमृतनादोपनिषद्, तेजोबिन्दूपनिषद् आदि।

इन उपनिषदों में मन्त्रों का दोहराव या अन्य ग्रन्थों में प्रकारान्तर से पद भी मिलते हैं। इस प्रकार ये आकार की दृष्टि से दीर्घ व लघु होते हुए भी अपने सार और विषय के सम्बन्ध में महान हैं।



सन्दर्भ सूची

- 1 gupta S.N. Das, Yoga Philosophy, Motilal Banarsidas Publisher, New Delhi. 2005, P.18
- 2 Deussen Paul and Geden, A.S., The Philosophy of the Upanisads, पूर्वोक्त, P.-64
- 3 Mahony, William K., The Artful Universe : An Introduction to the Vedic Religious Imagination, State University of New York Press, 1988. P. 290
- 4 Flood, Gavin D. An Introduction to Hinduism, Cambridge University Press, 1996. P. 96
- 5 Mallinson, James, The Gheranda Samhita : The original Sanskrit and an English Translation, Yoga Vidya Com. 2004, P.14
- 6 आचार्य, श्रीराम शर्मा, 108 उपनिषद्, मैत्रायण्युपनिषद् 3/2, संस्कृति संस्थान, बरेली, 2023, पृ. 366
- 7 विद्यालंकार सुभाष, योग उपनिषद्, भाग-1, तेजोबिन्दूपनिषद् 1/10, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ. 52
- 8 तेजोबिन्दूपनिषद् 6/17, उपर्युक्त, पृ. 104
- 9 वराहोपनिषद् 4/1-18, उपर्युक्त, पृ. 564-584
- 10 आत्रेय, भीखन लाल, योग वाशिष्ठ और उसके सिद्धान्त, योग वाशिष्ठ - 3/118/3-16, ताराप्रिंटिंग वर्क्स, बनारस, 1957, पृ. 452-460
- 11 Sinha Jadu Nath, A History of Indian Philosophy, Vol-1, Sinha Publishing House Calcutta, 1956, P.123-124
- 12 Weber, Albrecht. The History of Indian literature, Kegan Paul Trench Trubner and Company lit., Carter Lane, E.C. 1914, P.163-165
- 13 Deussen Paul, Geden, A.S. The Philosophy of the Upanishads, पूर्वोक्त P. 23-26
- 14 Deussen, Paul, Sixty Upanisads of the Veda, Part I, 27-28 (contents)
- 15 Aiyar, K.Narayan Swami, Thirty minor Upanisads (Contents)
- 16 पाण्डेय, ओमप्रकाश, वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरूप, विश्व प्रकाशन, दिल्ली, 1994, पृ. 212
- 17 देवराज, नन्दकिशोर, भारतीय दर्शन, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ 2002, पृ. 59
- 18 मुक्तिकोपनिषद् 1/31, पूर्वोक्त, पृ. 648
- 19 भारती, परमहंस स्वामी अनन्त, योग उपनिषद् संग्रह, भाग-1, तेजोबिन्दूपनिषद्, चौखम्भा ओरियन्टलिया, दिल्ली, 2015, पृ. 129
- 20 तेजोबिन्दूपनिषद् 1/1 उपर्युक्त, पृ. 129
- 21 तेजोबिन्दूपनिषद् 6/108, उपर्युक्त, पृ. 205
- 22 तेजोबिन्दूपनिषद्, 6/109, उपर्युक्त, पृ. 205
- 23 ब्रह्मबिन्दूपनिषद् 2, उपर्युक्त, पृ. 9

-
- 24 ब्रह्मबिन्दूपनिषद् 4, उपर्युक्त, पृ. 9
25 पातञ्जलयोगसूत्रम् 1/29, पूर्वोक्त, पृ. 49
26 ब्रह्मबिन्दूपनिषद् 7, उपर्युक्त, पृ. 10
27 ब्रह्मबिन्दूपनिषद् 13-14, उपर्युक्त, पृ. 12
28 वराहोपनिषद् 1, भूमिका, उपर्युक्त, पृ. 214
29 वराहोपनिषद् 1/1, उपर्युक्त, पृ. 214
30 वराहोपनिषद् 2/1, भूमिका उपर्युक्त, पृ. 218
31 वराहोपनिषद् 5/10, उपर्युक्त, पृ. 259
32 वराहोपनिषद् 5/45, उपर्युक्त, पृ. 259
33 वराहोपनिषद् 5/71, उपर्युक्त, पृ.
34 वराहोपनिषद् 5, अर्थवाद, उपर्युक्त पृ.
35 उपर्युक्त, योगराजोपनिषद्, 1-2, पृ. 470
36 श्रीमद्भागवद्गीता, 4/23, पूर्वोक्त, पृ. 171
37 विद्यालंकार सुभाष, योग उपनिषद्, भाग - 1, अद्व्यतारकोपनिषद् 11 प्रभात
प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ. 15
38 उपर्युक्त, अद्व्यतारकोपनिषद्, 10, पृ. 14
39 उपर्युक्त, अद्व्यतारकोपनिषद्, 16-18, पृ. 19
40 उपर्युक्त, महावाक्योपनिषद्, 6 पृ. 333
41 उपर्युक्त, महावाक्योपनिषद्, 11 पृ. 335
42 आचार्य, श्रीराम शर्मा, 108 उपनिषद् (साधना खण्ड), पाशुपतब्रह्मोपनिषद्,
पूर्वकाण्ड, 1, पूर्वोक्त, पृ. 243
43 उपर्युक्त, पाशुपतब्रह्मोपनिषद्, उत्तरकाण्ड, 1, पृ. 245
44 उपर्युक्त, पाशुपतब्रह्मोपनिषद्, उत्तरकाण्ड, 6, पृ. 245
45 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, गद्य सं. 2, पूर्वोक्त, पृ. 120
46 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, 161, पूर्वोक्त, पृ. 170
47 नादबिन्दूपनिषद्, 5-6, पूर्वोक्त, पृ. 255
48 नादबिन्दूपनिषद्, 41, पूर्वोक्त, पृ. 264
49 नादबिन्दूपनिषद्, 48, पूर्वोक्त, पृ. 266
50 क्षुरिकोपनिषद्, 1, पूर्वोक्त, पृ. 40
51 क्षुरिकोपनिषद्, 22-23, पूर्वोक्त, पृ. 47
52 क्षुरिकोपनिषद्, 25, पूर्वोक्त, पृ. 47
53 ध्यानबिन्दूपनिषद्, 105, पूर्वोक्त, पृ. 252
54 ध्यानबिन्दूपनिषद्, 106, पूर्वोक्त, पृ. 252

-
- 55 ध्यानबिन्दूपनिषद्, 1, पूर्वोक्त, पृ. 223
56 ध्यानबिन्दूपनिषद्, 2-3, पूर्वोक्त, पृ. 223
57 ध्यानबिन्दूपनिषद्, गद्य 1, पूर्वोक्त, पृ. 245
58 ध्यानबिन्दूपनिषद्, 103-104, पूर्वोक्त, पृ. 252
59 योग उपनिषद्, भाग-2, पूर्वोक्त, योगचूडामण्युपनिषद्, 1, पृ. 374
60 योगचूडामण्युपनिषद्, 10, पूर्वोक्त, पृ. 376
61 योग उपनिषद्, भाग-1, पूर्वोक्त, दर्शनोपनिषद् 1/1-2, पृ. 171
62 दर्शनोपनिषद्, 1/4-5, पूर्वोक्त, पृ. 172
63 दर्शनोपनिषद्, 1/25, पूर्वोक्त, पृ. 178
64 दर्शनोपनिषद्, 2/1, पूर्वोक्त, पृ. 179
65 दर्शनोपनिषद्, 3/1, पूर्वोक्त, पृ. 185
66 दर्शनोपनिषद्, 4/53, पूर्वोक्त, पृ. 198
67 दर्शनोपनिषद्, 6/3, पूर्वोक्त, पृ. 204
68 दर्शनोपनिषद्, 6/16, पूर्वोक्त, पृ. 206
69 दर्शनोपनिषद्, 8/13-14, पूर्वोक्त, पृ. 216
70 दर्शनोपनिषद्, 10/4-5, पूर्वोक्त, पृ. 220
71 दर्शनोपनिषद्, 10/13, पूर्वोक्त, पृ. 222
72 योग उपनिषद्, भाग-1, पूर्वोक्त, अमृतनादोपनिषद्, 39, पृ. 37
73 ब्रह्मविद्योपनिषद्, 20-21, पूर्वोक्त, पृ. 278-279
74 ब्रह्मविद्योपनिषद्, 25-26, पूर्वोक्त, पृ. 279
75 ब्रह्मविद्योपनिषद्, 109, पूर्वोक्त, पृ. 299
76 मण्डलब्राह्मणोपनिषद्, 1/1/1, पूर्वोक्त, पृ. 300
77 मण्डलब्राह्मणोपनिषद्, 1/1/5, पूर्वोक्त, पृ. 302
78 मण्डलब्राह्मणोपनिषद्, 1/1/11, पूर्वोक्त, पृ. 303
79 मण्डलब्राह्मणोपनिषद्, 3/1/2, पूर्वोक्त, पृ. 324
80 मण्डलब्राह्मणोपनिषद्, 4/5, पूर्वोक्त, पृ. 329
81 योगकुण्डल्युपनिषद्, 3/34, पूर्वोक्त, पृ. 372
82 योग उपनिषद्, भाग - 2, पूर्वोक्त, योगतत्त्वोपनिषद्, 8-9, पृ. 409
83 योगतत्त्वोपनिषद्, 142, पूर्वोक्त, पृ. 441
84 शाण्डिल्योपनिषद्, 1/1/1, पूर्वोक्त, पृ. 607
85 शाण्डिल्योपनिषद्, 1/1/3, पूर्वोक्त, पृ. 607
86 शाण्डिल्योपनिषद्, 2/2-3, पूर्वोक्त, पृ. 377-378
87 शाण्डिल्योपनिषद्, 3/2/11-12, पूर्वोक्त, पृ. 384

-
- 88 योगशिखोपनिषद्, 1/13-14, पूर्वोक्त, पृ. 444
89 योगशिखोपनिषद्, 1/34-35, पूर्वोक्त, पृ. 448
90 योगशिखोपनिषद्, 1/67, पूर्वोक्त, पृ. 454
91 योगशिखोपनिषद्, 1/131-132, पूर्वोक्त, पृ. 472
92 योगशिखोपनिषद्, 1/133, पूर्वोक्त, पृ. 473
93 योगशिखोपनिषद्, 1/135, पूर्वोक्त, पृ. 473
94 योगशिखोपनिषद्, 1/137, पूर्वोक्त, पृ. 474
95 योगशिखोपनिषद्, 2/7-9, पूर्वोक्त, पृ. 484
96 हंसोपनिषद्, 1, पूर्वोक्त, पृ. 685
97 हंसोपनिषद्, 20, पूर्वोक्त, पृ. 693
98 योगशिखोपनिषद्, 1/59, पूर्वोक्त, पृ. 453
99 तेजोबिन्दूपनिषद्, 5/75, पूर्वोक्त, पृ. 97

चतुर्थ अध्याय
प्रमुख योग उपनिषदों में योग तत्त्व मीमांसा

चतुर्थ अध्याय

प्रमुख योग उपनिषदों में योग तत्त्व मीमांसा

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में योग उपनिषदों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा चुका है। अब इस अध्याय में चयनित अमृतनादोपनिषद्, योगकुण्डल्युपनिषद्, त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, योगचूडामण्युपनिषद् तथा योगतत्त्वोपनिषद् इन प्रमुख पाँच योग उपनिषदों में योगतत्त्व के स्वरूप तथा साधनादि का विस्तृत विवेचनात्मक व मीमांसात्मक अध्ययन किया जा रहा है।

4.1 अमृतनादोपनिषद् में योग तत्त्व मीमांसा

कृष्णयजुर्वेदीय अमृतनादोपनिषद् के अनुसार शास्त्रों के अध्ययन से निर्मल चित्त स्वसन्देहों व संशयों को दूर कर परब्रह्म का ज्ञान (पुरुषार्थ सिद्धि) प्राप्त कर लेता है, परन्तु जिनका मन पूर्णरूप से निर्मल नहीं है। उन्हें प्रणव जप के अभ्यास से मन में ईश्वर की भावना व्याप्त कर अजपा जप से ब्रह्म के सूक्ष्म स्वरूप को जानने का प्रयास करना चाहिए। जिसमें योगांगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

इस प्रकार पुरुषार्थसिद्धि के लिए प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क तथा समाधि योग के इन छः अंगों का विवेचन किया गया है। छः योगांगों का लक्षण, समाधिसिद्धि के उपाय, योगाभ्यास का फल, योग के चिन्तनीय विषय तथा प्राणवायु का प्रमाण, स्थान व रंग इत्यादि विषय अमृतनादोपनिषद् के प्रमुख प्रतिपाद्य हैं।

अमृतनादोपनिषद् में षड् योगांगों से पूर्व शास्त्र श्रवण को परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने का साधन बताया है। उपनिषत्कार लिखते हैं -

"शास्त्राणि अधीत्य मेधावी अभ्यस्य च पुनः पुनः।

परमं ब्रह्म विज्ञाय उल्कावत् तानि अथ उत्सृजेत्।"¹

अर्थात् जब परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त हो जाए, तो शास्त्रों का सहारा लेना छोड़ देना चाहिए तथा षड् योगांगों एवं प्रणव जप से तादात्म्य स्थापित करना चाहिए।

प्रस्तुत उपनिषद् में षड् योगांगों के अभ्यास के साथ प्रणव उपासना को महत्त्वपूर्ण बताया है। इस उपनिषद् के नामकरण का आधार भी यह प्रणव नाद ही है। स्पष्टतः तो नामकरण का तात्पर्य प्राप्त नहीं होता किन्तु संभवतया प्रणव

(ओंकार) का जाप ओंकार का नाद ही अमृतनाद है। ओंकार के निरन्तर जप या उच्चारण से मन में ईश्वर की भावना सदा बनी रहती है क्योंकि ओंकार ही ईश्वर चिन्तन है। अकार उकार मकार अर्थात् ओंकार के जप के बाद ही सूक्ष्म ब्रह्म के साक्षात् का प्रयत्न करना चाहिए। उपनिषद् कहता है -

"ओंकाररथमारुह्य विष्णुं कृत्वाऽथ सारथिम्।

ब्रह्मलोकपदान्वेषी रुद्राराधनतत्परः॥"²

अमृतनादोपनिषद् के अनुसार ओंकार उच्चारण साधक के लिए रथ के समान है, जिस रथ पर चढ़ कर, साधक विष्णु को सारथी बनाकर सर्वव्यापक परमात्मा परब्रह्म को प्राप्त करने की खोज में रुद्र आराधना में तत्पर होता है। साधक ओंकार का निरन्तर अभ्यास तब तक ही करता है, जब तक उसे लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती, उसके बाद रथ को छोड़कर चला जाता है।

इसी प्रकार कठोपनिषद् में भी ओंकार के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है - "एतदालम्बनं श्रेष्ठम् एतदालम्बनं परम्।" (1/2/17) अर्थात् परमार्थ साधन के लिए आलम्बनों में प्रणव ही श्रेष्ठ आलम्बन है।

प्रत्याहार के द्वारा पञ्च ज्ञानेन्द्रियों एवं पञ्च कर्मेन्द्रियों को वश में करके संसार से सम्बन्ध नष्ट करना चाहिए। प्राणायाम करने से इन्द्रियों से उत्पन्न शरीर के विकार नष्ट हो जाते हैं, धारणा से अन्तःकरण के बुरे विचार नष्ट करने चाहिए तथा ध्यान से सभी बुरे विचारों को नष्ट करके प्राणायाम के साथ निरन्तर प्रणव का जप करने से धारणा का अभ्यास होगा। इस प्रकार छः योगांगों के साथ निरन्तर ईश्वर चिन्तन एवं प्रणव जप से ही कैवल्य या मुक्ति संभव है। योगी के लिए ध्यातव्य भी कहा गया है -

"येनासौ पश्यते मार्गं प्राणस्तेनाभिगच्छति।

अतस्तमभ्यसेन्नित्यं यन्मार्गगमनाय वै।"³

अर्थात् योगी जिस मार्ग को अपने लक्ष्य पर पहुँचने का रास्ता मानता है। उसका प्राण-वायु भी उसी मार्ग पर चलता है इसलिए योगी को अपने मार्ग पर प्रमाद रहित होकर चलते रहना चाहिए। प्रमाद रहित अभ्यास ही लक्ष्य को प्राप्त करवा सकता है।

योगाङ्ग -

अमृतनादोपनिषद् में षडंग योग का निरूपण इस प्रकार है-

"प्रत्याहारः तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा ।

तर्कश्चैव समाधिश्च षडंगो योग उच्यते ॥"⁴

प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क तथा समाधि ये योग के छः अंग बताए हैं।

- (i) **प्रत्याहार** - ज्ञानेन्द्रियों तथा मन को अनात्म पदार्थों से हटा कर आत्म चिन्तन में लगाना प्रत्याहार कहलाता है।

"शब्दादि विषयान् पञ्च मनश्चैवातिचञ्चलम्।

चिन्तयेत् आत्मनो रश्मीन् प्रत्याहारः स उच्यते ॥"⁵

पञ्च ज्ञानेन्द्रियों को शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध इन पञ्च विषयों से तथा अत्यन्त चञ्चल मन को इन सभी विषयों से हटाकर सूर्य के समान अपनी आत्मा में रश्मियों के समान देखना चाहिए।

इस प्रकार इन्द्रियों और मन को बाह्य सांसारिक विषयों से हटाकर चित्त को अन्तर्मुखी करने का अभ्यास प्रत्याहार कहलाता है। प्रत्याहार इन्द्रिय संयम का साधन है अतः इससे संसार के सम्बन्धों को नष्ट करना चाहिए।

- (ii) **ध्यान** - प्रणव की अकारादि मात्रा, स्वर तथा शब्दों को त्यागकर स्वरहीन मकार के वाचक ईश्वर का ध्यान करना चाहिए तथा अजपाजप द्वारा ब्रह्म के सूक्ष्म स्वरूप को जानने का प्रयास करना चाहिए। ध्यान से बुरे विचार नष्ट हो जाते हैं।

- (iii) **प्राणायाम** - व्याहृतियों और ओंकार सहित गायत्री मन्त्र का तीन-तीन बार पाठ करते हुए पूरक, कुम्भक तथा रेचक करना प्राणायाम कहा जाता है -

"सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह।

त्रिः पठेत् आयतप्राणः प्राणायामः स उच्यते॥"⁶

भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् इन सात व्याहृतियों में से प्रत्येक व्याहृति को ओम् के साथ मन ही मन बोलकर गायत्री मन्त्र का तीन बार जप करने का निर्देश दिया है।

प्राणायाम के तीन अंग -

रेचक, पूरक और कुम्भक ये तीन प्राणायाम के अंग बताए गए हैं।

(क) **रेचक प्राणायाम** - रेचक प्राणायाम में अन्दर रूका हुआ श्वास बाहर निकाला जाता है। रेचक प्राणायाम वह है जिसमें प्राणवायु को आकाश में निकाल कर हृदय की वायु से शून्य किया जाता है अर्थात् फेफड़ों में भरी हुई वायु को निकाल कर मन को

शून्य भाव में लगाना -

"उत्क्षिप्य वायुमाकाशे शून्यं कृत्वा निरात्मकम्।

शून्यभावे नियुञ्जीयाद् रेचकस्येति लक्षणम्॥"⁷

(ख) पूरक प्राणायाम - पूरक में श्वास भरा जाता है। मुख से कमल नाल द्वारा जल खींचने के समान नाक से धीरे-धीरे वायु को अपने भीतर खींचना पूरक प्राणायाम है -

"वक्त्रेण उत्पलनालेन तोयम् आकर्षयेत् नरः।

एवं वायुः ग्रहीतव्यः पूरकस्य इति लक्षणम्॥"⁸

(ग) कुम्भक प्राणायाम - श्वास को न खींचे, न निकाले और न ही शरीर को हिलाए केवल स्थिर होकर प्राणवायु को रोकना कुम्भक प्राणायाम है -

"न उच्छ्वसेत् न चैव निश्वसेत् नैव गात्राणि चालयेत्।

एवं भावं नियुञ्जीयात् कुम्भकस्येति लक्षणम्॥"⁹

अर्थात् कुम्भक प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास बन्द रहता है और शरीर स्थिर रहता है। इस प्रकार शरीर और प्राण को स्थिर रखकर कुम्भक प्राणायाम किया जाता है। कुम्भक का अभ्यास करते समय अन्धे-बहरे व्यक्ति की तरह रूप और शब्द को देखना-सुनना चाहिए तथा शरीर को लकड़ी की तरह जड़ रखना चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने से मन शान्त हो जाता है।

प्राणायाम का फल -

"यथा पर्वतधातूनां दह्यन्ते धमनात् मलाः।

तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणधारणात्॥"¹⁰

अर्थात् जिस प्रकार पर्वतों में मिली धातुओं को अग्नि में तपाने से उनके मैल, अशुद्धि आदि नष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार शरीर की इन्द्रियों से उत्पन्न शरीर के दोष प्राणायाम से नष्ट हो जाते हैं।

(iv) धारणा - धारणा से अन्तः करण के बुरे विचार नष्ट हो जाते हैं। मन को संकल्पात्मक मानकर उसे आत्मा में लय करते हुए परमात्मा का ध्यान करना धारणा है -

"मनः संकल्पकं ध्यात्वा संक्षिप्यात्मनि बुद्धिमान्।

धारयित्वा तथाऽऽत्मानं धारणा परिकीर्तिता॥"¹¹

अर्थात् मन संकल्प-विकल्पात्मक है। मन में तरह-तरह के विचार उठते रहते हैं अतः मन को विचारशून्य करके परमात्मा के ध्यान में लगाया जाता है, तो यह प्रयत्न धारणा कहलाती है।

(v) **तर्क** - शास्त्र के अनुकूल विचार करना तर्क है-

“आगमस्य अविरोधेन ऊहनं तर्क उच्यते”¹²

अर्थात् श्रुति, स्मृति आदि शास्त्रों के विचारों पर चिन्तन, मनन, निदिध्यासन करना तर्क कहलाता है।

(vi) **समाधि** - चित्त की एकाग्रता या स्थिरता की अन्तिम सीमा समाधि होती है। इस अवस्था में जीवात्मा परमात्मा में मिल जाती है।

“समं मन्येत यं लब्ध्वा स समाधिः प्रकीर्तितः”¹³

जिसे प्राप्त कर अन्य प्राप्त होने वाले द्रव्यों को तुच्छ मान लिया जाता है, वह अवस्था समाधि है। यह जीवात्मा और परमात्मा की समता अवस्था है।

षडंगों के निरूपण के पश्चात् समाधि अवस्था तक पहुँचने के आवश्यक वर्णों का भी उपनिषत्कार ने प्रतिपादन किया है। जिससे कि साधक की लक्ष्य प्राप्ति सुगम हो सके।

समाधि सिद्धि के उपाय -

स्वच्छ व दोषरहित भूमि पर पद्मासन, स्वस्तिकासन या भद्रासन इनमें से किसी एक योगासन को लगाकर उत्तर की ओर मुँह करके बैठना चाहिए तथा सप्त व्याहृतियों के साथ यथाशक्ति गायत्री मंत्र का जाप करना चाहिए। फिर एक अंगुली से नाक के एक छिद्र को बन्द कर, दूसरे छिद्र से वायु खींचें। फिर दोनों छिद्रों को बन्द कर प्राण वायु को रोक कर ओंकार का जप करना चाहिए।

ओम् का जप करते हुए धीरे-धीरे वायु को निकाल दें। इस प्रकार ओंकार का अनेकों बार जप करते रहने का निर्देश दिया गया है।

स्थूल जगत् से सूक्ष्म जगत् का ध्यान नाभि से ऊपर अनाहत चक्र, आज्ञाचक्र, सहस्रार आदि में करना चाहिए।

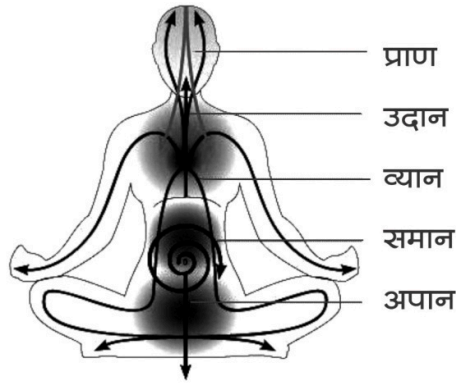
आसन पर बिना हिले अचल रूप से स्थित होकर योग का अभ्यास करना चाहिए। योगाभ्यास नियत योजना के अनुसार करना चाहिए। इसमें बारह मात्राओं तक श्वास रोकने का नियम बताया गया है। यह ओम् नाद बाह्य प्रयत्न से उच्चरित नहीं होता। यह न व्यंजन, न स्वर, न यह कण्ठ, तालु आदि से उच्चरित होता है।

प्रणव का प्राणायाम रूप में अभ्यास करें तथा मन को नाद रूप में निरन्तर लगाए रखें। योगी जिस मार्ग को अपने लक्ष्य का मार्ग मानता है, उसी मार्ग से प्राण मन के साथ जाता है अतः योगी को अपने मार्ग पर प्रमाद रहित होकर नित्य अभ्यास करना चाहिए।

हृदयद्वार, वायुद्वार, मूर्धद्वार, मोक्षद्वार ये चार द्वार हैं। मोक्षद्वार बिल, सुषिर तथा मण्डल इन तीन प्रकारों से खुला है। ये सात द्वार आत्मदर्शन के द्वार बताए गए हैं। जिन्हें ब्रह्मविद् वरीय श्रेणी के योगी जानते हैं। हृदयद्वार ही वायु के प्रवेश का द्वार है। इसी के द्वारा प्राण सुषुम्ना मार्ग में प्रवेश करता है। इससे ऊपर ऊर्ध्वगमन का मार्ग है और सबसे ऊपर मोक्षद्वार ब्रह्मरन्ध्र है। इसी को योगी सूर्यमण्डल मानते हैं। इसी सूर्यमण्डल या ब्रह्मरन्ध्र को बेधकर प्राण त्यागने से मुक्ति होती है।

समाधि सिद्धि के उपायों में पञ्च प्राण (वायु) का महत्त्वपूर्ण स्थान है अतः प्राण (वायु) के स्थान व रंग आदि को भी वर्णित किया गया है।

पञ्चवायु के स्थान व रंग -



चित्र 4.1 पञ्चप्राण

जिस प्राण में साढ़े तीस अंगुल लम्बा प्राण (श्वास) स्थित है, वही इस प्राणवायु का आश्रय रूप है और यही प्राण नाम से विख्यात है। इन्द्रियगोचर बाह्य प्राण में एक लाख तेरह हजार छः सौ अस्सी निःश्वास दिन-रात में आते हैं।

"प्राण आद्यो हृदि स्थाने अपानस्तु पुनर्गुदे।
समानो नाभि देशे तु उदानः कण्ठमाश्रितः॥
व्यानः सर्वेषु चांगेषु व्याप्य तिष्ठति सर्वदा।
अथ वर्णास्तु पञ्चानां प्राणादीनामनुक्रमात् ॥
रक्तवर्णो मणिप्रख्यः प्राणवायुः प्रकीर्तितः।
अपानस्तस्य मध्ये तु इन्द्रगोपसमप्रभः॥

समानस्तु द्वयोर्मध्ये गोक्षीरधवलप्रभः।

आपाण्डर उदानश्च व्यानो हि अर्चिः समप्रभः॥"14

अर्थात् प्राण वायु का निवास स्थान हृदय है तथा प्राणवायु लाल रंग की मणि के समान होती है। अपान वायु गुदा में रहती है तथा इन्द्रगोप (बीरबहूटी) नामक कीड़े के समान लाल वर्ण की होती है। समान वायु नाभि में स्थित होती है तथा गाय के दूध के समान होती है। उदान वायु कण्ठ में रहती है तथा धूसर वर्ण (मटमैले) की होती है तथा व्यान वायु सभी अंगों में सर्वदा व्याप्त रहती है तथा अग्नि शिखा के समान वर्ण वाली प्रकाशमयी होती है।

योग का चिन्तनीय विषय -

पृथिवी तत्त्व की धारणा के समय प्रणव की पाँच मात्राओं का, जल तत्त्व की धारणा के समय चार मात्राओं का, अग्नितत्त्व की धारणा के समय तीन मात्राओं का, वायुतत्त्व की धारणा के समय दो मात्राओं का, आकाशतत्त्व की धारणा के समय एक मात्रा का और स्वयं प्रणव के रूप में उसकी अर्द्धमात्रा का ही चिन्तन करना चाहिए। अपने देह में मानसिक धारणा द्वारा पञ्चभूतों की सिद्धि और चिन्तन करना चाहिए। इस प्रकार प्रणव धारणा द्वारा पञ्चभूतों पर अधिकार प्राप्त हो जाता है। ब्रह्म पाँच महाभूतों से बनी प्रकृति से अलग है इसलिए उसमें पाँच महाभूतों की एक भी मात्रा नहीं होती। ब्रह्म मात्रारहित है। इसी मात्रा शून्य सूक्ष्म ब्रह्म का ध्यान और चिन्तन करना चाहिए।

योगाभ्यास का फल -

जो योगी भय, क्रोध, आलस्य, अतिनिद्रा, अधिक जागना, बहुत भोजन करना या बिल्कुल भोजन न करना इन सात आदतों को छोड़कर नियम पालन पूर्वक नित्य योगाभ्यास करता है, वह तीन मास बाद स्वयं ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेता है। चार मास में वह देवदर्शन करने लगता है, पाँच मास में देवताओं के समान अर्थात् ब्रह्मस्वरूप दिखने लगता है तथा छठे मास में अपनी इच्छा से जीवन्मुक्ति अवस्था (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है। योगी का प्राण सूर्यमण्डल को बेधकर मस्तक में पहुँच जाता है अर्थात् सहस्रार में पहुँच जाता है। उस योगी की मृत्यु किसी भी स्थान पर हो वह पुनर्जन्म के चक्कर में नहीं पड़ता अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है -

"यस्येदं मण्डलं भित्वा मारुतो याति मूर्धनि।

यत्र यत्र म्रियेत् वापि न स भूयोऽभिजायते न स भूयोऽभिजायते॥"15

निष्कर्ष - प्रस्तुत उपनिषद् में प्रणव जप में षडंग योग की भूमिका का प्रतिपादन किया गया है। प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, तर्क तथा समाधि के क्रमशः अभ्यास के साथ प्रणव (ओंकार) का जप ही कैवल्य की प्राप्ति कराता है। इसमें इन्द्रियों तथा मन को आत्मचिन्तन में लगाना प्रत्याहार, ईश्वर का चिन्तन ध्यान, रेचक, पूरक और कुम्भक इन तीन को प्राणायाम के अंग, मन को आत्मा में लय कर परमात्मा का ध्यान करना धारणा, शास्त्रानुकूल विचार करना तर्क तथा जीवात्मा और परमात्मा की सम अवस्था को समाधि बताया गया है। समाधिसिद्धि उपाय के अन्तर्गत पद्मासन, स्वस्तिकासन तथा भद्रासन इन तीन आसनों की भी चर्चा की गई है। प्राणायाम के साथ प्रणव जप करने का निर्देश दिया गया है तथा कुम्भक प्राणायाम में सात, आठ व बारह मात्राओं तक श्वास रोकने का नियम बताया गया है। हृदयद्वार, वायुद्वार, मूर्धद्वार, मोक्षद्वार, बिल, सुषिर तथा मण्डल ये सात द्वार आत्मा के दर्शन के मार्ग बताए गए हैं। प्राणवायु का प्रमाण, स्थान तथा रंग भी बताए गए हैं। योगी को भय, क्रोध, आलस्य, अतिनिद्रा, रात्रि जागरण, अतिभोजन या निराहार इन आदतों को सदा के लिए छोड़ने हेतु निर्देशित किया गया है, अन्त में पुनर्जन्म से विमुक्त होकर परब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति को योग का उत्कृष्ट फल बताया गया है।

उपनिषद् के वर्ण्य विषय में क्रमबद्धता का अभाव सा दृष्टिगोचर होता है। तात्पर्य है कि सबसे पहले प्रणव जप को बताया गया है। 'अमृतनादोपनिषद्' नामकरण के अनुसार मुख्य प्रतिपाद्य को प्रथमतया वर्णित करना न्याय है किन्तु शास्त्र श्रवण के पश्चात् षड् योगांगों के अभ्यास के साथ प्रणव जप करना फिर जीवात्मा एवं परमात्मा की समतावस्था समाधि तक पहुँचना तथा समाधि सिद्धि के पश्चात् पर वैराग्य प्राप्त होता है। इसी प्रक्रिया को उपनिषद् में भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है, जिससे पाठक को भ्रम उत्पन्न होता है। इसके साथ ही प्रत्याहार का लक्षण पहले देकर छः योगांगों के नामकरण का अनुष्टुप् छन्द बाद में प्रस्तुत किया है। जिनका क्रम है- प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क व समाधि किन्तु विवेचन के समय प्रत्याहार के बाद प्राणायाम, धारणा, तर्क तथा समाधि को व्याख्यायित किया है, जो कि छन्द से भंग क्रम है। ध्यान का लक्षण, स्वरूपादि पृथक् से व्याख्यायित नहीं किया गया है फिर भी प्रस्तुत उपनिषद् की वर्ण्य वस्तु योग समाधि कैवल्य प्राप्ति की सामग्री प्रस्तुत करने में सफल है।

4.2. योगकुण्डल्युपनिषद् में योग तत्त्व मीमांसा

कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित योगकुण्डल्युपनिषद् तीन अध्यायों में विभाजित है। अन्य योग उपनिषदों के समान इस उपनिषद् की विषय-वस्तु कैवल्य प्राप्ति या विदेह मुक्ति से सम्बन्धित है। उपनिषद् के प्रारम्भ में मुख्य प्रतिपाद्य का प्रतिपादन करते हुए उपनिषत्कार कहते हैं -

"योगकुण्डल्युपनिषद् योगसिद्धिहृदासनम्।

निर्विशेषब्रह्मतत्त्वं स्वमात्रमिति चिन्तये॥"¹⁶

अर्थात् योगसिद्धि चाहने वाले साधकों के लिए यह उपनिषद् बहुत उपयोगी है। यह उपनिषद् निर्विशेष ब्रह्मतत्त्वं स्वमात्र का चिन्तन करता है।

ब्रह्मतत्त्वं के चिन्तन एवं प्राप्ति के लिए उपनिषद् सबसे आवश्यक तत्त्वं मानता है - 'चित्त की चंचलता को रोकना'। जैसा कि भगवद्गीता में लिखा है -

"चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥"¹⁷

अर्थात् हे कृष्ण! मन बहुत ही चंचल, अशांत, हठी व बलवान् है, उसका निग्रह वायु के समान दुष्कर है। वस्तुतः कैवल्य प्राप्ति में चित्त ही सबसे बड़ा बाधक है। योग सूत्रकार भी चित्तवृत्तियों के निरोध की बात सबसे पहले करते हैं। योगकुण्डल्युपनिषत्कार भी चित्त की चंचलता को प्रथमतया विवेचित करते हुए उसके मूल रूप से दो कारण - 'वासना एवं प्राणों की गति' बताते हैं तथा श्वास-प्रश्वास द्वारा प्राणवायु को वश में करने के अभ्यास एवं मिताहार जैसे वैराग्य से चित्त को वश में करने को कहते हैं। विविध आसनों, सरस्वती चालन, प्राणायाम, प्रमुख तीन बन्धों, योगाभ्यास से कुण्डलिनी जागरण, समाधि की अवस्था में चित्त मात्र का अनुभव इत्यादि प्रथम अध्याय के प्रतिपाद्य विदेहमुक्ति प्राप्ति के सोपानों के रूप में उपनिषत्कार ने ऋषि गौतम को बताए हैं। इह लोक से अजर-अमरत्व की प्राप्ति के लिए खेचरी मुद्रा को विशेष रूप से द्वितीय अध्याय में व्याख्यायित किया गया है तथा तृतीय अध्याय में ब्रह्मा ने शंकर जी से अमावस्या, प्रतिपदा और पूर्णिमा इन तीन लक्ष्यों का जो वास्तविक स्वरूप पूछा उसी का प्रतिपादन किया गया है। जीवन्मुक्ति व विदेहमुक्ति की प्राप्ति ब्रह्मत्व स्वरूप की प्राप्ति के साथ उपनिषद् का अन्त होता है। उपनिषद् में अध्ययवार प्रतिपादित विषयों का विवेचन निम्न प्रकार से है-

प्राणसिद्धि के उपाय -

चित्त की अस्थिरता के दो कारण होते हैं - वासना और वायु (प्राणगति)। साधक को सर्वप्रथम प्राणों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। प्राणसिद्धि अर्थात् प्राणों पर विजय प्राप्त करने के तीन साधन या उपाय बताए गए हैं -

1. मिताहार 2. आसन 3. शक्तिचालन मुद्रा

1. **मिताहार** - सबसे प्रमुख साधन जहाँ से वैराग्य का प्रारम्भ होता है। इसके विषय में उपनिषत्कार कहते हैं -

"सुस्निग्धमधुराहारश्चतुर्थाशविवर्जितः।

भुज्यते शिवसंप्रीत्यै मिताहारः स उच्यते॥"¹⁸

साधक को घी-दूध वाले और मीठे पदार्थ आधे पेट खाने चाहिए। पेट का चौथाई भाग पानी के लिए तथा चौथा भाग वायु के लिए खाली छोड़ देना चाहिए। हमे ईश्वर और जीवात्मा की प्रसन्नता के लिए भोजन करना चाहिए न कि स्वाद के लिए।

इस प्रकार आधा पेट भोजन से भरने तथा आधा भाग पानी व वायु के लिए खाली रखने का निर्देश दिया है क्योंकि अर्धपूरित उदर प्राणायाम सिद्धि के लिए परमावश्यक है।

2. **आसन** - पूर्णपूरित उदर से आसन सिद्धि नहीं हो सकती अतः मिताहारी साधक की आसन सिद्धि सरलता से हो जाती है। आसन का वर्णन करते हुए लिखा है -

आसनं द्विविधं प्रोक्तं पद्मं वज्रासनं तथा॥"¹⁹

आसनों में दो मुख्य आसन बताए हैं - पद्मासन और वज्रासन और यही योगाभ्यास के लिए उपयोगी आसन माने गए हैं।

(क) **पद्मासन** - **"ऊर्वोरूपरि चेद्धते उभे पादतले यथा।**

पद्मासनं भवेदेतत्सर्वपापप्रणाशनम्॥"²⁰

दोनों पैरों की जँघाओं पर एक - दूसरे के ऊपर तलवों को सीधा रखना पद्मासन कहलाता है तथा इसके अभ्यास से शरीर के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

(ख) **वज्रासन** - **"वामाङ्घ्रिमूलं कदान्धः अन्यं तदुपरि क्षिपेत्।**

समग्रीवशिरः कायो वज्रासनमितीरितम्॥"²¹

बाएँ पैर की एड़ी को योनि स्थान में रखे और दाहिने पैर की एड़ी को उसके ऊपर रखे, गर्दन, सिर तथा शरीर को समान और सीधा रखे तो यह वज्रासन होता है।

3. शक्तिचालन मुद्रा - मितहारी व आसन सिद्ध साधक ही शक्तिचालनी मुद्रा का अभ्यास कर पाता है। यही मुख्य मुद्रा है, जो कैवल्य या विदेह मुक्ति तक पहुँचाती है। शक्तिचालनी मुद्रा का वर्णन करते हुए उपनिषत्कार कहते हैं कि -

"कुण्डल्येव भवेच्छक्तिस्तां तु संचालयेदबुधः।

स्वस्थानादाभ्रवोर्मध्यं शक्तिचालनमुच्यते॥²²"

कुण्डलिनी ही प्रमुख व मुख्य शक्ति है। ज्ञानी साधक इसे चालन क्रिया द्वारा दोनों भौहो के मध्य में ले जाता है, इसी क्रिया को शक्तिचालिनी कहते हैं अर्थात् मूलाधार चक्र से लेकर आज्ञाचक्र तक के चक्रों को भेदना शक्तिचालन कहलाता है तथा इसे कुण्डलिनी चालन भी कहा जाता है।

कुण्डलिनी या शक्तिचालन के साधन -

कुण्डलिनी चालन या शक्तिचालन के दो मुख्य साधन या उपाय बताए गए हैं -
(क) सरस्वती चालन (ख) प्राणरोध (प्राणायाम)।

इन दोनों उपायों का निरन्तर अभ्यास करने से सर्पाकार कुण्डलिनी जागकर सीधी हो जाती है -

"तत्साधने द्वयं मुख्यं सरस्वत्यास्तु चालनम्।

प्राणरोधमथाभ्यासादृज्वी कुण्डलिनी भवेत्॥²³"

(क) सरस्वती चालन विधि - योग द्वारा कुण्डलिनी जाग्रत करने की यह सबसे प्रमुख विधि है। प्रस्तुत उपनिषद् में इस विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। उज्जायी, शीतली एवं भस्त्रिका कुम्भक में से भस्त्रिका कुम्भक का विस्तार पूर्वक वर्णन है। अन्य दो की अपेक्षा भस्त्रिका कुम्भक का निरन्तर अभ्यास करने से कुण्डलिनी शीघ्र जाग्रत हो जाती है। उपनिषद् में वर्णित सरस्वती चालन मुद्रा की विधि व फल का वर्णन इस प्रकार बताया गया है -

अरून्धती नाड़ी को ही सरस्वती नाड़ी कहते हैं तथा इसे शब्दगर्भा सरस्वती भी कहा गया है। इस नाड़ी का चालन करने से कुण्डलिनी अपने आप चलने लगती है अर्थात् स्वयं जाग जाती है। जब श्वास इडा अर्थात् बाएँ स्वर से चल रहा हो तो योगी को पद्मासन लगाकर निश्चल भाव से बैठना चाहिए तथा बारह अंगुल लम्बे और चार अंगुल चौड़े वस्त्र को सरस्वती नाड़ी के चारो ओर लपेटना चाहिए। अंगूठे और अंगूठे से अगली अंगुली तर्जनी से और दोनों हाथों से नाक के स्वर पकड़ने चाहिए और पहले दाहिनी से फिर बायीं नासिका से बार-बार रेचक और पूरक करना चाहिए। साथ ही उसका मानसिक भावना द्वारा बायीं ओर बार-बार चालन करते रहना चाहिए। इस

प्रकार दो मुहूर्त तक सरस्वती का चालन करते रहे तत्पश्चात् सुषुम्ना नाड़ी को जो कुण्डलिनी के समीप में रहती है, उसे थोड़ा ऊपर की ओर खींचना चाहिए।

वस्तुतः हठयोग के अनुसार सुषुम्ना के अतिरिक्त इडा, पिंगला सहित पन्द्रह नाडियाँ प्राणवाहिनी होती हैं किन्तु इडा, पिंगला व सुषुम्ना ये तीन नाडियाँ क्रियात्मक योग की दृष्टि से प्रधान हैं। इनमें सुषुम्ना श्रेष्ठ, मुख्य एवं अत्यन्त सूक्ष्म नाड़ी है। इसे सरस्वती नाड़ी भी कहा जाता है। गुदा के पास अलग-अलग स्थानों से ये नाडियाँ निकलती हैं, जिसे मुक्त त्रिवेणी कहा जाता है तथा भूमध्य में जहाँ ये तीनों नाडियाँ मिलती हैं, उसे युक्त त्रिवेणी कहा जाता है।

सरस्वती चालन विधि के अभ्यास से कुण्डलिनी सुषुम्ना के मुख में चलने लगती है। पेट को ऊपर की तरफ खींचकर तथा कण्ठ का संकोचन कर अर्थात् पेट में उड्डीयान बन्ध लगा कर और जालन्धर बन्ध से गला बन्द करके सरस्वती चालन का अभ्यास करने से वायु वक्षस्थल से ऊपर जाने लगती है।

सरस्वती चालन के अभ्यास में प्राणायाम करते हुए सूर्यनाड़ी से अर्थात् दाएँ स्वर से प्राणवायु निकलनी चाहिए। कण्ठ से संकोचन कर लेने पर वायु वक्षस्थल से ऊपर चली जाती है अर्थात् जालन्धर बन्ध लगाने से फेफड़ों में भरी वायु ऊपर जाने लगती है।²⁴

सरस्वती चालन का फल - सरस्वती चालन से कुण्डलिनी सुषुम्ना नाड़ी के मुख में प्रवेश करके उर्ध्वगामी हो जाती है तथा प्राण अपना स्थान छोड़कर सुषुम्ना में प्रवाहित होने लगता है। इसके चालन से योगी के सभी प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं। पेट की गांठ, जलोदर, तिल्ली बढ़ना आदि पेट सम्बन्धी अन्य रोग शक्ति चालन से निश्चितरूप से समाप्त हो जाते हैं -

"गुल्मं जलोदरः प्लीहा ये चान्ये तुन्दमध्यगाः।

सर्वे तु शक्तिचालेन रोगा नश्यन्ति निश्चयम्॥"²⁵

2. प्राणनिरोध (प्राणायाम) - हमारे शरीर में चलने वाली वायु प्राणवायु कहलाती है और प्राणवायु शरीर में सर्वत्र प्रवाहित होती है। जब इस प्रवाह को कुम्भक के द्वारा स्थिर किया जाता है, तो यह प्राणनिरोध या प्राणायाम कहलाता है।

यह दो प्रकार का बताया गया है - सहित कुम्भक प्राणायाम व केवल कुम्भक प्राणायाम।

(i) सहित कुम्भक - सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली और भस्त्रिका ये चार प्रकार के प्राणायाम हैं। इन चारों में रेचक, पूरक के साथ जो कुम्भक अर्थात् प्राणवायु को रोकने

का अभ्यास किया जाता है, वह सहित कुम्भक प्राणायाम कहलाता है तथा केवल कुम्भक प्राणायाम की सिद्धि के पश्चात् ही सहित कुम्भक के अभ्यास का निर्देश दिया गया है।

(क) सूर्यभेदी कुम्भक प्राणायाम -

विधि - "दक्षनाइया समाकृष्य बहिष्ठं पवनं शनैः।

यथेष्ठं पूरयेद् वायुं रेचयेदिडया ततः॥"²⁶

अर्थात् नाक के दाएँ सुर से बाहर की वायु धीरे-धीरे खींचकर फेफड़ों में पर्याप्त मात्रा में वायु भर कर इसे बाएँ सुर (इडा) से धीरे-धीरे रेचक करना चाहिए अर्थात् बाहर निकाल देनी चाहिए तथा इस प्राणायाम का अभ्यास बार-बार करना चाहिए।

लाभ - "चतुष्कं वातदोषं तु कृमिदोषं निहन्ति च"²⁷

यह प्राणायाम चार प्रकार के वातदोषों को और पेट के कीड़ों को नष्ट कर देता है।

(ख) उज्जायी कुम्भक प्राणायाम -

विधि - "मुखं संयम्य नाडीभ्यामाकृष्य पवनं शनैः॥

यथा लगति कण्ठात्तु हृदयावधि सस्वनम्।

पूर्ववत् कुम्भयेत् प्राणं रेचयेदिडया ततः॥"²⁸

अर्थात् मुख बन्द करके दोनों नासिकाओं से वायु को धीरे-धीरे खींचे, जिससे वह प्रवेश के साथ श्वास से ध्वनि करती हुई कण्ठ से लेकर हृदय तक भर जाए। तब पूर्ववत् कुम्भक करके बायीं नासिका से रेचक करें। यह प्राणायाम चलते हुए या बैठ कर किसी भी स्थिति में किया जा सकता है।

लाभ - इस प्राणायाम का फल बताते हुए उपनिषत्कार कहते हैं कि -

"शीर्षोदितानलहरं गलश्लेष्महरं परम्।

सर्वरोगहरं पुण्यं देहानलविवर्धनम्॥

नाडीजलोदरं धातुगतदोषविनाशनम्॥"²⁹

अर्थात् इससे मस्तक की उष्णता, गले का कफ और अन्य अनेक रोग दूर हो जाते हैं। जठराग्नि बढ़ती है। नाड़ी, जलोदर तथा धातुरोग भी समाप्त हो जाते हैं।

(ग) शीतली कुम्भक प्राणायाम -

विधि - "जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत् कुम्भकादनु।

शनैस्तु घ्राणरन्धाभ्यां रोचयेदनिलं सुधीः॥"³⁰

शीतली प्राणायाम में वायु को जिह्वा द्वारा खींचकर पहले की तरह कुम्भक के बाद नासिका से धीरे धीरे रेचक किया जाता है अर्थात् दोनों नासिका मार्गों से वायु को धीरे-धीरे निकालना चाहिए। इस उपनिषद् में शीतली प्राणायाम के अन्तर्गत जीभ की विशेष स्थिति का उल्लेख नहीं किया गया जबकि अन्य हठ यौगिक ग्रन्थों में जीभ को दोनों ओर से मोड़कर पक्षी की चोंच जैसा नुकीला व पतला करके वायु खींचना बताया गया है।

लाभ - उपनिषत्कार शीतली प्राणायाम का फल बताते हुए कहते हैं कि -

"गुल्मप्लीहादिकान्दोषान्क्षयं पित्तं ज्वरं तृषाम्।

विषाणि शीतली नाम कुम्भकोऽयं निहन्ति च॥"³¹

अर्थात् पेट की गांठ, जिगर व तिल्ली के रोग, तपेदिक, बुखार, पित्त विकार, भूख-प्यास और सांप आदि विषैले जन्तुओं के विष का प्रभाव शीतली कुम्भक प्राणायाम से नष्ट हो जाते हैं।

(घ) भस्त्रिका कुम्भक प्राणायाम -

विधि - भस्त्रिका कुम्भक प्राणायाम की विधि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि पद्मासन लगाकर गर्दन और शरीर को सीधा रख कर मुँह बन्द करके वायु को सावधानी पूर्वक नासिका से रेचक करना चाहिए। फिर वायु को वेगपूर्वक शब्द करते हुए ऐसे खींचे कि कण्ठ, तालु, कपाल तथा हृदय को रेचक का अनुभव हो अर्थात् वायु को इस प्रकार ध्वनि सहित वेग से खींचे कि वह हृदय कमल तक भर उठे तथा कण्ठ से कपाल तक पहुँच जाए। रेचक के बाद श्वास को फिर हृदय तक भरना चाहिए। इस प्रकार वायु को बार-बार वेगपूर्वक इस प्रकार खींचे और भरे जैसे लुहार की धौंकनी चलती है। इस विधि से शरीर स्थित वायु को संभालकर चलाना चाहिए। जब शरीर थक जाए तब सूर्य नाड़ी से पूरक करें और तर्जनी के अतिरिक्त चारों अंगुलियों से नासिका को मध्य से दृढतापूर्वक पकड़ कर कुम्भक करें फिर बायीं नाक (इडा नाड़ी) से रेचक करें।³²

लाभ - भस्त्रिका कुम्भक प्राणायाम के लाभ को वर्णित करते हुए कहा गया है कि -

"कण्ठोत्थितानलहरं शरीराग्निविवर्धनम्॥

कुण्डलीबोधकं पुण्यं पापघ्नं शुभदं सुखम्।

ब्रह्मनाडी मुखान्तस्थकफाद्यर्गलनाशनम्।

गुणत्रयसमुद्भूतग्रन्थित्रयविभेदकम्।

विशेषणैव कर्तव्यं भस्त्राख्यं कुम्भकं त्विदम्॥"³³

अर्थात् यह प्राणायाम गले की गर्मी को दूर करता है तथा शरीर की गर्मी को बढ़ाता है। कुण्डलिनी शक्ति को जगाता है। यह पापों को नष्ट करने वाला, पुण्यकारी, पापनाशक, शुभ और सुखदायक प्राणायाम है।

ब्रह्मनाडी (सुषुम्ना) के मुख पर जो कफ आदि रहता है, उसको नष्ट कर देता है। यह सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों से उत्पन्न तीनों ग्रन्थियों का भेदन करने वाला है इसलिए ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि तथा रुद्र ग्रन्थि इन तीन ग्रन्थियों को तोड़ने के लिए भस्त्रिका प्राणायाम का अभ्यास विशेषरूप से करना चाहिए।

कुम्भक अभ्यास नियम -

सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली और भस्त्रिका इन चार प्रकार के कुम्भक प्राणायामों का अभ्यास पहले दिन दस-दस बार, दूसरे दिन पन्द्रह-पन्द्रह बार तथा तीसरे दिन बीस-बीस बार करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन पाँच-पाँच कुम्भकों की संख्या बढ़ाते जाए। साथ ही उपनिषत्कार ने कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास तीनों बन्धों के साथ प्रतिदिन करने का निर्देश दिया है।

तीन बन्ध -

उपनिषत्कार के अनुसार उक्त चारों प्रकार के कुम्भक प्राणायामों के साथ या इन प्राणायामों में निपुण योगी को तीन बन्ध अवश्य लगाने चाहिए।

पहला मूलबन्ध है, दूसरा उड्डीयान बन्ध है तथा तीसरा जालन्धर बन्ध है।

1. मूलबन्ध - प्रथम मूलबन्ध का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि -

"अधोगतिमपानं वै ऊर्ध्वगं कुरुते बलात्।

आकुञ्चनेन तं प्राहुर्मूलबन्धोऽयमुच्यते॥³⁴"

लक्षण - शरीर के अधोभाग (मूलाधार) में विचरण करने वाली अपान वायु को गुदा को संकुचित कर ऊपर उठाने की प्रक्रिया को मूलबन्ध कहते हैं अर्थात् मलमूत्र मार्ग का आकुञ्चन करते हुए अपान वायु को बलपूर्वक ऊर्ध्वगामी किया जाता है, तो वह मूलबन्ध होता है।

लाभ - मूलबन्ध लगाने से नीचे जाने वाली अपान वायु के ऊपर उठने पर नाभि के नीचे त्रिकोण में स्थित जठराग्नि अपान वायु से प्रदीप्त हो जाती है। जठराग्नि प्रदीप्त होने पर अपान वायु और अग्नि ऊपर उठकर प्राण वायु में मिल जाती है। प्राणवायु से मिलकर शरीर की अग्नि और अधिक प्रदीप्त हो जाती है। शरीर की अग्नि के ताप से सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति जागकर सीधी हो जाती है जैसे - डण्डे की मार से सर्पिणी फुफकार मार कर सीधी होकर अपने बिल में घुस जाती है,

उसी प्रकार जागी हुई कुण्डलिनी सीधी होकर सुषुम्ना में प्रवेश कर जाती है। जो कि कुण्डलिनी के पूर्ण जाग्रत होने की स्थिति है अतः कुण्डलिनी जागरण हेतु मूलबन्ध का नित्य अभ्यास करना चाहिए।

2. उड्डीयान बन्ध - "कुम्भकान्ते रेचकादौ कर्तव्यस्तूड्डीयाणकः।

बन्धो येन सुषुम्नायां प्राणस्तूड्डीयते यतः॥³⁵"

लक्षण - कुम्भक के अन्त में और रेचक के प्रारम्भ में उड्डीयान बन्ध लगाना चाहिए। इस बन्ध से प्राणवायु उड़ कर सुषुम्ना में चली जाती है अर्थात् इस बन्ध के अभ्यास से प्राण का सुषुम्ना नाड़ी में उत्थान होता है इसलिए योगी इस बन्ध को उड्डीयान कहते हैं।

उपनिषत्कार उड्डीयान बन्ध की विधि का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वज्रासन में बैठ कर दोनों पैरों को एड़ी के पास हाथों से कसकर पकड़ना चाहिए। श्वास निकाल कर पेट को पीठ की ओर खींचें और हृदय तथा गले को भी तनाव देकर खींचें।

लाभ - "शनैः शनैर्यदा प्राणस्तुन्दसन्धिं निगच्छति।

तुन्ददोषं विनिर्धूय कर्तव्यं सततं शनैः॥"³⁶

इस बन्ध के अभ्यास से जब प्राणवायु पेट और फेफड़ों के बीच के स्थान अर्थात् उदर की अन्तः सन्धियों में प्रवेश करती है तब पेट के सारे दोष दूर हो जाते हैं इसलिए इस बन्ध का अभ्यास धीरे-धीरे लगातार करना चाहिए।

3. जालन्धर बन्ध - पूरक के अन्त में जालन्धर नामक तृतीय बन्ध लगाने का निर्देश दिया गया है। इस बन्ध का लक्षण वर्णित करते हुए कहा गया है कि -

"पूरकान्ते तु कर्तव्यो बन्धो जालन्धराभिधः।

कण्ठसंकोचरूपोऽसौ वायुमार्गनिरोधकः॥"³⁷

लक्षण - पूरक अर्थात् श्वास भरने के बाद में वायु को रोकने के लिए कण्ठ का संकुचन करते हैं, जिसे जालन्धर बन्ध कहते हैं अर्थात् कण्ठ संकोचन की क्रिया जालन्धर बन्ध कहलाती है। यह बन्ध ठोड़ी को कण्ठकूप या गले के छेद में दबा कर लगाया जाता है। जिससे वायुमार्ग का अवरोध हो जाता है। यहाँ उपनिषत्कार ने इस बन्ध के अभ्यास से होने वाले लाभ या फल को उल्लेखित नहीं किया है।

इस प्रकार नीचे मूलाधार में मूलबन्ध, गले में जालन्धर बन्ध तथा बीच में उड्डीयान बन्ध लगाया जाता है। ये तीन बन्ध कुम्भक प्राणायाम में एक साथ क्रमशः लगाने से प्राणवायु सुषुम्ना में प्रविष्ट होने लगती है।

कुण्डलिनी बोध -

"शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभाशुभा।

मूलकन्दं फणाग्रेण दृष्ट्वा कमलकन्दवत्॥

मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रसमन्विता।³⁸

कुण्डलिनी नाम की शक्ति कमलनाल के तन्तु जैसी बहुत सूक्ष्म है। यह शक्ति मूलाधार से सहस्रार तक फैली हुई सुषुम्ना नाड़ी के सिरे को दबा कर मूलाधार में सोई रहती है। कुण्डलिनी अपने मुख से कमल के बीज की तरह मूलकन्द को ग्रस लेती है अर्थात् कुण्डलिनी अपनी पूँछ को मुख में डालकर ब्रह्मरन्ध्र के मुख को ढक कर सोती रहती है। कुण्डलिनी जागरण के लिए साधक को पद्मासन लगाकर सावधान मन से अपनी गुदा का संकुचन करके मूलबन्ध लगाकर प्राणायाम द्वारा वायु को ऊपर उठाना चाहिए।

अपान वायु के जोर से स्वाधिष्ठान चक्र की अग्नि प्रदीप्त हो उठती है। तब शरीर के अग्नि ताप और अपानवायु के आघात से साँप की तरह कुण्डली मार कर सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति जाग जाती है और ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि तथा रुद्रग्रन्थि को तथा षट् चक्र का भेदन करती हुई सहस्र दल कमल में पहुँच जाती है। यहाँ पहुँचकर शिव से शक्तिरूप में मिल कर आनन्दमग्न हो जाती है। कुण्डलिनी शक्ति का ब्रह्म के साथ मिलन या ऐक्यभाव ही मोक्षदायिनी और संसार के बन्धनों से मुक्त कराने वाली परावस्था है। इसे समाधि योग कहा गया है।

समाधिस्थ योगी का स्वरूप -

समाधि में निमग्न योगी का आधिभौतिक शरीर आधिदैविक शरीर में लीन हो जाता है अर्थात् परमात्वभाव में लीन हो जाता है। समाधिस्थ योगी का शरीर अत्यन्त विमल होकर सूक्ष्म शरीर की तरह ब्रह्मभाव से युक्त हो जाता है। शरीर जड़ता को त्याग देता है तथा मन निर्मल और चिन्मय हो जाता है। समाधिस्थ योगी जन्म-मरण की भावना से और काल के भय की आशंका से मुक्त हो जाता है। बुद्धि सभी प्रकार के भ्रमों व सन्देहों से मुक्त हो कर अपने वास्तविक स्वरूप में स्थिर हो जाती है। जिस प्रकार रस्सी में साँप का भ्रम होता है, सीपी में चाँदी का तथा स्त्री में पुरुष का भ्रम होता है, उसी प्रकार योगी अपने शरीर सम्बन्धी भ्रम को समझ जाता है कि वह मिथ्या है अर्थात् समस्त अविद्यामूलक भ्रम आदि के निर्मूल हो जाने पर उसमें किसी भी प्रकार के लोभ, मोह, शोक आदि विकार नहीं रहते। इस स्थिति में स्वयं प्रकाशमान आत्मा तथा चिदात्मा के बीच भेद समाप्त हो जाता है -

"पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं लिङ्गसूत्रात्मनोरपि।

स्वापाव्याकृतयोरैक्यं स्वप्रकाशचिदात्मनोः॥³⁹"

अर्थात् पिण्ड (देह) और ब्रह्माण्ड का, लिङ्ग शरीर (सूक्ष्म शरीर) और सूत्रात्मा का भेद समाप्त हो कर स्व आत्मा और चिदात्मा में ऐक्यभाव हो जाता है अर्थात् इस स्थिति में पहुँचने पर पिण्ड और ब्रह्माण्ड में, लिङ्ग शरीर और आत्मा में, निद्रा और अव्याकृति समाधि में तथा स्वप्रकाश और चिदात्मा में कोई भेद बुद्धि नहीं रह जाती। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'नेह नानास्ति किञ्चन' का सहज बोध होने लगता है।

खेचरी विद्या -

उपनिषत्कार ने खेचरी विद्या के अन्तर्गत खेचरी विद्या का महत्त्व, खेचरी मन्त्र, खेचरी के अभ्यास क्रम व लाभ को समुपस्थापित किया है।

सर्वप्रथम खेचरी विद्या के माहात्म्य को वर्णित करते हुए कहा गया है कि -

"जरामृत्युगदघ्नोः यः खेचरीं वेत्ति भूतले।

ग्रन्थतश्चार्थतश्चैव तदभ्यासप्रयोगतः॥"⁴⁰

अर्थात् इस विद्या को जानकर मनुष्य इस लोक में अजर-अमर हो जाता है अतः मृत्यु, रोग तथा बुढ़ापे से ग्रस्त मनुष्यों को इस विद्या का अभ्यास करना चाहिए। इसके लिए व्यक्ति को शास्त्र पढ़कर और गुरु से खेचरी की क्रियात्मक विधि सीखकर खेचरी का नियमित अभ्यास करना चाहिए। खेचरी विद्या बड़ी कठिन है तथा इसका अभ्यास और भी कठिन है। खेचरी विद्या के अभ्यास को सीखने में कई जन्म लग जाते हैं फिर भी इसका उपयोग करना सौ जन्मों में भी नहीं आता।

परमात्मभाव से कई जन्मों तक खेचरीमुद्रा का अभ्यास करने के बाद किसी-किसी योगी को अनेक जन्मों के बाद इस विद्या का उपयोग करना आ पाता है। लेकिन शास्त्रों से और गुरु से खेचरी के उपयोग का ज्ञान प्राप्त कर योगी संसार से छूटकर शिवत्व को प्राप्त होता है। सच्चे शास्त्र ज्ञान का होना भी अत्यावश्यक है क्योंकि शास्त्र बिना गुरु भी यथार्थ बोध नहीं करा सकता। जब तक यथार्थ शास्त्र की प्राप्ति न हो तब तक शास्त्रों का तात्पर्य समझाने वाले और खेचरी विद्या का उपयोग सिखाने वाले गुरु का सहारा लेना चाहिए। जहाँ कहीं भी इस दिव्य योग का उपदेश देने वाला गुरु हो वहाँ उसके पास जाकर खेचरी विद्या का अभ्यास मन लगाकर करना चाहिए।

यह गुप्त विद्या है इसलिए किसी अन्य के सम्मुख इसे प्रकट नहीं करना चाहिए। इसे हर तरह से प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखा जाना चाहिए। योगी खेचरी विद्या को जानकर खेचरी को सिद्ध कर लेता है।

खेचरी बीज मन्त्र - बीज मन्त्र सहित खेचरी का अभ्यास करने से योगी खेचरी (देवताओं) का अधिपति बनकर देवताओं के बीच रहता है -

"खेचर्या खेचरीं युञ्जन् खेचरी बीजपूरया॥

खेचराधिपतिः भूत्वा खेचरेषु सदा वसेत्।

खेचरावसथं वह्निमम्बुमण्डलभूषितम्॥⁴¹"

खेचरों (देवताओं) का आवास आकाश है और उसका वाचक 'ह' है, खेचर अवस्था (धारणा शक्ति) का प्रतीक 'ई' है, अग्नि का वाचक 'र' है तथा अम्बुमण्डल या पानी की बूंद की अनुस्वार है। इस प्रकार सब का योग करने से ह+ई+र+म् अर्थात् हीं होता है जो कि खेचरी का बीज मन्त्र है। इसी से खेचरी योग सिद्ध होता है।

सोमांश (चन्द्र बीज) का अक्षर 'स' है और इसका प्रतिलोम नवाँ अक्षर 'भ' है तथा आठवाँ अक्षर विलोम से 'म' है। 'म' से उल्टा गिनने पर पाँचवा अक्षर 'प' है फिर चन्द्र बीज 'स' है। ये सब वर्ण अनुस्वार सहित हैं और इस खेचरी मन्त्र का अन्तिम अक्षर 'क्ष' है। इन सातों अक्षरों को मिलाकर "हं भं सं पं सं क्षं" यह खेचरी का बीजमन्त्र होता है। परमहंस स्वामी अनन्त भारती ने 'योग उपनिषद् संग्रह' नामक पुस्तक के योगकुण्डल्युपनिषद् में खेचरी बीज मन्त्र को व्याख्यायित करते हुए कहा है कि सोम और इन्दु शब्द का अर्थ स्वर अक्षर है। प्रतिलोम क्रम से इसका नवाँ अंश अवर्ण है। प्रतिलोम से तृतीयांश 'अ इ उ' होता है। इन्हें चन्द्ररूप करने पर इनका स्वरूप 'अँ इँ उँ' होगा। इन तीनों में प्रतिलोम आठवाँ स्वर 'ई' होगा। इसका परम अर्थात् दीर्घ रूप 'ई' होगा और उससे पाँचवाँ 'ऐ' कूट बीज है, जो अन्य व्यंजन वर्णों के साथ मिलकर 'हीं भीं श्रीं' आदि तान्त्रिक बीज मन्त्रों का निर्माण करते हैं।

यह खेचरी मन्त्र सब प्रकार की सिद्धियों को देने वाला है और यह सद्गुरु के उपदेश से ही सिद्ध होता है। जो योगी इस खेचरी मन्त्र का बारह दिनों तक प्रतिदिन पाँच लाख बार जप करता है, उसे बिना प्रयत्न के खेचरी सिद्ध हो जाती है। उसकी सारी विघ्न बाधाएँ दूर हो जाती हैं और देवता उससे प्रसन्न हो जाते हैं। इसके अभ्यास से शरीर पर पड़ी झुरियाँ और सिर के सफेद बाल होना समाप्त हो जाते हैं।

अतः खेचरी विद्या को भली-भाँति जानकर उसका विधिपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

खेचरी विद्या का अभ्यास क्रम -

खेचरी विद्या के अभ्यास क्रम का वर्णन करते हुए उपनिषत्कार कहते हैं कि सर्वप्रथम साधक को सात दिन तक गुरु के आदेशानुसार तालु के मूलस्थान पर जमी गन्दगी (कफ आदि) को साफ करना चाहिए। फिर स्नुहीपत्र (थूहर या सेहुण्ड के पत्ते) जैसे तेज धार वाले औजार से तालुमूल को एक बाल के बराबर काटे अर्थात् जीभ की जड़ जिस पतले तन्तु से जुड़ी हुई है, उसे थोड़ा सा काटे। जीभ की जड़ का तन्तु काटने के बाद उस घाव पर सेंधा नमक और हरड़ का चूर्ण लगाना चाहिए। सात दिन बाद इस तन्तु को फिर थोड़ा सा काटे।

यह प्रक्रिया नियमित रूप से छः महीनों तक करनी चाहिए। छः माह बाद जीभ की जड़ का तन्तु पूरी तरह कट जाता है। इसके बाद जीभ के अग्रभाग को कपड़े से पकड़ कर समय-समय पर धीरे-धीरे बाहर की तरफ खींचना चाहिए। इस प्रकार छः माह तक प्रतिदिन अभ्यास करने से जीभ को खींचने से जीभ बढ़कर भौंहो तक जाने लगती है तथा तिरछी जीभ कानों के दोनों छिद्रों तक जाने लगती है। तीन वर्ष तक जीभ को खींचते रहने से जीभ बाहर की तरफ ठोड़ी तक पहुँचने लगती है। फिर तीन वर्ष तक लगातार अभ्यास किया जाए तो जीभ बालों तक पहुँच जाती है और बगल में कन्धे तक तथा नीचे कण्ठकूप तक पहुँचने लगती है। इस तरह अभ्यास करते-करते जीभ ब्रह्मरन्ध्र या कोमल तालु तक पहुँचकर उसे ढक लेती है। तिरछी जीभ सिर के बालों की जड़ तक और नीचे गले के छेद तक चली जाती है। इस प्रकार अभ्यास करते रहने से जीभ ब्रह्मरन्ध्र को भेद जाती है। जब खेचरी विद्या बीजमन्त्र के साथ प्राप्त करने में कठिनाई हो तो योगी को खेचरी विद्या छः अंग वाली करन्यास विधि ह्रीं भं सं आदि के साथ करनी चाहिए तब ही सम्पूर्ण सिद्धि सम्भव होती है।

यह बीजाक्षर के साथ बड़ी कठिन विद्या है अतः इसका अभ्यास बहुत सावधानी से तथा धीरे-धीरे क्रमशः करना चाहिए। एक साथ व जल्दी अभ्यास करने से साधक की मृत्यु तक हो सकती है।

जब जीभ बाहर से ब्रह्मरन्ध्र तक जाने लगे तब अंगुली से कोमल तालु को दबाकर इसमें जीभ थोड़ी सी घुसा देनी चाहिए। इस प्रकार तीन वर्ष तक यह अभ्यास करने से जीभ ब्रह्मद्वार में प्रविष्ट हो जाती है। जब जीभ ब्रह्मद्वार में प्रवेश कर जाए तब उसका विधिपूर्वक मन्थन आरम्भ करना चाहिए।

मन्त्रजप और मंथन दोनों करने से फल शीघ्र प्राप्त होता है लेकिन जो खेचरी मन्त्र को सिद्ध कर लेता है, वह मंथन के बिना ही जीभ को ब्रह्मद्वार में प्रवेश करा सकता है।

मन्थन के लिए सोने, चांदी या लोहे की शलाका के सिरे पर दूध युक्त सूत्रनेति लगाकर उसे नाक में डालकर नेति करनी चाहिए। नेति करके, कुम्भक प्राणायाम करके, सुखासन पर बैठकर और आँखों को भ्रूमध्य में लगाकर धीरे-धीरे मन्थन करें।

छः महीने तक यह अभ्यास करते रहने से भावना से ही मन्थनावस्था प्राप्त हो जाती है। जैसे बालक को स्वाभाविक रूप से गहरी नींद आ जाती है वैसी ही भावना करने से मन्थनावस्था आ जाती है। मन्थन नित्य नहीं करना चाहिए बल्कि महीने में एक बार करना चाहिए साथ ही जीभ को बार-बार ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश न कराए। खेचरी विद्या का बारह वर्ष तक विधिपूर्वक अभ्यास करने पर सिद्धि निश्चित रूप से होती है। तब साधक को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अपने भीतर दिखाई देने लगता है -

"शरीरे सकलं विश्वं पश्यत्यात्मविभेदतः।

ब्रह्माण्डोऽयं महामार्गो राजदन्तोर्ध्वकुण्डली॥"⁴²

साधक सहस्रार में चढ़ती हुई कुण्डली और सहस्रार में लगी जीभ के मार्ग से ब्रह्माण्ड के दर्शन कर लेता है क्योंकि जीभ के ब्रह्मरन्ध्र तक जाने के मार्ग में ही ब्रह्माण्ड की स्थिति है।

योगकुण्डल्युपनिषद् के तृतीय अध्याय में पूर्णयोग ध्यान एवं समाधि का अत्यन्त गूढ़ वर्णन है। समाधि अवस्था से विदेह मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया है। खेचरी मन्त्र का अभ्यास करके ध्यानावस्था तक साधक पहुँच जाता है। 'ह्रीं भं सं पं फं सं क्षम्' इस मेलन मन्त्र का अमावस्या आदि के भेद से दृष्टिभेद को पद्मज अर्थात् ब्रह्मा ने शंकर भगवान् से पूछा। योगकुण्डल्युपनिषद् का यह तीसरा अध्याय ब्रह्मा के द्वारा पूछे गए प्रश्नों एवं परम योगी भगवान् शंकर द्वारा दिए गए गूढ़ योग उत्तरों पर आधृत है। पद्मज ब्रह्मा पूछते हैं -

"अमावस्या च प्रतिपत्पौर्णमासी च शंकर।

अस्याः का वर्ण्यते संज्ञा एतदाख्याहि तत्त्वतः॥"⁴³

अर्थात् हे शंकर! अमावस्या, प्रतिपदा और पूर्णिमा इन तीन लक्ष्यों का वास्तविक स्वरूप बताइए तब भगवान् शंकर कहते हैं -

- (i) अमादृष्टि/अमावस्या दृष्टि - आँखें पूरी बंद करके ध्यान लगाना।
- (ii) प्रतिपदा दृष्टि - अधखुली आँखों से ध्यान लगाना।
- (iii) पूर्णिमा दृष्टि - लक्ष्य पर पूर्ण खुली आँखों से ध्यान लगाना। यह सबसे श्रेष्ठ माना जाता है।

प्राणायाम की अपेक्षा इन तीनों दृष्टियों से ध्यान लगाना ही एक मात्र पन्थ है, अच्छा उपाय है। उपनिषत्कार कहते हैं - "स च पन्था हि नान्यथा"।

पूर्णमा दृष्टि विधि -

इस प्रक्रिया को बताने से पहले भगवान् शंकर कहते हैं कि पूर्णिमा ध्यान से पूर्व साधक को विषय भोगों से ध्यान हटाना चाहिए। कैवल्य मार्ग के अनुसरणकर्ता साधक को स्वकल्याण के लिए सब कुछ त्याग कर मन को कुण्डलिनी शक्ति में लीन करके "मैं ब्रह्म ही हूँ" मन में यह भावना कर मन द्वारा देखने की वृत्ति को भी त्याग देना चाहिए। "मन एव हि बिन्दुश्च उत्पत्ति स्थिति कारणम्" अर्थात् मन और बिन्दु (ईश्वर) इस जगत् प्रपञ्च की उत्पत्ति और स्थिति के कारण हैं। यह ध्यान में रखते हुए निरन्तर ध्यान में मग्न रहना चाहिए। मन के सामर्थ्य का विशेष वर्णन करते हुए कहते हैं -

"मनसोत्पद्यते बिन्दुर्यथा क्षीरं घृतात्मकम्।

न च बन्धनमध्यस्थं तद्वै कारणं मानसम्॥⁴⁴"

अर्थात् मन से ही ईश्वर (बिन्दु) की कल्पना की जाती है। जैसे दूध में घी रहता है वैसे ही मन में ईश्वर सदा विद्यमान है। मन अपने संकल्प-विकल्पों के कारण बन्धन में पड़ता है किन्तु ईश्वर मन के इन बन्धनों से अलग है। मन के नष्ट हो जाने पर ईश्वर निर्गुण ब्रह्ममात्र से बचा रहता है। साधक को चाहिए कि वह चन्द्र अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र और सूर्य अर्थात् मूलाधार के बीच जहाँ कुण्डलिनी शक्ति रहती है, वही बन्धन का स्थान है। सुषुम्ना को जानकर और ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि को भेदकर प्राणवायु को सुषुम्ना में प्रविष्ट कराना चाहिए। ईश्वर का निरन्तर ध्यान करते रहना चाहिए, केवल कुम्भक प्राणायाम करते रहना चाहिए, सत्त्व, प्रकृति तथा मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा इन छः चक्रों को जानकर योगानन्द में मग्न रहना चाहिए।

आगे उपनिषत्कार ने छः चक्रों के स्थानों का भी शरीर में स्थान बताया है -

मूलाधार चक्र	-	गुदा के पास
स्वाधिष्ठान चक्र	-	लिंग या मूत्रेन्द्रिय के पास
मणिपूर चक्र	-	नाभि में

अनाहत चक्र	-	हृदय में
विशुद्धि चक्र	-	कण्ठ में
आज्ञा चक्र	-	भूमध्य में

आज्ञा चक्र में कुम्भक प्राणायाम द्वारा ध्यान लगाने से साधक ब्रह्माण्डमय रूप हो जाता है। निरन्तर योगाभ्यास एवं ध्यान से साधक समाधि की स्थिति में पहुँच जाता है। आत्मज्ञानी होने के लिए योगाभ्यास की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा है -

"विना चाभ्यासयोगेन ज्ञानदीपस्तथा न हि।

घटमध्यगतो दीपो बाह्यो नैव प्रकाशते॥

भिन्ने तस्मिन् घटे चैव दीपज्वाला च भासते।

स्वकायं घटमित्युक्तं यथा दीपो हि तत्पदम्॥"⁴⁵

निर्विकल्पक योग से अद्वैत समाधि द्वारा ही योगी ब्रह्मभावना कर पाते हैं। वस्तुतः ईश्वर या ब्रह्म तो प्रत्येक जीव के भीतर ही विद्यमान है किन्तु बिना योगाभ्यास के उसकी प्राप्ति संभव नहीं है। जिस प्रकार लकड़ियों में छिपी हुई आग लकड़ियों को आपस में रगड़े बिना प्रकट नहीं होती उसी प्रकार बिना योगाभ्यास के ज्ञान का दीप प्रकाशित नहीं होता।

ज्ञान के दीप प्रकाशन में गुरु उपदेश का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। गुरु ही योगविद्या में कर्णधार है। गुरु प्राप्ति के बिना भवसागर से मुक्ति संभव नहीं है अतः गुरु महिमा को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि -

"गुरुवाक्यसमाभिन्ने ब्रह्मज्ञानं स्फुटी भवेत्।

कर्णाधारं गुरुं प्राप्य कृत्वा सूक्ष्मं तरन्ति च॥"⁴⁶

गुरु के सानिध्य से जप योग के माध्यम से ही समाधि अवस्था तक साधक पहुँचता है। मन्त्र योग के द्वारा जीवात्मा-परमात्मा का सम्मिलन होता है। इस दृष्टि से उपनिषत्कार ने मन्त्र योग की साधनभूत परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी वाणी के बारे में बताया है। वाक् सिद्धि परा में अंकुरित होकर, पश्यन्ती में दो पत्तों वाली होकर मध्यमा में मुकुलित होकर वैखरी में विकसित हो जाती है -

"परायामङ्कुरीभूय पश्यन्त्यां द्विदलीकृता।

मध्यमायां मुकुलिता वैखर्या विकसीकृता।

पूर्वं यथोदिता या वाग्विलोमेनास्तगा भवेत्।

तस्या वाचः परो देवः कूटस्थो वाक्प्रबोधकः॥

सोऽहमस्मीति निश्चित्य यः सदा वर्तते पुमान्॥"⁴⁷

अर्थात् वाक् सिद्धि की पहली अवस्था परा कहलाती है तथा यह मूलाधार में अंकुरित होती है। शब्द की यह वृत्ति ऊपर उठ कर अनाहत चक्र में जाकर द्विपत्र रूप पश्यन्ती का रूप ले लेती है। अनाहत चक्र से ऊपर जाने पर कण्ठ के विशुद्धि चक्र में मुकुलित होकर मध्यमा बन जाती है और कण्ठ से मुख में या जीभ पर आने पर विकसित होकर वैखरी हो जाती है।

इस वाक् सिद्धि को प्रबोधित करने वाला परम देवता पूर्वोक्त कूट में निहित मन्त्र में निवास करता है। जो योगी ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके 'सोऽहमस्मि' अर्थात् वह ब्रह्म में ही हूँ, यह ज्ञान निश्चयपूर्वक जानकर जगत् व्यवहार करता है, वह मान-अपमान या ऊँचे-नीचे शब्दों से प्रभावित नहीं होता।

मन्त्र योग या जपयोग, गुरु सानिध्य व विविध यौगिक क्रियाओं द्वारा साधक ब्रह्म की प्राप्ति के लिए प्रयास करता है। उपनिषद् में ब्रह्म तथा निष्प्रतियोगिक ब्रह्म के स्वरूप को भी बताया है।

ब्रह्मप्राप्ति के उपाय -

ब्रह्मज्ञान हो जाने पर यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी वास्तविक दृष्टि से ब्रह्म ही हो जाता है। ज्ञान दृष्टि से जगत् प्रपञ्च के नष्ट हो जाने पर प्रशान्त, गम्भीर अवर्णनीय और रंग रूप रहित सत् मात्र ही अवशेष रहता है।

"ध्यात्वा मध्यस्थमात्मानं कलशान्तरदीपवत्॥

अंगुष्ठमात्रमात्मानमद्यूम ज्योति रूपकम्।

प्रकाशयन्तमन्तस्थं ध्यायेत् कूटस्थमव्ययम्॥⁴⁸"

अर्थात् ब्रह्माण्ड के परमब्रह्म में लीन होने पर अत्यन्त गम्भीर व प्रशान्त स्थिति मानी जाती है, उस समय न प्रकाश रहता है और न अन्धकार। उस समय जो कुछ रहता है वह सद्रूप होने पर भी अनाख्येय और अनभिव्यक्त स्थिति में रहता है।

अतः कलश के भीतर प्रकाशमान दीप के समान अपने शरीर में विराजमान धूम्ररहित ज्योति के समान अन्तः करण में देदीप्यमान, शाश्वत, अंगुष्ठमात्र, कूटस्थ व अव्यय आत्मा का ध्यान करना चाहिए।

आत्मा का अपने तेज से और बाहर संसार में विद्यमान अज्ञान की अग्नि के ताप से अपने शरीर को चैतन्य समझने का भ्रम नष्ट हो जाने पर हृदय में स्थित परमात्मा सारे शरीर को प्रकाशित कर विज्ञानमय तथा मनोमय कोषों को नष्ट कर देता है। घट में रखे दीपक की तरह अन्तः करण में स्थित प्रकाश रूप आत्मा ही अन्तः करण में प्रकाशित होती रहती है।

इस प्रकार जो आत्मा (ब्रह्म) का ध्यान करता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है। अर्थात् जीवन से मुक्ति मिल जाती है, वही विज्ञानी है, धन्य है और वही कृतकृत्य हो जाता है। यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति विषय और कामना दोनों से अलग होकर आत्मा में ध्यान लगाता है।



चित्र 4.2 तीन मुख्य ग्रन्थियाँ

कुण्डलिनी जाग्रत होकर ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र ग्रन्थियों को भेदकर षट्चक्रों को भी भेद देती है और सहस्रार में पहुँचकर शिव के साथ आनन्दमग्न हो जाती है। कुण्डलिनी शक्तिरूप में शिव के साथ मिल जाती है, यह अवस्था सांसारिक बन्धनों से मुक्त कराने वाली परावस्था है। इस प्रकार इस उपनिषद् में कुण्डलिनी बोध, विषय कामना का परित्याग, स्व का वास्तविक ज्ञान तथा आत्मा के ध्यान द्वारा ब्रह्मप्राप्ति का उपाय बताया गया है।

योग के विघ्न -

योगकुण्डल्युपनिषद् के अनुसार यदि योगाभ्यास सही तरीके से या सावधानीपूर्वक न किया जाए तो इससे शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। दिन में सोना, रात में जागना, अत्यधिक मैथुन, ज्यादा चलना, मल-मूत्र को रोकना, ठीक प्रकार का भोजन न करना तथा जबरदस्ती प्राणवायु को रोकने का अभ्यास करना आदि से शीघ्र ही शरीर रोग ग्रस्त हो जाता है। योगाभ्यास की दस बाधाएँ या विघ्न बताए गए हैं, जो इस प्रकार हैं -

योगाभ्यास करने से मुझे रोग हो गया यह कहकर यदि कोई साधक योगाभ्यास छोड़ देता है तो यह पहला विघ्न है। दूसरा विघ्न सन्देह अर्थात् साधना

पर शंका करना या विश्वास न करना है। तीसरा विघ्न प्रमत्तता अर्थात् लापरवाही करना है। चौथा विघ्न आलस्य है। पाँचवा विघ्न निद्रा है। छठा विघ्न साधना से प्रेम न करना अर्थात् योगाभ्यास के प्रति उदासीनता है। सातवाँ विघ्न भ्रान्ति अर्थात् योग से सम्बन्धित बातों को ठीक से न समझना है। आठवाँ विघ्न विषयभोग अर्थात् विषय वासना में अनुरक्ति है। नवाँ विघ्न अनाख्य अर्थात् अप्रसिद्धि है तथा दसवाँ विघ्न योग तत्त्व का प्राप्त न होना अर्थात् चित्त का समाधि में न पहुँचना है।⁴⁹

बुद्धिमान साधक को चाहिए कि इन दस विघ्नों पर अच्छी तरह विचार करके इन्हें त्याग देना चाहिए क्योंकि योगाभ्यास में सफलता प्राप्त करने के लिए इन विघ्नों को दूर करना आवश्यक है।

निष्कर्ष -

योग उपनिषद् में परिगणित यह उपनिषद् योग उपनिषद् की दृष्टि से पूर्ण है। इस उपनिषद् में योग के विविध अंगों का संख्यावार गणन तो नहीं किया किन्तु साधक को ब्रह्म प्राप्ति, कैवल्य प्राप्ति या विदेह मुक्ति तक पहुँचने के विविध सोपानों का अनुसरण करने योग्य विधि का सुव्यवस्थित वर्णन किया है। वस्तुस्थिति यही है कि साधक की सबसे बड़ी बाधा ही वासना है, जब तक वह इससे मुक्त नहीं होगा, तब तक कैसे वह ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग का अनुयायी होगा। उपनिषद् के उत्तरोत्तर अध्याय योग मार्ग का गूढ़ विवेचन करते हैं। प्रारम्भिक प्रथम अध्याय में चित्त की चंचलता के दूर करने के उपायों के साथ आसनों का विवेचन, विविध नाडियों में कुण्डलिनी जागरण के लिए मुख्य नाड़ी अरुन्धती या सरस्वती नाड़ी को बताया है।

प्रथम अध्याय में वैसे तो कहीं भी उपनिषद् के वक्ता या गुरु व श्रोता या शिष्य के नाम का उल्लेख नहीं है किन्तु सरस्वती चालन मुद्रा के उपदेश में 'कथयामि मे' वाक्यों के प्रयोग से स्पष्ट है कि उपनिषद् गुरु द्वारा शिष्य को ब्रह्मप्राप्ति के उपदेश के स्वरूप में ही है। गुरु की विविध आसनों, प्राणायाम, बन्ध, कुण्डलिनी जागरण करने, योग समाधि से ब्रह्मत्व की प्राप्ति में प्रधान रूप से भूमिका रहती है, इसको भी विशेष रूप से व्याख्यायित किया है। द्वितीय अध्याय में गूढ़ विद्या के वर्णन में खेचरी विद्या का विस्तार से उपदेश किया है तथा तृतीय अध्याय में परमयोगी भगवान शंकर तथा ब्रह्मा के संवाद के रूप में अत्यन्त गूढ़ ब्रह्म, निष्प्रतियोगिक ब्रह्म के स्वरूप, कैवल्य या विदेह मुक्ति को बताया है।

शैली एवं विषय विवेचन की दृष्टि से योगकुण्डल्युपनिषद् योग के माध्यम से कुण्डलिनी जागरण द्वारा ब्रह्मप्राप्ति में अपने नाम को सार्थक करता है।

4.3. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में योग तत्त्व मीमांसा

शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध प्रस्तुत उपनिषद् में बताया गया है कि अविवेक (अविद्या) के कारण जीव जन्म-मरण के चक्र में घूमता रहता है। आत्मज्ञान का विवेक उत्पन्न होने पर जीव अज्ञान के बन्धन से छूट जाता है। विवेक उत्पन्न होने पर जीवात्मा योग पथ पर चलकर शीघ्रमुक्ति प्राप्त कर लेता है -

"योगात्संजायते ज्ञानं ज्ञानात् योगः प्रवर्तते॥

योगज्ञानपरोनित्यं स योगी न प्रणश्यति।

विकारस्थं शिवं पश्येद्विकारश्च शिवे न तु॥

योगप्रकाशकं योगैर्ध्यायेच्चान्यभावनः।

योग ज्ञाने न विद्यते तस्य भावो न सिध्यति॥⁵⁰"

योग से ज्ञान (विवेक ज्ञान) और ज्ञान से योग की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार योग और ज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं। जो योगी सदैव ज्ञान योग में लगा रहता है वह नष्ट नहीं होता। वह विकारों में सदैव शिव (ब्रह्म) के दर्शन करता है अर्थात् योगी जगत् में व्याप्त परमात्मा की सत्ता का अनुभव करता है। परमात्मा का यह स्वरूप विकारयुक्त है किन्तु परमात्मा निर्विकार है अतः योगी को सर्वविकार रहित ब्रह्म का अनन्य भाव से ध्यान करना चाहिए क्योंकि जिसको ऐसा ज्ञानयोग नहीं होता उसको सिद्धि प्राप्त नहीं होती।

साथ ही यदि व्यक्ति उचित प्रकार से योगाभ्यास नहीं करता तो उसे ज्ञान और योग की सिद्धि भी प्राप्त नहीं होती अतः योगाभ्यास के द्वारा योगी को अपने मन और प्राणों पर नियन्त्रण करना चाहिए। योगाभ्यास रूपी चाकू की तेजधार से अज्ञान को काट देना चाहिए। यम-नियम आदि योग के अष्टांगों द्वारा ज्ञानमयी शिखा (मनोवृत्ति) का उदय होता है।

योग के प्रकार -

योग के दो प्रकार बताए गए हैं - ज्ञानयोग और कर्मयोग।

1. **ज्ञानयोग** - एकाग्र मन से श्रेय मार्ग पर चलते रहना ज्ञानयोग है अर्थात् चित्त को निरन्तर आत्मकल्याण में लगाए रखना। इससे सब प्रकार की आत्मसम्बन्धी कल्याणकारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं -

"यत्चित्तस्य सततमर्थं श्रेयसि बन्धनम्।

ज्ञानयोगः स विज्ञेयः सर्वसिद्धिकरः शिवः॥"⁵¹

2. कर्मयोग - शास्त्रानुकूल कर्मों में सदैव मन का निग्रह करते रहना कर्मयोग है -

"कर्म कर्तव्यमित्येव विहितेष्वेव कर्मसु।

बन्धनं मनसो नित्यं कर्मयोगः स उच्यते॥"⁵²

किसी लक्ष्य पर व्याकुलतारहित चित्त को लगाकर दो प्रकार के कर्म करते रहना चाहिए। मन से ईश्वर की उपासना तथा शास्त्र द्वारा बताए गए कर्तव्यकर्मों को निष्काम भाव से करना अर्थात् मन में ईश्वर का चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से कर्म करना कर्मयोग कहलाता है।

इस प्रकार जो साधक दोनों प्रकार के योगों को निर्विकार भाव से करता है, वह शीघ्र ही मोक्ष रूपी परम श्रेय को प्राप्त कर लेता है। प्रस्तुत उपनिषद् के अनुसार ज्ञानयोग और कर्मयोग शीघ्रमुक्तिदायक मार्ग हैं।

अष्टांग योग -

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार अष्टांग योग से ज्ञानमयी शिखा उत्पन्न होती है -

"शिक्षा ज्ञानमयी वृत्तिर्यस्मादध्यष्टांगसाधनैः॥"⁵³

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि ये योग के आठ अंग निर्विशेष ब्रह्म को जानने के उपाय हैं। अष्टांगयोग का वर्णन निम्नानुसार है -

1. यम -

"देहेन्द्रियेषु वैराग्यं यम इत्युच्यते बुधैः॥"⁵⁴

अर्थात् शरीर और इन्द्रियों के विषयों से वैराग्य या उदासीनता की भावना यम कहलाती है। यम दस बताए गए हैं -

"अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्॥

क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश॥"⁵⁵

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव (सरलता) क्षमा, धैर्य, स्वल्पाहार और शुद्धता ये दस यम हैं।

2. नियम -

"अनुरक्तिः परे तत्त्वे सततं नियमः स्मृतः॥"⁵⁶

परमतत्त्व (परमात्मा) से सदा अनुराग रखना अर्थात् ब्रह्म का सदा स्मरण करते रहना नियम कहलाता है। नियम दस हैं -

"तपः सन्तुष्टिरास्तिक्यं दानमाराधनं हरेः॥

वेदान्तश्रवणं चैव हीर्मतिश्च जयो व्रतम्॥"⁵⁷

तप, मन में सन्तोष की भावना, ईश्वर की सत्ता में विश्वास, दान, भगवत् आराधना, वेदान्त के शास्त्रों का श्रवण, लज्जा, बुद्धि, ईश्वरनाम का जप करना तथा व्रतों का पालन करना ये दस नियम बताए गए हैं।

3. आसन -

"सर्ववस्तुन्युदासीनभाव आसनमुत्तमतम्॥"⁵⁸

समस्त वस्तुओं में उदासीन भाव ही सर्वोत्तम आसन है अर्थात् संसार की समस्त वस्तुओं से विरक्ति या वैराग्य आसन कहलाता है।

इस उपनिषद् में स्वस्तिकासन, गोमुखासन, वीरासन, योगासन, पद्मासन, बद्धपद्मासन, कुक्कुटासन, उत्तानकूर्मासन, धनुरासन, सिंहासन, भद्रासन, मुक्तासन, मयूरासन मत्स्येन्द्रासन, सिद्धासन, पश्चिमोत्तानासन, सुखासन इन सतरह आसनों के अंगों व क्रियाविधि का ही वर्णन किया गया है। इनसे होने वाले लाभ को वर्णित नहीं किया गया।

स्वस्तिकासन -

"वर्ण्यन्ते स्वस्तिकं पादतलयोरुभयोरपि।

पूर्वोत्तरे जानुनी द्वे कृत्वासनमुदीरितम्॥"⁵⁹

दोनों पैरों के पँजों को दायीं और बायीं जाँघों तथा दोनों पिण्डलियों के बीच फँसाकर सीधे बैठना स्वस्तिकासन कहलाता है।

गोमुखासन -

"सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत्।

दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं गोर्मुखं यथा॥"⁶⁰

बायीं जाँघ पर दाएं पैर की एड़ी लाकर एड़ी को पीठ की ओर ले जाकर दोनों घुटने मोड़ने से और एक दूसरे के पास होने से गाय के मुख जैसे दिखने वाली आकृति बन जाती है इसलिए इस आसन को गोमुखासन कहा जाता है।

वीरासन -

"एकं चरणमन्यस्मिन्नूवारोप्य निश्चलः।

आस्ते यदिदमेनोघ्नं वीरासनमुदीरितम्॥"⁶¹

एक पैर को बायीं जाँघ पर और दूसरे पैर को दाहिनी जाँघ पर रखकर निश्चल भाव से बैठना वीरासन कहलाता है।

योगासन -

"गुदं नियम्य गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण समाहितः।

योगासनं भवेदेतदिति योगविदो विदुः॥"⁶²

दाहिनी एड़ी को गुदा के बायीं तरफ और बायीं एड़ी को गुदा के दाहिनी तरफ लगाकर बैठना योगासन कहलाता है।

पद्मासन -

"ऊर्वोरूपरि वै धत्ते यदा पादतले उभे।

पद्मासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविषापहम्॥"⁶³

दोनों जाँघों पर दोनों पैरों के तलवों को रखकर बैठना पद्मासन होता है अर्थात् दोनों पैर मोड़कर पँजों को दोनों पैरों की जँघाओं पर रखकर बैठना। पद्मासन से शरीर की सारी बीमारियाँ और विष का प्रभाव दूर हो जाता है।

बद्धपद्मासन -

"पद्मासनं सुसंस्थाप्य तदङ्गुष्ठद्वयं पुनः।

व्युत्क्रमेण हस्ताभ्यां बद्धपद्मासनं भवेत्॥"⁶⁴

पद्मासन में बैठकर दोनों हाथ पीठ के पीछे ले जाकर दाहिने हाथ से बाएं पैर के अँगूठे को और बाएं हाथ से दाहिने पैर के अँगूठे को पकड़ना बद्धपद्मासन कहलाता है।

कुक्कुटासन -

"पद्मासनं सुसंस्थाप्य जानूर्वोरन्तरे करौ।

निवेश्य भूमौ आतिष्ठेत् व्योमस्थः कुक्कुटासनः॥"⁶⁵

पद्मासन लगाकर दोनों हाथों को जाँघों और घुटनों के बीच से निकालकर जमीन पर लगाकर दोनों हाथों के सहारे शरीर को आकाश में उठाने से कुक्कुटासन होता है।

उत्तान कूर्मासन -

"कुक्कुटासनबन्धस्थो दोर्भ्यां सम्बध्य कन्धरम्।

शेते कर्मवदुत्तान एतत् उत्तान कूर्मकम्॥"⁶⁶

कुक्कुटासन लगाकर दोनों हाथों से गर्दन पकड़ कर कछुए के समान बैठना उत्तान कूर्मासन कहा जाता है।

धनुरासन -

"पादांगुष्ठौ तु पाणिभ्यां गृहीत्वा श्रवणावधि।

धनुराकर्षकाकृष्टं धनुरासनमीरितम्॥"⁶⁷

दोनों पैरों के अँगूठों को पकड़ कर धनुष के आकार में कानों तक खींचे तो वह धनुरासन होता है।

सिंहासन -

"सीवनीं गुल्फदेशाभ्यां निपीड्य व्युत्क्रमेण तु।

प्रसार्य जानुनोर्हस्तावासनं सिंहरूपकम्॥"⁶⁸

दोनों एड़ियों से सीवन स्थान को विपरीत विधि से दबाकर दोनों घुटनों तथा हाथों को फैलाकर घुटनों पर रख कर शेर की तरह मुख खोलकर बैठना सिंहासन होता है।

भद्रासन -

"गुल्फौ च वृषणस्याधः सीविन्युभयपार्श्वयोः।

निवेश्य भूमौ हस्ताभ्यां बद्ध्वा भद्रासनं भवेत्॥"⁶⁹

पैर की दोनों एड़ियाँ अण्डकोशों के नीचे और सीवन के पास लगा कर पैरों को हाथों से बाँधकर बैठना भद्रासन कहलाता है। गुदा और मूत्रेन्द्रिय के बीच का स्थान सीवनी कहलाता है।

मुक्तासन -

"सीवनीपार्श्वमुभयं गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण तु।

निपीड्यासनमेतच्च मुक्तासनमुदीरितम्॥"⁷⁰

सीवनी के दोनों पार्श्वों को दोनों एड़ियों के द्वारा विपरीत विधि से दबाकर बैठना मुक्तासन कहलाता है।

मयूरासन -

"अवष्टम्य धरां सम्यक् तलाभ्यां हस्तयोर्द्वयोः।

कूपरौ नाभिपार्श्वे तु स्थापयित्वा मयूरवत्॥

समुन्नतशिरः पादं मयूरासनमिष्यते॥"⁷¹

दोनों हथेलियाँ जमीन पर रख कर दोनों कोहनियों को नाभि के दोनों तरफ लगा कर मोर की भाँति सम्पूर्ण शरीर को अधर करके सिर और पैर को ऊपर की ओर उठाए रखने से मयूरासन होता है।

मत्स्येन्द्रासन -

"वामोरूमूले दक्षांघ्रिं जान्वोर्वष्टितपाणिना॥

वामेन वामांगुष्ठं तु गृहीतं मत्स्यपीठकम्।"⁷²

बायीं जाँघ के मूल में दाहिने पैर का तलुवा लगा कर बायाँ हाथ पीठ के पीछे से ला कर और दायीं जाँघ से आगे ले जा कर दाएं पैर को पंजे से ऊपर बाएं हाथ से पकड़ना तथा दाएं हाथ को बाएं पैर के घुटने से आगे ले जा कर बाएं पैर का अँगूठा पकड़ कर बैठना मत्स्येन्द्रासन कहलाता है।

सिद्धासन -

योनिं वामेन संपीड्य मेढ्रादुपरि दक्षिणम्॥

ऋजुकायः समासीनः सिद्धासनमुदीरितम्।"⁷³

बाएं पैर की एड़ी को सीवन पर लगाकर दाहिने पैर को उपस्थ के ऊपरी भाग में रखें इस तरह शरीर को सीधा करके बैठना सिद्धासन कहलाता है।

पश्चिमोत्तान आसन -

"प्रसार्य भुवि पादौ तु दोर्भ्यामगुष्ठमादरात्॥

जानूपरि ललाटं तु पश्चिमं तानमुच्यते।"⁷⁴

दोनों पैरों को जमीन पर फैलाकर दोनों हाथों से पैर के अँगूठों को पकड़ कर सिर को घुटनों पर लगाने से पश्चिमोत्तान आसन होता है।

सुखासन -

"येन केन प्रकारेण सुखं धार्य च जायते।

तत् सुखासनमित्युक्तम् अशक्तस्तत् समाचरेत्॥"⁷⁵

जिस किसी भी प्रकार से बैठने पर सुख और स्थिरता प्राप्त हो, उसी प्रकार बैठने को सुखासन कहते हैं। जो व्यक्ति अन्य आसन में बैठने में असमर्थ है, वह सुखासन में बैठे। उपनिषत्कार के अनुसार जिसने आसनों को जीत लिया उसने तीनों लोकों को जीत लिया -

"आसनं विजितं येन जीतं तेन जगत् त्रयम्।"⁷⁶

अर्थात् जो आसनों को सम्यक् विधिपूर्वक करना जानता है, वह निश्चित रूप से ब्रह्म की प्राप्ति कर लेता है।

4. प्राणायाम -

"जगत् सर्वमिदं मिथ्याप्रतीतिः प्राणसंयमः।"⁷⁷

अर्थात् यह सारा संसार मिथ्या है। जगत् के इस मिथ्यास्वरूप को भली-भाँति समझ लेना प्राणायाम है।

यम-नियमों का भलीभाँति पालन करते हुए, आसनों का अभ्यास करते हुए तथा नाड़ीशोधन करने के पश्चात् प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार प्राणायाम से पूर्व नाड़ी शोधन अभ्यास को आवश्यक माना गया है। उपनिषत्कार ने प्राणायाम की विवेचना से पूर्व प्राण, कन्द, नाडीचक्र तथा नाड़ी शोधन प्राणायाम का वर्णन किया है। प्राणायामाभ्यास में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है अतः इनका वर्णन किया जा रहा है।

शरीर व प्राण का माप -

मानव शरीर का माप अपनी अँगुलियों के द्वारा छियानवें अँगुल का होता है तथा प्राणवायु सामान्यरूप से शरीर से बारह अँगुल अधिक प्रमाण वाली बताई गई है।

अग्निमण्डल व कन्द का स्वरूप -

हमारे शरीर के बीच में त्रिकोण आकार का अग्निमण्डल होता है। जिसकी कान्ति या चमक तपाये हुए सोने के रंग जैसी होती है। मानव शरीर में अग्निमण्डल स्थान पर नौ अँगुल प्रमाण का एक कन्द स्थान होता है अर्थात् शरीर के बीच से नौ अँगुली ऊपर कन्द होता है। जो दीपक के समान प्रकाशित होता है। यह चार अँगुली चौड़ा तथा चार अँगुली लम्बा और अण्डे जैसा होता है। तिर्यक्, पक्षी और चौपायों में यह कन्द पेट के बीच में होता है और इसके बीच में नाभि होती है।

हठयोगप्रदीपिका में कन्द का स्थान मूलाधार से एक बालिशत ऊपर बताया है। याज्ञवल्क्य संहिता में शरीर के मध्यभाग में नौ अँगुली ऊपर कन्द का स्थान माना है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के कन्दस्थान निरूपण वाले मन्त्र 48 और 49 याज्ञवल्क्य संहिता में भी मिलते हैं।

शक्तिचालन मुद्रा में कन्द का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें कन्द को दबाया जाता है।

नाड़ी चक्र -

नाभि के बीच बारह अरों वाला नाड़ी चक्र है, जिसमें विष्णु आदि देवों की मूर्तियाँ हैं। ब्रह्म या परमात्मा अपनी माया की शक्ति से इस चक्र को घूमाता है। नाड़ी चक्र के बारह अरों में जीव उसी तरह घूमता रहता है जैसे मकड़ी अपने जाल में ऊपर-नीचे घूमती रहती है। जीव प्राण के सहारे ही नाड़ी चक्र में घूमता है। प्राण के बिना जीव नाड़ी चक्र में नहीं घूम सकता।

कुण्डली स्थान -

"तस्योर्ध्वे कुण्डलीस्थानं नाभेस्तिर्यगथोर्ध्वतः।

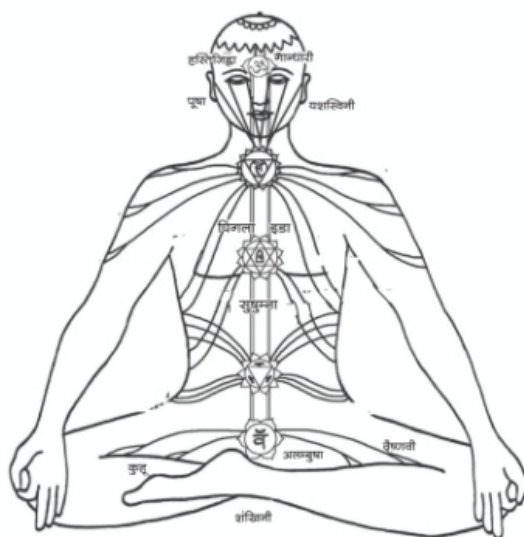
अष्टप्रकृतिरूपा सा चाष्टधा कुण्डलीकृता।

यथावत् वायुसंचारं ज्वलनादि च नित्यशः॥"⁷⁸

नाड़ीचक्र के ऊपर कुण्डलिनी का स्थान है। यह स्थान नाभि के चारों ओर ऊपर और नीचे है। कुण्डलिनी शक्ति कन्द के ऊपर साँप की तरह आठ कुण्डली मारकर सुषुम्ना के द्वार पर सोती रहती है। यह कुण्डली मारकर कन्द को घेरे हुए है तथा वायु, अन्न, जल आदि के संचार को रोकती है। इसने ब्रह्मरन्ध्र के मुख को अपने मुख से ढका हुआ है। योगाभ्यास द्वारा प्राणवायु के झोंकों से शरीर की आग जल उठती है। इस शरीर की आग की गर्मी से जागकर कुण्डलिनी शक्ति हृदयाकाश में नाग की तरह चमक उठती है और सुषुम्ना के रास्ते ऊपर जाने लगती है।

नाड़ी संख्या व स्वरूप -

अपान (गुदा) से दो अँगुल ऊपर और मेढ्र (लिंगमूल) से दो अँगुल नीचे मानव देह का मध्य भाग होता है तथा यह मध्यभाग हृदय के बीच में होता है। इस मध्यभाग में अनेक नाड़ियों का गुच्छा होता है। कन्दस्थान से मुख्य दस नाड़ियाँ निकलती हैं -



चित्र 4.3 दस नाड़ीयाँ

(क) सुषुम्ना नाड़ी -

"कन्दमध्ये स्थिता नाड़ी सुषुम्ना सुप्रतिष्ठिता।

पद्मसूत्र प्रतीकाशा ऋजुर्ध्वं प्रवर्तिनी॥"⁷⁹

अर्थात् कन्द स्थान में सुषुम्ना नाड़ी है, जो कमलनाल के तन्तु जैसी पतली व सीधी होती है।

(ख) वैष्णवी ब्रह्मनाड़ी -

"ब्रह्मणो विवरं यावद् विद्युदाभासनाकलम्।

वैष्णवी ब्रह्मनाड़ी च निर्वाणप्राप्ति पद्धतिः॥"⁸⁰

ब्रह्मरन्ध्र तक गमन करने वाली वैष्णवी ब्रह्मनाड़ी है। यह प्रकाशयुक्त एवं निर्वाण प्राप्त कराने वाली है।

(ग) इडा नाड़ी -

"इडा समुत्थिता कन्दाद्वामनासापुटाधिः॥"⁸¹

इडा नाड़ी कन्द से शुरू होकर नाक तक जाती है अर्थात् यह नाक के बाएँ स्वर तक जाती है।

(घ) पिंगला नाड़ी -

"पिंगला चोत्थिता तस्माद् दक्षनासापुटाधिः॥"⁸²

पिंगला नाड़ी कन्द से होकर दाएँ नाक तक जाती है।

(ङ) गान्धारी नाड़ी -

सुषुम्ना नाड़ी के आगे गान्धारी नाम की नाड़ी है। यह बायीं आँख की नाड़ी है।

(च) हस्तिजिह्वा नाड़ी -

यह सुषुम्ना नाड़ी के पीछे की नाड़ी है। यह दायीं आँख की नाड़ी है।

(छ) पूषा नाड़ी -

यह गुदा मूल से निकल कर दाएँ कान तक जाती है अर्थात् यह दाएँ कान की नाड़ी है।

(ज) यशस्विनी नाड़ी -

यह गुदा मूल से निकल कर बाएँ कान तक जाती है। यह बाएँ कान की नाड़ी है।

(झ) अलम्बुषा -

यह नाड़ी गुदामूल से निकल कर लिंगमूल के अन्त तक फैली हुई है।

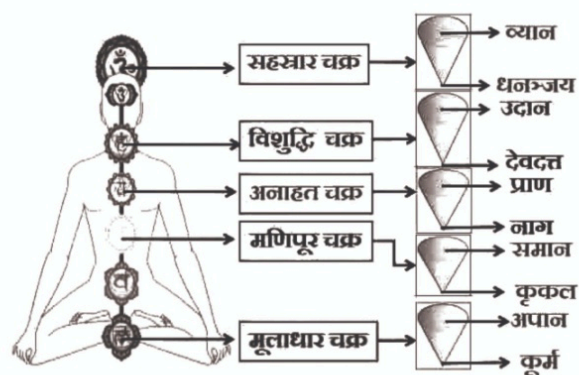
(ञ) कौशिकी -

यह नाड़ी कन्द से शुरू होकर पैर के अँगूठों तक जाती है।

इस प्रकार ये दस नाड़ियाँ कन्द से निकलती हैं। कन्द से निकलने वाली अन्य बहुत सी स्थूल और सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं, जो सारे शरीर में फैली हुई हैं जिनकी संख्या

बहत्तर हजार है। स्थूल नाड़ियों से निकली सूक्ष्म नाड़ियों की गिनती नहीं की जा सकती। ये सूक्ष्म नाड़ियाँ उसी प्रकार सम्पूर्ण शरीर में फैली हुई हैं जिस प्रकार पीपल के पत्ते में पतली-पतली नसें फैली होती हैं।

प्राणादि वायु के स्थान व कार्य -



चित्र 4.4 दस प्राण

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय ये दस वायु शरीर की नाड़ियों में विचरण करती रहती हैं। प्राण से लेकर उदान तक पाँच वायुओं में प्राण और अपान ये दो ही प्रधान वायु हैं। इन दो में भी प्राण वायु ही सबसे मुख्य है, क्योंकि प्राणवायु में जीवात्मा गति करती है।

दस वायु के स्थान व कार्यों का उल्लेख निम्न तालिका में किया गया है -

वायु	विचरण स्थान या निवास स्थान	कार्य
प्राण	मुख, नाक, हृदय, नाभि, पैरों के अँगूठे।	पेट में गए हुए अन्न, जल और रस आदि को प्राण पचाता है और अन्न, जल आदि को अलग करता है।
अपान	गुदा, लिंगमूल, जाँघ, घुटने।	मल-मूत्रादि को शरीर से निकालता है।
समान	सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त।	शरीर का पालन-पोषण आदि।
उदान	शरीर के सभी जोड़ों, हाथ-पैरों में।	मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर उदान वायु द्वारा स्थूल शरीर से निकलता है अर्थात् उर्ध्वगामी होता है।

व्यान	कान, जॉघ, कमर, पैर की एड़ियों, कन्धों व गले में।	प्राण-अपान आदि वायुओं को गति कराता है।
नाग	त्वचा और हड्डियों में।	डकार आदि क्रिया।
कूर्म	त्वचा और हड्डियों में।	नेत्रों का खोलना-बन्द करना।
कृकल	त्वचा और हड्डियों में।	भूख लगना।
देवदत्त	त्वचा और हड्डियों में।	निद्रा, जमुहाई आदि।
धनंजय	त्वचा और हड्डियों में।	मृत शरीर में भी रहती है।

तालिका 4.1 दस वायु के स्थान व कार्य

नाड़ी शोधन प्राणायाम -

उपनिषत्कार ने नाड़ी शोधन प्राणायाम विधि को वर्णित करते हुए कहा है कि सर्वप्रथम स्वानुकूल आसन लगाकर, शरीर को सीधा रखकर, नासाग्र पर दृष्टि रखते हुए दाँतों से जिह्वा को स्पर्श न करते हुए तालु में रखकर, स्वस्थ चित्त और निरामय भाव से, सिर को थोड़ा सा झुका कर तथा योग मुद्रा में हाथों को बाँधकर विधिपूर्वक प्राणायाम करना चाहिए। रेचक, पूरक, कुम्भक और वायु शोधन विधि से अभ्यास करके शरीर को प्राणायाम हेतु तैयार किया जाता है। इन चार विधियों से वायु को चलाने को प्राणायाम कहते हैं -

"रेचकं पूरणं वायोः शोधनं रेचनं तथा।

चतुर्भिः क्लेशनं वायोः प्राणायाम उदीर्यते।।"⁸³

सर्वप्रथम दाहिने हाथ के अँगूठे से नाक का दायाँ सुर दबा कर पिंगला (दायीं नाक) से वायु को बाहर निकाले फिर सोलह मात्रा से वायु को अन्दर खींचे और चौसठ मात्रा में कुम्भक करें और बत्तीस मात्रा में वायु को दायीं नाक से बाहर निकाल दें।

इस प्रकार बारम्बार क्रम और विपरीत क्रम से अभ्यास करते रहें और शरीर के अन्दर भरी वायु को कुम्भक के समान रोके रखें। इससे सब नाड़ियों में वायु भर जाती है और उन नाड़ियों में दस वायु भलीभाँति चलने लगती है। तब हृदयरूपी कमल विकसित होकर स्पष्ट हो जाता है और भगवान् वासुदेव के दर्शन होने लगते हैं।

इस विधि से प्रातः काल, मध्याह्न काल, सायंकाल और अर्धरात्रि को चार बार कुम्भक करना चाहिए और क्रमशः उसे अस्सी मात्रा तक धीरे-धीरे बढ़ाया जाना चाहिए।

प्राणायाम से सिद्धि -

जो व्यक्ति दिन में चार बार अस्सी-अस्सी प्राणायाम करता है उसके शरीर की नाड़ियों की सारी अशुद्धियाँ व रोग आदि नष्ट हो जाते हैं। एक पक्ष (पन्द्रह दिन में) शरीर की शुद्धि हो जाती है। तीन वर्ष तक प्राणायाम करने से साधक योग सिद्ध हो जाता है -

"योगसिद्धो भवेत् योगी वायुजित् विजितेन्द्रियः।

अल्पाशी स्वल्पनिद्रश्च तेजस्वी बलवान् भवेत्॥

अपमृत्युम् अपक्रम्य दीर्घमायुरवाप्नुयात्।"⁸⁴

अर्थात् शरीर की प्राणवायु पर योगी का अधिकार हो जाता है। वह जितेन्द्रिय, अल्पहारी, स्वल्पनिद्रा वाला, तेजस्वी तथा बलवान् हो जाता है। अकाल मृत्यु के भय को मिटा कर दीर्घायु हो जाता है।

प्राणायाम के स्तर व लाभ -

जिस प्राणायाम के अभ्यास से शरीर में पसीना आता है, वह अधम कोटि या स्तर का प्राणायाम है। अधम स्तर के प्राणायाम से शरीर के रोग और पाप नष्ट हो जाते हैं। जब शरीर में कँपकपी आने लगती है, तब वह मध्यम स्तर का प्राणायाम होता है। इससे महाव्याधियाँ, पाप तथा रोग नष्ट हो जाते हैं। जब अभ्यास करते रहने से शरीर भूमि से ऊपर उठने लगता है, तब उत्तम प्राणायाम होता है। उत्तम प्राणायाम से मानसिक, शारीरिक व कठिन से कठिन रोग भी नष्ट हो जाते हैं। साधक तीनों कालों का ज्ञाता हो जाता है। जो साधक रेचक और पूरक प्राणायामों को छोड़कर केवल कुम्भक ही करता है, उसके लिए तीनों कालों में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होती। जो साधक नाभिकन्द, नासाग्र और पैर के अँगूठे पर मानसिक रूप से प्राणवायु को लगाता है या धारण करता है, वह सब रोगों से मुक्त होकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। नाभिकन्द में प्राणवायु धारण करने से कुक्षिरोग (पेट के रोग) नष्ट हो जाते हैं। नासाग्र में प्राणवायु धारण करने से दीर्घायु और शरीर में हलकापन आ जाता है। ब्रह्म मुहूर्त में जिह्वा से वायु को खींच कर वायु पीने का अभ्यास तीन मास तक करने से वाक् सिद्धि प्राप्त होती है। जिह्वा से वायु पीने का अभ्यास छः मास तक करने से असाध्य रोग भी नष्ट हो जाते हैं। शरीर के जिस-जिस अंग पर प्राणवायु को मानसिक रूप से लगाया जाता है उस-उस अंग के रोग नष्ट हो जाते हैं।

इन्द्रियों को विषय से हटाकर अपान वायु को ऊपर धारण करने तथा कानों को हाथों से बन्द करके मन वश में किया जा सकता है। शरीर में प्राण वायु की गति जानने वाला साधक स्वरशास्त्र द्वारा अपने देहान्त का समय भी जान लेता है।

5. प्रत्याहार -

"चित्तस्यान्तर्मुखीभावः प्रत्याहारस्तु सत्तम।"⁸⁵

चित्त का अन्तर्मुखी भाव ही प्रत्याहार है अर्थात् चित्त को बाह्य विषयों से हटाकर इन्द्रियों को वश में करना प्रत्याहार होता है।

शरीर के अठारह मर्म स्थान हैं - पैर का अँगूठा, एड़ी, जाँघ का मध्य भाग, जाँघ का मूल स्थान, गुदा, हृदय, मूत्रेन्द्रिय, शरीर का मध्य, नाभि, कण्ठ, कोहनी, तालुमूल, नासिका मूल, आँखों का मध्य भाग, भ्रूमध्य, मस्तक, घुटने, हाथों का अन्तिम छोर। इन मर्म स्थानों पर प्राणवायु को केन्द्रित करने और किसी मर्म से प्राणवायु हटाने को भी प्रत्याहार बताया है -

"स्थानात्स्थानं समाकृष्य प्रत्याहारः स उच्यते।"⁸⁶

6. धारणा -

"चित्तस्य निश्चलीभावो धारणा धारणं विदुः।"⁸⁷

चित्त को निश्चल बना लेना धारणा है अर्थात् चित्त की स्थिरता धारणा कहलाती है।

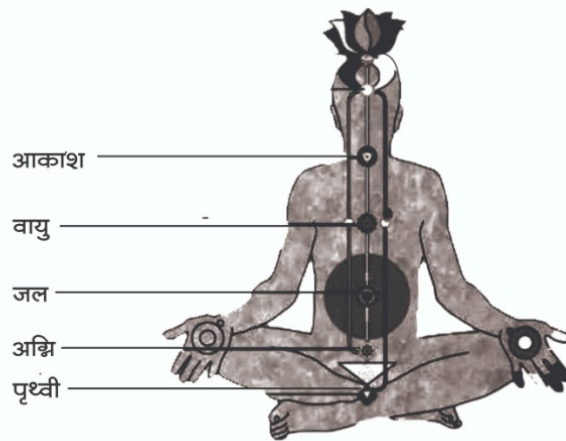
"मनसो धारणं यत्तद्युक्तस्य च यमादिभिः।"

धारणा सा च संसारसागरोत्तारकारणम्॥"⁸⁸

यमादि द्वारा मन का धारण करना ही धारणा कहलाती है। धारणा के अभ्यास से मनुष्य संसार सागर को पार कर सकने में समर्थ हो जाता है।

उपनिषत्कार ने मानव शरीरस्थ पञ्चमहाभूतों को पञ्च धारणा बताया है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश ये पञ्च धारणाएँ हैं।

पञ्च धारणाएँ -



चित्र 4.5 पञ्च धारणा

शरीर के अंगों में पञ्च भूतों की धारणा तथा पञ्च भूतों का चिन्तन करना इस प्रकार बताया गया है -

(क) पृथ्वी -

"आजानु पादपर्यन्तं पृथिवीस्थानमिष्यते।

पित्तला चतुरस्रा च वसुधा वज्रलाञ्छिता॥

स्मर्तव्या पञ्चघटिकास्तत्रारोप्य प्रभञ्जनम्॥"⁸⁹

उपनिषत्कार ने घुटनों से लेकर पैरों तक पृथिवी बताई है। पृथिवी का रंग पीला है। यह चार कोणों से युक्त तथा वज्रलाञ्छिता (वज्र अस्त्र से युक्ता) है।

अतः पृथ्वी महाभूत पर अधिकार के लिए पाँच घड़ी (दो घण्टे) तक वायु को धारण करके पृथ्वी का ध्यान करना चाहिए।

(ख) जल -

"आजानुकटिपर्यन्तम् अपां स्थानं प्रकीर्तितम्॥

अर्धचन्द्रसमाकारं श्वेतमर्जुनलाञ्छितम्।

स्मर्तव्यमम्भः श्वसनमारोप्य दशनाडिका॥"⁹⁰

घुटनों से कमर तक जल का स्थान है। जल की आकृति आधे चन्द्रमा जैसी है तथा इसका रंग सफेद है। यह चाँदी से लाञ्छित है। जल में दस घटी (चार घण्टे) तक श्वास रोक कर इसका चिन्तन करना चाहिए।

(ग) अग्नि -

"आदेहमध्य कट्यन्तमग्निस्थानमुदाहृतम्।

तत्र सिन्दूरवर्णोऽग्निर्ज्वलनं दशपञ्च च॥

स्मर्तव्यो नाडिकाः प्राणं कृत्वा कुम्भे तथेरितम्॥"⁹¹

शरीर के कटि मध्य अग्नि का स्थान है। अग्नि सिन्दूर रंग की तथा जाज्वल्यमान आकृति की है। इस स्थान पर प्राणवायु को पन्द्रह घड़ी (छः घण्टे) तक रोक कर अग्नि का ध्यान करना चाहिए।

(घ) वायु -

"नाभेरूपरि नासान्तं वायुस्थानं तु तत्र वै॥

वेदिकाकारवद् धूमो बलवान् भूतमारुतः।

स्मर्तव्यः कुम्भकेनैव प्राणमारोप्य मारुतम्॥

घटिकाविंशतिस्तस्माद् घ्राणाद् ब्रह्मबिलावधि॥"⁹²

नाभि से नाक तक वायु का स्थान है। वायु की आकृति यज्ञवेदी जैसी है और धुएँ जैसा रंग है। कुम्भक द्वारा वायु को रोक कर बीस घड़ी (आठ घण्टे) तक वायु का ध्यान करना चाहिए।

(ड) आकाश -

"व्योमस्थानं नभस्तत्र भिन्नांजनसमप्रभम्॥

व्योम्नि मारुतमारोप्य कुम्भकेनैव यत्नवान्॥

पृथिव्यंशे तु देहस्य चतुर्बाहुं किरीटिनम्॥

अनिरुद्धं हरिं योगी यतेत भवमुक्तये॥"⁹³

नाक से ब्रह्मरन्ध्र तक आकाश का स्थान बताया गया है। आकाश का रंग गहरा नीला है। प्रयत्नशील साधक को कुम्भक द्वारा प्राणवायु को आकाश में रोक कर पृथ्वी भाग में हरि का ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार इस उपनिषद् में बताया गया है कि पृथिवी आदि पञ्चमहाभूतों पर धारणा का अभ्यास कर व्यक्ति पञ्चभूतों पर अधिकार प्राप्त कर लेता है।

7. ध्यान -

"सोऽहं चिन्मात्रमेवेति चिन्तनं ध्यानमुच्यते॥"⁹⁴

'मैं चिन्मात्र स्वरूप हूँ' यही चिन्तन करना ध्यान कहलाता है अर्थात् जब साधक मन में यह भावना रखता है कि मैं केवल चिन्मात्र, चैतन्यस्वरूप ही हूँ तब यही विचार ध्यान कहलाता है।

अतः योगासन लगाकर हृदय में परमात्मा का ध्यान करना चाहिए। परमात्मस्वरूप का ध्यान मोक्ष प्रदान करता है। ब्रह्मरन्ध्र में तुरीयातीत श्रेष्ठ ब्रह्म के स्वरूप का ध्यान करने से विष्णुपद प्राप्त होता है। हृदयकमल में विराजमान अनन्तरूपों वाले ब्रह्म (सगुण ब्रह्म) का ध्यान करने वाले योगी की सम्पूर्ण मनोवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं तथा शीघ्र ही अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। हृदयकमल में विराजमान चैतन्यस्वरूप, अविकारी, ब्रह्म (निर्गुण ब्रह्म) का ध्यान करने से साधन को शीघ्र मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार प्रस्तुत उपनिषद् में ध्यान के सगुण और निर्गुण दो भेद बताए हैं। सगुण ब्रह्म अनेक रूपों से सुशोभित, अनेक मुखवाला, अनेक भुजाओं वाला, अनेक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित, अनेक कान्तियों से शोभायमान, शान्त, अनेक नेत्रयुक्त तथा करोड़ों सूर्यों की दीप्ति से युक्त है। इसके ध्यान से योगी के सम्पूर्ण संकल्प-

विकल्प नष्ट हो जाते हैं तथा निर्गुण ब्रह्म अविकारी, अव्यक्त, आनन्दमय, चैतन्य स्वरूप, ज्योतिष्मान् है। जिसके ध्यान से शीघ्र ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

8. समाधि -

"ध्यानस्य विस्मृतिः सम्यक्समाधिरभिधीयते।"⁹⁵

ध्यान का पूर्णरूप से विस्मरण कर देना समाधि है अर्थात् 'मैं ध्यान कर रहा हूँ' यह विचार पूरी तरह भूल जाना समाधि कहलाती है।

"जीवात्मनः परस्यापि यद्येवमुभयोरपि।

अहमेव परं ब्रह्म ब्रह्माहमिति संस्थितिः।।"⁹⁶

जीवात्मा एवं परमात्मा इन दोनों का वास्तविक स्वरूप जानकर 'मैं ब्रह्म हूँ' इस स्थिति को पा लेना ही समाधि है। समाधि में समस्त वृत्तियों का अन्त हो जाता है।

इस प्रकार सभी तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करके निष्काम हृदय योगी ईंधन रहित अग्नि के समान स्वयं ही शान्त हो जाता है।

उस योगी के मन और प्राण आत्मज्ञान से युक्त हो जाते हैं और वह ब्रह्मभाव में उसी प्रकार लीन हो जाता है जैसे नमक पानी में घुल जाता है। वह सम्पूर्ण संसार को स्वप्न के समान मिथ्या ज्ञान कर पूर्ण निश्चल भाव से सुषुप्ति की अवस्था में रहने लगता है और मोक्षपद प्राप्त कर कैवल्य सुख का अनुभव करता है।

निष्कर्ष -

त्रिशिखि नामक ब्राह्मण आदित्य लोक में जाकर भगवान् आदित्य से शरीर प्राण व आत्मा के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं। जिनका उत्तर भगवान् आदित्य देते हैं, वही इस उपनिषद् में निबद्ध है। त्रिशिखिब्राह्मण द्वारा पूछे गए प्रश्न ही इस उपनिषद् का आधार होने से इस उपनिषद् का नाम त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् है।

इस उपनिषद् में योग द्वारा ज्ञान की तथा ज्ञान द्वारा योग की उत्पत्ति बताई गई है। इस प्रकार योग के ज्ञानयोग और कर्मयोग ये दो प्रकार बताए गए हैं। चित्त को सदैव आत्मा के उत्थान में लगाने को ज्ञानयोग कहा गया है तथा शास्त्रानुकूल कर्मों में मन को लगाना कर्मयोग बताया है। इन दोनों योगों के अभ्यास से मोक्ष की प्राप्ति बतलाई गई है। अष्टांगयोग से ज्ञानमयी शिखा की उत्पत्ति बताई है तथा इसे निर्विशेष ब्रह्म को जानने का उपाय बताया गया है। अष्टांग योग के अन्तर्गत दस यम, दस नियम, सत्रह आसन, प्राणायाम में नाडी शोधन प्राणायाम, प्राणायाम के अधम, मध्यम व उत्तम स्तर व प्राणायाम के लाभ, नाडीचक्र,

मानवशरीर में अग्निमण्डल व कन्द का स्वरूप, नाड़ी परिगणना, दस मुख्य नाड़ियों का स्थान व स्वरूप, दस प्राणवायु का स्थान व कार्य बताए गए हैं। चित्त का अन्तर्मुखीभाव प्रत्याहार बताया गया है। चित्त को निश्चल बना लेना धारणा, चिन्तन करना कि मैं चिन्मात्र स्वरूप हूँ ध्यान तथा ध्यान का पूर्णरूप से विस्मरण कर देना समाधि बताई गई है।

4.4 योगचूडामण्युपनिषद् में योग तत्त्व मीमांसा

यह सामवेदीय उपनिषद् रहस्यमय तथा कैवल्य की सिद्धि प्रदान कराने वाला है। योगियों की कल्याण कामना के लिए इस उपनिषद् को रचा गया है जैसा कि उपनिषत्कार ने कहा है कि -

योगचूडामणिं वक्ष्ये योगिनां हितकाम्यया।

कैवल्यसिद्धिदं गूढं सेवितं योगवित्तमैः॥⁹⁷

षडंग योग साधना द्वारा व्यक्ति योग के क्षेत्र में चूडामणि हो सकता है अर्थात् मुकुट के स्तर (उच्च स्तर) का बन सकता है।

इस उपनिषद् में आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि ये छः योग के अंग बताए गए हैं साथ ही षट्चक्र, षोडशाधार, त्रिलक्ष्य, दस नाड़ी, पञ्चप्राण, अजपा जप, कुण्डलिनी, मिताहार, त्रिबन्ध, खेचरी मुद्रा, प्रणव अभ्यास, नाड़ीशोधन, षण्मुखीमुद्रा, अनाहत नाद आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है।

योग के छः अंग -

"आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।

ध्यानं समाधिरेतानि योगांगानि भवन्ति षट्॥"⁹⁸

इस उपनिषद् में योग के छः अंग कहे गए हैं - आसन, प्राणसंरोध (प्राणायाम) प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। जो साधक अष्टांगयोग के यम, नियम का अभ्यास कर चुके हैं उनके लिए षडंग योग का उपदेश है।

1. आसन -

उपनिषत्कार ने आसन को परिभाषित किए बिना आसन के प्रकारों का उल्लेख करते हुए कहा है कि -

"एकं सिद्धासनं प्रोक्तं द्वितीयं कमलासनम्॥"⁹⁹

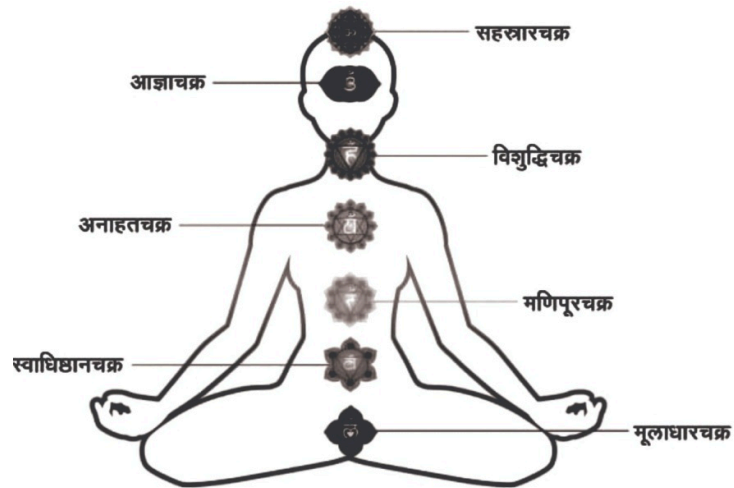
दो प्रकार के आसन हैं एक सिद्धासन दूसरा पद्मासन (कमलासन)। इस प्रकार दो ही अच्छे आसन माने हैं तथा आसनों के अभ्यास से शारीरिक रोगों का नाश होना बताया है -

"आसनेन रुजं हन्ति।"¹⁰⁰

योग के दूसरे अंग प्राणायाम के वर्णन से पूर्व षट्चक्र, कन्दस्थान, नाड़ी स्थान, नाड़ियों में चलने वाली वायु, अजपा जप, कुण्डलिनी, शक्तिचालन मुद्रा मिताहार, तीन बन्ध, खेचरी मुद्रा, वीर्य का महत्त्व, महामुद्रा तथा प्रणव अभ्यास का वर्णन किया गया है।

योग से सम्बन्धित क्रियाएँ होने के कारण इनका संक्षेप विवेचन किया जाना आवश्यक है।

षट्चक्र -



चित्र 4.6 षट् चक्र

उपनिषत्कार मानव शरीरस्थ षट्चक्रों की स्थिति व स्वरूप को वर्णित करते हुए कहते हैं कि -

"चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानं च षड्दलम्।।

नाभौ दशदलं पद्मं हृदये द्वादशारकम्।

षोडशारं विशुद्धाख्यं भूमध्ये द्विदलं तथा।"¹⁰¹

शरीर में स्थित षट्चक्रों में आधारचक्र (मूलाधार) चार दल वाला है, स्वाधिष्ठान चक्र में छः दल हैं, नाभि में स्थित मणिपूर चक्र दस दल वाला है,

द्वादश दल का अनाहत चक्र हृदय में स्थिति है, कण्ठ में स्थित विशुद्ध चक्र सोलह दल वाला है तथा भूमध्य में दो दलों वाला आज्ञाचक्र स्थित है।

योनिस्थान परम ज्योति के दर्शन को समुपस्थापित करते हुए कहा गया है कि प्रथम चक्र मूलाधार है। द्वितीय चक्र स्वाधिष्ठान हैं। इन दोनों चक्रों के बीच योनिस्थान है, जिसे कामरूप पीठ कहते हैं। काम नाम का चार दल का कमल गुदा में स्थित है। चतुर्दल कमल के मध्य में सिद्धों द्वारा वन्दित कामाख्या योनि है। इसी योनि के बीच में महालिंग है, जिसका मुख पश्चिम की ओर है। इस महालिंग की नाभि पर मणि की तरह चमकीला बिम्ब है। इसे जो जानता है वही वास्तव में योगी है। लिंग के नीचे त्रिकोण कालाग्नि का स्थान है। यह त्रिकोण वह्नि मेढ्र (लिंगमूल) के नीचे स्थित है। समाधि में इस त्रिकोण पर मन एकाग्र करने पर अनन्त ज्योति प्रकट होती है यही ज्योति कालाग्नि है। योगाभ्यास द्वारा इसे देख लेने पर योगी जन्म-मरण व संसार के आवागमन चक्र से छूट जाता है।

यहाँ महालिंग और योनि की स्थिति व स्वरूप का जो वर्णन किया गया है वह सृष्टि प्रक्रिया की ओर संकेत करता है। महालिंग और योनि की यह स्थिति शिवालयों में दृष्टिगोचर होती है। जहाँ शिवलिंग, योनि के मध्य में स्थापित रहता है। शिवलिंग की आराधना के द्वारा प्रकृति और पुरुष के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति करने वाली पराशक्ति की आराधना की जाती है। तन्त्र परम्परा के अनुसार भी महालिंग त्रिकोणाकार योनि में सुषुम्ना द्वार के सामने स्थित है। यहीं पर सुषुप्त कुण्डलिनी शक्ति होती है, जो कि जीवन का आधार है और मोक्ष का द्वार भी है।

योनिस्थान, योनि व महालिंग को विवेचित कर उपनिषत्कार सृष्टि उत्पत्ति के लिए अनिवार्य प्रकृति-पुरुष के संयोग का ही आलंकारिक रूप प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्राण को स्व कहा जाता है और यह स्वाधिष्ठान के आश्रय में रहता है। स्वाधिष्ठान के आश्रित होने के कारण यह मेढ्र भी कहा जाता है। अर्थात् मेढ्र (लिंगमूल) पर स्वाधिष्ठान चक्र है तथा मेढ्र प्राण का आधार होने से स्वाधिष्ठान कहलाता है। यहीं पर धागे में पिरोई हुई मणि के समान सुषुम्ना नाड़ी का केन्द्र है। नाभि में रहने वाला यह चक्र मणिपुर कहलाता है। हृदय में स्थित बारह दल वाले अनाहत चक्र में पाप-पुण्य से रहित जीवात्मा का वास है।

जब तक जीवतत्त्व ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता तब तक जीवन-मरण के चक्र में घूमता रहता है।

कन्द स्थान -

लिंगमूल के ऊपर और नाभि के नीचे पक्षी के अण्डे के आकार वाला कन्द स्थान बताया गया है तथा यह कन्द स्थान सभी नाड़ियों का उत्पत्ति स्थल है -

"ऊर्ध्व मेढ्राधो नाभेः कन्दयोनिः खगाण्डवत्॥

तत्रनाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः॥"¹⁰²

गोरक्षपद्धति (1/24) में भी इसी प्रकार का श्लोक उल्लेखित कर कन्द का स्थान मेढू से ऊपर और नाभि से नीचे अण्डे जैसी आकृति वाला बताया गया है।

नाड़ियाँ व उनके स्थान -

नाड़ियों के उत्पत्ति स्थल कन्द स्थान से बहत्तर हजार नाड़ियाँ निकलती हैं। इन बहत्तर हजार नाड़ियों में से बहत्तर नाड़ियाँ ही प्रधान मानी गई हैं।

इनमें से भी दस प्राणवाहिनी नाड़ियाँ मुख्य मानी गई हैं -

"प्रधानाः प्राणवाहिन्यो भूयस्तासु दश स्मृताः।

इडा च पिंगला चैव सुषुम्ना च तृतीयका॥

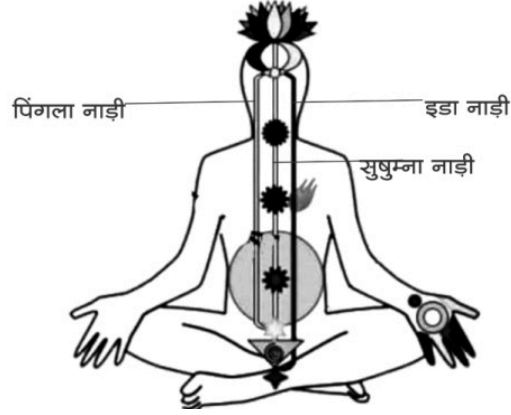
गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी।

अलम्बुसा कुहूश्चैव शंखिनी दशमी स्मृता॥"¹⁰³

इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुसा, कुहू और शंखिनी ये दस मुख्य नाड़ियाँ हैं।

नाड़ियों का यह महाचक्र योगियों के लिए ज्ञानमय है अतः नाड़ियों के इस चक्र के बारे में योगियों को जानकारी रखनी चाहिए।

नाक के बाएँ सुर में इडा और नाक के दाएँ सुर में पिंगला नाड़ी है। इडा और पिंगला के बीच में सुषुम्ना है। गान्धारी बायीं आँख में और हस्तिजिह्वा दायीं आँख में है। दाएँ कान में पूषा और बाएँ कान में यशस्विनी नाड़ी है। अलम्बुसा मुख में, कुहू लिंगेन्द्रिय में तथा शंखिनी मूलाधार में है। इस प्रकार ये दस नाड़ियाँ प्राणवायु के एक-एक मार्ग में स्थित हैं। इनमें भी इडा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन नाड़ियाँ प्राणवायु की मुख्य नाड़ियाँ मानी जाती हैं। इनके द्वारा ही शरीर को लगातार प्राणवायु मिलती रहती है। इडा नाड़ी का देवता चन्द्रमा है, पिंगला नाड़ी का देवता सूर्य है तथा सुषुम्ना नाड़ी का देवता अग्नि है। अभिप्राय यह है कि इडा नाड़ी में चन्द्रमा की तरह शीतल प्राणवायु चलती है, पिंगला में सूर्य के समान गर्म प्राणवायु चलती है तथा सुषुम्ना में अग्नि जैसी तीव्र प्राणवायु होती है।



चित्र 4.7 तीन प्रमुख नाड़ियाँ

इन तीन नाड़ियों में भी सुषुम्ना सबसे मुख्य है। जो कि अत्यन्त सूक्ष्म नाड़ी है। सुषुम्ना गुदा के पास मेरुदण्ड के भीतर होती हुई मस्तिष्क में चली जाती है। नाड़ियों के स्थान को उल्लेखित कर अब इन नाड़ियों में बहने वाली प्राणादि वायु के स्थान व उनके कार्य को बताया जा रहा है।

वायु और उनके कार्य -

"प्राणापानसमानाख्या व्यानोदानौ च वायवः॥

नागः कूर्मोऽथ कृकलो देवदत्तो धनञ्जय॥"¹⁰⁴

प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान ये पाँच प्रधानवायु हैं तथा नाग, कूर्म, कृकल देवदत्त एवं धनञ्जय ये पाँच उपप्राण वायु बताई गई हैं। प्राणवायु हृदय में स्थित रहती है। अपान वायु गुदा स्थान में, समान वायु नाभिप्रदेश में, उदान कण्ठ में तथा व्यान वायु सम्पूर्ण शरीर में स्थित है।

उद्गार (डकार) निकालना नाग वायु का कार्य है। आँखों की पलकों का झपकना कूर्म वायु से होता है। छींकना कृकल वायु का तथा जँभाई लेना देवदत्त वायु का कार्य है। धनञ्जय वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहती है, जो मृत्यु के पश्चात् भी शरीर में रहती है। ये दस वायु शरीर की सभी नाड़ियों में गति करती रहती हैं। प्राण और अपान वायु के वेग से जीव एक जगह नहीं बैठ पाता। वह ऊपर-नीचे दौड़ता रहता है। प्राण और अपान वायु की गति अत्यन्त चंचल होती है।

जिस प्रकार रस्सी से बँधा बाज पक्षी उड़कर पुनः उसी जगह लौट आता है उसी प्रकार तीन गुणों से बँधा हुआ जीवात्मा प्राण और अपान वायु से खींचा जाता है। अपान वायु प्राण वायु को नीचे खींचती है और प्राण वायु अपान वायु को ऊपर खींचती है।

इस प्रकार उपनिषत्कार के अनुसार जो मूलाधार में नीचे स्थित अपान वायु तथा अनाहत चक्र में ऊपर स्थित प्राण वायु की गति को जानता है, वही योगवित् (योगी) है। नाड़ियों में चलने वाली वायु का इसी प्रकार का उल्लेख त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् (मन्त्र संख्या 77 से 87 तक) में मिलता है। जिसमें इसी उपनिषद् के समान दस वायु के स्थान व कार्य का वर्णन किया गया है साथ ही प्राण और अपान को प्रधान वायु बताया गया है।

नाड़ी शोधन से प्राणायाम सिद्धि -

नाड़ी शोधन प्राणायाम की उपादेयता को स्पष्ट करते हुए उपनिषत्कार कहते हैं कि -

"शुद्धिमेति यदा सर्व नाड़ीचक्रं मलाकुलम्।

तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणक्षमः॥"¹⁰⁵

अर्थात् जब नाड़ी चक्र सब प्रकार के मलों से शुद्ध हो जाता है, तब योगी प्राणों का निरोध करने में समर्थ हो पाता है। इस प्रकार प्राणायाम सिद्धि के लिए नाड़ी चक्रों को शुद्ध करना आवश्यक है।

नाड़ी शोधन प्राणायाम विधि -

योगी को बद्धपद्मासन लगाकर चन्द्र (बायीं नासिका) से वायु को भीतर खींचना और उसे यथाशक्ति भीतर रोक कर सूर्य (दाहिनी नासिका) से बाहर निकालना चाहिए। सर्वप्रथम इडा (बायीं नासिका) से श्वास भरकर पिंगला (दायीं नासिका) से रेचक कर सूर्य (दाहिनी नासिका) से बाहर निकालना चाहिए।

सर्वप्रथम इडा (बायीं नासिका) से श्वास भरकर पिंगला (दायीं नासिका) से रेचक करें फिर पिंगला से श्वास लेकर इडा से बाहर निकाल देना चाहिए। इस प्रकार सूर्य और चन्द्र दोनों बिन्दुओं का ध्यान करने से दो मास में नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं।

लाभ -

"यथेष्टं धारणं वायोरनलस्य प्रदीपनम्।

नादाभिव्यक्तिरारोग्यं जायते नाडीशोधनात्॥"¹⁰⁶

नाड़ी शोधन प्राणायाम से जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है अर्थात् भूख बढ़ती है। शरीर स्वस्थ हो जाता है और कानों से अनाहत नाद सुनाई देने लगता है।

अजपा जप -

उपनिषत्कार अजपाजप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि -

"हकारेण बहियाति सकारेण विशेत्पुनः।

हंसहंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा॥"¹⁰⁷

अर्थात् जब श्वास छोड़ा जाता है तब 'ह' कार की ध्वनि होती है और श्वास भरते हुए 'स' कार की ध्वनि होती है। इस प्रकार हम श्वास भरते और छोड़ते हुए सदैव हंस-हंस शब्द का जाप करते रहते हैं। एक दिन-रात में इक्कीस हजार छः सौ बार हंस शब्द का अपने आप जाप करते हैं। अजपा जप के लिए किसी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती बल्कि यह स्वतः ही श्वास-प्रश्वास के साथ सम्पादित हो जाता है।

हंस शब्द का अपने आप होने वाला जप अजपा गायत्री कहलाता है। इस प्रकार अजपा जप को हंस योग, अजपा गायत्री तथा सोऽहम् साधना के रूप में भी जाना जाता है। इस हंस मन्त्र का ध्यान करने से सभी प्रकार के पापों से छुटकारा मिल जाता है।

"अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः।

अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति॥"¹⁰⁸

हंस अजपा जप के समान न कोई विद्या है, न कोई जप है और न कोई इसके समान ज्ञान था और न कभी होगा। यह अजपा गायत्री कुण्डलिनी शक्ति से उत्पन्न होता है। श्वास-प्रश्वास का यह अजपा जप जीवात्मा की सबसे बड़ी प्राणविद्या बताई गई है तथा इस प्राणविद्या को जानने वाला ज्ञानी होता है।

कुण्डलिनी शक्ति -

"कन्दोर्ध्वं कुण्डलीशक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः।

ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनाच्छाद्य तिष्ठति॥"¹⁰⁹

शरीर के कन्द के ऊपरी भाग अर्थात् मणिपूर चक्र में कुण्डलिनी आठ कुण्डली (घेरे) मार कर स्थित है। यह वहीं पर ब्रह्मद्वार अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी के मुख को ढक कर सोई रहती है। मन को एकाग्र करके तथा वह्नियोग (प्राणायाम) के अभ्यास से प्राण को वश में करके कुण्डलिनी शक्ति को जगाया जाता है। प्राण और मन को वश में कर लेने पर यह सुषुम्ना नाड़ी के रास्ते ब्रह्मरन्ध्र तक उसी प्रकार चली जाती है

जैसे सुई में पिराया हुआ धागा कपड़े में आसानी से चला जाता है। योगी कुण्डलिनी शक्ति द्वारा मोक्ष के द्वार उसी प्रकार खोल लेता है जैसे घर के द्वार को चाबी द्वारा खोल कर घर में पहुँचा जाता है।

आठ कुण्डलों से युक्त यह कुण्डलिनी शक्ति मूर्खों को सांसारिक बन्धन में डालती है किन्तु योगियों को लिए यह मोक्षप्रदायिका है। उपनिषत्कार ने शक्तिचालन मुद्रा को कुण्डलिनी जाग्रत करने वाली मुद्रा बताया है अतः शक्तिचालन मुद्रा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि -

**"कृत्वा सम्पुटितौ करौ दृढतरं बध्वा तु पद्मासनं
गाढं वक्षसि संनिधाय चिबुकं ध्यानं च तच्चेष्टितम्।
वारं वारमपान मूर्ध्वमनिलं प्रोच्चारयेत् पूरितं
मुञ्चन्प्राणमुपैति बोधमतुलं शक्ति प्रभावान्नरः॥"**¹¹⁰

अर्थात् हाथों को संपुटित करके, अच्छी तरह पद्मासन लगाकर और ठोड़ी को कण्ठकूप (जालन्धर बन्ध) में लगा कर ब्रह्म का ध्यान करते हुए प्राणवायु को ऊपर खींच कर बाहर निकाल देना चाहिए। साधक को शक्तिचालन मुद्रा के अभ्यास से आए पसीने से शरीर के अंगों की मालिश करनी चाहिए। इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति को जगाने वाली यह शक्तिचालन मुद्रा है। इस मुद्रा के निरन्तर अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर जाती है।

कुण्डलिनी जागरण का अभ्यास करने वाले साधक को आहार का निर्देश देते हुए कहा गया है कि खट्टे, कड़वे और नमकीन पदार्थों का त्याग कर दूध का विशेष रूप से सेवन करना चाहिए।

"ब्रह्मचारी मिताहारी योगी योगपरायणः।

अब्दादूर्ध्वं भवेत् सिद्धो नात्र कार्या विचारणा॥"¹¹¹

अर्थात् जो योगी ब्रह्मचारी, मिताहारी और योग परायण होता है वह मात्र एक वर्ष में ही सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। जो साधक स्निग्ध, मधुर और उदर का चौथाई भाग खाली रखकर आहार का सेवन करता है तथा भगवान का ध्यान करते हुए भोजन करता है वह मिताहारी कहा जाता है।

तीन बन्ध -

बन्ध शरीर में प्राणवायु के प्रवाह को विनियमित व नियन्त्रित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बन्ध का अर्थ होता है बाँधना या संकुचित करना। इसके द्वारा शरीर के किसी अंग विशेष को बाँध कर प्राणवायु को विशिष्ट लक्ष्य की

ओर मोड़ा जाता है। विष्णु, रुद्र व ब्रह्म इन तीन ग्रन्थियों को खोलने हेतु बन्ध उपयोगी हैं। इन ग्रन्थियों के कारण सुषुम्ना नाड़ी में प्राण वायु का अवरुद्ध हो जाता है अतः सुषुम्ना में सुचारु रूप से प्राण प्रवाहित हो सके इस हेतु बन्धाभ्यास आवश्यक है।

मुख्य रूप से बन्ध के तीन प्रकार बताए हैं। तीन बन्धों की क्रियाविधि व लाभ को निम्न प्रकार से प्रतिपादित किया गया है -

(क) मूलबन्ध -

"पार्ष्णिघातेन संपीड्य योनिमाकुञ्चयेद्दृढम्।

अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धो विधीयते॥"¹¹²

अर्थात् पैर की एड़ी से योनिस्थान (सीवनी) को दबाकर गुदा को सिकोड़ना तथा अपान वायु को ऊपर की ओर उठाना मूलबन्ध कहलाता है।

लाभ -

मूलबन्ध के निरन्तर अभ्यास से प्राण और अपान वायु आपस में मिलकर एक हो जाते हैं। इससे शरीर में मल-मूल की मात्रा घट जाती है। मूलबन्ध का अभ्यास करने से वृद्ध व्यक्ति भी युवा हो जाता है।

(ख) उड्डीयान बन्ध -

"उदरात् पश्चिमं ताणमधो नाभेर्निगद्यते।

ओड्याणमुदरे बन्धस्तत्र बन्धो विधीयते॥"¹¹³

उड्डीयान बन्ध में नाभि से नीचे का पेट पीछे अर्थात् कमर से लगाया जाता है। पेट की सारी वायु बाहर निकाल कर पेट को अन्दर की ओर खींचकर पीठ से लगाना उड्डीयान बन्ध कहलाता है।

लाभ -

उड्डीयान बन्ध का अभ्यास करने से प्राणवायु रूपी पक्षी बिना विश्रान्ति के सुषुम्ना नाड़ी में चला जाता है। यह बन्ध मृत्यु रूपी हाथी के लिए शेर है अर्थात् मृत्यु दूर चली जाती है।

(ग) जालन्धर बन्ध -

"जालन्धरे कृते बन्धे कण्ठसंकोचलक्षणे॥"¹¹⁴

कण्ठ को सिकोड़ कर (संकुचित कर) ठोड़ी को कण्ठकूप में दबाकर लगाना जालन्धर बन्ध कहलाता है।

लाभ -

जालन्धर बन्ध लगाने से ब्रह्मरन्ध्र की पीयूष ग्रन्थि से निकलने वाला अमृत रस पेट की अग्नि में गिरकर नष्ट नहीं होता तथा शरीर में वायु विकार से होने वाले रोग नहीं होते।

खेचरी मुद्रा -

"कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।

भुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुदा भवति खेचरी॥"¹¹⁵

जीभ को उलटकर पीछे की ओर ले जाकर जीभ को कपाल कुहर (जीभ के ऊपर खाली स्थान) में प्रविष्ट कराने और दोनों भौंहों के बीच दृष्टि स्थिर करने से खेचरी मुद्रा होती है।

खेचरी मुद्रा में मन भौंहों के बीच खाली स्थान पर एकाग्र किया जाता है तथा जीभ भौंहों के बीच लगी होती है अर्थात् इस मुद्रा का अभ्यास करते रहने से जीभ भौंहों के बीच तक पहुँच जाती है।

लाभ -

"न रोगो मरणं तस्य न निद्रा न क्षुधा तृषा।

न च मूर्च्छा भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्॥

पीड्यन्ते न च रोगेण लिप्यते न स कर्मभिः।

बाध्यते न च केनापि यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्॥"¹¹⁶

खेचरी मुद्रा का अभ्यास करने से रोग, मरण, भूख, प्यास, नींद तथा मूर्च्छा नहीं आती। जो खेचरी मुद्रा को जानता है, उसे कोई रोग, दुःख और शोक नहीं सताता। न ही वह कर्मफल के बन्धन में पड़ता है और न ही उसे किसी बाधा का सामना करना पड़ता है। इस मुद्रा के अभ्यास से वीर्य का स्खलन भी नहीं होता।

महामुद्रा -

"शोधनं नाडीजालस्य चालनं चन्द्रसूर्ययोः।

रसानां शोषणं चैव महामुद्राभिधीयते॥"¹¹⁷

जिससे नाड़ी जाल का शोधन, चन्द्र-सूर्य का चालन तथा रस का शोषण होता है, उसे महामुद्रा कहा जाता है अर्थात् महामुद्रा के अभ्यास से शरीर के नाड़ी जाल का मल दूर होता है, चन्द्र (इडा नाड़ी) और सूर्य (पिंगला नाड़ी) स्वर्ण (नाड़ियों) में प्राणवायु का अच्छी तरह से संचार होता है तथा पाचन शक्ति बढ़ने से खाद्य-पेय पदार्थों का रस शरीर में व्याप्त होकर शरीर को पुष्ट बनाता है।

विधि -

ठोड़ी को कण्ठकूप में लगा कर बाएँ पैर से योनिस्थान को ढेर तक दबा कर दायें पैर आगे फैला कर दोनों हाथों से पकड़ना चाहिए फिर पूरक-कुम्भक करके श्वास धीरे-धीरे निकाल (रेचन) देना चाहिए।

सर्वप्रथम चन्द्र अंश (बायीं नासिका) से अभ्यास करना चाहिए फिर सूर्य अंश (दायीं नासिका) से। जब दोनों की संख्या समान हो जाए तब अभ्यास बन्द कर देना चाहिए।

महामुद्रा के लाभ -

"सेयं व्याधिविनाशिनी सुमहती मुद्रा नृणां कथ्यते॥"¹¹⁸

महामुद्रा के अभ्यास से सब प्रकार की व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं अतः इसे सर्वव्याधिविनाशिनी मुद्रा भी कहा जाता है। इस मुद्रा के प्रभाव से पथ्य-अपथ्य ही नहीं बल्कि नीरस भोजन भी रसवान बन जाता है, अधिक खाया हुआ और विष युक्त भोजन भी अमृत के समान होकर पच जाता है।

"क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः।

तस्य रोगाः क्षयं यान्ति महामुद्रां तु योऽभ्यसेत्॥"¹¹⁹

महामुद्रा का नियमित अभ्यास करने से तपेदिक, कोढ़, बवासीर, पेट की गांठ, अपचन आदि समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। उपनिषत्कार ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि मनुष्यों को महासिद्धि देने वाली इस मुद्रा को किसी दुष्ट या अयोग्य व्यक्ति को नहीं बताना चाहिए। अन्यथा वह इसका अनुचित लाभ उठा सकता है।

2. प्राणायाम -

सर्वप्रथम उपनिषत्कार प्राणायाम विधि का वर्णन करते हुए कहते हैं कि पद्मासन लगा कर हाथों को ऊपर-नीचे गोदी में रख कर सम्पुटित करके ठोड़ी को कण्ठकूप में लगा कर ब्रह्म का ध्यान करते हुए श्वास को अन्दर खींचे और बाहर निकालें।

इस प्रकार इस उपनिषद् में पूरक व रेचक करके प्राणवायु को अन्दर और अपान वायु को ऊपर प्राणवायु में मिलाकर कुम्भक प्राणायाम करने का निर्देश दिया गया है। प्राणायाम हेतु अन्य आसन बद्ध पद्मासन की भी चर्चा की गई है -

"बद्धपद्मासनो योगी नमस्कृत्य गुरुं शिवम्।

नासाग्रदृष्टिरेकाकी प्राणायामं समभ्यसेत्॥"¹²⁰

अर्थात् बद्धपद्मासन में बैठ कर शिवरूपी गुरु को नमस्कार करना चाहिए फिर नाक के अगले भाग पर दृष्टि जमा कर एकान्त स्थान में प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

प्राणायाम की पूरक, कुम्भक और रेचक ये तीनों क्रियाएँ प्रणव का ही रूप हैं। इस प्रकार का प्राणायाम बारह मात्रा में करना चाहिए। बारह मात्रा का पूरक करके सोलह मात्रा का कुम्भक करना चाहिए फिर दस मात्रा रेचक करना चाहिए। यह ओंकार प्राणायाम कहा जाता है -

"पूरकं द्वादशं कुर्यात् कुम्भकं षोडशं भवेत्।

रेचकं दश चोँकारः प्राणायामः स उच्यते॥"¹²¹

अर्थात् ओम् का बारह बार जप करते हुए पूरक करना चाहिए। सोलह मात्राओं तक प्रणव जप होने तक कुम्भक करना चाहिए। इसके बाद दस बार प्रणव जप करते हुए रेचक करना चाहिए।

प्राणायाम के प्रकार, मात्रा व लक्षण -

"अधमे द्वादशमात्रा मध्यम द्विगुणा मता।

उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायामस्य निर्णयः॥

अधमे स्वेदजननं कम्पो भवति मध्यमे।

उत्तमे स्थानमाप्नोति ततो वायुं निरुन्धयेत्॥"¹²²

प्राणायाम के अधम, मध्यम तथा उत्तम प्रकारों को, मात्रा की अवधि को तथा लक्षणों को तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है -

क्र.सं.	प्रकार	मात्रा	लक्षण
1	अधम प्राणायाम	12	शरीर से पसीना निकलता है।
2	मध्यम प्राणायाम	24	शरीर में कम्पन उत्पन्न होता है।
3	उत्तम प्राणायाम	36	शरीर आसन से ऊपर उठने लगता है।

तालिका 4.2 प्राणायाम प्रकार, मात्रा व लक्षण

उपनिषत्कार ने प्राणायाम को पापरूपी ईन्धन के लिए अग्नि स्वरूप तथा भवसागर से पार होने के लिए सेतु समान बताया है।

प्राणायाम के लाभ -

"प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।"¹²³

विधिवत् व निरन्तर प्राणायाम के अभ्यास से सभी प्रकार के रोगों से मुक्ति मिलती है। बारह मात्रा वाले प्राणायाम से साधक के सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। प्रस्तुत उपनिषद् में प्राणायाम हेतु योगी को उचित दिशा-निर्देश भी दिया गया है -

हिक्का कासस्तथा श्वासः शिरः कर्णाक्षिवेदनाः।

भवन्ति विधिना रोगाः पवनव्यत्ययक्रमात्।"¹²⁴

अर्थात् गलत ढंग से प्राणायाम करने से शरीर में अनेक प्रकार के रोग हो सकते हैं। प्राणवायु विकृत होकर हिचकी, खाँसी, श्वास चलना, सिर दर्द आदि अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न कर देती है अतः प्राणायाम करते समय श्वास को धीरे-धीरे छोड़ना चाहिए और धीरे-धीरे ही भरना चाहिए। श्वास रोकने का समय भी धीरे-धीरे और उचित रीति से बढ़ाना चाहिए।

3. प्रत्याहार -

"चरतां चक्षुरादीनां विषयेषु यथाक्रमम्।

तत्प्रत्याहरणं तेषां प्रत्याहारः उच्यते।"¹²⁵

चक्षु आदि इन्द्रियों को अपने विषयों से हटाने का अभ्यास प्रत्याहार कहलाता है अर्थात् आँख कान आदि ज्ञानेन्द्रियाँ देखने सुनने का काम करती हैं। इन इन्द्रियों को स्वविषय (देखने-सुनने आदि विषयों) से रोकना प्रत्याहार कहा जाता है। जिस प्रकार सूर्य तीसरे पहर में अपनी गर्मी व चमक वापस ले लेता है अर्थात् कम कर देता है, उसी प्रकार योगी योग के तीसरे अंग प्रत्याहार में स्थिर होकर मन के विकारों का शमन कर देता है। प्रतिदिन बारह बार प्राणायाम करने से प्रत्याहार की स्थिति बनती है -

"प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः।"¹²⁶

इस प्रकार प्रस्तुत उपनिषद् में एक दिन में बारह बार प्राणायाम के अभ्यास से प्रत्याहार की सिद्धि बताई गई है। प्रत्याहार में इन्द्रियाँ सांसारिक विषयों से हटकर अन्तर्मुखी हो जाती हैं तथा प्रत्याहार से मानसिक विकारों की समाप्ति हो जाती है।

4. धारणा -

"प्रत्याहारद्विषट्केन जायते धारणा शुभा।"¹²⁷

बारह बार प्रत्याहार का अभ्यास करने पर शुभफलदात्री धारणा की वृत्ति का उदय होता है अर्थात् प्रतिदिन बारह बार प्रत्याहार का अभ्यास करने से धारणा की स्थिति होती है। धारणा से साधक का मन धैर्यवान् बनता है -

"धारणाभिर्मनोधैर्यं याति चैतन्यमद्भुतम्।"¹²⁸

5. ध्यान -

धारणा द्वादश प्रोक्तं ध्यानं योगविशारदैः।¹²⁹

बारह बार धारणा करने से ध्यान की अवस्था बनती है अर्थात् बारह धारणा को ध्यान कहा गया है। धारणा के अभ्यास के समय मन कभी-कभी भटक जाता है किन्तु ध्यान में मन की एकाग्रता बढ़ जाती है।

6. समाधि -

ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते।¹³⁰

द्वादश आवृत्ति पर ध्यान होने से समाधि अवस्था प्राप्त होती है अर्थात् ध्यान लगाने वाला प्राणायाम बारह बार करने से समाधि लगती है। समाधि की स्थिति में साधक को परम ज्योति, अनन्त और विश्वतोमुख का भाव प्राप्त होता है अर्थात् परम तत्त्व का साक्षात्कार हो जाता है। परमतत्त्व का साक्षात्कार हो जाने पर साधक सांसारिक कर्मों के बन्धन से छूट जाता है और जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार समाधि को योग की उच्च अवस्था बताया गया है।

निष्कर्ष -

योगचूडामण्युपनिषद् के अनुसार रज (इडा) और वीर्य (पिंगला) अर्थात् चन्द्र नाड़ी और सूर्य नाड़ी की प्राणवायु का मिलन ही योग है तथा इस योग के आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये छः अंग बताए गए हैं। सर्वप्रथम आसन के अन्तर्गत सिद्धासन और पद्मासन को दो मुख्य आसन बताए हैं साथ ही बद्धपद्मासन की भी चर्चा की गई है। योग के द्वितीय अंग प्राणायाम के विवेचन से पूर्व आधारचक्र, स्वधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत आदि षट्चक्रों की शरीर में स्थिति बताई गई है। प्राण को स्वाधिष्ठान चक्र के आश्रित बताया है तथा अनाहत चक्र को जीव का वास माना है। कन्दस्थान को सभी नाड़ियों का उत्पत्ति स्थल बताया है। इस कन्दस्थान से इडा, पिंगला, सुषुम्ना गान्धारी, हस्तिजिहवा आदि दस नाड़ियाँ

निकलती हैं। इन दस नाड़ियों में भी इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना को प्रधान नाड़ी बताया गया है। इन नाड़ियों में बहने वाली प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान ये पाँच प्राणवायु कही गई हैं तथा नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त एवं धनंजय ये पाँच उपप्राण कहे गए हैं। नाड़ी शोधन से प्राणायाम सिद्धि बताई गई है अतः नाड़ी शोधन की विधि व लाभ भी वर्णित है। हंस शब्द का अपने आप होने वाला जप अजपा गायत्री बताया गया है। मन को एकाग्र करके तथा प्राणायाम के अभ्यास से प्राण को वश में करके कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करना बताया गया है क्योंकि कुण्डलिनी शक्ति मोक्षप्रदायिका बताई गई है।

मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध तथा जालन्धर इन तीन बन्धों की क्रियाविधि बताकर इनसे होने वाले लाभ की भी चर्चा की गई है। खेचरी मुद्रा तथा महामुद्रा की विधि व लाभ का भी उल्लेख किया गया है। प्राणायाम हेतु जालन्धर बन्ध लगाकर ब्रह्मध्यान कर पूरक रेचक कर प्राण को अपान में मिलाने के लिए कहा गया है। नाड़ी शुद्धि द्वारा भी प्राणायाम की सिद्धि बताई गई है। प्राणायाम के साथ चन्द्र-सूर्य का ध्यान भी बताया गया है। प्रणव रूप में द्वादश मात्रायुक्त प्राणायाम करने के लिए भी निर्देशित किया गया है। प्राणायाम अभ्यास से प्राणवायु को वश में कर वीर्यरक्षा की जा सकती है क्योंकि वीर्यरक्षा से उर्ध्वरेता बनकर योगी ईश्वरीय शक्ति प्राप्त कर सकता है। प्राणायाम को मन एकाग्र करने का सर्वोत्तम साधन बताया गया है अतः प्राणायाम का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है।

षडंग योग के प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि इन चार अंगों का उपनिषत्कार ने संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है। बारह प्राणायाम करने से प्रत्याहार होने लगता है। प्रत्याहार का अभ्यास करने से मन के विकार दूर हो जाते हैं। प्रत्याहार का अभ्यास बढ़ाने पर धारणा होने लगती है तथा धारणा से मन का धैर्यवान् होना बताया गया है। धारणा के अभ्यास से ध्यान की स्थिति बनती है। ध्यान लगाने वाला प्राणायाम बारह बार करने से समाधि की स्थिति प्राप्त होती है तथा समाधि योग की उच्च अवस्था मानी गई है। प्राणायाम समाधि प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन बताया गया है क्योंकि प्राणायाम का अभ्यास जितना अधिक किया जायेगा उतनी ही शीघ्रता से समाधि की प्राप्ति होगी। समाधि में प्राणवायु क्षीण होकर मन के साथ समरस होकर ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है।

4.5. योगतत्त्वोपनिषद् में योग तत्त्व मीमांसा

कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित इस उपनिषद् में भगवान विष्णु को महायोगी, महातपस्वी तथा तत्त्वमार्ग का दीपक बताया गया है। उपनिषद् का आरम्भ विष्णु द्वारा ब्रह्मा जी को दिए गए अष्टांग सहित योग के उपदेश से हुआ है। कैवल्यरूप परमपद की प्राप्ति के लिए योग मार्ग को श्रेष्ठ उपाय बताया गया है। जन्म, जरा तथा व्याधि से छुटकारा दिलाने वाला मार्ग यही है। शरीर में सुख-दुःख वाला जो चैतन्य है, वहीं जीवात्मा है तथा प्रकृति के स्वाभाविक गुणों से रहित जीव परमात्मा है, इस प्रकार जीवात्मा को परमात्मा का अंश बताया गया है। जब जीव काम, क्रोध, भय, मोह, लोभ, घमण्ड, चंचलता, जन्म, मृत्यु, कायरता, शोक, आलस्य, भूख, प्यास, तृष्णा, लज्जा, हर्ष, दुःख इन सब दोषों से मुक्त हो जाता है तब वह केवल ब्रह्म हो जाता है तथा इन सब दोषों से मुक्त करने का उपाय न तो योग रहित ज्ञान है और न ही ज्ञान रहित योग है अतः मोक्ष चाहने वाले साधक को ज्ञान और योग दोनों का अभ्यास करना चाहिए।

जिससे अपने स्वरूप का ज्ञान हो और कैवल्य पद, परमपद, निष्कल, निर्मल, सच्चिदानन्द रूप की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार का ज्ञान हो उसे ही वास्तविक ज्ञान कहा गया है। योग के प्रकारान्तर्गत मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग इन चारों योगों की आरम्भ, घट, परिचय, निष्पत्ति इन चार अवस्थाओं का भी वर्णन किया गया है।

अष्टांग योग के अन्तर्गत यम में आहार को व नियम में अहिंसा को श्रेष्ठ बताया गया है। चार आसन, बारह मुद्राएँ, प्राणायाम, पञ्च धारणाएँ, पञ्चमहाभूतों के स्थान, आकृति बीजमन्त्र, योगाभ्यास के विघ्न एवं उनका परित्याग, प्राणायाम के योग्य स्थान व आसन, योगाभ्यास हेतु आहार-विहार का भी उल्लेख किया गया है साथ ही योग सिद्धि के प्रारम्भिक लक्षण व सावधानियों को भी निर्देशित किया गया है।

इस प्रकार बताया गया है कि पूर्णमनोयोग से योग साधना करने पर योगी अष्टसिद्धियों को प्राप्त कर लेता है और अन्ततः आत्मसाक्षात्कार कर जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है। उपनिषद् में प्रतिपादित इन सभी विषय वस्तुओं का वर्णन निम्न प्रकार से है -

योग के प्रकार एवं अवस्थाएँ -

योग तत्त्वोपनिषद् में व्यवहार की दृष्टि से योग के अनेकानेक भेद बताए गए हैं परन्तु योग की आरम्भ, घट, परिचय तथा निष्पत्ति इन चार अवस्थाओं के आधार

पर मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग ये योग के चार मुख्य प्रकार या भेद बताए गए हैं -

"योगो हि बहुधा ब्रह्मन् भिद्यते व्यवहारतः।
मन्त्रयोगो लयश्चैव हठोऽसौ राजयोगतः॥
आरम्भश्च घटश्चैव तथा परिचयः स्मृतः।
निष्पत्तिश्चेत्यवस्था च सर्वत्र परिकीर्तिता॥"¹³¹

1. मन्त्रयोग -

उपनिषत्कार ने मन्त्रयोग के लक्षण व फल का वर्णन करते हुए कहा है -

"मातृकादियुतं मन्त्रं द्वादशाब्दं तु यो जपेत्॥
क्रमेण लभते ज्ञानमणिमादिगुणान्वितम्।
अल्पबुद्धिरिमं योगं सेवते साधकाधमः॥"¹³²

मातृका से युक्त अर्थात् अक्षरों या वर्णों से बने मन्त्रों का बारह वर्षों तक जप करना मन्त्रयोग कहलाता है। मन्त्रयोग योग की आरम्भ अवस्था है। जो व्यक्ति मन्त्रयोग करता है, वह क्रम से अणिमा आदि अष्टसिद्धियों को प्राप्त करता है। मन्त्रयोग अल्पबुद्धिजन करते हैं और वे अधम श्रेणी के साधक होते हैं।

2. लययोग -

"लययोगश्चित्तलयः कोटिशः परिकीर्तितः।
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्भुञ्जध्यायेन्निष्कलमीश्वरम्॥"¹³³

चित्त का लय होना लययोग है। इसकी साधना के लिए उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते सदा निष्कल ईश्वर का ध्यान करना चाहिए।

यह योग की घट अवस्था है। जब साधक के चित्त की शक्ति बढ़ती जाती है, तब उसे दूर का शब्द सुनने, दूर की वस्तु देखने, क्षण में बहुत दूर चले जाने, वाक्सिद्धि, रूप बदल लेना, अदृश्य हो जाना, मल-मूत्र से सोना तथा आकाश गमन करना आदि अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होने लगती हैं।

3. हठयोग -

"महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी।
जालन्धरोड्डियाणश्च मूलबन्धस्तथैव च॥
दीर्घप्रणवसन्धानं सिद्धान्तश्रवणं परम्।
वज्रोली चामरोली च सहजोली त्रिधा मता॥"¹³⁴

महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, जालन्धर, बन्ध, उड्डीयान बन्ध, मूलबन्ध, दीर्घ प्रणव अनुसन्धान (ओ३म् का दीर्घ समयावधि तक जप), शास्त्रों के

परम सिद्धान्त का श्रवण, वज्रोली, अमरोली तथा सहजोली मुद्राओं का अभ्यास करना हठयोग है। ये हठयोग के अंग बताए गए हैं। इस उपनिषद् में हठयोग के अन्तर्गत वर्णित बन्ध व मुद्राओं का वर्णन इस प्रकार है -

महाबन्ध -

“पाष्णिं वामस्य पादस्य योनिस्थाने नियोजयेत्।

प्रसार्य दक्षिणं पादं हस्ताभ्यां धारयेद् दृढम्।।

चुबुकं हृदि विन्यस्य पूरयेद् वायुना पुनः।

कुम्भकेन यथाशक्त्या धारयित्वा तु रेचयेत्।

वामांगेन समभ्यस्य दक्षांगेन ततोऽभ्यसेत्।

प्रसारितस्तु यः पादस्तमूरूपरि नामयेत्।।

अयमेव महाबन्ध उभयत्रैवमभ्यसेत्।”¹³⁵

बाएँ पैर की एड़ी को योनिस्थान पर लगा कर दाएँ पैर को फैला कर उस पैर के अँगूठे को दृढतापूर्वक पकड़ लेवें। इसके बाद ठोड़ी को छाती से लगा कर वायु को भीतर भरें और यथाशक्ति कुम्भक करें फिर रेचक के द्वारा वायु को बाहर निकाल देना चाहिए। इस क्रिया को निरन्तर अभ्यासपूर्वक बाएँ पैर से करने के पश्चात् दाएँ पैर से करें। इस प्रकार महाबन्ध का अभ्यास दोनों ओर से करना चाहिए।

महावेध -

“महाबन्ध स्थितो योगी कृत्वा पूरकमेकधीः।।

वायुना गतिमावृत्य निभृतं कण्ठमुद्रया।

पुटद्वयं समाक्रम्य वायुः स्फुरति सत्वरम्।।

अयमेव महावेधः सिद्धैरभ्यस्यतेऽनिशम्।”¹³⁶

अर्थात् महाबन्ध की क्रिया में संलग्न योगी को एकाग्र होकर पूरक करके जालन्धर बन्ध लगा कर प्राणवायु को अन्दर रोकना चाहिए अर्थात् जालन्धर बन्ध द्वारा वायु की गति का निरोध करके दोनों नासारन्ध्रों को संकुचित करने से वायु शीघ्र भर जाती है। सिद्ध योगी इस मुद्रा का निरन्तर अभ्यास करते हैं।

खेचरी मुद्रा -

“अन्तः कपालकुहरे जिह्वां व्यावृत्य धारयेत्।

भूमध्यदृष्टिरप्येषा मुद्रा भवति खेचरी।।”¹³⁷

जीभ को उलट कर अन्तः कपाल कुहर (नाक के सुरों के अन्त में) लगा कर दोनों भ्रुकुटियों के मध्य दृष्टि लगाना खेचरी मुद्रा होती है।

जालन्धर बन्ध -

“कण्ठमाकुंचय हृदये स्थापयेद् दृढया धिया॥

बन्धो जालन्धराख्योऽयं मृत्युमातंगकेसरी॥”¹³⁸

कण्ठ को सिकोड़ कर ठोड़ी को कसकर छाती पर लगाना ही जालन्धर बन्ध कहलाता है। इसके नियमित अभ्यास से मृत्यु दूर रहती है।

उड्डीयान बन्ध -

“बन्धो येन सुषुम्नायां प्राणस्तूड्डीयते यतः।

उड्डीयानाख्यो हि बन्धोऽयं योगिभिः समुदाहृतः॥”¹³⁹

जिस बन्ध के लगाने से इडा और पिंगला नाड़ियों में बँधा हुआ प्राण सुषुम्ना नाड़ी में प्रविष्ट हो जाता है, योगी लोग उसे उड्डीयान बन्ध कहते हैं।

मूलबन्ध -

“पार्ष्णिभागेन संपीड्य योनिमाकुञ्चयेद् दृढम्।

अपानमूर्ध्वमुत्थाप्य योनिबन्धोऽयमुच्यते।

प्राणापानौ नादबिन्दू मूलबन्धेन चैकताम्॥”¹⁴⁰

एड़ी से योनि स्थान को दबा कर अन्दर की ओर खींचें। इस प्रकार अपान को ऊपर की तरफ उठाना योनि बन्ध (मूलबन्ध) कहा जाता है।

इस क्रिया से प्राण, अपान, नाद और बिन्दु ये चारों मूलबन्ध के अभ्यास से आपस में मिल जाते हैं और निःसन्देह इस स्थिति में योगाभ्यास सफल हो जाता है।

विपरीतकरणी मुद्रा -

“करणी विपरीताख्या सर्वव्याधिविनाशिनी।

अधः शिरश्चोर्ध्वपादः क्षणं स्यात्प्रथमे दिने॥

क्षणाच्च किञ्चिदधिकमभ्यसेत्तु दिने दिने॥”¹⁴¹

विपरीतकरणी मुद्रा को सर्वव्याधि विनाशिनी कहा गया है। इस मुद्रा में प्रथम दिन क्षणभर के लिए सिर को नीचे की ओर करके पैरों को ऊपर की ओर किया जाता है, इसके पश्चात् प्रतिदिन एक-एक क्षण निरन्तर अभ्यास बढ़ाया जाए तो छः महीने में ही शरीर की झुरियाँ तथा बालों की सफेदी समाप्त हो जाती है। जो प्रतिदिन एक प्रहर तक अभ्यास करता है, वह काल को भी जीत सकता है।

इस मुद्रा के अभ्यास से साधक की जठराग्नि बढ़ जाती है, जिससे साधक अधिक आहार पचा सकता है।

प्रस्तुत उपनिषद् में विपरीतकरणी मुद्रा की जो विधि बताई गई है वह शीर्षासन की विधि ही प्रतीत होती है। कुछ लोग शीर्षासन को विपरीतकरणी मानते हैं। कुछ के अनुसार अर्धसर्वांगासन ही विपरीतकरणी मुद्रा है।

वज्रोली मुद्रा -

"वज्रोलिमभ्यसेद्यस्तु स योगी सिद्धिं भाजनम्॥

लभ्यते यदि तस्यैव योगसिद्धिः करे स्थिता।

अतीतानागतं वेत्ति खेचरी च भवेद् ध्रुवम्॥"¹⁴²

जो योगी वज्रोली मुद्रा का अभ्यास करता है, उसे सिद्धावस्था की प्राप्ति हो जाती है तथा योग की सिद्धि उस योगी के हाथों में आ जाती है। वह भूत, भविष्य को जानने वाला हो जाता है तथा खेचरी की भी सिद्धि हो जाती है।

इस प्रकार प्रस्तुत उपनिषद् में वज्रोली मुद्रा से होने वाले लाभ की तो चर्चा की गई है। परन्तु इसकी क्रिया विधि वर्णित नहीं की गई। अन्य यौगिक ग्रन्थों में वज्रोली मुद्रा के अभ्यास में लिंग से सर्वप्रथम न्यौलीक्रिया द्वारा वायु खींची जाती है फिर तरलपदार्थ पानी, दूध, तेल, शहद, पारा खींचा जाता है फिर मयूरासन द्वारा पानी, दूध, तेल आदि को निकाला जाता है।

(झ) अमरोली मुद्रा -

"अमरीं यः पिबेन्नित्यं नस्यं कुर्वन् दिने दिने।

वज्रोलीमभ्यसेन्नित्यमरोलीति कथ्यते॥"¹⁴³

जो साधक अमरी का प्रतिदिन पान करता है और उसे नाक में डालता है तथा वज्रोली का नियमित अभ्यास करता है, तो उसे अमरोली कहते हैं।

कुछ योगाचार्यों का मानना है कि अमरी पान से तात्पर्य वीर्यपान या मूत्रपान है तथा हठयोग के अन्तर्गत वर्णित वज्रोली और अमरोली मुद्राएँ वाममार्गियों और तान्त्रिकों में प्रचलित हैं, परन्तु इसको अध्यात्म क्षेत्र में नहीं अपनाया जाता।

हठयोग के अभ्यास के बिना राजयोग सिद्ध नहीं होता। हठयोग को राजयोग का पूर्व अभ्यास बताया गया है। यह योग की परिचय अवस्था है।

4. राजयोग -

"यदा तु राजयोगेन निष्पन्ना योगिभिः क्रिया।

तदा विवेकवैराग्यं जायते योगिनो ध्रुवम्॥"¹⁴⁴

हठयोग के अभ्यास से योगी राजयोग का अधिकारी हो जाता है। राजयोग के सिद्ध हो जाने पर योगी को हठयोग की शारीरिक क्रियाओं की आवश्यकता नहीं रह

जाती। राजयोग के धारणा, ध्यान तथा समाधि इनके अभ्यास से योगी में विवेक और वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। राजयोग को योग की निष्पत्ति अवस्था बताया गया है। राजयोग को अष्टांग योग भी कहा गया है -

"यमश्च नियमश्चैव आसनं प्राणसंयमः।

प्रत्याहारो धारणा च ध्यानं भूमध्यमे हरिम्।।

समाधिः समतावस्था साष्टांगो योग उच्यते।।"¹⁴⁵

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, दोनों भौहों के मध्य हरि का ध्यान और जीवात्मा-परमात्मा की समतावस्था समाधि यह आठ अंगों वाला योग राजयोग (अष्टांग योग) है। इन अंगों का क्रमशः वर्णन इस प्रकार है -

(i) यम -

"लघ्वाहारो यमेष्वेको मुख्यो भवति नेतरः।"¹⁴⁶

यमों में मिताहार (अल्पाहार) ही मुख्य है। इस प्रकार अल्पाहार को ही मुख्य यम स्वीकार किया गया है।

(ii) नियम -

"अहिंसा नियमेष्वेका"¹⁴⁷

नियमों में अहिंसा को मुख्य बताया गया है। इस उपनिषद् के अनुसार नियमों के अन्तर्गत अहिंसा प्रधान नियम है।

(iii) आसन -

"सिद्धं पद्मं तथा सिंहं भद्रं चेति चतुष्टयम्।"¹⁴⁸

आसनों में सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन और भद्रासन इन चार आसनों को ही मुख्य माना गया है।

(iv) प्राणायाम -

उपनिषत्कार ने प्राणायाम को परिभाषित किए बिना ही केवल कुम्भक प्राणायाम की विधि, प्राणायाम की मात्रा, समय तथा लाभ को वर्णित किया है, जो इस प्रकार हैं -

प्राणायाम विधि -

सर्वप्रथम पद्मासन लगाकर सिर, गर्दन और कमर सीधी करके हाथ जोड़कर इष्ट देवता को प्रणाम करना चाहिए। तत्पश्चात् दाएँ हाथ के अँगूठे से पिंगला को दबा कर धीरे-धीरे वायु को अन्दर खींचें और यथाशक्ति रोक कर कुम्भक करें फिर पिंगला द्वारा उस वायु को साधारण गति से बाहर निकाल दें। फिर पिंगला से धीरे-धीरे श्वास

भरें। श्वास को यथाशक्ति रोक कर इडा या बाएँ स्वर से श्वास को धीरे-धीरे निकालना चाहिए। जिस स्वर से श्वास निकाला जाए उसी स्वर से श्वास भर कर श्वास को यथाशक्ति रोकना चाहिए।

प्राणायाम योग्य आसन व स्थान -

प्राणायाम हेतु उचित आसन व स्थान का निर्देश करते हुए कहते हैं कि -

"प्राणायामं ततः कुर्यात् पद्मासनगतः स्वयम्।
सुशोभनं मठं कुर्यात् सूक्ष्मद्वारं तु निर्वणम्॥
सुष्ठु लिप्तं गोमयेन सुधया वा प्रयत्नतः।
मत्कुणैर्मशकैर्लूतैर्वर्जितं च प्रयत्नतः॥
दिने दिने च संमृष्टं सम्मार्जन्या विशेषतः।
वासितं च सुगन्धेन धूपितं गुग्गुलादिभिः॥
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिन कुशोत्तरम्।
तत्रोपविश्य मेधावी पद्मासनसमन्वितः॥"¹⁴⁹

अर्थात् योगी को पद्मासन लगाकर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। छोटे द्वार वाली और विना छेद वाली सुन्दर कुटिया या मठ होना चाहिए। जो कि गाय के गाबर से लीपा हुआ, स्वच्छ हो तथा खटमल, मच्छर, मकड़ी आदि से रहित होना चाहिए। कुटिया को प्रतिदिन झाड़ू से साफ करना चाहिए तथा गुग्गुल आदि से सुगन्धित रखना चाहिए। योगी का आसन न तो बहुत ऊँचा हो और न ही बहुत नीचा होना चाहिए। कुशा के आसन पर मृगचर्म बिछाकर और इसके ऊपर कपड़ा बिछाकर पद्मासन लगाना चाहिए।

प्राणायाम की मात्रा एवं समय -

घुटने पर न तो वेग से और न धीरे से हथेली घुमा कर एक चुटकी बजाने में जितना समय लगता है, वह समय एक मात्रा कहलाता है। इडा नाड़ी से सोलह मात्रा तक वायु को खींचें फिर चौंसठ मात्रा कुम्भक अर्थात् वायु को अन्दर रोकना चाहिए। कुम्भक करने के पश्चात् पिंगला नाड़ी से बत्तीस मात्रा की अवधि तक रेचक अर्थात् श्वास निकाल देना चाहिए। प्रातः, दोपहर, शाम और मध्यरात्रि में चार बार कुम्भक प्राणायाम करना चाहिए। कुम्भक प्राणायाम की संख्या धीरे-धीरे बढ़ा कर अस्सी तक कर देनी चाहिए। इस प्रकार तीन मास तक अभ्यास करने से नाड़ीशुद्धि हो जाती है।

प्राणायाम का लाभ -

"शरीरलघुता दीप्तिर्जठराग्निविवर्धनम्।
कृशत्वं च शरीरस्य तदा जायेत निश्चितम्॥"¹⁵⁰

तीन महीने तक नाड़ी शोधन प्राणायाम करने से नाड़ियों में भरा मैल निकल जाता है और नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं। नाड़ी शुद्धि हो जाने पर योगी के शरीर में हल्कापन अनुभव होने लगता है, मुख पर तेज चमकने लगता है, जठराग्नि तीव्र हो जाती है तथा शरीर कृश हो जाता है। केवल कुम्भक प्राणायाम के सिद्ध हो जाने पर योगी के लिए तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता -

"न तस्य दुर्लभं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।"¹⁵¹

केवल कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास तथा समय बढ़ाने पर योगी मेंढक की तरह आसन से उछलने लगता है। प्राणायाम का अभ्यास और अधिक बढ़ाने पर योगी का शरीर भूमि से ऊपर उठने लगता है। पद्मासन पर बैठे हुए ही भूमि से ऊपर रहता है। इस प्रकार और भी अतिमानुषी चेष्टाएँ करने लगता है अर्थात् उसमें मनुष्यों से अधिक शक्ति और सामर्थ्य आ जाता है। योगी को छोटे-बड़े कष्ट पीड़ित नहीं करते। मल-मूत्र कम हो जाता है। पसीने से सुगन्ध आने लगती है।

प्राणायाम का और अधिक अभ्यास करने पर योगी का शरीर बहुत बलवान हो जाता है और उसे भूचर सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इस सिद्धि के द्वारा वह समस्त प्राणियों को वश में कर सकता है। शेर, बाघ, हाथी आदि जंगली जीव हाथ मारने से मर जाते हैं। योगी का स्वरूप भी कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है -

"कन्दर्पस्य यथा रूपं तथा स्यादपि योगिनः॥"¹⁵²

(v) प्रत्याहार -

"एकवारं प्रतिदिनं कुर्यात् केवलकुम्भकम्।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो यत् प्रत्याहरणं स्फुटम्॥

योगी कुम्भकमास्थाय प्रत्याहारः स उच्यते।"¹⁵³

दिन में एक बार ही केवल कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। केवल कुम्भक प्राणायाम में स्थित होकर इन्द्रियों को उनके विषयों से खींच कर लाना प्रत्याहार होता है अर्थात् आँख, कान, नाक आदि ज्ञानेन्द्रियों को उनके रूप, शब्द, गन्ध आदि विषयों से हटाना प्रत्याहार होता है। योगी आँखों से जो कुछ देखे, कानों से जो कुछ सुने, नाक से जो सुगन्ध-दुर्गन्ध ग्रहण करे, जीभ से जिस रस (स्वाद) को ग्रहण करे और त्वचा से जो कुछ स्पर्श करे उन सब में आत्म भाव करे अर्थात्

अपनेपन की भावना का अनुभव करे। इस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों के जितने विषय हैं उनकी साधना और दिन में एक प्रहर तक अभ्यास करे। इस प्रकार के अभ्यास से ज्ञानेन्द्रियों और योग्य वस्तुओं के मध्य मैत्रीभावना दृढ़ होती है और चित्त का सामर्थ्य बढ़ जाता है।

प्रत्याहार का फल -

"यथा वा चित्तसामर्थ्यं जायते योगिनो ध्रुवम्।

दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिः क्षणादूरागमस्तथा॥

वाक्सिद्धिः कामरूपत्वमदृश्यकरणी तथा।

मलमूत्रप्रलेपेन लोहादेः स्वर्णता भवेत्॥

खे गतिस्तस्य जायेत संतताभ्यासयोगतः॥"¹⁵⁴

जब प्रत्याहार से चित्त की शक्ति बढ़ जाती है तब योगी को दूर का शब्द सुनने, दूर की वस्तु देखने, क्षण भर में बहुत दूर चले जाने, वाक्सिद्धि, चाहे जैसा रूप धारण करने तथा अदृश्य हो जाने की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। अपने मल-मूत्र के लेप से लोहे का सोना बनाना तथा आकाश गमन कर सकना आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

परन्तु इन सब सिद्धियों को महासिद्धि (मोक्षप्राप्ति) में विघ्न बताया गया है अतः बुद्धिमान् योगी को इन सिद्धियों में नहीं फँसना चाहिए और न ही इन सिद्धियों का किसी के सामने प्रदर्शन करना चाहिए।

6. धारणा -

"यस्य चित्तं स्वपवनं सुषुम्ना प्रविशेदिह।

भूमिरापोऽनलो वायुराकाशश्चेति पञ्चकः॥

येषु पञ्चसु देवानां धारणा पञ्चधोच्यते॥"¹⁵⁵

जिसका चित्त प्राणवायु सहित सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर जाता है, उसके लिए पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश इन पञ्च महाभूतरूप देवों की पाँच प्रकार की धारणा हो जाती है।

पञ्चमहाभूतों में धारणा

पञ्च- महाभूत	स्थान	बीज- मंत्र	वर्ण	आकार	देवता व स्वरूप	लाभ
पृथ्वी	पैरों से लेकर घुटनों तक	लं	पीला	चतुष्कोण	चतुर्भुज, चतुर्मुख तेजोमय ब्रह्मा	पृथ्वी तत्त्व की धारणा से योगी की मृत्यु नहीं होती।
जल	घुटनों से लेकर गुदा तक	वं	सफेद	अर्धचन्द्राकार	चतुर्भुज, मुकुटमण्डित, शुद्धस्फटिक स्वरूप विष्णु	सभी पापों का नाश हो जाता है तथा जल में डूबने से योगी की मृत्यु नहीं होती।
अग्नि	गुदा से हृदय तक	रं	लाल	त्रिकोण या त्रिभुजाकार	तीन यक्ष वाले, दान देने वाले, तरुण आदित्य के समान, सर्वांग भस्म, सुप्रसन्न मन रुद्र	अग्नि तत्त्व की धारणा से योगी को अग्नि नहीं जला सकती।
वायु	हृदय से भ्रूकुटि (भ्रूमध्य) तक	यं	कृष्ण	षट्कोण	सर्वज्ञ, ईश्वर, विश्वतोमुख मरुत	वायु के समान आकाश में जाने की योग्यता आ जाती है तथा वायु से भय नहीं होता और न ही वायु से मृत्यु होती है।
आकाश	भ्रूमध्य से लेकर मूर्धान्त (सिर) तक	हं	धूम्र	गोलाकार	बिन्दुरूप, व्योमाकार शुद्धस्फटिक, पञ्चवक्त्र, दशबाहु, त्रिलोचन, सर्वकारण, उमार्धदेव शंकर	आकाश में गमन की शक्ति आ जाती है तथा योगी को हर स्थान पर सुख मिलता है।

तालिका 4.3 पञ्चमहाभूतों में धारणा का स्वरूप

पञ्चधारणा का फल -

पञ्चमहाभूतों में प्रत्येक महाभूत की धारणा से होने वाले लाभ को पृथक्-पृथक् उल्लेखित कर उपनिषत्कार एकीकृत रूप से धारणा के अभ्यास का फल बताते हुए कहते हैं कि -

"ततो दृढशरीरः स्यान्मृत्युस्तस्य न विद्यते।

ब्रह्मणः प्रलयेनापि न सौदति महामतिः॥"¹⁵⁶

बुद्धिमान योगी को पाँच महाभूतों में धारणा करनी चाहिए। पाँच महाभूतों में धारणा करने वाले योगी का शरीर वज्र के समान कठोर हो जाता है तथा उसकी मृत्यु नहीं होती। ब्रह्मा के प्रलय करने पर भी वह दुःखी नहीं होता।

6. ध्यान -

चित्त को एकाग्र कर इष्ट प्रदान करने वाले देवता पर ध्यान केन्द्रित करना ध्यान कहलाता है।

ध्यान की विधि व प्रकार -

"समभ्यसेत्तथा ध्यानं घटिका षष्टिमेव च।

वायुं निरुध्य चाकाशे देवतामिष्टदामिति॥"¹⁵⁷

छः घड़ी (दो घण्टे चौबीस मिनट) तक प्राणवायु को रोककर आकाश तत्त्व में इष्ट सिद्धिदाता देवता का ध्यान करना चाहिए। उपनिषत्कार ने दो प्रकार का ध्यान बताया है - सगुण और निर्गुण। सगुण ध्यान से अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति होती है तथा निर्गुण ध्यान से समाधि की स्थिति बनती है अर्थात् समाधि लगती है।

"सगुणं ध्यानमेतत्स्यादणिमादिगुणप्रदम्।

निर्गुणध्यानयुक्तस्य समाधिश्च ततो भवेत्॥"¹⁵⁸

7. समाधि -

"समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः॥"¹⁵⁹

जीवात्मा का परमात्मा के साथ मिल जाना समाधि कहलाती है। निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करके बारह दिनों में समाधि को सिद्ध करके योगी जीवन्मुक्त हो जाता है। इस प्रकार समाधि में योगी जीवन्मुक्त होकर परब्रह्म में लीन हो जाता है।

समाधि का फल -

"परब्रह्मणि लीयेत न तस्योत्क्रान्तिरिष्यते।

अथ नो चेत्समुत्सृष्टुं स्वशरीरं प्रियं यदि॥

सर्वलोकेषु विहरन्नणिमादिगुणान्वितः।

कदाचित्स्वेच्छया देवो भूत्वा स्वर्गे महीयते॥"¹⁶⁰

समाधि के दो प्रकार के परिणाम या फल बतलाए गए हैं - यदि योगी स्वेच्छा से अपने शरीर का त्याग करना चाहता है, तो वह परब्रह्म में लीन हो जाता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता। समाधि का दूसरा फल या परिणाम यह है कि यदि योगी अपना प्रिय शरीर नहीं छोड़ना चाहता है, तब वह शरीर में ही स्थित रह कर अणिमादि सिद्धियों से युक्त होकर सब लोकों में विहार कर सकता है और चाहे तो वह अपनी इच्छा से देवता बनकर स्वर्ग लोक में सुखपूर्वक रह सकता है। वह अपनी

इच्छा से मनुष्य, यक्ष, सिंह, हाथी, घोड़ा आदि बहुत रूपों को ग्रहण कर सकता है अर्थात् अनेक शरीर धारण कर सकता है।

वह योगी महेश्वर पद प्राप्त कर अपनी इच्छानुसार व्यवहार करता है। योगी का अलग-अलग योनियों में आना-जाना आदि उसके योगाभ्यास के भेद के कारण होता है किन्तु योगाभ्यास का मुख्य फल मोक्षप्राप्ति ही है। सिद्धयोगी चाहे तो प्रलय काल तक इस लोक में रह सकता है।

प्रस्तुत उपनिषद् में चार प्रकार के योगों को चार अवस्थाओं के रूप में वर्णित किया गया है। मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग के साधक क्रमशः आरम्भ, घट, परिचय तथा निष्पत्ति अवस्था वाले कहलाते हैं।

प्रस्तुत उपनिषद् में वर्णित चारों योगों की अवस्था, साधना व परिणाम को निम्न तालिका द्वारा समझा जा सकता है -

योग	अवस्थाएँ	साधना	परिणाम
मन्त्रयोग	आरम्भावस्था	मातृका से युक्त मन्त्रों का बारह वर्षों तक जप करना।	अणिमा आदि अष्टसिद्धियों की प्राप्ति।
लययोग	घटावस्था	चित्त का लय होना उठते-बैठते, सोते-जागते खाते-पीते ईश्वर का ध्यान करना।	दूर का शब्द सुनने, दूर की वस्तु देखने, क्षण में दूर चले जाने, वाक्सिद्धि, रूप बदलना अदृश्य होना, आकाश गमन आदि सिद्धियों की प्राप्ति।
हठयोग	परिचयावस्था	महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, जालबन्ध, उड्डीयाण मूलबन्ध, दीर्घप्रणव सन्धान, सिद्धान्त श्रवण, वज्रोली, अमरोली, सहजोली, मुद्राओं का अभ्यास	जठराग्नि बढ़ती है, आकाश मार्ग गमन की शक्ति आ जाती है। भूत व भविष्य का ज्ञाता कालजयी व मृत्युञ्जयी हो जाता है।
राजयोग	निष्पत्त्यवस्था	अष्टांग योग	जीवन्मुक्ति

तालिका 4.4 योग प्रकार, अवस्था, साधन व परिणाम

योगाभ्यास के विघ्नों का परित्याग -

योगाभ्यास में सफलता प्राप्त करना कठिन कार्य है चूंकि प्रत्येक कार्य की भाँति इसमें भी विघ्नबाहुल्य हैं। जिनका वर्णन करते हुए उपनिषद् में कहा गया है कि-

"प्रथमाभ्यासकाले तु विघ्नाः स्युश्चतुरानन।

आलस्यं कथनं धूर्तगोष्ठी मन्त्रादिसाधनम्॥

धातुस्त्रीलौल्यकादीनि मृगतृष्णामयानि वै।

ज्ञात्वा सुधीस्त्यजेत् सर्वान् विघ्नान् पुण्यप्रभावतः॥"¹⁶¹

योगाभ्यास के प्रारम्भ में अनेक विघ्न आते हैं, जैसे - आलस्य, आत्मप्रशंसा, धूर्त लोगों के साथ उठना-बैठना, मन्त्रादि सिद्ध करना, विषय भोगों की ओर आकर्षित होना, स्त्रीगमन की इच्छा आदि इनको मृग तृष्णा समझकर और विघ्न रूप जानकर बुद्धिमान साधक को अपने पुण्य कर्मों के प्रभाव से इन विघ्न-बाधाओं का परित्याग कर देना चाहिए।

यौगिक आहार व दिनचर्या -

प्रस्तुत उपनिषद् में साधक के लिए योगाभ्यास में पथ्य-अपथ्य आहार व दिनचर्या के बारे में भी बताया गया है -

पथ्य आहार -

"अभ्यासकाले प्रथमं शस्तं क्षीराज्यभोजनम्।

गोधूम मुद्ग शाल्यन्नं योगवृद्धिकरं विदुः।

ततः परं यथेष्टं तु शक्तः स्याद्वायु धारणे॥"¹⁶²

योगाभ्यास के प्रारम्भ में साधक के लिए दूध-घी वाला भोजन अच्छा होता है। गेहूँ, मूँग, चावल का भोजन योगाभ्यास को बढ़ाने वाला बताया गया है। इस प्रकार के भोजन से योगी काफी देर तक प्राणायाम कर सकने में समर्थ होता है।

अपथ्य आहार -

"लवणं सर्षपं चाम्लमुष्णं रुक्षं च तीक्ष्णकम्।

शाकजातं रामठादि वह्निस्त्रीपथसेवनम्॥"¹⁶³

योगी को नमक, सरसों (तेल), गर्म, रूखा, तीक्ष्ण (तीखा), शाक-सब्जी, हींग आदि मसाले वाला भोजन नहीं करना चाहिए तथा आग तापना, स्त्रीसंग और यात्रा भी नहीं करनी चाहिए।

दिनचर्या -

"प्रातः स्नानोपवासादिकायकलेशांश्च वर्जयेत्।"¹⁶⁴

योगाभ्यास के प्रारम्भ में प्रातः स्नान, उपवास तथा शरीर को पीड़ा पहुँचाने वाले अन्य कार्यों का त्याग करना चाहिए।

निष्कर्ष -

प्रस्तुत उपनिषद् में योग के मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग ये चार भेद योग की आरम्भ, घट, परिचय तथा निष्पत्ति अवस्थाओं के आधार बताए गए हैं। मन्त्रयोग मातृका से युक्त मन्त्र का बारह वर्ष तक जप करने वाला बताया गया है तथा इससे अष्टसिद्धियों की प्राप्ति होता है। यह योग की आरम्भावस्था बतलाई गई है।

लययोग चित्त का लय करके दूर श्रवण, दूरदर्शन, वाक्सिद्धि आदि अतीन्द्रिय शक्ति की प्राप्ति वाला बतलाया गया है। यह योग की घटावस्था है। हठयोग महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी तथा त्रिबन्ध, वज्रोली, अमरोली व सहलोजी का अभ्यास है। इस योग से मृत्यु के भय से मुक्ति मिलती है। यह योग की परिचयावस्था है। हठयोग के अन्तर्गत बारह मुद्राओं का वर्णन किया गया है। अष्टांगयोग का अभ्यास राजयोग है तथा इसके अभ्यास से जीवन्मुक्ति की प्राप्ति बताई गई है। यह योग की निष्पत्ति अवस्था है। इस उपनिषद् में राजयोग के अन्तर्गत यम एवं नियमों का परिगणन नहीं किया गया है। आहार को यम के अन्तर्गत मुख्य बताया गया है तथा नियम में अहिंसा को प्रमुख बताया गया है। आसनों में सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन तथा भद्रासन इन चार आसनों को ही मुख्य बताया गया है तथा केवल इन आसनों का नामोल्लेख ही किया गया है। इनकी क्रिया विधि व लाभ को वर्णित नहीं किया गया। प्राणायाम के अन्तर्गत कोई प्रकार नहीं बताए गए हैं। केवल कुम्भक प्राणायाम की विधि बताकर इसकी संख्या अस्सी तक बढ़ाने की चर्चा की है। नस-नाड़ियों में भरे मैल को निकालने हेतु तीन मास तक नाड़ी शोधन प्राणायाम के अभ्यास का निर्देश दिया गया है। प्राणायाम हेतु उचित आसन, स्थान बिछाने हेतु मृगचर्म, कुश आदि के बारे में बताया गया है। प्रत्याहार प्रातः, दोपहर, शाम और रात में चार बार करने का निर्देश दिया गया है। कुम्भक में स्थित रहकर इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाना

प्रत्याहार बताया गया है। पञ्चमहाभूतों में धारणा का अभ्यास तथा उनके भिन्न-भिन्न परिणामों को विस्तारपूर्वक वर्णित किया है।

दो घण्टे चौबीस मिनट तक प्राणवायु को रोक कर आकाश में इष्टदेवता के ध्यान को ध्यान बताया गया है।

ध्यान के सगुण और निर्गुण दो प्रकार बताए गए हैं। सगुण ध्यान से अष्टसिद्धियों की प्राप्ति और निर्गुण ध्यान से समाधि अवस्था की प्राप्ति बतलाई गई है। समाधि को जीवात्मा और परमात्मा दोनों की एकता बताया गया है।

प्रस्तुत उपनिषद् में योग सिद्धि के प्रारम्भिक लक्षणों की तथा योगाभ्यास में रखी जाने वाली आवश्यक सावधानियों की भी चर्चा की गई है। इस हेतु पथ्य-अपथ्य आहार व योगी के दिनचर्या को वर्णित किया गया है। योग उपनिषद् की दृष्टि से इस उपनिषद् में योग की विविध अवस्थाओं, विधियों एवं योगांगों का वर्णन किया है किन्तु विशेषतः कुम्भक साधना विधि का वर्णन करने का प्रयत्न किया गया है। वह भी उतना स्पष्ट नहीं है जितना दत्तात्रेय योग शास्त्र में स्पष्ट है। निष्कर्षतः योग के विविध तत्त्वों का वर्णन करने की दृष्टि से यह उपनिषद् अपने नाम को पूर्ण सार्थक करता है।



सन्दर्भ सूची

- 1 विद्यालंकार, सुभाष, योग उपनिषद: भाग - 1, अमृतनादोपनिषद् , 1, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली 2018, पृ. 21
- 2 अमृतनादोपनिषद्, 2, उपर्युक्त, पृ. 22
- 3 अमृतनादोपनिषद्, 26, उपर्युक्त, पृ. 33
- 4 अमृतनादोपनिषद्, 6, उपर्युक्त, पृ. 26
- 5 अमृतनादोपनिषद्, 5, उपर्युक्त, पृ. 25
- 6 अमृतनादोपनिषद्, 10, उपर्युक्त, पृ. 27
- 7 अमृतनादोपनिषद्, 12, उपर्युक्त, पृ. 27
- 8 अमृतनादोपनिषद्, 13, उपर्युक्त, पृ. 28
- 9 अमृतनादोपनिषद्, 14, उपर्युक्त, पृ. 28
- 10 अमृतनादोपनिषद्, 7, उपर्युक्त, पृ. 26
- 11 अमृतनादोपनिषद्, 15, उपर्युक्त, पृ. 29
- 12 अमृतनादोपनिषद्, 17, उपर्युक्त, पृ. 30
- 13 अमृतनादोपनिषद्, 17, उपर्युक्त, पृ. 30
- 14 अमृतनादोपनिषद्, 35-38, उपर्युक्त, पृ. 37
- 15 अमृतनादोपनिषद्, 39, उपर्युक्त, पृ. 37
- 16 विद्यालंकार, सुभाष, योग उपनिषद : भाग-1, योगकुण्डल्युपनिषद्, भूमिका प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ. 337
- 17 श्रीमद्भगवद्गीता, 6/34, पूर्वोक्त, पृ. 227
- 18 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/3, पूर्वोक्त, पृ. 327-328
- 19 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/4, पूर्वोक्त, पृ. 338
- 20 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/5, पूर्वोक्त, पृ. 338
- 21 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/6, पूर्वोक्त, पृ. 338
- 22 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/7, पूर्वोक्त, पृ. 338
- 23 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/8, पूर्वोक्त, पृ. 339-340
- 24 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/9-16, पूर्वोक्त, पृ. 341
- 25 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/18, पूर्वोक्त, पृ. 341
- 26 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/24, पूर्वोक्त, पृ. 342
- 27 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/25, पूर्वोक्त, पृ. 343
- 28 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/26-27, पूर्वोक्त, पृ. 343
- 29 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/28-29, पूर्वोक्त, पृ. 343
- 30 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/30, पूर्वोक्त, पृ. 344

-
- 31 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/30, पूर्वोक्त, पृ. 344
32 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/32-36, पूर्वोक्त, पृ. 344-345
33 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/37-39, पूर्वोक्त, पृ. 345
34 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/42, पूर्वोक्त, पृ. 346
35 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/47, पूर्वोक्त, पृ. 347
36 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/50, पूर्वोक्त, पृ. 347
37 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/51, पूर्वोक्त, पृ. 348
38 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/82, पूर्वोक्त, पृ. 354
39 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/81, पूर्वोक्त, पृ. 354
40 योगकुण्डल्युपनिषद्, 2/3, पूर्वोक्त, पृ. 356
41 योगकुण्डल्युपनिषद्, 2/16-17, पूर्वोक्त, पृ. 358
42 योगकुण्डल्युपनिषद्, 2/49, पूर्वोक्त, पृ. 363
43 योगकुण्डल्युपनिषद्, 3/1, पूर्वोक्त, पृ. 364
44 योगकुण्डल्युपनिषद्, 3/6, पूर्वोक्त, पृ. 365
45 योगकुण्डल्युपनिषद्, 3/15-16, पूर्वोक्त, पृ. 367
46 योगकुण्डल्युपनिषद्, 3/17, पूर्वोक्त, पृ. 367
47 योगकुण्डल्युपनिषद्, 3/18-20, पूर्वोक्त, पृ. 367-368
48 योगकुण्डल्युपनिषद्, 3/25-26, पूर्वोक्त, पृ. 370
49 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/58-61, पूर्वोक्त, पृ. 349-350
50 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 19-21, पूर्वोक्त, पृ. 128-129
51 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 26-27, पूर्वोक्त, पृ. 129
52 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 25-26, पूर्वोक्त, पृ. 129
53 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 23, पूर्वोक्त, पृ. 129
54 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 28, पूर्वोक्त, पृ. 130
55 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 32-33, पूर्वोक्त, पृ. 135
56 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 32-33, पूर्वोक्त, पृ. 135
57 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 33-34, पूर्वोक्त, पृ. 135
58 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 29, पूर्वोक्त, पृ. 130
59 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 35, पूर्वोक्त, पृ. 136
60 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 36, पूर्वोक्त, पृ. 136
61 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 37, पूर्वोक्त, पृ. 137
62 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 38, पूर्वोक्त, पृ. 137
63 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 39, पूर्वोक्त, पृ. 137

- [illegible]

-
- 97 विद्यालयंकार, सुभाष, योग उपनिषदः भाग-2, योगचूडामण्युपनिषद् 1, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2018 पृ. 373
- 98 योगचूडामण्युपनिषद् 2, पूर्वोक्त, पृ. 372
- 99 योगचूडामण्युपनिषद् 3, पूर्वोक्त, पृ. 373
- 100 योगचूडामण्युपनिषद् 109, पूर्वोक्त, पृ. 403
- 101 योगचूडामण्युपनिषद् 4-5, पूर्वोक्त, पृ. 374
- 102 योगचूडामण्युपनिषद् 14-15, पूर्वोक्त, पृ. 376-77
- 103 योगचूडामण्युपनिषद् 16-17, पूर्वोक्त, पृ. 377-378
- 104 योगचूडामण्युपनिषद् 22-23, पूर्वोक्त, पृ. 378
- 105 योगचूडामण्युपनिषद् 94, पूर्वोक्त, पृ. 399
- 106 योगचूडामण्युपनिषद् 99, पूर्वोक्त, पृ. 401
- 107 योगचूडामण्युपनिषद् 31, पूर्वोक्त, पृ. 381
- 108 योगचूडामण्युपनिषद् 34, पूर्वोक्त, पृ. 382
- 109 योगचूडामण्युपनिषद् 36, पूर्वोक्त, पृ. 382
- 110 योगचूडामण्युपनिषद् 40, पूर्वोक्त, पृ. 382
- 111 योगचूडामण्युपनिषद् 42, पूर्वोक्त, पृ. 384
- 112 योगचूडामण्युपनिषद् 46, पूर्वोक्त, पृ. 385
- 113 योगचूडामण्युपनिषद् 49, पूर्वोक्त, पृ. 385
- 114 योगचूडामण्युपनिषद् 51, पूर्वोक्त, पृ. 386
- 115 योगचूडामण्युपनिषद् 52, पूर्वोक्त, पृ. 386
- 116 योगचूडामण्युपनिषद् 53-54, पूर्वोक्त, पृ. 387
- 117 योगचूडामण्युपनिषद् 65, पूर्वोक्त, पृ. 389
- 118 योगचूडामण्युपनिषद् 66, पूर्वोक्त, पृ. 390
- 119 योगचूडामण्युपनिषद् 69, पूर्वोक्त, पृ. 403
- 120 योगचूडामण्युपनिषद् 106, पूर्वोक्त, पृ. 402
- 121 योगचूडामण्युपनिषद् 103, पूर्वोक्त, पृ. 402
- 122 योगचूडामण्युपनिषद् 104-105, पूर्वोक्त, पृ. 402
- 123 योगचूडामण्युपनिषद् 116, पूर्वोक्त, पृ. 406
- 124 योगचूडामण्युपनिषद् 117, पूर्वोक्त, पृ. 406
- 125 योगचूडामण्युपनिषद् 120, पूर्वोक्त, पृ. 407
- 126 योगचूडामण्युपनिषद् 111, पूर्वार्ध, पूर्वोक्त, पृ. 404
- 127 योगचूडामण्युपनिषद् 111, उत्तरार्ध, पूर्वोक्त, पृ. 404
- 128 योगचूडामण्युपनिषद् 110, पूर्वोक्त, पृ. 403

-
- 129 योगचूडामण्युपनिषद् 112, पूर्वार्ध, पूर्वोक्त, पृ. 404
130 योगचूडामण्युपनिषद् 112, उत्तरार्ध, पूर्वोक्त, पृ. 404
131 योगतत्त्वोपनिषद् 19-20, पूर्वोक्त, पृ. 412
132 योगतत्त्वोपनिषद् 21-22, पूर्वोक्त, पृ. 412
133 योगतत्त्वोपनिषद् 23, पूर्वोक्त, पृ. 413
134 योगतत्त्वोपनिषद् 26-27, पूर्वोक्त, पृ. 413
135 योगतत्त्वोपनिषद् 112-114, पूर्वोक्त, पृ. 428-429
136 योगतत्त्वोपनिषद् 115-117, पूर्वोक्त, पृ. 429
137 योगतत्त्वोपनिषद् 117-118, पूर्वोक्त, पृ. 430
138 योगतत्त्वोपनिषद् 118-119, पूर्वोक्त, पृ. 432
139 योगतत्त्वोपनिषद् 119-120, पूर्वोक्त, पृ. 433
140 योगतत्त्वोपनिषद् 120-121, पूर्वोक्त, पृ. 433
141 योगतत्त्वोपनिषद् 122, 124-125, पूर्वोक्त, पृ. 434
142 योगतत्त्वोपनिषद् 126-127, पूर्वोक्त, पृ. 434
143 योगतत्त्वोपनिषद् 128, पूर्वोक्त, पृ. 435
144 योगतत्त्वोपनिषद् 129-130, पूर्वोक्त, पृ. 436
145 योगतत्त्वोपनिषद् 24-25, पूर्वोक्त, पृ. 413
146 योगतत्त्वोपनिषद् 28, पूर्वोक्त, पृ. 414
147 योगतत्त्वोपनिषद् 29, पूर्वार्ध, पूर्वोक्त, पृ. 414
148 योगतत्त्वोपनिषद् 29, उत्तरार्ध, पूर्वोक्त, पृ. 414
149 योगतत्त्वोपनिषद् 32-35, पूर्वोक्त, पृ. 415
150 योगतत्त्वोपनिषद् 45-46, पूर्वोक्त, पृ. 417
151 योगतत्त्वोपनिषद् 51, पूर्वोक्त, पृ. 418
152 योगतत्त्वोपनिषद् 60, पूर्वोक्त, पृ. 420
153 योगतत्त्वोपनिषद् 68-69, पूर्वोक्त, पृ. 421
154 योगतत्त्वोपनिषद् 73-75, पूर्वोक्त, पृ. 422
155 योगतत्त्वोपनिषद् 83-84, पूर्वोक्त, पृ. 423
156 योगतत्त्वोपनिषद् 103, पूर्वोक्त, पृ. 426
157 योगतत्त्वोपनिषद् 104, पूर्वोक्त, पृ. 426
158 योगतत्त्वोपनिषद् 105, पूर्वोक्त, पृ. 427
159 योगतत्त्वोपनिषद् 107, पूर्वोक्त, पृ. 427
160 योगतत्त्वोपनिषद् 108-109, पूर्वोक्त, पृ. 427
161 योगतत्त्वोपनिषद् 30-31, पूर्वोक्त, पृ. 414

-
- 162 योगतत्त्वोपनिषद् 48-49, पूर्वोक्त, पृ. 418
163 योगतत्त्वोपनिषद् 47, पूर्वोक्त, पृ. 417
164 योगतत्त्वोपनिषद् 48, पूर्वार्ध पूर्वोक्त, पृ. 418

पञ्चम अध्याय
प्रमुख योग उपनिषदों का अन्य यौगिक ग्रन्थों से
तुलनात्मक अध्ययन

पञ्चम अध्याय

प्रमुख योग उपनिषदों का अन्य यौगिक ग्रन्थों से तुलनात्मक अध्ययन

चतुर्थ अध्याय में शोध कार्य हेतु चयनित अमृतनादोपनिषद् योगकुण्डल्युपनिषद् त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, योगचूडामण्युपनिषद् तथा योगतत्त्वोपनिषद् इन पाँच योग उपनिषदों में योगतत्त्व का विवेचनात्मक व विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया। जिसमें पाया गया कि इन योग उपनिषदों में योग के प्रकार, योगांग, योगमुद्रा, षट्चक्र, कुण्डलिनी जागरण, नाडीशोधन, नाडीपरिगणन आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। इन उपनिषदों में योग के अनेक मार्गों व उपायों की बात कही गई है। ये सभी मार्ग मानव जीवन के वास्तविक लक्ष्य मुक्ति के साधन बताए गए हैं तथा योग को ब्रह्म प्राप्ति में सहायक माना गया है अर्थात् योग को साधन के रूप में विवेचित किया गया है परन्तु इन प्रमुख योग उपनिषदों में हठयोग और राजयोग के बारे में विस्तार से चर्चा नहीं की गई केवल योगतत्त्वोपनिषद् में संक्षिप्त वर्णन किया गया है अतः वैदिक विचारधारा का नेतृत्व करने वाले प्रमुख योग उपनिषदों की तुलना अन्य यौगिक ग्रन्थों से करना आवश्यक है ताकि इनमें वर्णित योग तत्त्व का और अधिक व्यापक तुलनात्मक व समीक्षात्मक अध्ययन कर इनकी वर्तमान सन्दर्भ में उपयोगिता सिद्ध की जा सके।

प्रस्तुत अध्याय में पातञ्जलयोगसूत्र, घेरण्ड संहिता और श्रीमद्भगवद्गीता इन ग्रन्थों से प्रमुख योग उपनिषदों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा रहा है।

5.1 पातञ्जलयोगसूत्र और प्रमुख योग उपनिषद् -

पातञ्जल योग महर्षि पतञ्जलि द्वारा विरचित एक यौगिक ग्रन्थ है, जिसे योगसूत्र के नाम से जाना जाता है। यह योग पर लिखित एक प्रामाणिक वैज्ञानिक, क्रमबद्ध तथा सुव्यवस्थित ग्रन्थ है। पतञ्जलि ने योग सम्बन्धी यत्र-तत्र बिखरे हुए विचारों और सिद्धान्तों को 195 सूत्रों में एकत्र किया है। योगसूत्र के प्रथम सूत्र "अथ

योगानुशासनम्¹ में अनुशासन पद से यही निर्देश मिलता है कि महर्षि पतञ्जलि ने पूर्व उपदिष्ट सिद्धान्तों को ही सूत्रबद्ध किया है।

योग सूत्र चार अध्यायों में विभक्त है -

- (i) **समाधिपाद** - यह पातञ्जल योगसूत्र का प्रथम अध्याय है, जिसमें 51 सूत्र हैं। इस अध्याय में योग परिभाषा, योग का उद्देश्य, चित्तवृत्तियाँ, वृत्ति निरोध के अभ्यास, समाधि, ईश्वर प्रणिधान, चित्त का विक्षेप व उसके नाश के उपाय, समाधि के भेद आदि विषयों का वर्णन किया गया है।
- (ii) **साधना पाद** - इस दूसरे अध्याय के अन्तर्गत 55 सूत्र हैं। इसमें योग के व्यावहारिक पक्ष का वर्णन किया गया है। क्रियायोग तथा उसके स्वरूप का फल, पञ्च क्लेश व उनके नाश के उपाय प्रकृति-पुरुष का स्वरूप व उनके संयोग का स्वरूप और संयोग के नाश का उपाय, तथा अष्ट योगांग के बहिरंग पाँच अंगों यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार का वर्णन किया गया है।
- (iii) **विभूतिपाद** - इसके अन्तर्गत 55 सूत्र हैं। धारणा, ध्यान, समाधि इन निर्बीज समाधि के बहिरंग साधनों अर्थात् संयम का निरूपण, संयम का फल, योगसिद्धियों का उल्लेख, विवेकज्ञान व कैवल्य का निरूपण किया गया है।
- (iv) **कैवल्यपाद** - यह अन्तिम अध्याय है। इसमें 34 सूत्र हैं। इस अध्याय में पतञ्जलि ने अपने सिद्धान्तों का युक्तपूर्वक प्रतिपादन किया है। सिद्धियों की प्राप्ति के पाँच हेतुओं का तथा जात्यन्तर परिणाम का विषय, योगी के कर्मों की महिमा, सामान्य मनुष्यों की कर्मफल प्राप्ति के प्रकार का वर्णन, विवेकज्ञान, धर्ममेघसमाधि तथा कैवल्य अवस्था का निरूपण किया गया है। कैवल्य के उपयोगी चित्त तथा चित्त के सम्बन्ध में जो-जो शंकाएँ हो सकती थी उनका युक्तिपूर्वक निवारण किया गया है।

इस प्रकार प्रत्येक अध्याय का प्रत्येक सूत्र एक दूसरे से तार्किक व वैज्ञानिक ढंग से सजाया गया है। मनुष्य के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति तक का मार्ग इन सूत्रों द्वारा प्रशस्त तथा निर्देशित किया गया है।

योग की परिभाषा -

पातञ्जलयोगसूत्र के अनुसार - "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"² अर्थात् चित्त की प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति रूप पञ्चवृत्तियों का पूर्णतया निरुद्ध हो जाना योग

है। ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से चित्त का बहिर्मुख होकर चित्त का व्यापार अथवा विषयाकार परिणाम ही वृत्ति है। चित्त की पाँच वृत्तियों को क्लिष्ट (योग की बाधक) तथा अक्लिष्ट (योग की साधक) कहा गया है। चित् की वृत्तियों का निरोध हो जाने पर बुद्धि का विषयाकार परिणाम नहीं होता तथा पुरुष की अपने चिन्मात्र स्वरूप में प्रतिष्ठा हो जाती है। पञ्च चित्तवृत्तियों का निरोध अभ्यास और वैराग्य द्वारा बताया गया है -

"अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः"³

चित्तवृत्तियों की स्थिरता के लिए किया जाने वाला प्रयत्न अभ्यास होता है। इस प्रकार चित्त की अन्तर्वृत्तियों का निरोध अभ्यास द्वारा बताया गया है। अभ्यास दीर्घकाल, निरन्तर और श्रद्धापूर्वक किए जाने पर चित्त दृढ़ हो जाता है और पुनः चञ्चल नहीं होता। चित्त की बाह्य वृत्तियों का निरोध वैराग्य द्वारा बताया गया है। दृष्ट (लौकिक) व आनुश्रविक (पारलौकिक) विषयभोगों में तृष्णारहित चित्त की वशीकारसंज्ञा ही वैराग्य कही गई है। वैराग्य पर और अपर के भेद से दो प्रकार का बताया गया है -

- (i) **अपर वैराग्य** - जिस पुरुष की तृष्णा लौकिक और पारलौकिक विषयों में नहीं रहती है, उसका वैराग्य अपर वैराग्य कहलाता है। इसी अवस्था में सम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि होती है। चेतन पुरुष को अचेतन प्रकृति से भेद का साक्षात्कार तो हो जाता है किन्तु इस अवस्था में चित्तवृत्तियाँ बनी रहती हैं। यह समाधि की पूर्णता नहीं है।
- (ii) **पर वैराग्य** - विवेक ख्याति द्वारा गुणों से तृष्णा रहित हो जाना पर वैराग्य है। असम्प्रज्ञात या निर्बीज समाधि पर वैराग्य एवं सम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि के पश्चात् होती है। इसमें ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान का भेद नहीं रहता। यह ज्ञान की सर्वोच्च अवस्था बताई गई है।

योगसूत्र के अनुसार योग में चित्तवृत्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन चित्तवृत्तियों का निरोध तभी सम्भव है, जब इनके आश्रयों (चित्तभूमियों) को भलीभाँति समझ लिया जाए। आत्मा के यथार्थ स्वरूप को समझना और यह देखना कि किन-किन चित्तवृत्तियों का लोप किन-किन चित्तभूमियों में होता है अर्थात् कौन-कौन सी चित्तभूमि योग के अनुकूल है। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्ति, एकाग्र, निरुद्ध इन पाँच चित्तभूमियों के स्वरूप को भलीभाँति समझकर ही योग की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं। प्रथम तीन चित्तभूमियों को योग अथवा समाधि के लिए अनुपयुक्त माना गया है।

एकाग्र और निरुद्ध इन दो को ही योग के अनुकूल बताया है क्योंकि इनमें सत्त्वगुण प्रधान रहता है तथा यह सत्त्वगुण ही आत्म साक्षात्कार में सहायक सिद्ध होता है, इसी कारण इनमें योग (समाधि) सिद्धि होती है। पातञ्जलयोगसूत्र में योग का अभीष्ट अर्थ समाधि माना गया है। इस विषय में योगसूत्र का "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" और व्यास भाष्य "योगः समाधिः स च सार्वभौमः चित्तस्य धर्मः"⁴ प्रमाण हैं। जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में योग को साधन के रूप में माना गया है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में योग से विवेक ज्ञान की प्रवृत्ति बताई है तथा योग द्वारा प्राण व मन को नियन्त्रित किया जाना बताया है। योगतत्त्वोपनिषद् के अनुसार योग कैवल्य प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। योग द्वारा अष्टसिद्धियों को प्राप्त कर अन्ततः आत्म साक्षात्कार कर जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति मिलती है। योगसूत्र में चित्तवृत्तियों, चित्तभूमियों का विस्तृत विवेचन किया गया है जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं मिलता। योगसूत्र यौगिक अभ्यास के दौरान चित्तवृत्तियों (मानसिक अवस्थाओं) का प्रतिनिधित्व करता है जबकि प्रमुख योग उपनिषद् योगाभ्यास के दौरान शरीर में होने वाली विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करता है, जो कि नाड़ी शुद्धि के लिए किए जाते हैं। योगकुण्डल्युपनिषद् में वासना और प्राणों की गति को चित्त की चञ्चलता का कारण बताया है तथा कहा गया है कि इनमें से एक का भी निरोध हो जाने पर दोनों निरुद्ध हो जाते हैं -

"हेतुद्वयं हि चित्तस्य वासना च समीरणः।

तयोर्विनष्ट एकस्मिंस्तद्वावपि विनश्यतः॥"

साथ ही मन को बन्धन का कारण बताया गया है। मन को कुण्डलिनी शक्ति में लीन करके 'मैं ब्रह्म ही हूँ' इस प्रकार की भावना बनाकर मन द्वारा देखने की वृत्ति का त्याग करना कैवल्य प्राप्ति अवस्था बताया है।

ईश्वर विचार -

योगसूत्र के अनुसार "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः"⁵ अर्थात् क्लेश, कर्म, विपाक और आशयों से रहित पुरुष विशेष ईश्वर है।

योगसूत्र के अनुसार ईश्वर साधक को समाधि प्राप्ति में सहायता प्रदान करता है। वह न तो सांख्य के समान महत्त्वहीन ही है और न ही इतना सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान् है जितना भक्ति वेदान्त में है। ईश्वर को योगी के सहायक, संरक्षक, गुरु तथा मार्गदर्शक के रूप में माना गया है। वह तो ध्यान केन्द्रित करने, योग साधना के

मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने व पुण्यफलों को पूरा करने में सहायक है। ईश्वर की उपासना के लिए प्रणव (ओम्) को वाचक या प्रतीक माना है। इसी प्रणव के जप और उसके अर्थ की भावना आत्म साक्षात्कार की ओर ले जाती है। परम श्रद्धा से सम्पूर्ण क्रियाओं को ईश्वर के प्रति समर्पित कर देना ईश्वरप्रणिधान कहा गया है। यह चित्तवृत्ति निरोध अथवा समाधि की स्थिति को शीघ्र प्राप्त करने का सरल व सुकर उपाय है - **"समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्।"**⁶

इस प्रकार योगसूत्र में प्रणव को ईश्वर का वाचक बताया गया है। इसी प्रकार प्रमुख योग उपनिषदों में प्रणव ध्यान से ब्रह्मतत्त्व की प्राप्ति बताई गई है। अमृतनादोपनिषद् में प्रणव को रथ तथा भगवान् विष्णु को सारथि बनाकर ब्रह्मलोक की प्राप्ति बताई है। प्रणव जप के निरन्तर अभ्यास से जब मन ईश्वर की भावना में लगा रहे तब प्रणव जप की भी आवश्यकता नहीं रहती अर्थात् रथ रूपी प्रणव जब साधक को उसके लक्ष्य स्थान पर पहुँचा दे तब साधक को प्रणव का सहारा छोड़ कर ब्रह्म साक्षात्कार करना चाहिए। इन उपनिषदों में प्रणव की ध्यान विधि तथा प्रणव की मात्राओं अ, उ और म का भी विस्तृत विवेचन किया गया है।

समाधि सिद्धि में विघ्न -

चित्त को अपने मार्ग से विक्षिप्त कर समाधि सिद्धि में जो विघ्न (बाधा) उत्पन्न करते हैं, उन्हें चित् के विक्षेप या अन्तराय कहा गया है - **"व्याधिस्त्यान-संशयप्रमादादलस्याविरतिभ्रान्ति दर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्ते-ऽन्तरायाः"**⁷ अर्थात् रोग, चित्त की अकर्मण्यता, सन्देह, असावधानी, समाधि की भूमि का प्राप्त न होना, चित्त को विक्षिप्त करने, चित्त को चंचल बनाने के कारण ये अन्तराय समाधि की सिद्धि के मार्ग में विघ्न होते हैं। **"दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वास-प्रश्वासाविक्षेपसहभुवः"**⁸ आसन व मन की स्थिरता का बाधक दुःख, मन का क्षोभ दौर्मनस्य, अंगों का कापना अंगमेजयत्व और श्वास-प्रश्वास पर साधक का नियन्त्रण न हो पाना ये दुःखादि पाँच विघ्न व्याधि आदि नौ विक्षेपों के साथ उत्पन्न हो कर समाधि में विघ्न डालते हैं।

इस प्रकार महर्षि पतञ्जलि ने समाधि के विघ्न बताकर इनके निराकरण हेतु प्रणव, जप, ईश्वर की भावना तथा एक तत्त्व का चिन्तन आदि उपाय बताए हैं। चित्त को निर्मल बनाने हेतु सुखी, दुःखी, पुण्यात्मा एवं पापी पुरुषों के प्रति क्रमशः मित्रता,

दया, प्रसन्नता और उपेक्षा की भावना रखना बताया है। इसी प्रकार प्रमुख योग उपनिषदों में भी योगाभ्यास के विघ्नों की चर्चा की गई है। योगकुण्डल्युपनिषद् में रोग, संशय, प्रमत्तता, आलस्य, निद्रा, विरति, भ्रान्ति, विषय, अनाख्य तथा अलब्धि ये दस योगाभ्यास के विघ्न बताकर इनके त्याग का निर्देश दिया है। योगतत्त्वोपनिषद् में भी आलस्य, आत्मप्रशंसा, विषय आदि विघ्न बताकर साधक को अपने पुण्य कर्मों के प्रभाव से इन विघ्नों का परित्याग करने को कहा गया है।

योगसूत्र में चित्त की एकाग्रता के भी उपाय बताए गए हैं जैसे - चित्त को रागद्वेष आदि से मुक्त कर निर्मल बनाना, प्राणायाम, शोकरहित अथवा प्रकाशरूप में उत्पन्न हुई चित्तवृत्ति, रागरहित योगियों को ध्यान का विषय बनाने वाला चित्त, स्वप्न अथवा निद्रावस्था के ज्ञान को आश्रय बनाकर भावना करना तथा अपनी अभीष्ट विषय वस्तु पर ध्यान लगाना। इसी प्रकार प्रमुख योग उपनिषदों में भी चित्त की एकाग्रता हेतु प्राणायाम तथा ध्यान लगाने की बात कही गई है।

क्रियायोग -

"तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः"⁹

तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान (ईश्वर के प्रति भक्ति विशेष या समस्त कर्मफलों की समर्पण बुद्धि) ये क्रियाएँ क्रियायोग है। पातञ्जलयोगसूत्र में सामान्य साधक जिनका चित्त विक्षिप्त अवस्था वाला है, उनके लिए योग के सरल बहिरंग साधन तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्राणिधान को क्रियायोग बताया गया है। समाधि की भावना करने तथा पञ्च क्लेशों को क्षीण करना क्रियायोग है ताकि चित्त को स्वच्छ कर उसे एकाग्र करते हुए समाधि प्राप्त की जा सके।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में शास्त्रानुकूल कर्मों में सदैव मन का निग्रह करते रहना कर्मयोग या क्रियायोग बताया गया है अर्थात् मन में ईश्वर का चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से कर्म करना क्रियायोग है तथा क्रियायोग को शीघ्र मुक्तिदायक मार्ग बताया गया है।

इस प्रकार प्रमुख योग उपनिषदों में क्रियायोग के अन्तर्गत ईश्वर प्रणिधान को तो स्वीकार किया गया है परन्तु तप और स्वाध्याय का उल्लेख नहीं किया गया है।

योग सिद्धियाँ -

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार योगाभ्यास के समय साधक विभिन्न विजयों को प्राप्त करता हुआ पञ्चभूतों पर विजय प्राप्त कर लेता है तथा भूतविजय के पश्चात् योगी को अष्टसिद्धियों की प्राप्ति होती हैं- "ततोऽणिमादि प्रादुर्भावः कायसम्पत् तद्धर्मानभिघातश्च॥"¹⁰ अर्थात् योगी की भूतों पर विजय हो जाने पर अणिमा, महिमा, लघिमा आदि अष्टसिद्धियों का उद्भव, रूप, लावण्य, अतिशय बल आदि शरीर सम्पत्तियों की प्राप्ति और उस शरीर के धर्मों की बाधा का अभाव होता है। योगसूत्र के विभूतिपाद में अनेक भौतिक सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन किया गया है। जिसके सन्दर्भ में संयम (धारणा, ध्यान और समाधि) पद का उल्लेख किया गया है।

इन सिद्धियों को प्राप्त कर योगी शक्तिशाली हो जाता है तथा उसके संकल्प तथा कार्य में कोई बाधा नहीं आती परन्तु इन सिद्धियों की प्राप्ति को ही योग का लक्ष्य नहीं माना गया है बल्कि इनको समाधि प्राप्ति में विघ्न बताया है अतः योगी को इनसे बचने का निर्देश भी दिया गया है ताकि योगी इन अलौकिक ऐश्वर्यों के चक्र में न पड़ जाए। योगी को आत्मसाक्षात्कार की ओर अग्रसर कर जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रेरित किया है।

प्रमुख योगोपनिषदों में अनेक योगसिद्धियों का उल्लेख किया गया है जैसे - त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में पृथिवी आदि पञ्चमहाभूतों पर धारणा के अभ्यास से पञ्चभूतों पर अधिकार की बात कही गई है। योगतत्त्वोपनिषद् में सगुण ध्यान से अष्टसिद्धियों की प्राप्ति बतलाई गई है। प्रमुख योग उपनिषदों में भी योग सूत्र की भाँति इन योगसिद्धियों को ब्रह्मप्राप्ति या मोक्षप्राप्ति में विघ्न बताया गया है तथा इनके प्रति उदासीनता का भाव प्रदर्शित किया है -

एते विघ्ना महासिद्धेर्न रमेत् तेषु बुद्धिमान्।

न दर्शयेत् स्वसामर्थ्यं यस्य कस्यापि योगिराट्॥

ये सिद्धियाँ महासिद्धि अर्थात् मोक्ष प्राप्ति में विघ्न उत्पन्न करती हैं अतः बुद्धिमान् योगी को इन सिद्धियों में नहीं फँसना चाहिए और न ही इसका किसी के सामने प्रदर्शन करना चाहिए।

अष्टांग योग -

अभ्यास और वैराग्य उत्तम साधक के योगसिद्धि के साधन हैं। जिन्हें श्रद्धावीर्य आदि के साथ करने से समाधि की सिद्धि शीघ्र होती है तथा तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये क्रियायोग मध्यम साधक के लिए हैं। मन्द साधक के लिए अष्टांग योग का उपदेश दिया है।

"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि"¹¹

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ योगाङ्ग हैं, इन्हे अष्टांग योग कहते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने अपनी राजयोग नामक पुस्तक में पातञ्जलयोग (अष्टांग योग) को ही राजयोग बताया है क्योंकि इसमें ज्ञानयोग, भक्तियोग, क्रियायोग आदि अनेकानेक योगों का समन्वय मिलता है। अष्टांग योग के आचरण से चित्तवृत्तियों का निरोध होकर क्लेशादि की निवृत्ति हो जाती है और अन्तर्मुखी चित्त में ज्ञान का प्रकाश बना रहता है।

इस प्रकार पातञ्जल योगसूत्र में योग के आठ अंग बताए गए हैं जबकि अमृतनादोपनिषद् में प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क तथा समाधि को योग के छः अंग बताए हैं। साथ ही अष्टांग योग के प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यान इस क्रम से परिवर्तित योगांग क्रम अपनाया है। प्राणायाम से पूर्व प्रत्याहार व ध्यान को रखा गया है संभवतः यह मान्यता रही हो कि प्रत्याहार से जब मन अन्तर्मुखी हो जाता है, तब प्राणों को जाग्रत करना और अधिक सरल हो जाता है। जिससे प्राणों को जाग्रत करने व मन को अन्तर्मुखी बनाने में आसानी रहती है। इसी ध्येय के साथ प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा इन चारों योगांगों को इस क्रम में रखा गया हो या हो सकता है कि पतञ्जलि ने इसका व्यवस्थित वैज्ञानिक क्रम अपनाया हो। योगचूडामण्युपनिषद् में आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि इन छः योगांगों का विवेचन किया गया है। इस उपनिषद् में अष्टांग योग के योगांग क्रम को तो स्वीकार किया गया है परन्तु यम, नियम को छोड़ दिया गया है। संभवतः यह विचार रहा हो कि जो साधक यम-नियम का अभ्यास कर चुके हैं उनके लिए षडंग योग का उपदेश है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् तथा योगतत्त्वोपनिषद् में पातञ्जलयोग सूत्र के समान अष्टांग योग का वर्णन किया गया है। योगतत्त्वोपनिषद् में योग की निष्पत्ति अवस्था के अन्तर्गत राजयोग की साधना के आठ अंग बताए हैं, जो कि अष्टांग योग ही है।

(i) यम -

"अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः"¹² पतञ्जलि के अनुसार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम हैं। योगांगों में अन्तिम अंग समाधि ही वस्तुतः योग है, अन्य सभी अंग तो क्रमशः एक दूसरे के उपकारक होकर समाधि में सहायक हैं।

पतञ्जलि ने यम योगांग को परिभाषित नहीं किया है परन्तु यम के अहिंसा आदि पाँच प्रकार बताकर प्रत्येक के अभ्यास से होने वाले फल को बताया है। अहिंसा यम के परिपालन से योगी की अहिंसा में सुदृढ़ स्थिति हो जाती है। उसके मन, वचन तथा कर्म में हिंसा की भावना तनिक भी नहीं रहती, उसके समीप हिंसक जीव-जन्तु भी अपने जन्मजात वैर का त्याग कर देते हैं - "अहिंसा प्रविष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः"¹³ सत्य के आचरण में पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाने पर साधक की क्रिया अथवा वाणी कभी भी निष्फल नहीं होती - "सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्"¹⁴ जब साधक अस्तेय का सदैव पालन करता है तब उस अभ्यास के उत्कर्ष के कारण, अन्य विषयों की अभिलाषा न रखने वाले उस साधक के लिए सभी स्थानों पर दिव्य अमूल्य रत्न प्राप्त हो जाते हैं - "अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्"¹⁵ ब्रह्मचर्य यम का परिपालन करने पर साधक में अपरिमित सामर्थ्य या शक्ति का आविर्भाव होता है क्योंकि वीर्य के संयम करने पर ब्रह्मचर्य की प्रबलता से शरीर, इन्द्रियों और मन की शक्तियों में उत्कृष्टता आती है - "ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्य लाभः"¹⁶ तथा अपरिग्रह के अभ्यास का फल बताते हुए कहा गया है कि - "अपरिग्रहस्थैर्यं जन्मकथन्तासम्बोधः"¹⁷ अर्थात् अपरिग्रह की प्रकृष्ट अवस्था को प्राप्त कर लेने वाले योगी का अतीत अनागत जन्मों के स्वरूप तथा प्रकार के विषय में भली भाँति ज्ञान हो जाता है। ये यम, नियम के प्रतिबन्ध से रहित तथा समस्त अवस्थाओं में पालन किए जाने पर महाव्रत हो जाते हैं। पतञ्जलि ने पाँच यम बताए हैं जबकि त्रिशिखिब्राह्मोपनिषद् में यम को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि शरीर तथा इन्द्रियों के विषयों से वैराग्य भाव यम कहलाता है - "देहेन्द्रियेषु वैराग्यं यम इत्युच्यते बुधैः"¹⁸ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा, धैर्य, स्वाल्पहार व शुद्धता ये दस यम बताए गए हैं तथा योगतत्त्वोपनिषद् में तो मिताहार को ही मुख्य यम बताया गया है। पातञ्जलयोग सूत्र में यमों के अभ्यास से होने वाले फल की भी

चर्चा की गई है परन्तु प्रमुख योग उपनिषदों में केवल यम के लक्षण व प्रकारों का उल्लेख किया गया है। यम के आचरण से होने वाले लाभ की चर्चा नहीं की है।

(ii) नियम -

"शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायप्रणिधानानि नियमाः"¹⁹ महर्षि पतञ्जलि ने शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम बताए हैं तथा प्रत्येक नियम के पालन से प्राप्त होने वाली सिद्धियों का भी वर्णन किया है। शौच के पालन से योगी अपने शरीर के स्वरूप को जान लेता है, जिससे उसका अपने अंगों के प्रति मोह समाप्त हो जाता है तथा अन्य मनुष्यों से संसर्ग की भी इच्छा नहीं रहती - **"शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः।"**²⁰ शौच का पालन करने से प्राप्त दूसरे फल को बताते हुए कहा गया है कि शौच पालन से बुद्धि की शुद्धि, मन की प्रसन्नता, चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियों पर विजय और आत्मा के साक्षात्कार की योग्यता आ जाती है। सन्तोष का पालन करने वाले साधक को आन्तरिक सुख की प्राप्ति होती है - **"सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः।"**²¹ तपस्या के अभ्यास से राग, द्वेष, क्रोध, मोहादि एवं अविद्यादि क्लेश रूप अशुद्धियों का विनाश हो जाता है और शरीर व इन्द्रियों से सम्बन्धित सिद्धियों की प्राप्ति होती है - **"कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपः।"**²² स्वाध्याय की स्थिति दृढ़ हो जाने पर अभीष्ट देवता की प्राप्ति या साक्षात्कार होता है - **"स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।"**²³ ईश्वरप्रणिधान से ईश्वर में विशेष भक्ति, शरणागति तथा समस्त कर्मों की समर्पण बुद्धि होने से सम्प्रज्ञात समाधि की शीघ्र सिद्धि होती है - **"समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्।"**²⁴ प्रमुख योग उपनिषद् नियमपालन से प्राप्त सिद्धियों का उल्लेख नहीं करते। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार परमतत्त्व के प्रति अनुराग रखना नियम है - **"अनुरक्ति परे तत्त्वे सततं नियमः स्मृतः।"**²⁵ तथा योगतत्त्वोपनिषद् नियमों में अहिंसा को मुख्य नियम मानता है - **"अहिंसा नियमेष्वेका मुख्या वै चतुरानन।"**²⁶

(iii) आसन -

पातञ्जलयोगसूत्र के अनुसार **"स्थिरसुखमासनम्"**²⁷ अर्थात् आसन स्थिर और सुखदायी होना चाहिए। शारीरिक चेष्टाओं को शिथिल करने और अनन्त आकाश में ध्यान एकाग्र करने से आसन, स्थिर और सुखदायी होता है। आसन की सिद्धि से योगी का अपने शरीर और इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण हो जाता है और उसे सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि द्वन्द्वों के कष्टों का अनुभव नहीं होता।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार समस्त वस्तुओं में उदासीन भाव ही आसन है- **"सर्ववस्तुन्युदासीनभाव आसनमुत्तमम्"**।²⁸ इस योग उपनिषद् में स्वस्तिकासन, गोमुखासन, वीरासन आदि सत्तरह आसनों को बताकर उनकी क्रियाविधि का भी वर्णन किया गया है। योगतत्त्वोपनिषद् में सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन तथा भद्रासन इन चार आसनों को ही मुख्य माना है। योगचूडामण्युपनिषद् ने सिद्धासन और पद्मासन को ही आसन बताकर इनके अभ्यास से होने वाले फल का भी उल्लेख किया है। योगकुण्डल्योपनिषद् भी पद्मासन और वज्रासन दो ही आसन श्रेष्ठ मानकर इनकी क्रियाविधि व फल का वर्णन करता है।

इस प्रकार प्रमुख योग उपनिषदों में विभिन्न आसनों व उनकी क्रियाविधि का भी वर्णन किया गया है परन्तु पातञ्जलयोगसूत्र में किसी विशिष्ट आसन को नहीं बताया गया।

(iv) प्राणायाम -

"तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः"²⁹

स्थिर और सुखरूप आसन की सिद्धि हो जाने पर श्वास और प्रश्वास की स्वाभाविक गति ही प्राणायाम है अर्थात् श्वास (रेचक) और प्रश्वास (पूरक) के स्वच्छन्द प्रवाह को रोकना (धारण करना) ही प्राणायाम कहा गया है।

पातञ्जलयोगसूत्र के अनुसार प्राणायाम बाह्यवृत्ति (रेचक) आभ्यन्तरवृत्ति (पूरक) तथा स्तम्भवृत्ति (कुम्भक) वाला होता है। **"बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः"**³⁰

अर्थात् बाह्य और भीतरी विषयों का अतिक्रमण परित्याग करने वाला चौथे प्रकार का प्राणायाम होता है अर्थात् आभ्यन्तर वृत्ति, बाह्यवृत्ति व स्तम्भवृत्ति प्राणायामों के निरन्तर अभ्यास के पश्चात् किसी भी स्थान या मात्रा का विचार किए बिना तत्काल श्वास-प्रश्वास की गति का नियमन कर लेना चतुर्थ प्रकार का प्राणायाम बताया गया है।

यह भी निरन्तर करने पर एवं स्थान, समय व आवृत्ति के विचारपूर्वक अभ्यास करने पर क्रमशः दीर्घ व सूक्ष्म होता जाता है। चार प्रकार वाले इस प्राणायाम का फल बताते हुए कहा गया है कि **"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्"**³¹ **"धारणासु च योग्यता मनसः"**³² अर्थात् प्राणायाम अभ्यास से ज्ञान का आवरण क्षीण हो जाता है तथा मन की धारणाओं में योग्यता हो जाती है।

पातञ्जलयोगसूत्र में प्राणायाम चार प्रकार का बताया गया है तथा श्वास नियमन को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया साथ ही प्राण को श्वास के भौतिक अर्थ में स्वीकार किया गया है जबकि प्रमुख योग उपनिषद् में आभ्यन्तरवृत्ति को पूरक, बाह्यवृत्ति को रेचक, स्तम्भवृत्ति को कुम्भक के नाम से जाना जाता है तथा चौथे प्रकार को केवल कुम्भक के रूप में स्वीकार किया गया है।

प्रमुख योग उपनिषदों में प्राणायाम का विस्तार से विवेचन किया गया है तथा प्राणायाम से पूर्व नाडीशोधन को आवश्यक माना है अतः नाडी परिगणना व नाडी स्थानों की विस्तृत चर्चा की गई है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में यम-नियमों का भली भाँति पालन करते हुए, आसनों का सम्यक् अभ्यास करते हुए तथा नाडी शुद्धि करने के बाद प्राणायाम का अभ्यास करने का निर्देश दिया है -

"यमैश्च नियमैश्चैव आसनैश्च सुसंयतः।

नाडी शुद्धिं च कृत्वादौ प्राणायामं समाचरेत्॥"³³

इन योग उपनिषदों में प्राण के स्थान व कार्य का भी वर्णन किया गया है। कुण्डलिनी चालन के साधन के रूप में प्राणायाम का विवेचन किया गया है अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करना बताया है -

"योगकालेन मरुता सग्निना बोधिता सती।

स्फुरति हृदयाकाशे नागरूपा महोज्ज्वला॥"³⁴

अमृतनादोपनिषद् के अनुसार भूः भुवः आदि व्याहृतियों व ओंकार सहित गायत्री मन्त्र का तीन बार जप के साथ पूरक, कुम्भक व रेचक करना प्राणायाम है साथ ही इन तीनों प्राणायामों की विधि व फल का भी वर्णन किया गया है।

योगकुण्डल्युपनिषद् में सूर्यभेदी कुम्भक, उज्जायी कुम्भक, भस्त्रिका कुम्भक की विधि व लाभ का वर्णन किया गया है।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, योगचूडामण्युपनिषद् व योगतत्त्वोपनिषद् में प्राणायाम के स्तर, प्राणायाम मात्रा, प्रकार व लक्षण, प्राणायाम योग्य स्थान व आसनों का भी उल्लेख किया गया है। प्राणायाम के तीन स्तर बताए गए हैं। जिनमें अधम या निचले स्तर के प्राणायाम में 12 मात्राओं से पूरक करना बताया है। इस प्राणायाम का लक्षण है कि इसमें शरीर से पसीना आने लगता है। इस प्राणायाम से शारीरिक रोग नष्ट हो जाते हैं। जब साधक के शरीर में कंपकपी होने लगती है तब साधक दूसरे या मध्यम स्तर पर पहुँच

जाता है। इससे 24 मात्राओं से पूरक किया जाता है तथा साधक की मानसिक चिन्ताएँ, तनाव, अवसाद आदि दूर हो जाते हैं। उत्तम स्तर के प्राणायाम में 36 मात्राओं से पूरक किया जाता है तथा इस प्राणायाम में साधक का शरीर भूमि से ऊपर उठने लगता है। इसमें कठिन से कठिन मानसिक व शारीरिक रोग भी नष्ट हो जाते हैं -

"अधमे द्वादश मात्रा मध्यमे द्विगुणा मता।

उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायामस्य निर्णयः॥

अधमे स्वेदजननं कम्पो भवति मध्यमे।

उत्तमे स्थानमाप्नोति ततो वायु निरुन्धयेत्॥"³⁵

"अधमे व्याधिपापानां नाशः स्यात् मध्यमे पुनः।

पापरोग महाव्याधिनाशः स्यादुत्तमे पुनः॥"³⁶

"पूरकं द्वादशं कुर्यात् कुम्भकं षोडशं भवेत्।

रेचकं दश चोकारः प्राणायामः स उच्यते॥"³⁷

इस प्रकार प्रमुख योग उपनिषदों में मानसिक तथा विभिन्न शारीरिक रोगों का भी उल्लेख किया गया है जिनके शमन में प्राणायाम उपयोगी है साथ ही शान्त व स्वच्छ वातावरण में पद्मासन लगाकर ओऽम् मंत्र, गायत्री मंत्र या व्याहृतियों के साथ प्राणायाम करने का निर्देश दिया गया है। इस प्रकार का निर्देश व प्राणायाम का विस्तृत विवेचन पातञ्जल योगसूत्र में नहीं मिलता।

(v) प्रत्याहार -

पातञ्जलयोगसूत्र के अनुसार - **"स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः"**³⁸ इन्द्रियों का अपने-अपने विषयों के साथ सम्पर्क न रहने पर चित्त के स्वरूप का सा हो जाना प्रत्याहार है अर्थात् बहिर्मुखी इन्द्रियों को जब विषय सम्पर्क से रोककर अन्तर्मुखी बना लिया जाता है तो वे चित्त के रूप के अनुरूप हो जाती हैं। इस प्रकार जब इन्द्रियाँ स्व विषय से नहीं जुड़ती हैं तो वे चित्त से जुड़ कर उसी का आकार ग्रहण कर लेती हैं। इन्द्रियों का अपने विषयों से विपरीत दिशा (चित्त) की ओर गमन करना ही प्रत्याहार बताया है। धारणा, ध्यान, समाधि रूप संयम से पूर्व प्रत्याहार इसलिए अनिवार्य है कि प्राणायामादि की सिद्धि के बाद जब साधक चित्त इच्छित विषय पर धारणा करने का प्रयास करे, तो इन्द्रियाँ स्वविषयों की ओर गमन करते हुए उस अभ्यास को बाधित न कर सके। प्रत्याहार के अभ्यास से इन्द्रियों पर पूर्ण निग्रह हो जाता है।

"ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्"।³⁹ प्रत्याहार के अभ्यास से प्राप्त होने वाले फल को बताते हुए कहा गया है कि साधक अपनी इन्द्रियों को पूरी तरह से जीत लेता है। वह इन्द्रियों के माध्यम से विषयों में विचरण तो करता है परन्तु उनके प्रति आकर्षित नहीं होता। योगसूत्र के समान ही प्रमुख योग उपनिषदों में प्रत्याहार को इन्द्रियसंयम का साधन बताया गया है। अमृतनादोपनिषद् के अनुसार इन्द्रियों व मन को अनात्मपदार्थों से हटाकर आत्मचिन्तन में लगाना प्रत्याहार है -

"शब्दादि विषयान् पञ्च मनश्चैवातिचञ्चलम्।

चिन्तयेत् आत्मनो रश्मीन् प्रत्याहारः स उच्यते।।"⁴⁰

प्रत्याहार के लिए बाह्य सांसारिक विषयों पर ध्यान न देकर मानस भाव से रहना प्रधान उपाय है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार चित्त का अन्तर्मुखी भाव ही प्रत्याहार है साथ ही शरीरस्थ 18 मर्मस्थानों पर प्राणवायु को केन्द्रित करने और किसी मर्मस्थान से प्राणवायु हटाने को भी प्रत्याहार कहा है। योगचूडामण्युपनिषद् में इन्द्रियों को अपने विषयों से हटाने के अभ्यास को प्रत्याहार कहा है तथा इससे मन के विकारों का शमन होना बताया है। साथ ही प्रत्याहार की सिद्धि के लिए एक दिन में बारह बार प्राणायाम के अभ्यास का निर्देश दिया है। योगतत्त्वोपनिषद् में केवल कुम्भक प्राणायाम में स्थित होकर इन्द्रियों को उनके विषयों से खींचकर लाना प्रत्याहार बताया गया है -

"इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो यत् प्रत्याहरणं स्फुटम्।

योगी कुम्भकमास्थाय प्रत्याहारः स उच्यते।।"⁴¹

साथ ही प्रत्याहार से प्राप्त होने वाली अनेक सिद्धियों का वर्णन किया गया है तथा इन सिद्धियों को मोक्षप्राप्ति में विघ्न बताकर इनमें फंसने व इनका प्रदर्शन न करने का निर्देश दिया गया है।

इस प्रकार पातञ्जलयोगसूत्र में प्रत्याहार अभ्यास के लिए किसी प्राणायाम विशेष का उल्लेख नहीं किया गया है। प्राणायामादि की सिद्धि के बाद ही प्रत्याहार का निर्देश दिया गया है और न ही इसमें प्रत्याहार से प्राप्त होने वाली इस प्रकार की विशेष सिद्धियों का उल्लेख मिलता है।

(vi) धारणा -

पातञ्जलयोगसूत्र के अनुसार - **"देशबन्धचित्तस्य धारणा"**⁴² अर्थात् अन्य विषयों से हटाकर चित्त को किसी बाह्य अथवा भीतरी स्थान पर स्थिर करना ही धारणा है।

चित्त को आकाश, सूर्य, देव प्रतिमा आदि बाह्य पदार्थों या नाभिचक्र, नासिकाग्र आदि आन्तरिक पदार्थों या स्थानों पर एकाग्र तथा स्थिर करना बताया है।

पातञ्जलयोगसूत्र की तुलना में प्रमुख योग उपनिषदों में धारणा को विभिन्न प्रकार से व व्यापक रूप से परिभाषित किया गया है। अमृतनादोपनिषद् के अनुसार मन को संकल्पात्मक मानकर उसे आत्मा में लय करते हुए परमात्मा का ध्यान करना धारणा है।

"मनः संकल्पकं ध्यात्वा संक्षिप्यात्मनि बुद्धिमान्।

धारयित्वा तथाऽऽत्मानं धारणा परिकीर्त्तिता ॥"⁴³

धारणा के अभ्यास से अन्तः करण के बुरे विचार नष्ट हो जाते हैं। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में चित्त को निश्चित (स्थिर) बना लेना धारणा बताया है - "चित्तस्य निश्चलीभावो धारणा धारणं विदुः।"⁴⁴ तथा "यद्यष्टादशभेदेषु मर्मस्थानेषु धारणम्"⁴⁵ अर्थात् शरीर के 18 मर्मस्थानों पर मन लगाना धारणा है।

"पञ्च भूतमये देहे भूतेष्वेतेषु पञ्चसु॥

मनसो धारणं यत्तद्युक्तस्य च यमादिभिः।

धारणा सा च संसारसागरोत्तारकारणम् ॥"⁴⁶

अर्थात् पञ्चमहाभूतों से बने शरीर में इन महाभूतों पर मन लगाना धारणा है। धारणा के अभ्यास का फल बताते हुए कहा गया है कि धारणा के अभ्यास से भवसागर को पार कर सकने में समर्थ हो सकते हैं। साथ ही पञ्चमहाभूतों की धारणा विधि भी बताई गई है जिससे कि पञ्चमहाभूतों पर अधिकार किया जा सके। योगचूडामण्युपनिषद् के अनुसार बारह बार प्रत्याहार के अभ्यास से धारणा वृत्ति का उदय होता है तथा इससे मन धैर्यवान बनता है। योगतत्त्वोपनिषद् के अनुसार जब चित्त प्राणवायु सहित सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर जाता है तब पञ्चमहाभूत रूप देवों की धारणा करनी चाहिए। इस उपनिषद् में शरीरस्थ पञ्चमहाभूत धारणा का स्थान, बीजमन्त्र, वर्ण, आकार, देवता स्वरूप व पञ्चमहाभूत धारणा से प्राप्त लाभ का विस्तृत विवेचन किया गया है।

इस प्रकार पातञ्जलयोगसूत्र में धारणा को केवल चित्त के स्थिरीकरण के रूप में व्याख्यायित किया गया है। मर्मस्थान या शरीरस्थ पञ्चमहाभूतों की धारणा का कोई उल्लेख नहीं मिलता हालाँकि आकाशादि पञ्चमहाभूतों की स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय

और अर्थवत्त्व नामक पाँच अवस्थाओं में संयम करने से महाभूतों पर जप के फल को बताया गया है।

(vii) ध्यान

योग सूत्र के अनुसार "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्"⁴⁷ जहाँ चित्त की धारणा की गई है, उसी ध्येय पदार्थ में प्रत्यय (ज्ञान) की एकतानता ध्यान है अर्थात् ध्येय विषय पर निरन्तर मनन ध्यान कहा गया है।

महर्षि पतञ्जलि ने पृथक् से ध्यान के अभ्यास से प्राप्त होने वाले फल का उल्लेख नहीं किया है प्रत्युत संयम (धारण, ध्यान, समाधि) से प्राप्त विभूतियों का सम्पूर्ण विभूतिपाद में विस्तृत वर्णन किया है।

इस प्रकार योगसूत्र में ध्यान के विषय में विस्तृत वर्णन नहीं किया गया है जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में ध्यान के लिए विभिन्न वस्तुओं का उल्लेख किया गया है साथ ही विशेष स्थान पर ध्यान लगाने से प्राप्त होने वाले परिणाम को भी बताया गया है। ध्यान लगाने की विधि तथा ध्यान के सगुण व निर्गुण प्रकारों का भी उल्लेख किया गया है। अमृतनादोपनिषद् में प्रणव की अकारादि मात्रा, स्वर तथा शब्दों को त्याग कर स्वरहीन मकार के वाचक ईश्वर का ध्यान लगाने की बात कही गई है। योगकुण्डल्युपनिषद् के अनुसार आत्मा के ध्यान से जीवन्मुक्ति मिलती है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में सगुण व निर्गुण ब्रह्म के ध्यान से प्राप्त होने वाली सिद्धियों का भी उल्लेख किया गया है। योगचूडामण्युपनिषद् में बारह धारणा को ध्यान कहा गया है - "धारणाद्वादश प्रोक्तं ध्यानं योगविशारदैः।"⁴⁸ अर्थात् धारणा लाने वाला प्राणायाम बारह बार करने पर ध्यान लगने लगता है तथा ध्यान से मन की एकाग्रता बताई गई है। योगतत्त्वोपनिषद् के अनुसार एकाग्र चित्त को इष्ट देवता पर केन्द्रित करना ध्यान है। इस उपनिषद् में ध्यान की विधि व प्रकार की भी चर्चा की गई है -

"समभ्यसेत्तथा ध्यानं घटिका षष्टिमेव च ।

वायु निरुध्यं चाकाशे देवतामिष्टदामिति ॥

सगुणं ध्यानमेतत्स्यादणिमादिगुणप्रदम् ।

निर्गुणध्यानयुक्तस्य समाधिश्च ततो भवेत् ॥"⁴⁹

अर्थात् साधक को छः घड़ी तक सगुण ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए। प्राणवायु को रोककर आकाश में इष्ट प्रदान करने वाले देव का ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार के

ध्यान से अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति होती है तथा निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करने से बारह दिनों में समाधि लगने लगती है।

इस प्रकार पातञ्जल योग में चित्तवृत्ति की एकतानता या एकरूपता को ध्यान के रूप में परिभाषित किया गया है परन्तु ध्यान की अवधि, विधि व प्रकार का उल्लेख नहीं किया गया जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में ध्यान की अवधि, विधि आदि को विवेचित करते हुए ध्यान अभ्यास के फल का भी निरूपण किया गया है।

(viii) समाधि -

"तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः"⁵⁰ महर्षि पतञ्जलि के अनुसार ध्यान की परिपक्व अवस्था जिसमें केवल ध्येय पदार्थ की प्रतीति होती है, चित्त का अपना स्वरूप शून्य के समान हो जाता है, समाधि है। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र तथा निरुद्ध इन पाँच चित्त भूमियों में अन्तिम दो एकाग्र तथा निरुद्ध ही समाधि के रूप हैं क्योंकि इनमें आत्मसाक्षात्कार हो जाता है। योगसूत्र में योग की अवस्था को समाधि कहा है।

समाधि के दो प्रकार बताए गए हैं -

(क) सम्प्रज्ञात समाधि -

एकाग्र अवस्था को सम्प्रज्ञात समाधि कहा है क्योंकि एकाग्रावस्था में चित्त ध्येय विषय में लीन होकर तन्मय तो हो जाता है परन्तु ध्येय विषय का स्पष्ट ज्ञान रहता है। इस समाधि में संस्कारों का बीज बना रहता है अतः इस समाधि को सबीज समाधि भी कहते हैं।

वितर्कानुगत, विचारानुगत आनन्दानुगत एवं अस्मितानुगत रूप से चित्त की अन्यवृत्तियों का निरोध करना सम्प्रज्ञात समाधि है - "वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः"⁵¹

(ख) असम्प्रज्ञात समाधि -

"विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्व संस्कारविशेषोऽन्यः"⁵²

निरुद्धावस्था को असम्प्रज्ञात समाधि कहा गया है। इसमें चित्त की सभी वृत्तियों का लोप हो जाता है। यह अभेद की स्थिति है जिसमें ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भेद नहीं रहता। परवैराग्य के निरन्तर अभ्यास से चित् निरालम्बन हो जाता है। यह निर्बीज समाधि है जिसमें बन्धन के समस्त बीजभूतसंस्कार नष्ट हो जाते हैं। इसमें आत्मा विशुद्ध चैतन्य स्वरूप हो जाती है। यही मुक्ति है और यही परमपुरुषार्थ है। निर्बीज

समाधि में ही कैवल्य की प्राप्ति होती है। असम्प्रज्ञात समाधि में पहुँचकर योगी का चित्त अत्यन्त निर्वृत्तिक हो जाता है इसे धर्ममेघ समाधि भी कहते हैं। अष्टांग साधनों में प्रथम पाँच यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार बहिरंग साधन तथा अन्तिम तीन धारणा, ध्यान समाधि अन्तरंग साधन बताए गए हैं। योगसूत्र में समाधि का भेद सहित विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। प्रमुख योग उपनिषदों में इस प्रकार का समाधि का भेद सहित विस्तार नहीं मिलता। प्रणव उपासना, निर्गुण ब्रह्म ध्यान, द्वादश ध्यान प्राणायाम, अनाहतनाद की सूक्ष्म ध्वनि व प्रणव जप में लीनता को समाधि की प्राप्ति बताया है। सम्भवतः इन उपनिषदों में समाधि से तात्पर्य निर्बीज या असम्प्रज्ञात समाधि है।

योगकुण्डल्युपनिषद् में समाधिस्थ योगी के स्वरूप का वर्णन किया गया है तथा स्वात्मा और चिदात्मा में ऐक्य भाव को समाधि कहा है। अमृतनादोपनिषद् के अनुसार - "समं मन्यते यं लब्ध्वा स समाधिः प्रकीर्तितः।"⁵³ अर्थात् मन में उठने वाले विचार जब नष्ट हो जाते हैं और मन जीवात्मा के साथ परमात्मा में मिल जाता है, वह समाधि है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार ध्यान का पूर्णरूप से विस्मरण कर देना समाधि है तथा समाधि में समस्त वृत्तियों का अन्त हो जाता है -

"समाधिः स तु विज्ञेयः सर्ववृत्तिविवर्जितः।

ब्रह्म संपद्यते योगी न भूयः संसृतिं व्रजेत्॥"⁵⁴

योगचूडामण्युपनिषद् में समाधि को योग की उच्च अवस्था बताया गया है। द्वादश आवृत्ति पर ध्यान लगाने से समाधि की प्राप्ति होती है तथा समाधि से परम तत्त्व का साक्षात्कार हो जाता है जिससे योगी सांसारिक कर्मों के बन्धन से छूट जाता है। वह जन्म-मरण के चक्र से छूटकर मुक्त हो जाता है -

"यत्समाधौ परं ज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखम्।

तस्मिन् दृष्टे क्रियाकर्म यातायातो न विद्यते॥"⁵⁵

योगतत्त्वोपनिषद् में जीवात्मा का परमात्मा के साथ मिलन को समाधि कहा गया है -

"दिनद्वादशकेनैव समाधिं समवाप्नुयात् ।

वायुं निरुध्य मेधावी जीवन्मुक्तो भवत्ययम् ॥

समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः ।"⁵⁶

अर्थात् निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करने से लगभग बारह दिनों में समाधि लगने लगती है। बुद्धिमान् योगी प्राण रोक कर जीवन्मुक्त हो जाता है तथा जीवात्मा का परमात्मा के साथ मिल जाना समाधि कहलाती है।

कैवल्य -

"पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति"⁵⁷

गुणों का वापस अपने कारण में लीन हो जाना ही कैवल्य या मोक्ष है या आत्मा का अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाना कैवल्य है। विवेक ज्ञान कैवल्यप्राप्ति का उपाय है और जब प्रकृति के सभी विकारों से पुरुष की मुक्ति अथवा प्रकृति-पुरुष का विवेक हो जाता है तब वह धर्ममेघ नामक समाधि निष्ठ हो जाता है। कैवल्य अवस्था में पुरुष प्रकृति से अलग होकर अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। **"सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्"**⁵⁸ अर्थात् चित्त में प्रकृति और पुरुष की समान भाव से शुद्धि हो जाने पर कैवल्य की प्राप्ति होती है। सत्त्वान्यथाख्याति से बुद्धि और पुरुष दोनों अपने विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। **"तदभावे संयोगाभावो हानं तद्दुः कैवल्यम्"**⁵⁹ विवेक ज्ञान होने पर प्रकृति-पुरुष का संयोग समाप्त हो जाता है तब द्रष्टा पुरुष की केवल स्वरूप में स्थिति हो जाती है यही पुरुष का कैवल्य है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार जब अष्टांग मार्ग के आचरण से चित्त की वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं। पुरुष समाधि की अवस्था में आत्म साक्षात्कार कर अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेता है। इस जीवन में कैवल्य को जीवन्मुक्ति कहा जाता है तथा शरीर छूट जाने पर मृत्यु पश्चात् विदेहमुक्ति होती है। इस प्रकार योगसूत्र में कैवल्य (मोक्ष) को पुरुष-प्रकृति के वियोग होने पर पुरुष का स्वस्वरूप में प्रतिष्ठित होना या निर्विकल्प समाधि की पूर्णावस्था के रूप में परिभाषित करते हुए कैवल्य के जीवन्मुक्ति व विदेहमुक्ति दो प्रकार बताए हैं। कैवल्यपाद में कैवल्य के स्वरूप को विस्तार से प्रतिपादित किया गया है। इसी प्रकार प्रमुख योग उपनिषदों में जीव का परमात्मा में लीन हो जाने को कैवल्य कहा गया है। अमृतनादोपनिषद् में बताया गया है कि योग के निरन्तर अभ्यास से छः महिने में कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है -

"इच्छयाऽऽप्नोति कैवल्यं षष्ठे मासि न संशयः"।

तथा जिस साधक का प्राण षट्चक्र को भेदकर सहस्रार में प्रविष्ट कर जाता है, वहाँ पर वह पुरुषत्व को प्राप्त करके लोकातीत परमपद को प्राप्त हो जाता है। ऐसा

साधक अपने शरीर का कहीं पर भी परित्याग करें उसका पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है -

"यस्येदं मण्डलं भित्वा मारुतो यानि मूर्धनि

यत्र यत्र म्रियते वापि न स भूयोऽभिजायते न स भूयोऽभिजायते॥"⁶⁰

इसी प्रकार योगतत्त्वोपनिषद् में प्राण रोककर जीवन्मुक्त होना बताया है -

"वायुं निरुध्य मेधावी जीवन्मुक्तो भवत्ययम्"।

योगचूडामण्युपनिषद् में विदेहमुक्ति के बारे में कहा गया है कि परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार हो जाने पर योगी सांसारिक कर्मों के बन्धन से छूट जाता है और वह जन्म-मरण के चक्र से छूटकर विदेहमुक्त हो जाता है। साथ ही कुण्डलिनी शक्ति को मुक्तिद्वार की चाबी बताया गया है। जिसके द्वारा योगी मुक्ति का द्वार खोल लेते हैं।

निष्कर्ष -

पातञ्जलयोगसूत्र और प्रमुख योग उपनिषदों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात हुआ कि पातञ्जलयोग सूत्रात्मक शैली में लिखा गया है जबकि प्रमुख योग उपनिषद् पद्य कुछ गद्य शैली में लिखे गए हैं। प्रमुख योग उपनिषद् हठयोगिक क्रियाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें बन्ध, मुद्रा, नाडीशोधन आदि पर विशेष बल दिया गया है। जबकि पातञ्जलयोग चित्त अवस्थाओं या वृत्तियों के संयम पर आधारित एक मानसिक अनुशासन है। यह आसन और प्राणायाम को चिन्तन व ध्यान में सहायक के रूप में स्वीकार करता है। प्रमुख योग उपनिषदों में विभिन्न आसनों की क्रियाविधि का उल्लेख करते हुए उनसे प्राप्त लाभ को भी विस्तार से विवेचित किया गया है। प्राणायाम को मन एकाग्र का सर्वोत्तम साधन माना है तथा इसके निरन्तर अभ्यास से प्राणवायु क्षीण होकर मन के साथ समरस हो जाती है इसे भी समाधि की अवस्था बताया है अतः इन उपनिषदों में प्राणादि वायु, प्राणायाम की मात्रा, स्तर, प्रकार आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। पातञ्जलयोग में चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहा है अतः चित्तवृत्तियों व चित्तभूमियों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। चित्त की एकाग्रता के उपाय भी वर्णित किए गए हैं जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में चित्तवृत्तियों का इस प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता। पातञ्जलयोग में ईश्वर को परिभाषित करते हुए ईश्वर के वाचक प्रणव को समाधि प्राप्ति में सहायक माना है। जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में प्रणव ध्यान या चिन्तन से ब्रह्म तत्त्व की प्राप्ति बताई है। इसी प्रकार पातञ्जलयोग में

धारणा, ध्यान व समाधि को संयम कहा है तथा संयम से प्राप्त विभिन्न सिद्धियों का भी उल्लेख किया गया है। पातञ्जलयोग में समाधि को योग कहा है तथा प्रकृति के विकारों से पुरुष की मुक्ति को कैवल्य (मोक्ष) कहा है जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में जीवात्मा का परमात्मा में लीन होने को कैवल्य या मुक्ति कहा है। पातञ्जलयोग में मुख्य रूप से क्रियायोग व राजयोग का विवेचन किया गया है। जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में ज्ञानयोग, मन्त्रयोग, लययोग तथा हठयोग का भी उल्लेख मिलता है।

पातञ्जलयोग में अष्टांग योग का विस्तृत विवेचन मिलता है जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में अष्टांग योग के अलावा योगचूडामण्युपनिषद् व अमृतनादोपनिषद् में षडंग योग का भी उल्लेख मिलता है। प्रमुख योग उपनिषदों में प्राणायाम से पूर्व नाडीशोधन को आवश्यक माना है अतः नाडीशोधन प्राणायाम विधि का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। साथ ही प्राणवाहिनी नाडियों की संख्या व स्वरूप को बताकर प्राणवायु का स्थान, रंग व कार्य आदि का भी वर्णन किया गया है। पातञ्जलयोग में प्राणवायु, मुद्रा, बन्ध, नाडीचक्र अजपा जप, प्रणव उपासना, कुण्डलिनी जागरण, शरीस्थ मर्म स्थान, पञ्चमहाभूतों में धारणा व कन्द आदि का उल्लेख नहीं मिलता और न ही योगी के आहार व दिनचर्या से सम्बन्धित कोई निर्देश दिया गया है।

5.2 श्रीमद्भगवद्गीता और प्रमुख योग उपनिषद्

सकल भारतीय ज्ञानपद्धति का शीर्षस्थ ग्रन्थ गीता महर्षि वेदव्यास विरचित महाभारत के भीष्मपर्व से उद्धृत है। महाभारत के संग्राम में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा कथित होने के कारण इसके वक्ता स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण तथा श्रोता अर्जुन हैं। गीता के 18 अध्यायों के 700 श्लोकों में सम्पूर्ण वेदों व शास्त्रों का सार निहित है अतः गीता सर्ववेदमयी व सर्वशास्त्रमयी कही जाती है। इसमें मानव जीवन के समस्त आध्यात्मिक व व्यावहारिक पक्षों का समावेश किया गया है। मनुष्य के उद्धार के लिए प्रस्तावित तीन राजमार्गों (प्रस्थान त्रयी) के अन्तर्गत गीता एक विशिष्ट ग्रन्थ है। यह वैदिक ज्ञान का सार तथा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपनिषद् होने के कारण गीतोपनिषद् भी कहा जाता है। गीता न केवल धार्मिक ग्रन्थ है अपितु समस्त मानव जाति के लिए उपादेय भी है। यह समस्त मानव जाति का पथ प्रदर्शन करती है, चाहे वह किसी भी देश, वेश, समुदाय या

वर्ण का व्यक्ति हो इसमें सभी के लिए उपयोगी विषय हैं। जब व्यक्ति हताश, किंकर्तव्यविमूढ तथा समस्याग्रस्त होकर कर्तव्यों से विमुख हो जाता है तो गीता प्रत्येक परिस्थिति में पथ प्रदर्शन कर जीवन के उद्देश्य को पूर्ण करती है।

ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल तथा कर्म आदि मूलभूत विषयों की व्याख्या कर मानव जीवन के प्रत्येक अंग को गीता में वर्णित किया गया है। सभी विषयों के साथ गीता में योग को विशेष स्थान दिया गया है। गीता का मुख्य उपदेश योग विद्या है अतः यह योगशास्त्र है। यह इस बात से सिद्ध होता है कि गीता के प्रत्येक अध्याय के नाम के साथ योग शब्द जोड़ा गया है तथा गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में यह लिखा गया है कि - "ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जनुसंवादे ज्ञानकर्मसंन्यासादि योगो नाम अमुकोऽध्यायः"

भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय के प्रारम्भिक तीन श्लोकों के अनुसार गीता योग का आदिग्रन्थ है तथा भगवान् श्रीकृष्ण योगेश्वर है।

"इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।

विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।

स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।

भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥"⁶¹

यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण योगपरम्परा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सृष्टि के आदि में मैंने गीतोपदेश सूर्यदेव को दिया, सूर्य ने अपने पुत्र मनु को दिया तथा मनु ने इसे इक्ष्वाकु को दिया इस प्रकार गुरुशिष्य परम्परा से योगशास्त्र (गीता) को राजर्षियों ने जाना। कालान्तर में यह परम्परा छिन्न-भिन्न हो गई, फलस्वरूप इस पुरातन व परमगुह्य विद्या को फिर से बताना पड़ रहा है। इस प्रकार गीतारूपी योगशास्त्र की प्राचीनता का इतिहास ज्ञात होता है।

गीता के प्रत्येक अध्याय को योग की संज्ञा दी गई है। गीता के क्रमवार अध्याय व उनके नाम इस प्रकार हैं - (i) अर्जुनविषादयोग (ii) सांख्ययोग (iii) कर्मयोग (iv) ब्रह्मयोग या ज्ञानकर्मसंन्यासयोग (v) कर्मसंन्यासयोग (vi) आत्मसंयमयोग (vii) ज्ञानविज्ञानयोग (viii) अक्षरब्रह्मयोग (ix) राजविद्याराजगुह्ययोग (x) विभूतियोग (xi)

विश्वरूपदर्शनयोग (xii) भक्तियोग (xiii) क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग (xiv) गुणत्रयविभागयोग (xv) पुरुषोत्तमयोग (xvi) दैवासुरसंपदविभागयोग (xvii) श्रद्धात्रयविभागयोग (xviii) मोक्षसंन्यासयोग

इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता एक योग शास्त्र ही है। इसके सभी अध्यायों में योग का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसमें विभिन्न योग मार्गों का वर्णन किया गया है। प्रत्येक मनुष्य कोई भी एक मार्ग अपनाकर परम लक्ष्य तक पहुँच सकता है।

गीता में योग का व्यापक वर्णन किया गया है परन्तु शोध की दृष्टि से प्रस्तुत अध्याय में गीता के प्रमुख योग तत्त्वों का ही प्रमुख योग उपनिषदों से तुलनात्मक अध्ययन किया जा रहा है -

योग की परिभाषा -

भगवद्गीता में योग को समता की स्थिति, कर्मों की कुशलता तथा दुःखरूप संयोग से वियोग के रूप में परिभाषित किया गया है।

"योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥"⁶²

योग में स्थित होकर आसक्ति का त्याग करके सिद्धि-असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर कर्तव्य कर्मों को करना, इसी समता को योग कहा गया है अर्थात् बुद्धि का सम भाव ही योग बताया गया है।

"बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥"⁶³

जो पुरुष समबुद्धि से युक्त होकर सुकृत (पुण्य) और दुष्कृत (पाप) दोनों प्रकार के कर्मों में आसक्ति का त्याग करता है, वह उनसे मुक्त हो जाता है। यह समत्व रूप योग ही कर्मों में कुशलता है और ये कुशल कर्म ही योग है। कर्मों में कुशलता का तात्पर्य है कर्म बन्धन का कारण न बने इस प्रकार से कर्मों को करना चाहिए। कर्मों में कुशलता ही कर्म बन्धनों से छूटने का उपाय है।

"तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ॥"⁶⁴

जिस विद्या से समस्त दुःखों से पूर्णतया छुटकारा मिल जाए, उसे ही प्राप्त करना योग कहा गया है अर्थात् भौतिक संसर्ग से उत्पन्न दुःखों का उन्मूलन योग है।

इस प्रकार गीता के अनुसार कर्तव्यकर्मों को करना, समत्व भाव से कुशलता पूर्वक कर्म करना तथा दुःख के संयोग से वियोग होना योग है। चित्त की निरुद्ध अवस्था को समाधि या योग कहा गया है।

"यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।

यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥"

जिस अवस्था में संयमित मन योगाभ्यास के द्वारा उपराम (विरक्त) हो जाता है वह सिद्धि या समाधि की अवस्था है। इस अवस्था में साधक परमात्मा का ध्यान करके शुद्ध की गई सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा परमात्मा को साक्षात् करके सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही सन्तुष्ट रहता है अर्थात् परमात्मा की दिव्य अनुभूति करता है और वह भौतिक संसर्ग से उत्पन्न दुःखों से मुक्त हो जाता है।

जो व्यक्ति चित्त, इन्द्रियों तथा बुद्धि को वश में करके निरन्तर आत्मध्यान करता है, वह परम शान्ति मोक्ष को प्राप्त करता है -

"युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।

शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥"⁶⁵

इस प्रकार गीता में इन्द्रियनिग्रह पर बल दिया गया है ताकि मन और बुद्धि को स्थिर व एकाग्र किया जा सके। इस हेतु चित्त और इन्द्रियों को नियन्त्रित करने के अभ्यास और वैराग्य, इन्द्रियों को विषय से हटाना, ध्यान में मन को लगाना, ईश्वरार्पण बुद्धि आदि अनेक उपायों की चर्चा की गई है।

जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में चित्त और प्राण को वश में करने के अभ्यास पर बल दिया गया है। योकुण्डल्युपनिषद् में चित्त की चञ्चलता का कारण प्राण और वासना को माना है - 'हेतुद्वयं हि चित्तस्य वासना च समीरणः।'⁶⁶

साथ ही मन को ध्यान से तथा प्राणगति को प्राणायाम से नियन्त्रित करने की बात कही गई है-

"प्राणापानवशो जीवो ह्यधश्चोर्ध्वं च गच्छति ।

अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानं च कर्षति ॥

ऊर्ध्वाधः संस्थितावेतौ यो जानाति स योगवित् ।"

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में कहा गया है कि योगी को उचित योगाभ्यास द्वारा अपने मन और प्राणों पर नियन्त्रण करना चाहिए -

"तस्मादभ्यासयोगेन मनः प्राणान्निरोधयेत्"⁶⁷

इसी कारण प्रमुख योग उपनिषदों में ध्यान तथा प्राणायाम की विधि, प्रकार आदि का विशद वर्णन मिलता है।

प्रमुख योग उपनिषदों में जीवात्मा व परमात्मा के ऐक्यभाव को समाधि कहा गया है। गीता में अष्टांग या षडंग योगांग का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं मिलता जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में अष्टांग व षडंग योगांगों का विस्तृत विवेचन किया गया है। गीता में चित्त व इन्द्रियों के नियन्त्रण की विस्तृत चर्चा की गई है जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में चित्त की एकाग्रता के साथ-साथ शरीर की शुद्धि के आसन, बन्ध, मुद्रा आदि उपायों का भी उल्लेख किया गया है। प्रमुख योग उपनिषदों में योगाभ्यास से होने वाली विभिन्न सिद्धियों का विस्तृत वर्णन किया गया है जबकि गीता में योगाभ्यास से प्राप्त होने वाली अष्टसिद्धियों का उल्लेख नहीं मिलता । गीता और प्रमुख योग उपनिषदों के अनुसार दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्तिपूर्वक परमात्मा का साक्षात्कार करना ही योग का लक्ष्य है।

योग के प्रकार -

गीता के अनुसार लोक में दो प्रकार की निष्ठाएँ (साधन की परिपक्व अवस्था) हैं। एक सांख्य निष्ठा है जो ज्ञानयोग का मार्ग है तथा दूसरी योग निष्ठा है जो कर्मयोग से होती है -

"लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठापुत्रा प्रोक्ता मयानघ ।

ज्ञानयोगेन सांख्यानं कर्मयोगेन योगिनाम् ॥"⁶⁸

गीता में ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग आदि योग की विभिन्न पद्धतियों का वर्णन किया गया है जिनका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है -

(i) ज्ञानयोग -

मानव अज्ञानतावश बन्धन में पड़ा रहता है और इस अज्ञानता का नाश ज्ञान से होता है। गीता में ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल तथा कर्म इन पाँच मूल सत्त्यों के ज्ञान को आवश्यक बताया है ताकि इनका वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर परमपद मोक्ष को प्राप्त हो सकें। ज्ञानयोग के माध्यम से गीता यह उपदेश देती है कि यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् ईश्वर से उत्पन्न होता है और अन्त में ईश्वर में ही लीन हो जाता है अर्थात् यह

समझना चाहिए कि सम्पूर्ण भौतिक जगत् प्रकृति से उत्पन्न है और सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति और विनाश का मूल कारण ईश्वर ही हैं -

"एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥"⁶⁹

अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि ज्ञानयोग का विषय क्या होना चाहिए ? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि वह सम्पूर्ण ज्ञान जिसके द्वारा जीव परमपद को प्राप्त कर सके अतः मनुष्य को आत्मा, प्रकृति और ईश्वर को जानना आवश्यक है, जिसे जानकर मनुष्य स्वलक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। गीता के सप्तम अध्याय में दो प्रकार की प्रकृति परा और अपरा का वर्णन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, मन, बुद्धि और अहंकार इन आठ प्रकारों में विभक्त मेरी प्रकृति अपरा (जड़) प्रकृति है और दूसरी परा प्रकृति, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है, वह मेरी चैतन्य स्वरूपा परा प्रकृति है।

गीता के द्वितीय अध्याय में आत्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि आत्मा सर्वव्यापी, अजन्मा, नित्य, सनातन, अच्छेद्य, अक्लेद्य, अदाह्य, अशोष्य है-

"न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ "⁷⁰

"अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥"⁷¹

आत्मतत्त्व व पूर्णसत्य का ज्ञान होना ही सांख्ययोग या ज्ञानयोग है। इसमें साधक मन, इन्द्रियों और शरीर द्वारा होने वाली सम्पूर्ण क्रियाओं में कर्तापन के अभिमान से रहित होकर परमात्मा में एकीभाव से स्थित हो जाता है। जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्य का ज्ञान ही मोक्ष है। ज्ञानयोग विवेक ज्ञान की प्राप्ति है, जिससे नित्य-अनित्य पदार्थों का ज्ञान होता है । इस प्रकार ज्ञानयोग अपने अन्तर्ज्ञान व विशिष्टता के प्रति सजग होने की योग्यता है। गीता में ईश्वर क्या है? जीवात्मा का स्वरूप क्या है? प्रकृति क्या है? दृश्य जगत् क्या है? यह काल किस प्रकार नियन्त्रित होता है? तथा जीवात्मा के कर्म क्या हैं? इन सब का ज्ञान कराया गया है।

परमात्मा सबसे श्रेष्ठ है, परम चेतना स्वरूप है, नियन्ता है। जीव भी चेतन है स्वशरीर के प्रति जीव भी ईश्वर का अंश है। जीव व भौतिक प्रकृति दोनों को प्रकृति कहा

गया है। ये दोनों परमेश्वर की शक्ति है। जीव परा प्रकृति अर्थात् उत्कृष्ट प्रकृति है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। गुणों के ऊपर नित्य काल है तथा इन गुणों और नित्यकाल के संयोग से अनेक कर्म होते हैं और ये कर्म अनादि काल से चले आ रहे हैं परन्तु कर्म शाश्वत नहीं हैं।

शरीर से आत्मा की विलक्षणता (आत्मा नित्य, अविनाशी, अपरिणामी, मर्त्यधर्मरहित आदि) का ज्ञान होना ही ज्ञान योग है। जब साधक आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है तब वह ज्ञान योगी कहा जाता है। आत्मनिष्ठयोगी ही ज्ञानयोगी है जिसकी सांसारिक विषयभोगों की इच्छा नष्ट हो चुकी है। गीता में ज्ञानयोग को ज्ञाननिष्ठा, अकर्म, संन्यास, सांख्ययोग कर्मसंन्यास आदि नामों से अभिहित किया गया है।

कर्मलिप्तता से पृथक् मन व इन्द्रियों के निग्रहपूर्वक आत्मा की प्रकृति से विलक्षणता व आत्मतत्त्व को चेतन निर्विकार मानकर निरन्तर चिन्तन मनन करना ज्ञान योग है। ज्ञानयोग से व्यक्ति कर्तापन या ममता का त्याग कर कर्म बन्धनों या सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है। गीता के चतुर्थ अध्याय में ज्ञान की महत्ता प्रतिपादित की गई है -

"सर्व ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥"⁷²

"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥"⁷³

"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ॥"⁷⁴

"ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥"⁷⁵

(ii) कर्मयोग -

कर्म बन्धन के कारण ही मनुष्य जन्म-मरण के चक्र में फँसकर नाना योनियों में जन्म लेता है। सकाम कर्म बन्धन का कारण है जबकि निष्काम कर्म बन्धन का उच्छेदक है। निष्काम कर्म में कर्तापन तथा आसक्ति का सर्वथा अभाव रहता है।

गीता के अनुसार शास्त्रोक्त विधि से कर्म यदि फल की आसक्ति त्याग कर निष्काम भाव से किए जाते हैं तो वे कर्म भी मुक्ति दायक होते हैं और ये कर्म ही कर्मयोग के अन्तर्गत वर्णित हैं।

बाल गंगाधर तिलक महोदय के अनुसार गीता कर्मयोग (प्रवृत्ति मार्ग) प्रधान ग्रन्थ है। यदि कर्मों को श्रेष्ठ कर्म बनाकर कुशलतापूर्वक किया जाए तो बन्धन से मुक्त हो सकते हैं। गीता में भी कहा गया है कि ज्ञान योगियों के लिए भी कर्म लोकसंग्रहार्थ

आवश्यक है। ज्ञानयोगियों के लिए आत्मा के अकर्तापन का बोध करते हुए कर्मयोग का साधन श्रेयस्कर बताया है। निष्काम भाव से कर्म करते रहने पर ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। गीता में कर्म की अनिवार्यता बताते हुए कहा गया है कि -

"न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥"⁷⁶

अर्थात् कोई भी मनुष्य एक क्षणभर के लिए भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता क्योंकि प्रत्येक मनुष्य को प्रकृतिजनित गुणों के अनुसार विवश होकर कर्म करना ही पड़ता है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य कर्म करने के लिए बाध्य है अतः गीता में श्रेष्ठ व कर्तव्य कर्म करने का उपदेश दिया है -

"यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।

कर्मैन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥"⁷⁷

जो व्यक्ति मन द्वारा कर्मेन्द्रियों को वश में करके अनासक्त भाव से कर्मयोग का आचरण करता है तो वही अति उत्कृष्ट है -

"नियतं कुरु कर्म त्वं ज्यायो ह्यकर्मणः॥"⁷⁸

गीता शास्त्रविहित कर्तव्य कर्म का उपदेश देती है क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना ही श्रेष्ठ है अतः आसक्ति रहित होकर सदा कर्तव्यकर्म करते रहना चाहिए। आसक्तिरहित होकर कर्म करता हुआ व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त हो जाता है -

"तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥"⁷⁹

इस प्रकार आसक्ति रहित कर्म ही मुक्ति का उपाय है अतः अपनी इन्द्रियों को वश में करते हुए कर्म करने पर उस कर्म से अहन्ता तथा ममता का सम्बन्ध छूट जाता है और ऐसा कर्म ही कर्मयोग है। गीता के कर्मयोग के अनुसार शास्त्रविहित कर्तव्य कर्म, नियत कर्म, यजीय कर्म, परमात्मा को अर्पित कर्म तथा आत्मा में रमण करने वाले पुरुष के कर्म अनासक्त भाव से करने वाला मनुष्य कर्म बन्धनों से मुक्त होकर परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। निष्काम कर्म ही बन्धन का बाधक तथा मोक्ष का साधक है अतः कर्मों को ईश्वरार्पण करके आसक्ति का त्याग तथा ज्ञानयोग द्वारा कर्तापन या ममत्व का त्याग करने का निर्देश दिया है। समत्व बुद्धि से कर्म करने का नाम कर्मयोग है, इसी को गीता में निष्काम कर्मयोग, तदर्थकर्म, मदर्थकर्म, मत्कर्म आदि नामों से कहा गया है।

(iii) भक्तियोग -

गीता में योग की दो ज्ञानयोग और कर्मयोग निष्ठाओं का मुख्य रूप से वर्णन किया गया है साथ ही इन दो निष्ठाओं के लिए भक्तियोग को भी आवश्यक माना है। गीता के बाहरवें अध्याय में भक्ति के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए भक्तियोग को श्रेष्ठ बताया गया है। यह सर्वाधिक प्रत्यक्ष और ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करने का सबसे सुगम साधन है साथ ही बताया गया है कि भक्ति के बिना निष्काम कर्म नहीं हो सकता और परमेश्वर के प्रति समर्पित हुए बिना ज्ञानयोग भी अपूर्ण ही रहता है। साधक जब अपना सर्वस्व भगवान् को अर्पित कर देता है तो उसकी सांसारिक पदार्थों के प्रति अनासक्ति हो जाती है इस प्रकार जब वह अपने सभी संदेहों को त्याग कर अपने मन को केवल भगवान् की प्रेममयी भक्ति में स्थिर कर बुद्धि को भी भगवान् के प्रति समर्पित कर देता है तो वह जीवन-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है यही भक्तियोग है।

गीता में भक्ति के सगुण और निर्गुण दो प्रकार बताए हैं। इसमें निर्गुण भक्ति को सगुण की तुलना में कठिन बताया है क्योंकि इसमें साधक को अपने मन, इन्द्रियों व बुद्धि को वश में करके मन-बुद्धि से परे, सर्वव्यापी, अकथनीयस्वरूप, नित्य, अचल, निराकार, सचिदानन्दघन परमात्मा में एकीभाव से ध्यान करना होता है, जबकि सगुण भक्ति में परमात्मा के स्वरूप में अपने आप को निमग्न करके रखना होता है अतः सगुण भक्ति या उपासना को सरल व सुगम बताया गया है। गीता में सगुण भक्ति करने वाले योगियों की श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि -

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मा।

श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥⁸⁰

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥⁸¹

अर्थात् जो मन को एकाग्र करके अत्यन्त श्रद्धा और निष्ठापूर्वक सगुण रूप परमेश्वर को अन्तरात्मा से निरन्तर भजते हैं वे योगियों में अति उत्तम योगी हैं।

स्वामी प्रभुपाद के अनुसार गीता में योग का वास्तविक अर्थ भक्तियोग है। अन्य सारे योग तो भक्तियोग में भक्ति तक पहुँचने के साधन मात्र हैं। भक्ति योग समस्त योगों की परिणति है। यथार्थ में भक्तियोग ही गीता का चरम लक्ष्य है। यह योग की सर्वोच्च अवस्था है तथा भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति समर्पित होना ही कृष्णभावनाभावित

होना है। गीता के अनुसार भक्ति योग समस्त विद्याओं व समस्त गुह्य ज्ञान का राजा है। यह आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति कराने वाला है, धर्म का शुद्धतम रूप है तथा इसे बिना किसी कठिनाई के सुखपूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है -

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।

प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥⁸²

भक्त के अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी ये चार प्रकार बताकर ज्ञानी भक्त को सर्वश्रेष्ठ बताया है ।

"तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥"⁸³

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि इन चार प्रकार के भक्तजनों में जो ज्ञानी भक्त मेरे साथ निरन्तर एकाकार रहता है और जिसकी अनन्य प्रीति और भक्ति है, वह श्रेष्ठ है, क्योंकि जो ज्ञानी मुझे तत्त्वतः जानता है, उसे मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी पुरुष भी मुझे अत्यन्त प्रिय है । साथ ही वह मद्गत मन-बुद्धिवाला ज्ञानी भक्त तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है।

भक्ति योग के साध्य रूप श्रीकृष्ण की प्राप्ति हेतु अव्यभिचारी भक्तियोग के अभ्यास को साधन बताया है तथा त्रिगुणों के अनुरूप सात्त्विक, तामसिक तथा राजसिक त्रिविध श्रद्धा बताई गई है। साथ ही परमेश्वर की विभूतियाँ, उपासना विधि, भक्त का स्वरूप, भक्ति का स्वरूप व फल, प्रिय भक्त के गुण आदि का भक्तियोग के अन्तर्गत विस्तृत वर्णन किया गया है।

(iv) ध्यान योग -

गीता के अध्याय छः में ध्यान का स्वरूप, ध्यान हेतु उचित आसन व स्थान, शारीरिक व मानसिक स्थिति तथा ध्यानयोग के फल का वर्णन किया गया है। ध्यान चित्त की चंचलता को दूर करता है इस प्रकार ध्यान आत्म संयम का उत्तम मार्ग है। ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग को सिद्ध करने हेतु ध्यानयोग को साधन के रूप में स्वीकार किया गया है।

जब साधक मन और इन्द्रियों को नियन्त्रित कर परमात्मा का ध्यान करता है तो चित्त की स्थिति अचल हो जाती है और वह परमशान्ति को प्राप्त कर लेता है। ध्यान योग्य उचित स्थान व आसन का वर्णन करते हुए कहा गया है कि -

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितिः।

एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥⁸⁴

मन, इन्द्रियों तथा शरीर को वश में रखने वाला, कामना रहित तथा संग्रहरहित (अपरिग्रही) बनकर योगी अकेला ही एकान्त स्थान में स्थित होकर आत्मा को निरन्तर परमात्मा में लगावे तथा पवित्र स्थान में सबसे नीचे वस्त्र, उसके ऊपर मृगचर्म और कुशा बिछाकर जो न बहुत ऊँचा और न अधिक नीचा हो ऐसे आसन पर स्थिर आसन जमाना चाहिए। इस प्रकार बताया गया है कि ध्यान हेतु शुद्ध भूमि का चयन करना चाहिए तथा समतल भूमि पर कुश, मृगछाल व वस्त्र बिछाकर बैठना चाहिए।

ध्यान करते समय शरीर की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया है -

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।

संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥⁸⁵

शरीर, सिर और गर्दन को एक सीध में रखते हुए अचल धारणा करके और स्थिर होकर चारों ओर न देखते हुए नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि जमाकर ध्यान योग करें।

मानसिक स्थिति का भी वर्णन किया गया है -

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।

उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये॥⁸⁶

आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में करते हुए मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए ध्यान योग का अभ्यास करें।

ध्यान योगी के चित्त की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि अत्यन्त वश में किया हुआ चित्त जिस काल में परमात्मा में स्थित हो जाता है, उस काल में सम्पूर्ण भोगों से स्पृहारहित पुरुष योगयुक्त कहा जाता है। उस योगयुक्त पुरुष की सभी कामनाएँ शान्त हो जाती हैं और वह समता से युक्त चित्त वाला हो जाता है जैसे -

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।

योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥⁸⁷

अर्थात् जिस प्रकार वायुरहित स्थान में स्थित दीपक चलायमान नहीं होता, उसी तरह समता से युक्त चित्त वाला योगी आत्मतत्त्व (परमात्मा) के ध्यान में सदैव स्थिर रहता है।

इस प्रकार चित्त को वश में किया हुआ योगी परमानन्द की पराकाष्ठा रूप शान्ति को प्राप्त करता है। परमात्मा को साक्षात् करता हुआ परमात्मा में ही सन्तुष्ट रहता है और न ही बड़े भारी दुःख से विचलित होता है।

गीता ने किसी एक योग मार्ग का विधान नहीं किया बल्कि प्रत्येक मनुष्य की रुचि, प्रवृत्ति, योग्यता या आवश्यकता के अनुसार अनेक विकल्प प्रस्तुत किए हैं। व्यक्ति आत्म कल्याण हेतु कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग आदि में किसी भी एक मार्ग का चयन कर निःश्रेयस प्राप्त कर सकता है या जो कुछ न कर सके तो स्वधर्म पालन करते हुए भी भगवत् प्राप्तिरूप परम सिद्धि को प्राप्त कर सकता है - **"स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः"**।

मुख्य रूप से गीता में ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग का विस्तृत विवेचन किया गया है अतः गीता को योग की त्रिवेणी कहा गया है जिसमें ज्ञान, कर्म तथा भक्ति का समन्वय है। गीता में इन योगों को मोक्ष का मार्ग बताया है। इन योगों की सिद्धि हेतु ध्यान योग को भी साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। अज्ञान रहित होकर आत्मतत्त्व या ब्रह्म तत्त्व को जानना ज्ञानयोग है, फलासक्ति रहित होकर निष्काम भाव से निष्ठा और समर्पण के साथ कर्म करना कर्मयोग है, पूर्ण समर्पण के साथ भगवान के प्रति प्रेम व श्रद्धा व्यक्त करना भक्तियोग है तथा मन को नियन्त्रित कर भगवान की उपासना में एकाग्र करना ध्यान योग है।

प्रमुख योग उपनिषदों में ज्ञानयोग, कर्मयोग, मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग ये योग के प्रकार बताए हैं । त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में योग के कर्मयोग और ज्ञानयोग ये दो प्रकार वर्णित हैं। इसमें गीता के समान ही ईश्वर का चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से कर्म करना कर्मयोग बताया है -

"अव्याकुलस्य चित्तस्य बन्धनं विषये क्वचित् ।

कर्म कर्तव्यमित्येव विहितेष्वेव कर्मसु ॥

बन्धनं मनसो नित्यं कर्मयोगः स उच्यते ।"⁸⁸

जिसका चित्त व्याकुलता रहित है, वह विषय योगों के बन्धन में नहीं पड़ता अतः ऐसे व्यक्ति को किसी लक्ष्य पर शान्त मन को लगाना चाहिए और दो प्रकार के कर्म करने चाहिए - मन से ईश्वर की उपासना तथा शास्त्र द्वारा बताए गए कर्तव्य कर्मों को निष्काम भाव से करना अर्थात् निष्काम भाव से कर्तव्य कर्म करते हुए मन को ईश्वर के चिन्तन में लगाना कर्मयोग कहा है तथा एकाग्र मन से श्रेय के मार्ग पर चलना ज्ञानयोग कहा है -

"यतचित्तस्य सततमर्थे श्रेयसि बन्धनम् ॥

ज्ञानयोगः स विज्ञेयः सर्वसिद्धिकरः शिवः ॥"⁸⁹

ज्ञानयोग को कल्याणकारी व सभी प्रकार की सफलताएँ प्रदान करने वाला बताया गया है। ज्ञानयोग में चित्त को आत्मिक उत्थान हेतु नियुक्त किया जाता है ।

योगतत्त्वोपनिषद् में ज्ञान का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि -

"अज्ञानादेव संसारो ज्ञानादेव विमुच्यते ।

ज्ञानस्वरूपमेवादौ ज्ञानं ज्ञेयैकसाधनम् ॥

ज्ञातं येन निजं रूपं कैवल्यं परमं पदम् ।

निष्कलं निर्मलं साक्षात् सच्चिदानन्दरूपकम् ॥"⁹⁰

अर्थात् यह संसार अज्ञान के कारण ही बन्धन स्वरूप है और ज्ञान के द्वारा ही इस संसार से मुक्ति हो सकती है। ज्ञान ही आदि में है और ज्ञान से ही ज्ञेय की प्राप्ति होती है। जिसके द्वारा स्वस्वरूप का ज्ञान हो तथा कैवल्यपद, परमपद, निष्कल, सच्चिदानन्दस्वरूप, उत्पत्ति, स्थिति, संहार व स्फुरण को जाना जाता है, वही वास्तविक ज्ञान है। ज्ञान का ऐसा ही स्वरूप गीता में भी वर्णित किया गया है।

योगतत्त्वोपनिषद् में योग की आरम्भ, घट, परिचय तथा निष्पत्ति इन चार अवस्थाओं के आधार पर योग के मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग ये चार प्रकार बताए हैं। इनमें से लययोग गीता के ध्यान योग के समान ही है। जिसमें सदा निष्कल ईश्वर का ध्यान करना बताया है। योग के अन्य प्रकारों का उल्लेख गीता में नहीं मिलता। इन उपनिषदों में हठयोग का विस्तृत विवेचन मिलता है। जिसके अन्तर्गत नाडी, मुद्रा, बन्ध, कुण्डलिनी आदि यौगिक क्रियाओं का वर्णन किया गया है। योगचूडामण्युपनिषद् में षडंग तथा योगतत्त्वोपनिषद् व त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में अष्टांग योग का उल्लेख किया गया है। प्रमुख योग उपनिषदों में सगुण व निर्गुण ब्रह्म ध्यान के

अतिरिक्त शरीरस्थ पञ्चमहाभूत, षट्चक्र, प्रणव, प्राण, आत्मा तथा शरीरस्थ पृथिवी आदि अंश पर अनिरुद्ध रूप नारायण, वासुदेव व ब्रह्म आदि के ध्यान का भी उल्लेख किया गया है। अमृतनादोपनिषद् में बताया गया है कि ध्यान से चित्त एकाग्रभूमिक हो जाता है तथा बुद्धि ईश्वराभिमुखी हो जाती है।

योगतत्त्वोपनिषद् के अनुसार सगुण ध्यान से अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति होती है तथा निर्गुण ध्यान से समाधि की सिद्धि होती है। इसी प्रकार त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में कहा गया है कि सगुण ब्रह्म का ध्यान करने से सम्पूर्ण मनोवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं -

"नानावर्णधरं देवं शान्तम् उग्रम् उदायुधम् ।

अनेकनयनाकीर्णं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥

ध्यायतो योगिनः सर्वमनोवृत्तिर्विनश्यति ॥"⁹¹

तथा निर्गुण ब्रह्म ध्यान से शीघ्र ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है -

"अनन्तम् आनन्दमयं चिन्मयं भास्करं विभुम् ।

निवातदीपसदृशम् अकृत्रिममणिप्रभम् ।

ध्यायतो योगिनस्तस्य मुक्तिः करतले स्थिता ॥"⁹²

साथ ही गीता के समान वासुदेव रूप परमात्मा के ध्यान का वर्णन करते हुए कहा गया है कि अपनी सभी इन्द्रियों को वश में करके सात्त्विक और पवित्र बुद्धि से परमश्रेष्ठ वासुदेव रूप परमात्मा का ध्यान करना चाहिए। परमात्मस्वरूप का ध्यान मोक्ष प्रदान करता है। जाग्रत वृत्ति से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक ध्यानस्थ और तुरीयावस्था को प्राप्त साधक की आत्मा तुरीयातीत अवस्था में विष्णुपद प्राप्त कर लेती है। गीता में सगुण उपासना या भक्ति को श्रेष्ठ बताकर इसे ही परमपद प्राप्ति का सरल व सुगम उपाय बताया गया है जबकि इन योग उपनिषदों में निर्गुण ब्रह्म की उपासना या ध्यान पर विशेष बल दिया गया है - "अमात्रं तु विचिन्तयेत्", "पश्यन् हृदयपंकजे"। गीता के समान ही प्रमुख योग उपनिषदों में भी ध्यान हेतु उपयुक्त आसन व स्थान तथा ध्यान की शारीरिक व मानसिक स्थिति का वर्णन किया गया है।

आहार-विहार विचार -

योगी को योगाभ्यास में पूर्णता प्राप्त करने के लिए आदर्श व युक्त आहार-विहार करना चाहिए। आहार-विहार में नियमित नही रहने पर योगी को भौतिक दुःख पीडित करने लगते हैं, जिससे योगाभ्यास बाधित हो जाता है। गीता में प्रकृति के तीन गुणों के

आधार पर आहार के तीन प्रकार बताए हैं - सात्त्विक आहार, राजसिक आहार और तामसिक आहार।

सात्त्विक आहार आयु, बुद्धि और बल में वृद्धि करने वाला तथा सुख प्रदान करने वाला बताया गया है। राजसिक आहार रोगों को उत्पन्न करने वाला और मन को चंचल बनाने वाला होता है तथा तामसिक आहार से शरीर और मन आलस्य व प्रमाद से ग्रसित हो जाते हैं अतः योगी को योगाभ्यास के अनुकूल और स्वास्थ्यवर्धक सात्त्विक आहार ग्रहण करने का निर्देश दिया गया है।

यथा योग्य आहार-विहार करने से योगी भौतिक दुःखों से मुक्त होकर योगाभ्यास में शीघ्र ही सफल हो जाता है। गीता में युक्त आहार-विहार की महत्ता को बताते हुए कहा गया है कि -

"नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।

न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥"⁹³

अर्थात् जो अधिक खाता है या बहुत कम खाता है, जो अधिक सोता है अथवा जो पर्याप्त नींद नहीं लेता उसका योग सिद्ध नहीं होता तथा जो आहार-विहार जागने-सोने तथा काम करने की आदतों में नियमित रहता है, वह योगाभ्यास द्वारा समस्त भौतिक क्लेशों को नष्ट कर देता है अर्थात् उसका योग सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार गीता में सात्त्विक आहार को उपयुक्त बताकर इसे शरीर तथा मन को शुद्ध व सशक्त करने वाला बताया गया है तथा इसे ध्यान व साधना में सहायक बताया है। आहार के साथ-साथ संतुलित दिनचर्या के बारे में भी बताया गया है कि सही समय पर सोना, उठना, काम करना, भोजन करना आदि के संयम और नियमितता से मानसिक शान्ति मिलती है। गीता के अनुसार आहार-विहार इस प्रकार का हो, जो शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ बनाए रखे ताकि परमात्मा की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर हो सकें तथा आत्मा-परमात्मा के बीच सम्बन्ध को अधिक प्रगाढ़ कर सकें। प्रमुख योग उपनिषदों में भी आहार-विहार, पथ्य-अपथ्य के विषय में बताया गया है। योगतत्त्वोपनिषद् में कहा गया है कि नमक, सरसों, खट्टा, गर्म, रुखा, तीखा, हींग आदि मसालों वाला तामसिक व राजसिक भोजन योगी को नहीं करना चाहिए साथ ही

अग्निसेवन, स्त्रीसंग, लम्बी यात्रा, उपवास, शरीर को कष्ट देने वाले कार्य आदि का त्याग कर देना चाहिए -

"योगविघ्नकराहारं वर्जयेत् योगवित्तमः ।

लवणं सर्षपं चाम्लमुष्णं रुक्षं च तीक्ष्णम् ॥

शाकजातं रामठादि वह्नि स्त्री पथसेवनम् ।"⁹⁴

योगाभ्यास हेतु दूध-घी वाला भोजन उपयुक्त माना है तथा गेहूँ, मूँग, चावल आदि का सात्त्विक भोजन ही योग में वृद्धि प्रदान करने वाला बताया गया है -

"अभ्यासकाले प्रथमं शस्तं क्षीराज्यभोजनम् ॥

गोधूम मुद्ग शाल्यन्नं योगवृद्धिकरं विदुः।"⁹⁵

योगकुण्डल्युपनिषद् में प्राणसिद्धि के उपायों में मिताहार को प्रथम उपाय बताया गया है योगी को घी-दूध युक्त मधुर सात्त्विक आहार ग्रहण करना चाहिए तथा पेट का चौथा भाग खाली रखना चाहिए। साथ ही बताया गया है कि ईश्वर और परमात्मा की प्रसन्नता के लिए आहार ग्रहण करना चाहिए, न कि स्वाद के लिए -

"सुस्निग्धमधुराहारश्चतुर्थांशवशेषकः ॥

भुज्यते शिव सम्प्रीत्यै मिताहारः स उच्यते ।"⁹⁶

प्रमुख योग उपनिषदों में निषिद्ध दिनचर्या को योगाभ्यास में विघ्न बताकर इनको त्यागने का निर्देश दिया है जैसे - आलस्य, आत्मप्रशंसा, धूर्तसंग, स्त्रीगमन, विषय भोगादि की इच्छा, दिन में सोना, रात्रि जागरण, दूर तक चलना, भोजन न करना या अतिभोजन आदि योगाभ्यास के विघ्न हैं अतः साधक को अपनी दिनचर्या व आहार से इनका त्याग कर देना चाहिए।

निष्कर्ष -

श्रीमद्भगवद्गीता में अध्यात्मवाद के व्यावहारिक रूप को प्रस्तुत किया गया है। इसमें परमार्थ और व्यवहार, त्याग और भोग, निवृत्ति और प्रवृत्ति का समन्वय है, साथ ही दर्शन, धर्म और नीति का अद्भुत सामंजस्य देखने को मिलता है। गीता में समस्त वैदिक साहित्य के सार को सरल, सरस तथा सहज रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें किसी मत का आग्रह नहीं है, प्रत्युत केवल मानव मात्र के कल्याण का आग्रह किया गया है। गीता के उपदेश सार्वभौमिक व सार्वदेशिक हैं। जिन्हें अपनाकर व्यक्ति स्वार्थ एवं संकीर्णता की तुच्छभावनाओं से ऊपर उठकर कल्याण के मार्ग पर अग्रसर होता है। यह

अस्थिर मनोदशा से युक्त व्यक्ति के लिए एक पथ प्रदर्शक है। गीता का मुख्य ध्येय व्यक्ति की चेतना को एक उच्च धरातल पर ले जाना है। जहाँ उसकी बुद्धि स्थिर हो जाए वैयक्तिक कामना न रहे तथा सुख-दुःख भी उद्वेलित न कर सकें। गीता कर्म कुशलता सिखाती है कि बिना कर्म बन्धन में बन्धे कर्म करते रहें और उसका फल भी बाधित न कर सकें।

गीता ने हमें अनासक्त भाव से श्रद्धापूर्वक निष्काम कर्म का उपदेश दिया है जो कर्मयोग है। ईश्वर के प्रति समर्पण भाव ही भक्तियोग है जो ईश्वर की भक्ति व प्रेम के लिए प्रेरित करता है। आत्म व अनात्म पदार्थों के बीच भेद को जानना ज्ञानयोग है, जो आत्मज्ञान व सत्य की खोज पर जोर देता है। गीता में योग शब्द समत्व भाव (समत्वं योग उच्यते), चित्त की स्थिरता या समाधि (यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योग सेवया) तथा सामर्थ्य (पश्य मे योगमैश्वर्यम्) अर्थों में प्रयुक्त किया गया है।

गीता के अनुसार मानव जीवन का परम पुरुषार्थ ब्रह्म से मिलन या मोक्ष है तथा मोक्ष के लिए चित्त की स्थिरता, अहंकार व कर्तापन से मुक्ति तथा समत्व भाव आवश्यक है। मोक्ष साधन के कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग ये तीन मुख्य मार्ग बताए हैं। इस प्रकार आत्मज्ञान, स्वकर्तव्यपालन और ईशभक्ति से व्यक्ति मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है परन्तु कुछ लोग जो न ध्यान, न ज्ञान, न कर्म और न ही भक्ति मार्ग को अपना सकते हैं, वे श्रवण परायण योगी भी तत्त्वज्ञानियों से गीता का उपदेश सुनकर भवसागर को पार कर सकते हैं। गीता एक मनोवैज्ञानिक, बहुमुखी, बहुआयामी तथा परम व्यावहारिक ग्रन्थ है, जिसमें सभी मनुष्यों के लिए योग का निर्देश है। गीता में शरीर की नश्वरता, आत्मा की अमरता, स्थितप्रज्ञ, वर्णव्यवस्था, त्रिगुण, पुनर्जन्म, मोक्ष तथा दैवी एवं आसुरी सम्पदाओं का भी वर्णन किया गया है।

गीता में ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग तथा ध्यानयोग का विषय प्रतिपादित है परन्तु प्रमुख योग उपनिषदों में ज्ञानयोग, कर्मयोग के साथ-साथ मन्त्रयोग, लययोग, राजयोग, हठयोग तथा षडंग व अष्टांग योगांगों का भी वर्णन किया गया है। प्रमुख योग उपनिषदों में सगुण व निर्गुण ब्रह्म के ध्यान के साथ-साथ ईश्वर के वाचक प्रणव की उपासना या जप को विशेष महत्त्व दिया गया है। गीता की भाँति त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार अविद्या को जन्म-मरण के चक्र का कारण माना है तथा विवेक ज्ञान से अज्ञान के बन्धन से छूट कर मोक्ष प्राप्ति बताई है। सकाम कर्म करने वाले जीवात्मा को

दक्षिणायन के द्वारा चन्द्रलोक गमन बताया है। वहाँ कर्म फलों को भोगकर वह पुनः संसार में लौट आता है परन्तु योगाभ्यास व विवेकज्ञान का सहारा लेकर जीवात्मा उत्तरायण मार्ग से ब्रह्मलोक पहुँच जाती है। जहाँ से पुनः इस संसार में लौट कर नहीं आती। गीता में प्रमुख योग उपनिषदों की भाँति ध्यान योग्य उचित स्थान, शारीरिक व मानसिक स्थितियों का तथा आहार-विहार की चर्चा की गई है। प्रमुख योग उपनिषदों की भाँति गीता में यम-नियम आदि का वर्णन नहीं किया गया परन्तु सुरी-आसुरी प्रवृत्तियों व उनके लक्षणों को सम्यक् रूप से वर्णित किया गया है। गीता में मन व इन्द्रियों के संयम पर विशेष बल दिया गया है तथा अभ्यास तथा वैराग्य को मन संयम का प्रमुख उपाय बताया है जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में मन को प्राणों के साथ जुड़ा हुआ बताकर मन व प्राणों के नियन्त्रण पर विशेष बल दिया गया है। योगतत्त्वोपनिषद् में प्राणायाम को मन नियन्त्रित करने का प्रमुख उपाय बताया गया है। योगकुण्डल्युपनिषद् में वासना और प्राणों की गति को चित्त की चंचलता का कारण माना है तथा प्राणों को वश में करने के मिताहार, आसन तथा शक्तिचालन मुद्रा ये तीन उपाय बताए हैं अतः प्रमुख योग उपनिषदों में प्राणों के प्रकार स्वरूप, रंग, स्थान आदि की विस्तृत चर्चा की गई है साथ ही प्राणवाहिनी नाड़ियों के प्रकार व स्थान, विभिन्न आसन, प्राणायाम के प्रकार, कुण्डलिनी बोध, अजपा जप, प्रणव उपासना, षट्चक्र, मुद्रा तथा बन्ध आदि का भी वर्णन किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता और प्रमुख योग उपनिषदों ने मानव जीवन का परम लक्ष्य मुक्ति या मोक्ष को माना है किन्तु दोनों में मोक्ष प्राप्ति के साधन या मार्ग भिन्न-भिन्न बताए गए हैं। गीता के अनुसार भक्ति, कर्म और ज्ञान मोक्ष प्राप्ति के साधन हैं जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में हठयोग, ध्यान व साधना को प्राथमिकता दी गई है।

5.3 घेरण्ड संहिता और प्रमुख योग उपनिषद्

महर्षि घेरण्ड द्वारा प्रणीत घेरण्ड संहिता हठयोग का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें हठयोग के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष को बहुत ही सरल एवं सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया गया है। घेरण्ड संहिता की प्राच्यप्रतियों से अनुमान लगाया जाता है कि यह

सत्रहवीं शताब्दी में रचित ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के श्लोकों में विष्णु भगवान की चर्चा की गई है। जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि महर्षि घेरण्ड ने वैष्णव परम्परा का पालन किया है। घेरण्ड संहिता एक प्रकार से तान्त्रिक साधना के मत का ग्रन्थ है। कुछ लोगों का मानना है कि षष्ठ प्रकरण में सूक्ष्म, स्थूल व गुरु ध्यान के जो प्रकार बताए गए हैं वे तान्त्रिकों के हैं तथा तान्त्रिक मत से किस प्रकार समाधि लाभ होता है इसे ही लक्ष्य करके इसमें वर्णित किया गया है। महर्षि घेरण्ड ने शरीर की घटसंज्ञा देते हुए घेरण्ड संहिता में वर्णित योग को घटस्थ योग कहा है। घटस्थ योग का तात्पर्य है शरीर पर आधारित योग। घट का तात्पर्य शरीर है अर्थात् यह शरीर घट (घड़ा) है। शरीर को उन्होंने एक घट के रूप में देखा, जो पदार्थ से बनी हुई एक आकृति है और ईश्वर ने उस घड़े में इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार आदि भर दिए हैं इस प्रकार ये सब मिलाकर यह शरीर रूपी घड़ा बना है अतः आत्मज्ञान प्राप्ति हेतु योग की शुरुआत शरीर से बताई गई है और इस शरीर के द्वारा मानसिक और भावनात्मक स्वरो को नियन्त्रित करके आध्यात्मिक अनुभूति को जाग्रत किया जा सकता है।

इस ग्रन्थ को ऋषि घेरण्ड और योग जिज्ञासु राजा चण्डकपालि के बीच संवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है। महर्षि घेरण्ड के योग उपदेशों को सात भागों में विभाजित किया गया है अर्थात् यह ग्रन्थ सात अंगों या साधनाओं के द्वारा योग की शिक्षा देता है अतः घेरण्ड संहिता में वर्णित योगप्रणाली को सप्तसाधना या सप्तांग योग कहा जाता है। षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान तथा समाधि इन सप्त साधनों या सप्तांगों को इस ग्रन्थ में एक-एक अध्याय के रूप में विभक्त कर समझाया गया है। इन अध्यायों का विषय के आधार पर नामकरण किया गया है, जिन्हें प्रकरण की संज्ञा दी गई है। ग्रन्थ का आरम्भ षट्कर्म प्रकरण से होकर समाधि पर पूर्ण होता है।

प्रथम अध्याय षट्कर्म प्रकरण में शरीर शुद्धि क्रियाओं की चर्चा की गई है जिन्हें षट्कर्म कहा गया है। प्रत्येक क्रियाविधि का वर्णन करने के साथ उस क्रिया से प्राप्त होने वाले फल का भी वर्णन किया गया है। धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी (नौलि), त्राटक और कपालभाति ये षट्कर्म या हठयोग के छः अंग माने जाते हैं। षट्कर्म शरीर शुद्धि की इन क्रियाओं को महर्षि घेरण्ड ने योग का पहला आयाम कहा है।

द्वितीय अध्याय योगासन प्रकरण में शरीर को दृढ़ता व स्थिरता प्रदान करने वाले उपयोगी बत्तीस आसनों की विधियों व इनसे प्राप्त लाभ को सविस्तार समझाया गया है।

आसनों का उद्देश्य शरीर पर पूर्ण नियन्त्रण के बाद ऐसी स्थिति को प्राप्त करना बताया है, जिससे कि शारीरिक क्लेश न हो।

तृतीय अध्याय मुद्रा और बन्ध प्रकरण में चार बन्ध, पाँच धारणा तथा सोलह मुद्राओं का वर्णन किया है। इन पच्चीस मुद्राओं की विधि व लाभ के साथ-साथ मुद्राभ्यास के दौरान रखी जाने वाली सावधानियों को भी बताया गया है। मुद्राओं द्वारा शरीर के अन्दर प्राणशक्ति के प्रवाह को नियन्त्रित किया जा सकता है।

चतुर्थ अध्याय प्रत्याहार प्रकरण के अन्तर्गत मन को आत्मा के वशीभूत करना ही प्रत्याहार कहा गया है। श्लोकों की संख्या के आधार पर यह सबसे छोटा अध्याय है। इस अध्याय में महर्षि घेरण्ड ने मानसिक पक्ष पर प्रकाश डाला है।

पञ्चम अध्याय प्राणायाम प्रकरण में महर्षि घेरण्ड ने प्राणायाम के महत्त्व, योगाभ्यास हेतु उचित स्थान, ऋतु, पथ्य व अपथ्य का वर्णन किया है। प्राणायाम से पूर्व नाड़ीशोधक प्राणायाम का भी उल्लेख किया है। प्राणायाम को कुम्भक की संज्ञा देते हुए अष्ट कुम्भकों का वर्णन किया है साथ ही प्राणायाम की विधि एवं लाभ पर भी प्रकाश डाला है।

षष्ठ अध्याय ध्यान प्रकरण में ध्यान के स्थूल ध्यान, ज्योतिर्ध्यान तथा सूक्ष्म ध्यान ये तीन प्रकार बताकर इनका वर्णन किया है।

सप्तम अध्याय समाधि प्रकरण में समाधि के महत्त्व को बताते हुए समाधि के छः भेदों का वर्णन किया है।

यहाँ घेरण्ड संहिता के सप्तांग योगान्तर्गत निम्न विषयों का प्रमुख योग उपनिषदों से तुलनात्मक अध्ययन किया जा रहा है - षट्कर्म, योगासन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान तथा समाधि।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में बताया गया है कि राजा चण्डकपालि महर्षि घेरण्ड के पास जाकर तत्त्वज्ञान का कारण घटस्थ योग के विषय में पूछते हैं तब महर्षि घेरण्ड मानव शरीर को कच्चे घड़े की संज्ञा देते हुए कहते हैं कि शरीर रूपी कच्चे घड़े को योगरूपी अग्नि में तपाकर परिपक्व बनाने हेतु सप्तांग योग आवश्यक है। योग सर्वश्रेष्ठ शक्ति है - "नास्ति योगात्परं बलम्"। योग से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है - "योगं समासाद्य तत्त्वज्ञानं च लभ्यते।"

महर्षि घेरण्ड के अनुसार घटस्थ योग के अभ्यास के लिए सात गुणों का होना आवश्यक है जिन्हें योग के सप्त साधन कहा गया है -

"शोधनं दृढता चैव स्थैर्य धैर्य च लाघवम्।

प्रत्यक्षं च निर्लिप्तं च घटस्य सप्तसाधनम्॥"⁹⁷

शोधन, दृढता, स्थिरता, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष तथा निर्लिप्तता ये सात साधन हैं। इन सात गुणों या साधनों के समावेश के लिए सात प्रकार के योगाभ्यास बताए गए हैं -

"षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद्दृढम्।

मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता॥

प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनः।

समाधिना निर्लिप्तं च मुक्तिरेव न संशयः॥"⁹⁸

अर्थात् षट्कर्मों से शरीर का शोधन (शुद्धिकरण), आसनों से दृढता, मुद्राओं से स्थिरता, प्रत्याहार से धैर्य, प्राणायाम से लाघव, ध्यान से ध्येय पदार्थ का प्रत्यक्ष दर्शन तथा समाधि द्वारा निर्लिप्तता प्राप्त होती है। इस क्रम से अभ्यास करने से बिना संशय के निश्चित रूप से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इन योगाभ्यासों को सप्तसाधना या सप्तांग योग कहा गया है।

षट्कर्म -

घेरण्ड संहिता के प्रथम अध्याय के अन्तर्गत षट्कर्म की विधि तथा होने वाले लाभ का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। षट्कर्म इडा और पिंगला के मध्य सामंजस्य स्थापित करते हैं। जिससे शारीरिक व मानसिक शुद्धि तथा सन्तुलन की प्राप्ति होती है। षट्कर्मों का अभ्यास योग के अन्य उच्च अभ्यासों से पूर्व किया जाता है ताकि साधक का शरीर विकार रहित होकर निर्विघ्न आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर हो सके। षट्कर्म के अन्तर्गत धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक और कपालभाति इन छः क्रियाओं का उल्लेख करते हुए इन छः कर्मों को सम्मिलित रूप से षट्कर्म की संज्ञा दी गई है -

"धौतिर्वस्तस्तथा नेतिः लौलिकी त्राटकं तथा।

कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत्॥"⁹⁹

इस षट्कर्म का अभ्यास परम्परानुसार गुरु के निर्देशन में करना चाहिए तथा इसका अभ्यास कब और कैसे करना चाहिए। इसका व्यक्तिगत रूप से निर्देश दिया जाना आवश्यक है। षट्कर्म के अन्तर्गत पहला अंग या पहली क्रिया धौति कर्म को विवेचित

करते हुए महर्षि घेरण्ड करते हैं कि -

"अन्तर्धौतिर्दन्तधौतिर्हृद्धौतिर्मूलशोधनम् ।

धौतिं चतुर्विद्यां कृत्वा घटं कुर्वन्ति निर्मलम्॥"¹⁰⁰

(1) धौति - धौति कर्म द्वारा शरीर की शुद्धि की जाती है। धौति कर्म चार प्रकार का बताया गया है - अन्तर्धौति, दन्तधौति, हृद् धौति और मूलशोधन।

(i) अन्तर्धौति - अन्तर्धौति के भी चार भेद हैं - वातसार, वारिसार, वह्निसार और बहिष्कृत।

(क) वातसार अन्तर्धौति -

"काकचञ्चुवदास्येन पिबेद्वायु शनैः शनैः।

चालयेदुदरं पश्चाद्वर्त्मना रेचयेच्छनैः॥"

वातसारं परं गोप्यं देह निर्मलकारकम्।

सर्व रोगक्षयकरं देहानलविवर्द्धकम्॥"¹⁰¹

विधि - कौवे की चोंच के समान होंठ बनाकर धीरे-धीरे वायु का पान करना चाहिए। पूर्णरूप से पान कर लेने पर उदर में उसका परिचालन करके रेचन करना चाहिए।

लाभ - इससे शरीर निर्मल होता है और समस्त रोग नष्ट होकर जठराग्नि तीव्र हो जाती है।

(ख) वारिसार अन्तर्धौति -

"आकण्ठं पूरयेद्वारि वक्त्रेण च पिबेच्छनैः।

चालयेदुदरेणैव चोदराद्रेचयेदधः॥

वारिसारं पदं गोप्यं देहनिर्मलकारकम् ।

साधयेत्तत्प्रयत्नेन देवदेहं प्रपद्यते ॥"¹⁰²

विधि - मुख से धीरे-धीरे जल पीते हुए कण्ठ तक जल भरना चाहिए उसके बाद पेट को चलाकर जल को अधोमार्ग से निकाल देना चाहिए।

लाभ - यह शरीर को स्वच्छ करने वाली क्रिया है। इसका प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करने वाला साधक देवताओं के समान शरीर को प्राप्त करता है।

(ग) वह्निसार या अग्निसार अन्तर्धौति -

"नाभिग्रन्थिं मेरुपृष्ठे शतवारं च कारयेत् ।

अग्निसारमियं धौतिर्योगिनां योगसिद्धिदा ॥

उदरामयजं त्यक्त्वा जठराग्निं विवर्द्धयेत् ।

एषा धौतिः परा गोप्या देवानामपि दुर्लभा ।

केवलं धौतिमात्रेण देवदेहं भवेद् ध्रुवम् ॥"¹⁰³

विधि - प्राणवायु को रोककर नाभि को मेरु पृष्ठ भाग में सौ बार लगाना चाहिए।

लाभ - इससे पेट के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं, जठराग्नि तीव्र हो जाती है तथा देवताओं जैसा शरीर हो जाता है।

(घ) बहिष्कृत अन्तर्धौति -

"काकीमुद्रां शोधयित्वा पूरयेदुदरं मरुत् ।

धारयेदर्धयामं तु चालयेदधोवर्त्मना ।

एषा धौतिः परा गोप्या न प्रकाश्या कदाचना ॥"¹⁰⁴

विधि - कौवे की चोंच के समान होंठ (काकीमुद्रा) बनाकर वायु पान कर पेट भर लेना चाहिए फिर उस पान की हुई वायु को डेढ़ घण्टे तक रोककर अधोमार्ग से निकाल देना चाहिए। यह परम गोपनीय क्रिया है जिसे सामान्य व्यक्ति नहीं कर सकता।

लाभ - इसके अभ्यास से देवताओं के समान शरीर हो जाता है।

(ii) दन्तधौति -

दन्त धौति के पाँच भेद बताए गए हैं - दन्तमूल, जिह्वामूल, कर्णरन्ध्र और कपालरन्ध्र ये चार प्रकार की धौतियाँ हुई। कर्णरन्ध्र के अन्तर्गत दाहिने व बाएँ कान की अलग-अलग धौति हैं। इस प्रकार ये पाँच दन्तधौति हैं। यहाँ दन्त धौति का शाब्दिक अर्थ नहीं लिया गया है बल्कि दन्तधौति का तात्पर्य शीर्ष प्रदेश की सफाई से है।

(क) दन्तमूलधौति -

"खादिरेण रसेनाथ शुद्धमृत्तिकया तथा ।

मार्जयेद्दन्तमूलं च यावत्किल्बिषमाहरेत् ॥

दन्तमूलं पराधौतियोनिनां योग साधने ।

नित्यं कुर्यात्प्रभाते च दन्तरक्षा च योगवित् ।

दन्तमूलं धावनादि कार्येषु योगिनां मतम् ॥"¹⁰⁵

विधि - खादिर (कत्था) के रस अथवा शुद्ध मिट्टी से जब तक मैल न छूट जाए तब तक दाँतों की जड़ों का मार्जन करना चाहिए।

लाभ - प्रातःकाल प्रतिदिन इसके अभ्यास से दाँतों की रक्षा होती है।

(ख) जिह्वामूल धौति -

"तर्जनीमध्यमानामा अङ्गुलित्रययोगतः ।

वेशयेद्गलमध्ये तु मार्जयेल्लम्बिकामूलम् ।

शनैः शनैः मार्जयित्वा कफदोषं निवारयेत् ॥"¹⁰⁶

विधि - तर्जनी, मध्यमा और अनामिका इन तीनों अङ्गुलियों को मिलाकर कण्ठ में डालकर जिह्वा की जड़ों की सफाई करें फिर बार-बार मक्खन से जीभ को साफ कर, दुह कर व चिमटी से जीभ को पकड़कर बाहर खींचने का अभ्यास करना चाहिए। यह अभ्यास प्रतिदिन सुबह और शाम करना चाहिए।

लाभ - इससे कफ दोष का निवारण होता है, जिह्वा की लम्बाई बढ़ती है तथा जरा-मरण एवं जिह्वा से सम्बन्धित रोग नष्ट हो जाते हैं।

(ग) कर्णरन्ध्र धौत्त (दक्षिण कर्ण) (घ) कर्णरन्ध्र धौति (वाम कर्ण) -

"तर्जन्यनामिका योगान्मार्जयेत्कर्णरन्ध्रयोः ।

नित्यमभ्यासयोगेन नादान्तरं प्रकाशयेत् ॥"¹⁰⁷

विधि - तर्जनी और अनामिका को मिलाकर दाएँ और बाएँ कर्णछिद्र की सफाई करनी चाहिए। महर्षि घेरण्ड ने दोनों कानों के लिए अलग-अलग प्रक्रिया मानी है हाँलाकि तरीका एक ही है। एक दाहिने कान की सफाई के लिए तथा दूसरी बाएँ कान की सफाई के लिए अतः कर्णरन्ध्र धौति के अन्तर्गत तीसरा व चौथा भेद एक ही है।

लाभ - इस विधि के अभ्यास से नाद की अनुभूति होती है।

(ङ) कपालरन्ध्र धौति -

"वृद्धाङ्गुष्ठेन दक्षेण मार्जयेद्भालरन्ध्रकम् ।

एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत् ॥

नाडी निर्मलतां याति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ।

निद्रान्ते भोजनान्ते च दिवान्ते च दिने दिने ॥"¹⁰⁸

विधि - दाहिने हाथ के अङ्गूठे से कपालरन्ध्र (ब्रह्मरन्ध्र) का मार्जन करना चाहिए। इसका अभ्यास निद्रा की समाप्ति पर, भोजन करने के बाद और निद्रा के पहले तथा दिन की समाप्ति के समय करना चाहिए।

लाभ - इसके अभ्यास से कफदोष नष्ट हो जाता है, कपाल की नाड़ियाँ निर्मल हो जाती हैं तथा दिव्यदृष्टि की प्राप्ति होती है।

(iii) हृद् धौति -

महर्षि घेरण्ड के अनुसार हृद् धौति के तीन भेद हैं - दण्ड धौति, वमन धौति और वसन धौति।

(क) दण्ड धौति -

"रम्भादण्डं हरिदण्डं वेत्रदण्डं तथैव च ।

हन्मध्ये चालयित्वा तु पुनः प्रत्याहरेच्छनैः ॥

कफं पित्तं तथा क्लेदं रेचयेद्धूर्ध्ववर्त्मना ।

दण्डधौतिविधानेन हृद्रोगं नाशयेद् ध्रुवम् ॥"¹⁰⁹

विधि - केले के कोमल, हल्दी या बेंत के दण्ड को हृदय के मध्य में बार-बार प्रवेश कराकर धीरे-धीरे निकालना चाहिए।

लाभ - इसके अभ्यास से कफ, पित्त और क्लेद (श्लेष्मा) बाहर निकल जाते हैं तथा हृदय रोग नष्ट हो जाते हैं।

(ख) वमन धौति -

"भोजनान्ते पिबेद्वारि चाकण्ठं पूरितः सुधीः ॥

ऊर्ध्वा दृष्टिं क्षणं कृत्वा तज्जलं वमयेत्पुनः ।

नित्यमभ्यासयोगेन कफपित्तं निवारयेत् ॥"¹¹⁰

विधि - भोजन के अन्त में कण्ठ तक जल पीकर कुछ देर बाद ऊपर की ओर देखते हुए उसे वमन द्वारा बाहर निकाल देना चाहिए।

लाभ - इसके अभ्यास से कफ और पित्त की निवृत्ति होती है।

(ग) वसन (वस्त्र) धौति -

"चतुरङ्गुलविस्तारं सूक्ष्मवस्त्रं शनैर्गसेत्।

पुनः प्रत्याहरेदेतत्प्रोच्यते धौतिकर्मकम् ॥

गुल्म ज्वरप्लीहकुष्ठकफपित्तं विनश्यति ।

आरोग्यं बलपुष्टिश्च भवेत्तस्य दिने दिने ॥"¹¹¹

विधि - बारीक कपड़े की चार अँगुल चौड़ी पट्टी लेकर धीरे-धीरे निगलना चाहिए फिर इसे धीरे-धीरे बाहर निकालें।

लाभ - इसके अभ्यास से गुल्म, ज्वर, प्लीहा, कुष्ठ, कफ, पित्त दोषों का शमन होता है तथा आरोग्य, बल और पुष्टि की दिनों-दिन वृद्धि होती है।

(iv) मूलशोधन धौति -

मूलशोधन धौति कर्म की अन्तिम विधि है। इसका शाब्दिक अर्थ है - शरीर के मूल भाग (गुदा) की सफाई। घेरण्ड संहिता के अनुसार मूल शोधन नहीं करने पर अपानवायु की क्रूरता नष्ट नहीं हो पाती इसलिए प्रयत्नपूर्वक मूलशोधन कर्म अवश्य करना चाहिए -

"अपानक्रूरता तावद्यावन्मूलं न शोधयेत् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मूलशोधनमाचरेत् ॥"
पीतमूलस्य दण्डेन मध्यमाङ्गुलिनाऽपि ।
यत्नेन क्षालयेद्गुह्यं वारिणा च पुनः पुनः ॥
वारयेत्कोष्ठकाठिन्यमामाजीर्ण निवारयेत् ।
कारणं कान्तिपुष्ट्योश्च दीपनं वह्निमण्डलम्॥"¹¹²

विधि - हल्दी की जड़ या मध्यमा अँगुली के द्वारा जल के साथ बार-बार गुदा प्रक्षालन करना चाहिए। इसके अन्तर्गत गुदा की सफाई की जाती है ताकि अपान वायु में विकार उत्पन्न न हो सके।

लाभ - इसके अभ्यास से मल की शुष्कता, मलावरोध एवं अमाजीर्णता आदि का निवारण हो जाता है तथा जठराग्नि बढ़ती है।

(2) वस्ति -

"जलवस्तिः शुष्कवस्तिर्वस्ती च द्विविधौ स्मृतौ ।
जलवस्तिं जले कुर्याच्छुक्कवस्तिं सदा क्षितौ ॥"¹¹³

इस क्रिया में गुदा द्वार से वायु या जल भीतर की ओर खींचकर बड़ी आँत की सफाई की जाती है। यह दो प्रकार की होती है - जल वस्ति और शुष्क या स्थल वस्ति।

(i) जल वस्ति -

"नाभिमग्नजले पायुन्यस्तनालोत्कटासनः ।
आकुञ्चनं प्रसारं च जलवस्तिं समाचरेत् ॥
प्रमेह च उदावतं क्रूरवायुं निवारयेत् ।
भवेत्स्वच्छन्ददेहश्च कामदेवसमो भवेत् ॥"¹¹⁴

विधि - नाभि तक जल में उत्कटासन लगाकर गुदा द्वार का संकुचन और प्रसारण करना चाहिए।

लाभ - इसके अभ्यास से प्रमेह, उदावर्त व क्रूर वायु नष्ट हो जाती है और कामदेव के समान सुन्दर शरीर हो जाता है।

(ii) शुष्क या स्थल वस्ति -

"पश्चिमोत्तानतो वस्तिं चालयित्वा शनैः शनैः ।

अश्विनीमुद्रया पायुमाकुञ्चयेत्प्रसारयेत् ॥

एवमभ्यासयोगेन कोष्ठदोषो न विद्यते ।

विवर्द्धयेज्जठराग्निमामवातं विनाशयेत् ॥"¹¹⁵

विधि - पश्चिमोत्तानासन में बैठकर नीचे के भाग में अश्विनी मुद्रा द्वारा गुदा का आकुंचन एवं प्रसारण करना चाहिए।

लाभ - इसके अभ्यास से कोष्ठ के दोष एवं आमवात आदि रोगों का शमन होता है तथा जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

(3) नेति -

"वितस्तिमानं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत् ।

मुखान्निर्गमयेत्पश्चात् प्रोच्यते नेतिकर्मकम् ॥

साधनान्नेतिकार्यस्य खेचरीसिद्धिमाप्नुयात् ।

कफदोषा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥"¹¹⁶

विधि - यह नासिका से की जाने वाली क्रिया है। जिसमें आधा हाथ लम्बा डोरा लेकर नाक में डालकर मुँह से बाहर निकाला जाता है।

लाभ - खेचरी मुद्रा की सिद्धि, कफ-दोषों की निवृत्ति और दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती है।

(4) लौलिकी या नौलि -

"अमन्दवेगेन तुन्दं भ्रामयेदुभपार्श्वयोः ।

सर्वरोगान्निहन्तीह देहानलविवर्द्धनम् ॥"¹¹⁷

विधि - लौलिकी शब्द की व्युत्पत्ति लोल शब्द से हुई है, जिसका अर्थ होता है वेगपूर्वक इधर-उधर घुमाना अर्थात् उदर की मांसपेशियों और उससे सम्बन्धित संस्थानों को संकुचित कर घुमाना । इसका यौगिक नाम नौलि क्रिया भी है। इस क्रिया के अभ्यास हेतु प्रबल वेग से पेट को दोनों पार्श्वों में घुमाना चाहिए।

लाभ - सभी प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं तथा जठराग्नि बढ़ती है।

(5) त्राटक -

"निमेषोन्मेषकं त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत् ।

पतन्ति यावदश्रूणि त्राटकं प्रोच्यते बुधैः ॥

एवमभ्यासयोगेन शाम्भवी जायते ध्रुवम् ।

नेत्ररोगा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥"¹¹⁸

विधि - बिना पलक बन्द किए स्थिर दृष्टि से किसी लक्ष्य को देखते रहना चाहिए जब तक कि आँसू न गिरने लगें।

लाभ - इसके अभ्यास से शाम्भवी मुद्रा की सिद्धि होती है। नेत्र रोग नष्ट हो जाते हैं तथा दिव्यदृष्टि की प्राप्ति होती है।

(6) कपालभाति -

घेरण्ड संहिता में कपालभाति को शोधन क्रिया के अन्तर्गत माना है। जबकि यह एक प्रकार का प्राणायाम ही है। जिसका सम्बन्ध प्राणमय कोश की शुद्धि से है। महर्षि घेरण्ड ने कपालभाति का भालभाति के नाम से वर्णन किया है। भाल का अर्थ ललाट है तथा भाति का धौंकनी। जिस प्रकार लोहार भट्टी में हवा देने के लिए धौंकनी का प्रयोग करता है उसी प्रकार कपालभाति में रेचक करते समय वायु को धौंकनी की तरह तेज गति से बाहर निकाला जाता है। कपालभाति के तीन प्रकार बताए गए हैं - वातक्रम, व्युत्क्रम और शीतक्रम।

(i) वातक्रम कपालभाति -

"इडया पूरयेद्वायुं रेचयेत्पिङ्गलया पुनः ।

पिङ्गलया पूरयित्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ॥

पूरकं रेचकं कृत्वा वेगेन न तु धारयेत् ।

एवमभ्यासयोगेन कफ दोषं निवारयेत् ॥"¹¹⁹

विधि - इडा नाड़ी (बायीं नाक) से श्वास अन्दर लेना है और पिंगला नाड़ी (दायीं नाक) से श्वास बाहर निकालना है फिर पिंगला नाड़ी से श्वास अन्दर लेना है और इडा नाड़ी से उसे बारह निकालना है। इन पूरक और रेचक की दोनों क्रियाओं में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए।

लाभ - इस क्रिया के अभ्यास से कफ नष्ट हो जाता है।

(ii) व्युत्क्रम कपालभाति -

व्युत्क्रम कपालभाति में जल का प्रयोग किया जाता है। यह क्रिया नेति के समान है ।

"नासाभ्यां जलमाकृष्य पुनर्वक्त्रेण रेचयेत् ।

पायं पायं व्युत्क्रमेण श्लेष्मादोषं निवारयेत् ॥"¹²⁰

विधि - नाक के दोनों छिद्रों से जल खींचे और मुख से निकाल दें तथा मुख से जल खींचकर नाक से निकाल दें।

लाभ - इससे कफ दोषों का निवारण होता है।

(iii) शीतक्रम कपालभाति -

"शीत्कृत्य पीत्वा वक्त्रेण नासानालैर्विरेचयेत् ।

एवमभ्यासयोगेन कामदेव समो भवेत् ॥

न जायते वार्द्धकं च ज्वरो नैव प्रजायते ।

भवेत्स्वच्छन्दं देहश्च कफ दोषं निवारयेत् ॥"¹²¹

विधि - यहाँ शीत्कार का तात्पर्य शीतली प्राणायाम से है अर्थात् जीभ को गोल करके आवाज करते हुए जल को जीभ से अन्दर खींचना। शीत्कार करते हुए मुख के द्वारा जल ग्रहण कर नाक से निकाल दें।

लाभ - शरीर कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। बुढ़ापा नहीं आता। शरीर स्वस्थ रहता है और कफ दोष नष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार घेरण्ड संहिता के अनुसार षट्कर्म में नेति, धौति, वस्ति, नौलि, कपालभाति और त्राटक ये छः क्रियाएँ हैं। जिनके द्वारा शरीर को विकाररहित, निर्मल व स्वच्छ बनाया जाता है। घेरण्ड संहिता में शरीर शुद्धिकरण के लिए षट्कर्म शब्द का प्रयोग किया गया है। षट्कर्म के अन्तर्गत तेरह धौति, दो वस्ति, एक त्राटक, एक नौलि, एक नेति तथा तीन कपालभाति के भेदों को मिलाकर कुल इक्कीस क्रियाओं का वर्णन किया गया है। महर्षि घेरण्ड का मानना है कि जब तक नस-नाड़ियों में मल या गन्दगी भरी हुई है तब तक प्राणवायु की गति या संचरण ठीक प्रकार से नहीं हो सकता अतः शरीर व नाड़ी शुद्धिकरण हेतु षट्कर्म आवश्यक है। षट्कर्म के अभ्यास से शरीर रोग मुक्त होकर मोक्ष प्राप्ति हेतु उपयुक्त पात्र बनता है।

प्रमुख योग उपनिषदों में षट्कर्म का उल्लेख नहीं मिलता लेकिन नाड़ी शोधन प्राणायाम से ही शरीर व नाड़ियों की शुद्धि मानी है अतः षट्कर्म के उल्लेख की आवश्यकता नहीं समझी। नाड़ीशोधन को प्राणायाम से पूर्व आवश्यक माना है अतः नाड़ी शोधन के स्थान व स्वरूप आदि के साथ-साथ प्राण आदि के स्थान व कार्य का विस्तृत विवेचन इन उपनिषदों में किया गया है। नाड़ी शुद्धि से प्राणायाम की सिद्धि बताई है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में नाड़ीशुद्धि का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि -

"नाडीभेदं मरुद्भेदं मरुतां स्थानमेव च ।

चेष्टाश्च विविधास्तेषां ज्ञात्वैव द्विजसत्तम् ॥

शुद्धौ यतेत नाडीनां पूर्वोक्तज्ञानसंयुतः ।"¹²²

इसी प्रकार का उल्लेख योगचूडामण्युपनिषद् में भी मिलता है कि शरीर की नस-नाड़ियों में वर्षों से गन्दगी जमा होती रहती है। जब नाड़ीशुद्धि की क्रियाओं से शरीर की गन्दगी निकल जाती है तब योगी प्राणवायु को अन्दर रोक सकता है साथ ही नाड़ी शोधन का फल भी बताया गया है कि नाड़ी शोधन के अभ्यास से भूख बढ़ जाती है, शरीर स्वस्थ हो जाता है तथा अनाहत नाद सुनाई देने लगता है -

"यथेष्टं धारणं वायोरनलस्य प्रदीपनम् ।

नादाभिव्यक्तिरारोग्यं जायते नाडिशोधनात् ॥"¹²³

आसन -

महर्षि घेरण्ड के अनुसार संसार में जितने जीव-जन्तु हैं उतने ही आसन हैं। भगवान् शिव ने चौरासी लाख आसन बताए हैं उसमें से चौरासी आसन श्रेष्ठ हैं और उनमें भी मनुष्यों के लिए बत्तीस आसन लाभप्रद हैं। इस प्रकार घेरण्ड संहिता में सिद्धिप्रद बत्तीस आसनों का वर्णन किया गया है, जो निम्न प्रकार हैं -

"सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वज्रं च स्वस्तिकम्।

सिंहं च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च॥

मृतं गुप्तं तथा मात्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च।

गोरक्षं पश्चिमोत्तानमुत्कटं संकटं तथा।

मयूरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चौत्तानकूर्मकम्।

उत्तानमाडुकं वृक्षं मण्डुकं गरुडं वृषम्॥

शलभं मकरं चोष्ट्रं भुजङ्गं योगमासनम्।

द्वात्रिंशदासनान्येव मर्त्ये सिद्धिप्रदानि च॥"

घेरण्ड संहिता में आसन को परिभाषित नहीं किया गया है केवल बत्तीस योगासनों की विधि व इनसे होने वाले लाभ का उल्लेख किया गया है जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में आसन को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि - "आसनेन रुजं हन्ति" - आसन से रोग नष्ट हो जाते हैं। "सर्ववस्तुन्युदासीनभाव आसनमुत्तमम्" - संसार की सभी वस्तुओं से विरक्त होना उत्तम आसन है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में सत्तरह योगासनों की विधि व प्राप्त लाभ का वर्णन किया गया है। इन सत्तरह योगासनों में पन्द्रह आसन घेरण्ड संहिता के समान ही है, हालांकि क्रिया विधि में कुछ अन्तर है फिर भी अन्तिम स्थिति समान ही है। योगकुण्डल्युपनिषद् में पद्मासन व वज्रासन इन दो आसनों को ही योगाभ्यास के लिए उपयोगी बताया गया है - "आसनं द्विविधं प्रोक्तं पद्मं वज्रासनं तथा।"¹²⁴ योगचूडामण्युपनिषद् में सिद्धासन व पद्मासन का नामोल्लेख किया गया है तथा योगतत्त्वोपनिषद् में भी ध्यान उपयोगी सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन और भद्रासन इन चार आसनों का नामोल्लेख किया गया है। यहाँ घेरण्ड संहिता और प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित सोलह समान आसनों का ही विस्तृत विवेचन किया जा रहा है।

(i) सिद्धासन -

महर्षि घेरण्ड के अनुसार -

"योनिस्थानकमङ्घ्रिमूलघटितं संपीड्य गुल्फेतरम् ।

मेढ्रोपर्यथ सन्निधाय चिबुकं कृत्वा हृदि स्थापितम् ॥

स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्यन्भ्रुवोरन्तरम् ।

हयेतन्मोक्षकवाटभेदनकरं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥"¹²⁵

अर्थात् एक पैर की एड़ी को अण्डकोश और गुदा के बीच लगा कर दूसरे पैर की एड़ी को मेढ्र (लिंगमूल) में लगाए। ठोड़ी को हृदय पर लगा कर स्थिररूप से सीधा होकर अचल दृष्टि से भौंहों के मध्य देखना चाहिए। इसके अभ्यास से मोक्ष की प्राप्ति बताई गई है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में इसे संक्षेप में कुछ इस तरह बताया गया है -

"योनिं वामेन संपीड्य मेढ्रादुपरि दक्षिणम् ।

ऋजुकायः समासीनः सिद्धासनमुदीरितम् ॥"¹²⁶

योनिस्थान (सीवनी) पर बाएँ पैर की एड़ी लगा कर मेढ्र पर दायीं एड़ी रखें, इस प्रकार सीधा शरीर करके बैठने को सिद्धासन कहा है। ठोड़ी को हृदय पर लगाने व दृष्टि

को भौंहो के मध्य स्थिर करने का उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार घेरण्ड संहिता में दाएँ व बाएँ पैर की एड़ी को स्थान विशेष पर लगाने का उल्लेख नहीं है।

(ii) पद्मासन -

"वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम् ।
अङ्गुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेत्,
एतद्व्याधिविकारनाशनकरं पद्मासनं प्रोच्यते ॥"¹²⁷

महर्षि घेरण्ड के अनुसार पद्मासन में बायाँ पैर दायीं जाँघ पर और दायीं पैर बायीं जाँघ पर रख कर व्युत्क्रम-विधि से हाथों को पीठ पर ले जा कर दाएँ हाथ से बाएँ पैर के अँगूठे को एवं बाएँ हाथ से दाएँ पैर के अँगूठे को दृढ़तापूर्वक पकड़ कर ठोड़ी को हृदय से लगाकर नासिका के अग्रभाग की ओर देखना चाहिए। इसके अभ्यास से सभी रोगों का शमन होता है।

योगकुण्डल्युपनिषद् के अनुसार दोनों पैरों को जाँघों पर रख कर सीधे बैठना पद्मासन है तथा इसके अभ्यास से शरीर के सारे पाप या रोग नष्ट हो जाते हैं।

"ऊर्वोरूपरि चेद्धत्ते उभे पादतले यथा ।

पद्मासनं भवेदेतत्सर्वपापप्रणाशनम् ॥"¹²⁸

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में दोनों पैरों को मोड़कर पंजों को दोनों पैरों की जाँघों पर रख कर बैठने को पद्मासन बताया है तथा इससे शरीर की व्याधियाँ और विष का प्रभाव दूर हो जाता है। इस प्रकार प्रमुख योग उपनिषदों में पद्मासन में हाथों की स्थिति, ठोड़ी और देखने की स्थिति का उल्लेख नहीं किया गया है। ठोड़ी की स्थिति को छोड़ कर जो नाक के अग्रभाग को देखने की स्थिति है उसे त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में बद्धपद्मासन कहा है।

(iii) भद्रासन -

"गुल्फौ च वृषणस्याधोव्युत्क्रमेण समाहितः ।
पादाङ्गुष्ठौ कराभ्यां च धृत्वा वै पृष्ठदेशतः ॥
जालन्धरं समासाद्य नासाग्रमवलोकयेत् ।
भद्रासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविनाशकम् ॥"¹²⁹

पैर की दोनों एड़ियों को उलट कर अण्डकोशों के नीचे रख कर, पीठ की ओर पद्मासन के समान दोनों अँगूठों को पकड़े तथा जालन्धर बन्ध की स्थिति करके नासिका के अग्रभाग को देखना चाहिए। इस आसन के अभ्यास से सब रोग नष्ट हो जाते हैं।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार दोनों पैर की एड़ियों को अण्डकोश के नीचे और सीवनी के पास लगा कर हाथों को भूमि पर रखकर बैठना भद्रासन है -

"गुल्फौ च वृषणस्याधः सीविन्युभयपार्श्वयोः ।

निवेश्य भूमौ हस्ताभ्यां बद्ध्वा भद्रासनं भवेत् ॥"¹³⁰

परन्तु इस योग उपनिषद् में घेरण्ड संहिता के समान अँगूठों को पकड़ने का, जालन्धर बन्ध की स्थिति व नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि का तथा इस आसन से होने वाले लाभ का उल्लेख नहीं किया गया है।

(iv) मुक्तासन -

"पायुमूले वामगुल्फं दक्षगुल्फं तथोपरि ।

समकायशिरोग्रीवं मुक्तासनं तु सिद्धिदम् ॥"¹³¹

बाएँ पैर की एड़ी को गुदा मूल पर लगा कर उस पर दाएँ पैर की एड़ी को रखना चाहिए तथा सिर और गर्दन को समान रख कर, शरीर को सीधे करके बैठना चाहिए। इससे सिद्धि लाभ होता है।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में भी इसी प्रकार की मुक्तासन की विधि बताई गई है परन्तु सिर तथा गर्दन को समभाव से रखने व शरीर को सीधा करके बैठने का तथा इसके अभ्यास से होने वाले लाभ का उल्लेख नहीं किया गया है साथ ही पैरों की एड़ियों को सीवनी के बगल में रखने का निर्देश है जबकि घेरण्ड संहिता में गुदामूल पर रखना बताया गया है -

"सीवनीपार्श्वमुभयं गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण तु ।

निपीड्यासनमेतच्च मुक्तासनमुदीरितम् ॥"¹³²

(v) वज्रासन -

"जङ्घाभ्यां वज्रवत्कृत्वा गुदापार्श्वे पदावुभौ ।

वज्रासनं भवेदेतद्योगिनां सिद्धिदायकम् ॥"¹³³

दोनों जँघाओं को व्रज के समान दृढ़ करके दोनों पैरों को गुदा के दोनों ओर लगाने से वज्रासन होता है। यह आसन सिद्धि दायक है। योगकुण्डल्युपनिषद् इसे कुछ अलग तरीके से इस प्रकार बताया है-

"वामाङ्घ्रिमूलं कन्दाधः अन्यं तदुपरि क्षिपेत् ।

समग्रीवशिरः कायो वज्रासनमितीरितम् ॥"¹³⁴

अर्थात् बायीं जाँघ के सिरे को कन्द के नीचे ला कर इसके ऊपर दूसरी जाँघ रखकर सिर, गर्दन और शरीर को सीधा रख कर बैठने से वज्रासन होता है। इस प्रकार सिर, गर्दन व शरीर को सीधा रखने का निर्देश घेरण्ड संहिता में नहीं दिया गया है।

(vi) स्वस्तिकासन -

"जानूर्वोरन्तरे कृत्वा योगी पादतले उभे ।

ऋजुकायसमासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥"¹³⁵

दोनों जाँघों और घुटनों के बीच में दोनों तलवों को रख कर त्रिकोणाकार आसन लगा कर समभाव से बैठने को स्वस्तिकासन कहा गया है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में भी इसी प्रकार बताया गया है।

"वर्ण्यन्ते स्वस्तिकं पादतलयोरुभयोरपि ।

पूर्वोत्तरे जानुनी द्वे कृत्वासनमुदीरितम् ॥"¹³⁶

दोनों पैरों के तलुओं को दोनों घुटनों के बीच में करके बैठना स्वस्तिकासन है ।

(vii) सिंहासन -

"गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेणोर्ध्वतां गतौ ।

चितियुग्मं भूमिसंस्थं करौ च जानुनोपरि ॥

व्यात्तवक्त्रो जलन्ध्रेण नासाग्रमवलोकयेत् ।

सिंहासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविनाशकम् ॥"¹³⁷

पैरों की दोनों एड़ियों को व्युत्क्रमपूर्वक अण्डकोशों के नीचे लगा कर जालन्धरबन्ध सहित भ्रूमध्य अथवा नासाग्र में दृष्टि लगाना सिंहासन है। यह सभी रोगों को नष्ट करता है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में इसे अलग तरह से बताया गया है -

"सीवर्नी गुल्फदेशाभ्याम् निपीड्य व्युत्क्रमेण तु ।

प्रसार्य जानुनोर्हस्तावसानं सिंह रूपकम् ॥"¹³⁸

दोनों पैरों की एड़ियों से सीवनी को विपरीत विधि से दबा कर दोनों घुटनों तथा हाथों को फैला कर सिंह की तरह बैठना सिंहासन है। इस प्रकार दोनों हाथों को घुटनों पर रखना, उँगलियाँ फैलाना तथा सिंह की तरह मुँह खोल कर बैठना घेरण्ड संहिता में नहीं बताया गया है।

(viii) गोमुखासन -

"पादौ च भूमौ संस्थाप्य पृष्ठपार्श्वे निवेशयेत् ।

स्थिरं कायं समासाद्य गोमुखं गोमुखाकृतिः ॥"¹³⁹

भूमि पर दोनों पैरों को रख कर पीठ के दोनों बगलों में लगा कर शरीर को सीधा करके गोमुख की तरह ऊँचा करके बैठना गोमुखासन है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में इसे कुछ अलग तरीके से बताया गया है -

"सव्ये दक्षिणगुल्फ तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत् ।

दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं गोर्मुखं यथा ॥"¹⁴⁰

पीठ से बायीं तरफ दाहिने टखने की ओर दाएँ और बाएँ टखने को लगाने से जो गो मुख की तरह आकृति होती है, वही गोमुखासन होता है। घेरण्ड संहिता और त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् इन दोनों में ही गोमुखासन की पूरी विधि स्पष्ट नहीं है। आधुनिक प्रचलित विधि के अनुसार सुखासन या दण्डासन में बैठकर बाएँ पैर की एड़ी को दाएँ नितम्ब के पास रखें फिर दाएँ पैर को बायीं जाँघ के ऊपर से क्रॉस करके इस तरह स्थिर करें कि घुटने एक दूसरे के ऊपर रहें। अब बाएँ हाथ को पीठ के पीछे मोड़ें और हथेलियों को ऊपर की ओर ले जाए। दाएँ हाथ को दाएँ कंधे पर सीधा रखें और पीछे की ओर मोड़ते हुए कोहनी से मोड़कर हाथों को आपस में बांध लें। अब धीरे-धीरे दोनों हाथों को अपनी दिशा में खींचें। अपने मुड़े हुए दाएँ हाथ को अपनी क्षमता के अनुसार ऊपर की ओर खींचें। शरीर को सीधा व सांसों पर नियन्त्रण रखें। हाथ-पैर बदलकर इस योगासन का पुनः अभ्यास करें।

(ix) वीरासन -

"एकं पादमथैकस्मिन्विन्यसेदूरसंस्थितम् ।

इतरस्मिंस्तथा पश्चाद्वीरासनमितीरितम् ॥"¹⁴¹

एक पैर को दूसरे पैर की जाँघ के पास रख कर दूसरे पैर को पीछे की तरफ निकालने से वीरासन होता है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में बताया गया है कि -

"एकं चरणम् अन्यस्मिन् ऊरौ आरोप्य निश्चलः ।

आस्ते यदि दमेनोघ्नं वीरासनमुदीरितम् ॥"¹⁴²

एक पैर को दूसरी जाँघ के ऊपर रख कर निश्चल भाव से बैठना वीरासन है तथा इसके अभ्यास से शरीर के अंगों का दर्द दूर होना बताया गया है। इस प्रकार घेरण्ड संहिता में इस आसन से होने वाले लाभ का उल्लेख नहीं किया गया है जबकि इस योग उपनिषद् में वीरासन की विधि को लाभ सहित बताया गया है।

(x) धनुरासन -

"प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ करौ च पृष्ठे धृतपादयुग्मम् ।

कृत्वा धनुर्वत्परिवर्तिताङ्ग निगद्यते वै धनुरासनं तत् ॥"¹⁴³

दोनों पैरों को भूमि पर फैलाकर दोनों हाथों को पीठ की ओर करके दोनों पैरों को पकड़ कर धनुष के आकार में शरीर को कर लेना धनुरासन है।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार दोनों पैरों के अँगूठों को पकड़कर धनुष के आकार में कानों तक खींचना धनुरासन होता है -

"पादाङ्गुष्ठौ तु पाणिभ्यां गृहीत्वा श्रवणावधि ।

धनुराकर्षकाकृष्टं धनुरासनमीरितम् ॥"¹⁴⁴

इस उपनिषद् में इस आसन की शुरूआती स्थिति पैरों को भूमि पर फैलाने के बारे में नहीं बताया गया है। घेरण्ड संहिता और उक्त योग उपनिषद् इन दोनों में ही धनुरासन के अभ्यास से होने वाले लाभ का उल्लेख नहीं किया गया है।

(xi) मत्स्येन्द्रासन -

"उदरं पश्चिमाभासं कृत्वा तिष्ठत्ययत्नतः ।

नमितं वामपादं हि दक्षजानूपरि न्यसेत् ॥

तत्र याम्यं कूर्परं च याम्यकरेऽपि च ।

भ्रुवोर्मध्ये गतां दृष्टिः पीठं मात्स्येन्द्रमुच्यते ॥"¹⁴⁵

पेट को पीठ की ओर खींचकर पीठ को सीधा रखते हुए बाएँ पैर की एड़ी को मोड़ कर दायीं जाँघ पर रखे और उस पर दायीं कोहनी रखें तथा ठोड़ी को दाएँ हाथ पर रखकर दृष्टि को भ्रूमध्य में स्थिर करने से मत्स्येन्द्रासन होता है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में भी मत्स्येन्द्रासन को कुछ इसी तरह बताया गया है परन्तु

यहाँ ठोड़ी व दृष्टि की स्थिति के बारे में नहीं बताया गया है -

"वामोरूमूले दक्षाङ्घ्रिं जान्वोः वेष्टितपाणिना ॥

वामेन वामाङ्गुष्ठं तु गृहीतं मत्स्यपीठकम् ॥"¹⁴⁶

(xii) पश्चिमोत्तानासन -

"प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ विन्यस्तभालं चितियुग्ममध्ये ।

यत्नेन पादौ च धृतौ कराभ्यां तत्पश्चिमोत्तानमिहासनं स्यात् ॥"¹⁴⁷

दोनों पैरों को दण्ड के समान सहज भाव से भूमि पर फैला कर पैरों के अँगूठों को पकड़ कर दोनों जाँघों के बीच में सिर को रखना पश्चिमोत्तानासन होता है। इस आसन की विधि को त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में भी घेरण्ड संहिता के समान ही बताया गया है।

"प्रसार्य भुवि पादौ तु दोभ्यामङ्गुष्ठमादरात् ।

जानूपरि ललाटं तु पश्चिमोत्तानमुच्यते ॥"¹⁴⁸

दोनों पैरों को जमीन पर फैलाकर दोनों हाथों से पैर के अँगूठों को पकड़ कर सिर को घुटनों पर लगाने से पश्चिमोत्तानासन होता है।

(xiii) मयूरासन -

"पाव्योस्तलाभ्यामवलम्ब्य भूमिं तत्कूर्परस्थापितनाभिपार्श्वम् ।

उच्चासनो दण्डवदुत्थितः खे मायूरमेतत्प्रवदन्ति पीठम् ॥"¹⁴⁹

दोनों हाथों की हथेलियों को भूमि पर टिका कर दोनों कोहनियों को नाभि पार्श्व में लगा कर दोनों पैरों को पीछे की ओर डण्डे के समान उठा लेने पर मयूरासन होता है। इस आसन को इसी तरह दूसरे शब्दों से त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में बताया गया है कि दोनों हथेलियों को भूमि पर रख कर दोनों कोहनियों को नाभि के दोनों ओर लगावें फिर मोर की तरह शरीर को अधर करके दोनों पैर फैला कर सिर उठाना चाहिए।

"अवष्टम्य धरां सम्यक् तलाभ्यां हस्तयोर्द्वयोः ।

कूपरौ नाभिपार्श्वे तु स्थापयित्वा मयूरवत् ॥

समुन्नत शिरः पादं मयूरासनमिष्यते ॥"¹⁵⁰

(xiv) कुक्कुटासन -

"पद्मासनं समासाद्य जानूर्वोरन्तरे करौ ।

कर्पूराभ्यां समासीनो उच्चस्थः कुक्कुटासनम् ॥"¹⁵¹

पद्मासन में बैठकर दोनों जाँघों और घुटनों के बीच दोनों हाथों को निकालकर जमीन पर दोनों हथेलियों को टिकाकर शरीर हवा में ऊपर उठाना कुक्कुटासन होता है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में भी इसी तरह कुक्कुटासन विधि वर्णित की गई है -

"पद्मासनं सुसंस्थाप्य जानूर्वोरन्तरे करौ ।

निवेश्य भूमौ अतिष्ठेत् व्योमस्थः कुक्कुटासनः ॥"¹⁵²

(xv) उत्तान कूर्मासन -

"कुक्कुटासनबन्धस्थं कराभ्यां धृतकन्धरम् ।

पीठं कूर्मवदुत्तानमेतदुत्तानकूर्मकम् ॥"¹⁵³

कुक्कुटासन में कन्धों को दोनों हाथों से पकड़कर कछुए की तरह सीधा हो जाना उत्तान कूर्मासन कहलाता है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में भी उत्तान कूर्मासन विधि को इसी तरह वर्णित किया गया है -

"कुक्कुटासनबन्धस्यो दोभ्यां सम्बध्य कन्धरम् ।

शेते कूर्मवदुत्तान एतत् उत्तान कूर्मकम् ॥"¹⁵⁴

(xvi) योगासन -

"उत्तानौ चरणौ कृत्वा संस्थाप्योपरि जानुनोः।

आसनोपरि संस्थाप्य चोत्तानं करयुग्मकम् ॥

पूरकैर्वायुमाकृष्य नासाग्रमवलोकयेत् ।

योगासनं भवेदेतद्योगिनां योगसाधने ॥"¹⁵⁵

दोनों पैरों को उठाकर दोनों घुटनों पर रखे और दोनों हाथों को चित्त करके आसन के ऊपर रखें फिर पूरक के द्वारा वायु को अन्दर खींच कर नासिका के अग्रभाग को देखते हुए कुम्भक करें। योग का अभ्यास करते समय योगी इसे अपनाते हैं। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में योगासन की बिल्कुल अलग क्रियाविधि बताई गई है -

"गुदं नियम्य गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण समाहितः।

योगासनं भवेदेतदिति योगविदो विदुः ॥"¹⁵⁶

दायीं एड़ी को गुदा के बायीं ओर बायीं एड़ी को गुदा के दाहिनी तरफ लगाकर बैठना योगासन है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में योगासन के अन्तर्गत हाथों की स्थिति व पूरक-कुम्भक प्राणायाम का उल्लेख नहीं किया गया है।

इस प्रकार घेरण्ड संहिता के बत्तीस आसनों में सोलह आसनों का उल्लेख कुछ शब्दान्तर के साथ प्रमुख योग उपनिषदों में मिलता है तथा वज्रासन, शवासन, गुप्तासन, मत्स्यासन, गोरक्षासन, उत्कटासन, संकटासन, कूर्मासन, मण्डूकासन, उत्तान मण्डूकासन, वृक्षासन, गरुडासन, वृषासन, शलभासन, मकरासन, उष्ट्रासन, भुजंगासन इन सोलह आसनों का प्रमुख योग उपनिषदों में उल्लेख नहीं किया गया है। घेरण्ड संहिता व प्रमुख योग उपनिषदों में कुछ आसनों की केवल क्रियाविधि वर्णित है। इनसे होने वाले लाभ को नहीं बताया गया है।

मुद्रा, बन्ध व पञ्च धारणा -

घेरण्ड संहिता में घटस्थ योग की तीसरी साधना के रूप में पच्चीस मुद्राओं को वर्णित किया गया है। ये मुद्राएँ आन्तरिक अंगों, ग्रन्थियों एवं स्नायुओं के व्यायाम की प्रक्रियाएँ हैं अतः मानसिक स्थिरता के लिए तीसरे अध्याय में विशेष रूप से मुद्राओं का वर्णन किया गया है -

"महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयानं जलन्धरम्।
मूलबन्धो महाबन्धो महाबेधश्च खेचरी॥
विपरीतकरणी योनिर्वज्रोणि शक्तिचालनी।
ताडागी माण्डुकी मुद्रा शाम्भवी पञ्चधारणा॥
अश्विनी पाशिनी काकी मातंगी च भुजंगिनी।
पञ्चविंशतिमुद्राश्च सिद्धिदा इह योगिनाम्॥"

महर्षि घेरण्ड ने सोलह मुद्राओं, चार बन्धों तथा पञ्चधारणाओं के समूह की पच्चीस मुद्राएँ बताई हैं। ये मुद्राएँ सिद्धि प्रदान करने वाली तथा आनन्द देने वाली हैं। ये देवताओं के लिए भी दुर्लभ हैं तथा इस मुद्राविद्या को गुप्त रखा जाना चाहिए।

यहाँ घेरण्डसंहिता में वर्णित बन्धों, मुद्राओं तथा धारणाओं का ही विस्तृत विवेचन कर प्रमुख योग उपनिषदों से तुलनात्मक अध्ययन किया जा रहा है -

(1) बन्ध -

घेरण्ड संहिता में मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध, जालन्धर बन्ध तथा महाबन्ध इन चार बन्धों को पच्चीस मुद्राओं के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में बन्धों व मुद्राओं का अलग-अलग उल्लेख किया गया है। योगचूडामण्युपनिषद् व योगकुण्डल्युपनिषद् में मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध तथा जालन्धर

बन्ध इन त्रिबन्धों का व योगतत्त्वोपनिषद् में त्रिबन्धों के अतिरिक्त महाबन्ध का भी वर्णन किया गया है।

(i) मूलबन्ध -

"पार्ष्णिना वामपादस्य योनिमाकुञ्चयेत्ततः ।
नाभिग्रन्थिं मेरुदण्डे सुधीः संपीडय यत्नतः ॥
मेढ्रं दक्षिणगुल्फेन दृढबन्धं समाचरेत् ।
जराविनाशिनी मुद्रा मूलबन्धो निगद्यते ॥"¹⁵⁷

बायीं एड़ी से गुह्य प्रदेश को संकुचित कर दायीं एड़ी से उपस्थ को दृढतापूर्वक दबा ले और प्रयत्नपूर्वक नाभि को मेरुदण्ड से लगाने का प्रयास करना मूलबन्ध है। इसके अभ्यास से वृद्धावस्था दूर हो जाती है तथा मरुत् सिद्धि की प्राप्ति होती है अतः महर्षि घेरण्ड ने निर्जन क्षेत्र में छिप कर, आलस्य रहित हो कर व मौन हो कर प्रयत्न पूर्वक इसका अभ्यास करने के लिए कहा है। प्रमुख योग उपनिषदों में एड़ी से योनिस्थान को दबाकर गुदा को संकुचित कर अपान वायु को ऊपर उठाना मूलबन्ध कहा है। इस प्रकार इन योग उपनिषदों के अन्तर्गत इस बन्ध के अभ्यास में अपान वायु को ऊपर ले जाने का निर्देश दिया है। जो कि घेरण्ड संहिता में नहीं मिलता। योगकुण्डल्युपनिषद् के अनुसार अपान वायु को ऊपर उठाने से अपान वायु ऊपर जाकर अग्निमण्डल से मिल जाती है तथा उसके प्रभाव से संतप्त होकर सोई हुई कुण्डलिनी जाग्रत हो कर सुषुम्ना में प्रविष्ट हो जाती है। योगतत्त्वोपनिषद् में मूलबन्ध को योग सिद्ध करने वाला कहा गया है। मूलबन्ध के अभ्यास से प्राण, अपान, नाद और बिन्दु आपस में मिल जाते हैं और इस स्थिति में योगाभ्यास निस्सन्देह सफल हो जाता है -

"पार्ष्णिभागेन संपीडय योनिमाकुञ्चयेत् दृढम् ॥
अपानमूर्ध्वमुत्थाप्य योनिबन्धोऽयमुच्यते ।
प्राणापानौ नादबिन्दू मूलबन्धेन चैकताम् ॥
गत्वा योगस्य संसिद्धिं यच्छतो नात्र संशयः।"¹⁵⁸

(ii) उड्डीयान बन्ध -

"उदरे पश्चिमं तानं नाभिरूर्ध्वं तु कारयेत् ।
उड्डीनं कुरुते यस्मादविश्रान्तं महाखगः ।
उड्डीयानं त्वसौ बन्धो मृत्युमातंग केसरी ॥

समग्राद् बन्धनाद्ध्येतदुड्डीयानं विशिष्यते ।

उड्डीयाने समभ्यस्ते मुक्तिः स्वाभाविकी भवेत् ॥"¹⁵⁹

महर्षि घेरण्ड के अनुसार सभी बन्धों में उड्डीयान बन्ध प्रमुख है। इसके अभ्यास से अनायास ही मुक्ति मिल जाती है। नाभि के ऊपर के उदर भाग को पीठ की ओर समभाव से संकुचित करना, जिसके परिणामस्वरूप महाखग (प्राण) ऊपर उठता है, यह उड्डीयान बन्ध होता है। इस बन्ध को मृत्युरूपी गज के लिए सिंह के समान बताया गया है। प्रमुख योग उपनिषदों में भी त्रिबन्ध के रूप में उड्डीयान बन्ध को स्पष्ट किया है। योगकुण्डल्युपनिषद् में कुम्भक के बाद और रेचक से पूर्व उड्डीयान बन्ध लगाने का निर्देश है ताकि प्राणवायु सुषुम्ना में चली जाए। इस उपनिषद् के अनुसार वज्रासन लगा कर दोनों पैरों को हाथों से कस कर पकड़े फिर श्वास निकाल कर पेट को पीठ की ओर खींचे। नाभि के पास कन्दस्थान को दबाए, हृदय और गले को भी तनाव देकर खींचें। इसके अभ्यास से उदर सम्बन्धी विकार दूर हो जाते हैं। योगचूडामण्युपनिषद् में इस बन्ध को घेरण्ड संहिता के समान ही वर्णित किया गया है। इस उपनिषद् में भी इस बन्ध को मृत्युरूपी हाथी के लिए शेर जैसा बताया गया है।

"ओड्याणं कुरुते यस्मादविश्रान्तं महाखगः ।

आड्डियाणं तदेव स्यात् मृत्युमातंग केसरी ॥"

उदरात् पश्चिमं ताणमधो नाभेर्निगद्यते ।

ओड्याणमुदरे बन्धस्तत्र बन्धो विधीयते ॥"¹⁶⁰

उड्डीयान बन्ध लगाने से प्राणवायु रूपी पक्षी बिना रुके सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर जाता है इसलिए यह बन्ध उड्डीयान कहलाता है। इस बन्ध में नाभि से नीचे का उदर पीठ या कमर से लगाया जाता है तथा इसके अभ्यास के लिए पेट की सारी वायु निकालकर पेट को पीछे ले जाकर पीठ से लगाया जाता है। योगतत्त्वोपनिषद् के अनुसार बंधा हुआ प्राण उड़कर सुषुम्ना में चला जाता है इसलिए योगी इस बन्ध को उड्डीयान बन्ध कहते हैं - "बन्धो येन सुषुम्नायां प्राणस्तूड्डीयते यतः"। प्रमुख योग उपनिषदों में इस बन्ध को प्राणायाम के साथ किए जाने का तथा श्वास की अवस्था का भी उल्लेख मिलता है जबकि घेरण्ड संहिता में इस विषय में कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

(iii) जालन्धर बन्ध -

"कण्ठसंकोचनं कृत्वा चिबुकं हृदये न्यसेत् ।
जालन्धरे कृते बन्धे षोडशाधार बन्धनम् ॥
जालन्धरमहामुद्रामृत्योश्च क्षयकारिणी ।
सिद्धो जालन्धरो बन्धो योगिनां सिद्धिदायकः ।
षण्मासमभ्यसेद्यो हि स सिद्धो नात्र संशयः ॥"¹⁶¹

महर्षि घेरण्ड के अनुसार कण्ठ को संकुचित कर, हृदय पर ठोड़ी को रखने से जालन्धर बन्ध लगता है। इस बन्ध से सोलह आधारों का बन्ध होता है तथा यह बन्ध मृत्यु को भी जीत लेता है। यह बन्ध योगियों को सिद्धि प्रदान करता है तथा इसका छः महीने अभ्यास करने से योगी सिद्ध हो जाता है।

योगकुण्डल्युपनिषद् में पूरक के अन्त में (श्वास भरने के बाद) जालन्धर बन्ध लगाने का निर्देश दिया है तथा कण्ठ का संकोचन वायु रोकने हेतु बताया गया है। वहीं योगचूडामण्युपनिषद् में जालन्धर बन्ध सिर से टपकने वाले अमृत रस को जठराग्नि में गिर कर नष्ट होने से रोकने वाला बताया गया है -

"जालन्धरे कृते बन्धे कण्ठसंकोचलक्षणे ।
न पीयूषं पतत्यग्नौ न च वायुः प्रधावति ॥"¹⁶²

कण्ठकूप में ठोड़ी को दबा कर जालन्धर बन्ध लगाने से ब्रह्मरन्ध्र की पीयूष ग्रन्थि से निकलने वाला अमृत रस जठराग्नि में गिरकर नष्ट नहीं होता तथा इसके अभ्यास से वायु विकार से सम्बन्धित रोग नहीं होते । इस प्रकार प्रमुख योग उपनिषदों में और घेरण्ड संहिता में इस बन्ध को कण्ठ के संकोचन के रूप में परिभाषित किया गया है परन्तु इन योग उपनिषदों के अनुसार प्राणायाम में पूरक करने के बाद कुम्भक के समय जालन्धर बन्ध लगाया जाता है। इस प्रकार का निर्देश घेरण्ड संहिता में नहीं दिया गया है।

(iv) महाबन्ध -

"वामपादस्य गुल्फेन वायुमूलं निरोधयेत् ।
दक्षपादेन तद्गुल्फं संपीड्य यत्नतः सुधीः ॥
शनकैश्चालयेत्पार्ष्णि योनिमाकुञ्चयेच्छनैः ।
जालन्धरे धरेत्प्राणं महाबन्धो निगद्यते ॥"¹⁶³

बाएँ पैर की एड़ी से गुदामूल को निरुद्ध करके दाएँ पैर से प्रयत्नपूर्वक बायीं एड़ी को दबाए और धीरे-धीरे गुह्यप्रदेश का चालन करें और फिर धीरे-धीरे गुह्यप्रदेश को संकुचित कर जालन्धर बन्ध द्वारा प्राणवायु को धारण करना महाबन्ध होता है। यह मूलबन्ध, उड्डीयान तथा जालन्धर इन तीनों बन्धों का मिश्रण है। इसे सभी मुद्राओं में श्रेष्ठ बताया गया है। इसके अभ्यास से जरा व मृत्यु दूर रहती है तथा सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। इस महाबन्ध का उल्लेख प्रमुख योग उपनिषदों में केवल योगतत्त्वोपनिषद् में ही मिलता है। योगतत्त्वोपनिषद् में दायाँ पैर सामने फैलाकर इसे दोनों हाथों से पकड़ने का निर्देश है जो कि घेरण्ड संहिता से पूरी तरह अलग है।

"पाष्णिं वामस्य पादस्य योनिस्थाने नियोजयेत् ।

प्रसार्य दक्षिणं पादं हस्ताभ्यां धारयेद् दृढम् ॥

चुबुकं हृदि विन्यस्य पूरयेद् वायुना पुनः ।

कुम्भकेन यथाशक्त्या धारयित्वा तु रेचयेत् ॥"¹⁶⁴

इस योग उपनिषद् के अनुसार बाएँ पैर की एड़ी को योनिस्थान पर लगाना चाहिए। दायाँ पैर सामने फैला कर इसे दोनों हाथों से कसकर पकड़ना चाहिए। अब श्वास भरकर जालन्धर बन्ध लगाकर श्वास को अपनी सामर्थ्य के अनुसार अन्दर रोक कर धीरे-धीरे निकाल देना चाहिए। बायीं ओर से अभ्यास करने के बाद दाएँ पैर की एड़ी को योनिस्थान पर लगाकर दोनों ओर से अभ्यास करना बताया गया है। योगतत्त्वोपनिषद् ने हठयोग के बारह अंगों में से इसे एक अंग के रूप में उल्लेखित किया है लेकिन इसके अभ्यास से होने वाले लाभ की चर्चा नहीं की गई है।

(2) मुद्रा -

घेरण्डसंहिता में महामुद्रा, नभोमुद्रा, महावेध मुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, योनि मुद्रा, व्रजोणि मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, तड़ागी मुद्रा, माण्डुकी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा, काकी मुद्रा, मातंगी मुद्रा और भुजंगिनी मुद्रा इन सोलह मुद्राओं का उल्लेख किया गया है जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में इन सोलह मुद्राओं में से केवल महामुद्रा, महावेध मुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, योनि मुद्रा तथा शक्तिचालिनी मुद्राओं का ही वर्णन किया गया है। यहाँ घेरण्ड संहिता और प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित इन छः मुद्राओं का ही तुलनात्मक अध्ययन किया जा रहा है।

(i) महामुद्रा -

"पायुमुलं वामगुल्फे संपीड्य दृढयत्नतः ।

याम्यपादं प्रासार्याथ करोपात्तपदाङ्गुलिः ॥

कण्ठ संकोचनं कृत्वा भ्रुवोर्मध्यं निरीक्षयेत् ।

पूरकैर्वायुं सम्पूर्य महामुद्रा निगद्यते ॥"¹⁶⁵

घेरण्ड संहिता के अनुसार बायीं एड़ी से गुदा प्रदेश को दबाए फिर दाहिने पैर को फैलाकर हाथ से उस पैर की अँगुलियों को पकड़े तथा कण्ठ को संकुचित कर भ्रूमध्य में दृष्टि लगाए, यह महामुद्रा कहलाती है। इसके अभ्यास से यक्ष्मा, कफ, प्लीहा, ज्वर आदि रोग ठीक होते हैं तथा शरीर स्वस्थ रहता है।

योगचूण्डामण्युपनिषद् में महामुद्रा को सर्वव्याधिविनाशिनी तथा महासिद्धिदात्री बताया गया है साथ ही इसे गुप्त रखे जाने का भी निर्देश दिया गया है। इस उपनिषद् में इस मुद्रा को व्यापक रूप से स्पष्ट किया गया है।

"वक्षोन्यस्त हनुः प्रपीड्य सुचिरं योनिं च वामङ्घ्रिणा

हस्ताभ्यामनुधारयन् प्रसरितं पादं तथा दक्षिणम् ।

आपूर्य श्वसेन कुक्षियुगलं बद्ध्वा शनैः रेचयेत्

सेयं व्याधिविनाशिनी सुमहती मुद्रा नृणां कथ्यते॥"¹⁶⁶

ठोड़ी को कण्ठकूप में लगाकर बाएँ पैर की एड़ी से योनि स्थान को दबाकर दाएँ पैर को सीधा फैला कर दोनों हाथों से पैर की अँगुलियों को पकड़े तथा दोनों कुक्षियों (बगलों) में श्वास भर कर धीरे-धीरे रेचन करे। सर्वप्रथम बायीं नाक से अभ्यास करे फिर दायीं नाक से। बायीं ओर से जितनी बार अभ्यास किया जाए उतनी बार ही दाएँ पैर की एड़ी से योनि स्थान को दबा कर व बायाँ पैर फैला कर प्राणायाम सहित महामुद्रा का अभ्यास बताया गया है। इस मुद्रा के अभ्यास से पाचनशक्ति में वृद्धि होती है साथ ही कुष्ठ, अपच, बवासीर, प्रमेह आदि रोगों का नाश होता है। इस योग उपनिषद् में महामुद्रा को नाड़ीशोधक बताया गया है तथा प्राणायाम सहित इस मुद्रा के अभ्यास का निर्देश दिया गया है जबकि घेरण्ड संहिता में इस प्रकार का उल्लेख नहीं किया गया।

(ii) महावेध मुद्रा -

"महाबन्धं समासाद्य कुम्भकं चरेदुड्डीन ।

महावेधः समाख्यातो योगिनां सिद्धिदायकः ॥"¹⁶⁷

महर्षि घेरण्ड के अनुसार महाबन्ध का अभ्यास कर उड्डीयान बन्ध लगाकर कुम्भक द्वारा वायु को रोकना महावेध मुद्रा होती है। महावेध के बिना मूलबन्ध और महाबन्ध को निष्फल बताया गया है। महावेध के साथ महाबन्ध व मूलबन्ध करने वाला योगी सब योगियों में श्रेष्ठ बताया गया है। इसके अभ्यास से बुढ़ापा व मृत्यु का भय नहीं होता। इसको गुप्त रखे जाने का निर्देश दिया है। योगतत्त्वोपनिषद् में इसका लक्षण कुछ इस तरह बताया गया है -

"महाबन्ध स्थितो योगी कृत्वा पूरकमेक धीः॥

वायुना गतिमावृत्य निभृतं कण्ठमुद्रया॥"¹⁶⁸

अर्थात् महाबन्ध लगाकर पूरक करके जालन्धर बन्ध लगाकर प्राणवायु को रोकना महावेध है तथा सिद्ध योगी महावेध का निरन्तर अभ्यास करते हैं। इस प्रकार घेरण्ड संहिता में महावेध में महाबन्ध व उड्डीयान बन्ध को बताया है जबकि योगतत्त्वोपनिषद् में महाबन्ध व जालन्धर बन्ध के साथ महावेध मुद्रा का अभ्यास बताया गया है।

(iii) खेचरी मुद्रा -

"जिह्वाधो नाडीं संछित्य रसनां चालयेत्सदा ।

दोहयेन्नवनीतेन लौहयन्त्रेण कर्षयेत् ॥

एवं नित्यं समभ्यासाल्लम्बिका दीर्घतां व्रजेत् ।

यावत्गच्छेद्भ्रुवोर्मध्ये तदा सिध्यति खेचरी॥"¹⁶⁹

घेरण्ड संहिता के अनुसार जिह्वा और जिह्वा मूल को मिलाने वाली नाड़ी (जिह्वा के नीचे का तन्तु) का छेदन कर जिह्वा के अग्रभाग का निरन्तर चालन करें, मक्खन से दोहन करते हुए जिह्वा को लोहे के चिमटे से खींचें। प्रतिदिन के अभ्यास से जिह्वा इतनी लम्बी हो जाती है कि वह भौंहों के मध्य तक पहुँच जाती है। जिह्वा को क्रमशः तालुमूल में प्रवेश कराए फिर जिह्वा को उलटकर कपालकुहर (कपालरन्ध्र) में ले जाना और दोनों भौंहों के मध्य भाग में दृष्टि रखना यह खेचरी मुद्रा होती है। खेचरी का अभ्यास करने वाले साधक को मूर्च्छा, क्षुधा, तृष्णा, आलस्य आदि नहीं सताते। रोग, जरा और मृत्यु का भय नहीं रहता। शरीर देव तुल्य हो जाता है। उस साधक के शरीर को न अग्नि जला सकती है, न वायु सुखा सकती है, न जल भिगो सकता है और न ही विष का असर होता है। कपाल और जिह्वा के संयोग से अनेक विलक्षण रसों की उत्पत्ति होती है जिनका रसास्वादन कर साधक आनन्द की अनुभूति करता है तथा खेचरी

अभ्यास से समाधि सिद्धि होती है। योगतत्त्वोपनिषद् व योगचूडामण्युपनिषद् में कपालकुहर में जिह्वा को पलटकर प्रविष्ट कराकर भूमध्य दृष्टि को खेचरी मुद्रा बताया गया है -

"अन्तः कपालकुहरे जिह्वां व्यावृत्य धारयेत् ॥

भूमध्यदृष्टिरप्येषा मुद्रा भवति खेचरी ॥"¹⁷⁰

"कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा ।

भुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥"¹⁷¹

योगचूडामण्युपनिषद् में बताया गया है कि खेचरी मुद्रा लगाने पर भूमध्य खाली स्थान ख (आकाश) पर एकाग्र होता है तथा इसी स्थान पर जीभ लगी रहती है। घेरण्ड संहिता के समान ही भूख, प्यास, निद्रा, मूर्च्छा, रोग, दुःख, कर्मबन्धन आदि नहीं सताते ये खेचरी अभ्यास के फल बताए गए हैं।

योगकुण्डल्युपनिषद् के द्वितीय अध्याय में खेचरी को विद्या बताया गया है साथ ही खेचरी विद्या के अभ्यास का फल, खेचरी बीजमंत्र, खेचरी का अभ्यास क्रम व प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। घेरण्ड संहिता में जीभ के तन्तु को काटने के उपकरण, जीभ को कपालकुहर तक ले जाने के अभ्यास का समय तथा खेचरी विद्या की सिद्धि की अवधि का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु योगकुण्डल्युपनिषद् में उपकरण, प्रक्रिया, अभ्यास अवधि का विस्तृत विवेचन मिलता है साथ ही योग्य गुरु के सान्निध्य में क्रमशः धीरे-धीरे अभ्यास करने व इसे गुप्त रखे जाने का भी निर्देश दिया गया है।

(iv) विपरीतकरणी मुद्रा -

"उर्ध्वं च योजयेत्सूर्यं चन्द्रं चाप्यध आनयेत् ।

विपरीतकरी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥

भूमौ शिरश्च संस्थाप्य करयुग्मं समाहितः ।

उर्ध्वपादः स्थिरो भूत्वा विपरीतकरी मता ॥"¹⁷²

महर्षि घेरण्ड के अनुसार नाभि में सूर्य नाड़ी तथा तालुमूल में चन्द्रनाड़ी का वास है। सूर्यनाड़ी के अमृतपान से प्राणी की मृत्यु होती है लेकिन चन्द्रनाड़ी के अमृतपान से मृत्यु का भय नहीं रहता अतः सूर्यनाड़ी को ऊपर तथा चन्द्रनाड़ी नीचे करना विपरीतकरणी मुद्रा है। सिर को भूमि में लगा कर दोनों हाथ टेक ले और दोनों पैरों को ऊपर उठा कर कुम्भक द्वारा वायु को रोकें इसे ही विपरीतकरणी मुद्रा कहते हैं। यह

गोपनीय मुद्रा है। इस मुद्रा के नित्य अभ्यास से जरा-मृत्यु नष्ट हो जाती है तथा साधक इसके अभ्यास से सब लोकों में सिद्धि पाकर प्रलयकाल में भी दुःखी नहीं होता।

इस प्रकार घेरण्ड संहिता में विपरीतकरणी मुद्रा को सूर्यनाड़ी तथा चन्द्रनाड़ी के सन्दर्भ में समझाया गया है। यहाँ अवस्था या स्थिति का वर्णन कर इसे सब प्रकार से गोपनीय बताया गया है। योगतत्त्वोपनिषद् में सिर नीचा करके पैर ऊपर उठाकर थोड़ी देर रुकने को विपरीतकरणी मुद्रा कहा है-

"अधः शिरश्चोर्ध्वपादः क्षणं स्यात्प्रथमे दिने ॥

क्षणात्तु किञ्चिदधिकमभ्यसेत्तु दिने दिने ॥"¹⁷³

इसे सर्वव्याधिविनाशिनी कहा गया है। इसके नियमित अभ्यास से समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक दिन एक-एक क्षण भर निरन्तर इसका अभ्यास बढ़ाना चाहिए। जो प्रतिदिन एक पहर तक इसका अभ्यास करता है वह काल को अपने वश में कर लेता है। इस योग उपनिषद् में विपरीतकरणी मुद्रा की जो विधि बताई गई है वह शीर्षासन विधि के समान ही प्रतीत होती है।

यहाँ चन्द्र व सूर्य तथा कुम्भक द्वारा वायु को रोकने का उल्लेख नहीं किया गया है, परन्तु घेरण्डसंहिता के समान इस मुद्रा के नियमित अभ्यास से होने वाले लाभ को बताया गया है।

(v) योनिमुद्रा -

"सिद्धासनं समासाद्य कर्णचक्षुर्नसामुखम् ।

अङ्गुष्ठतर्जनी मध्यानामाद्यैः पिदधीत वै ॥

प्राणमाकृष्य काकीभिरपाने योजयेत्ततः ।

षट्चक्राणि क्रमाद्ध्यात्वा हुं हंसमनुना सुधीः ॥

चैतन्यमानयेद्वीं निद्रिता या भुजङ्गिनी ।

जीवेन सहितां शक्तिं समुत्थाप्य पराम्बुजे ॥

शक्तिमयो स्वयं भूत्वा परं शिवेन संगमम् ।

नानासुखं विहारं च चिन्तयेत्परमं सुखम् ॥

शिवशक्तिसमायोगादेकान्तं भुवि भावयेत् ।

आनन्दमानसो स्वयं भूत्वा अहं ब्रह्मेति संभवेत् ॥"¹⁷⁴

घेरण्ड संहिता के अनुसार सिद्धासन में बैठकर दोनों हाथ के अँगूठों से कानों को, दोनों हाथ की तर्जनी अँगुलियों से आँखों को, मध्यमा से नाक को तथा अनामिका से मुख को बन्द कर दें। काकी मुद्रा द्वारा प्राणों को खींच कर अपान से मिला दें फिर षट्चक्रों का ध्यान करते हुए 'हूँ' या 'हंस' मन्त्र से कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर जीवात्मा को सहस्रार में ले जाए तथा 'मैं शिव के साथ शक्तिमय होकर परम सुखपूर्वक विहार कर रहा हूँ तथा मैं आनन्दमय स्वयंभू ब्रह्म हो गया हूँ' इस प्रकार की भावना करें, यही योनिमुद्रा है। इस मुद्रा को अत्यन्त गोपनीय तथा देवताओं के लिए भी असहज बताया गया है। इस मुद्रा के नियमित अभ्यास से समस्त महापातक व उपपातक नष्ट हो जाते हैं तथा समाधि की प्राप्ति होती है।

प्रमुख योग उपनिषदों में योनिमुद्रा का नामोल्लेख नहीं मिलता परन्तु इसी प्रकार के अभ्यास की मुद्रा का उल्लेख षण्मुखी नाम से किया गया है, जिसे नादयोग की क्रिया बताया गया है। योगचूडामण्युपनिषद् की षण्मुखी मुद्रा में भी दो कान, दो आँखें, मुख व नाक इन छः अंगों की एक विशेष स्थिति का उल्लेख मिलता है जो कि योनिमुद्रा के समान है। घेरण्ड संहिता में षट्चक्र का ध्यान करते हुए 'हूँ' या 'हंस' मन्त्र से कुण्डलिनी जागरण कर जीवात्मा को सहस्रार में ले जा कर ब्रह्मस्वरूप हो जाना योनिमुद्रा बताया है। जबकि योगचूडामण्युपनिषद् में षट्चक्र ध्यान व कुण्डलिनी जागरण का उल्लेख न करके अपान वायु को प्राणवायु में मिला कर इसे सहस्रार में ले जाने व परमात्मा के ध्यान में तन्मय हो जाने का उल्लेख है -

"सम्बद्धासन मेढ्रमंघ्रि युगलं कर्णाक्षिनासापुटद्
द्वाराण्यङ्गुलिभिर्नियम्य पवनं वक्त्रेण वा पूरितम् ।
बध्वा वक्षसि वहनयपानसहितं मूर्ध्नि स्थिरं धारये
देवं यान्ति विशेषतत्त्वसमतां योगीश्वरास्तन्मनः॥"¹⁷⁵

षण्मुखी मुद्रा के अभ्यास से जब प्राणवायु सहस्रार चक्र में पहुँच जाती है तब अनाहत नाद की सिद्धि होना बताया गया है।

(vi) शक्तिचालिनी मुद्रा -

"नाभिं सम्वेष्ट्य वस्त्रेण न च नग्नो बहिः स्थितः।
गोपनीयगृहे स्थित्वा शक्तिचालनमभ्यसेत् ॥
वितस्तिप्रमितं दीर्घं विस्तारे चतुरङ्गुलम् ।

मृदुलं धवलं सूक्ष्मं वेष्टनाम्बरलक्षणम् ॥
 एवमम्बरयुक्तं च कटिसूत्रेण योजयेत् ।
 संलिप्य भस्मनागात्रं सिद्धासनमाचरेत् ॥
 नासाभ्यां प्राणमाकृष्याप्यपाने योजयेद् बलात् ।
 तावदाकुञ्चयेद् गुह्यमश्विनीमुद्रया शनैः ॥
 यावद्गच्छेत्सुषुम्णायां हठाद्वायुः प्रकाशयेत् ।
 तदा वायुप्रबन्धेन कुम्भिका च भुजङ्गिनी ॥¹⁷⁶

कुण्डलिनी जाग्रत करने की एक यौगिक विधि शक्तिचालिनी मुद्रा है। मूलाधार में कुण्डलिनी साढ़े तीन फेरे या कुण्डल लगाए हुए सर्पिणी के भाँति सोयी हुई है। इस कुण्डलिनी के सोये हुए रहने पर जीव पशु (अज्ञानी) बना रहता है। जिस प्रकार चाबी से ताला खुलता है उसी प्रकार कुण्डलिनी जागरण से ब्रह्मरन्ध्र खुलता है। नाभि को वस्त्र से लपेटकर एकान्त स्थान पर इसका अभ्यास करना चाहिए।

बित्तेभर (नौ इन्च) चौड़े व चार अंगुल (तीन इन्च) लम्बे सफेद कोमल वस्त्र को नाभि पर रख कर कटिसूत्र में बाँध दें। शरीर पर भस्म लेपन कर सिद्धासन में बैठें और प्राण को खींच कर अपान से युक्त करें। जब तक सुषुम्णा द्वार से वायु चलती हुई प्रकाशित न हो, तब तक अश्विनी मुद्रा से गुदा द्वार को संकुचित करें। इस प्रकार वायु के रुकने से कुम्भक द्वारा सर्पाकार कुण्डलिनी जाग्रत होकर ऊपर मार्ग में खड़ी हो जाती है अर्थात् सहस्रार में परमात्मा से मिल जाती है। शक्तिचालिनी मुद्रा के बिना योनिमुद्रा सिद्ध नहीं होती अतः योनिमुद्रा से पहले शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास बताया गया है।

महर्षि घेरण्ड के अनुसार यह एक गुप्त अभ्यास है जिसके प्रतिदिन अभ्यास से अनेक सिद्धियों की प्राप्ति होती है साथ ही विग्रहसिद्धि की प्राप्ति होती है व सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

प्रमुख योग उपनिषदों में कुण्डलिनी का स्थान व कार्य तथा इसे जागरित करने की प्रक्रिया व नियमों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है।

कुण्डलिनी जागरण के सरस्वती चालन, प्राणायाम, मन एकाग्रता तथा शक्तिचालन आदि उपाय बताए गए हैं। योगकुण्डल्युपनिषद् में कुण्डलिनी जागरण के जो सरस्वती नाड़ी चालन व प्राणायाम ये दो उपाय बताए गए हैं वे शक्तिचालन के ही उपाय हैं। योगचूडामण्युपनिषद् में शक्तिचालिनी मुद्रा की विधि के साथ-साथ आहारचर्या का भी

निर्देश दिया गया है। घेरण्ड संहिता के समान ही कुण्डलिनी शक्ति मोक्ष का मार्ग खोल देने वाली कुंजी बताई गई है। प्रक्रिया विधि घेरण्ड संहिता से बिल्कुल अलग प्रकार की बताई गई है कि दोनों हाथों की हथेलियों को एक दूसरे के ऊपर रखकर पद्मासन व ठोड़ी को छाती पर लगाकर परमात्मा का ध्यान करते हुए बार-बार वायु को ऊपर खींचे और फिर बाहर निकाल दें -

**"कृत्वा सम्पुटितौ करौ दृढतरं बध्वा तु पद्मासनं
गाढं वक्षसि संनिधाय चिबुकं ध्यानं च तच्चेष्टितम् ।
वारं वारमपानमूर्ध्वमनिलं प्रोच्चारयेत् पूरितं
मुञ्चन् प्राणमुपैति बोधमतुलं शक्ति प्रभावान्नरः ॥"¹⁷⁷**

इस प्रकार शक्तिचालन मुद्रा कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत वाली बताई गई है। जिसके अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना में प्रवेश कर जाती है।

इस प्रकार घेरण्ड संहिता की तरह यहाँ नाभि पर वस्त्र रखने, शरीर पर भस्म लेपने, पद्मासन लगाने तथा अश्विनी मुद्रा द्वारा गुदा द्वार को संकुचित करने का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

(3) पञ्च धारणा मुद्रा -

घेरण्ड संहिता में पच्चीस मुद्राओं के अन्तर्गत ही पृथिवी, आम्भसी, आग्नेयी, वायवीय तथा आकाशी इन पञ्चधारणाओं का विवेचन किया गया है। पृथिवी, अग्नि, जल, वायु तथा आकाश इन पाँच तत्त्वों पर प्राणशक्ति और मन को केन्द्रित कर इन पञ्च भौतिक तत्त्वों पर अधिकार करना ही पञ्चधारणा की पूर्णता मानी गई है। घेरण्ड संहिता में प्रत्येक धारणा मुद्रा के तत्त्व, वर्ण, बीजमन्त्र, इष्टदेवता, धारणा विधि तथा लाभ का वर्णन किया गया है। महर्षि घेरण्ड के अनुसार पञ्चधारणा सिद्ध हो जाने पर मनुष्य सशरीर स्वर्ग में आ-जा सकता है। गति मन के समान हो जाती है और खेचरत्व की प्राप्ति होती है।

घेरण्ड संहिता तथा प्रमुख योग उपनिषदों में धारणा का तुलनात्मक अध्ययन -

यौगिक ग्रन्थ	पञ्च महाभूत	स्थान	ध्यान-अवधि	बीज मंत्र	वर्ण	आकार	देवता व स्वरूप	फल/लाभ
घेरण्ड संहिता	पृथ्वी महाभूत	हृदय	पाँच घड़ी तक (लगभग दो घण्टे)	लं	हरे लाल के समान पीला	वर्गाकार	ब्रह्म	पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर मृत्युञ्जय और सिद्ध होकर पृथ्वी पर विचरण करता है।
त्रिशिखि-ब्राह्मणोपनिषद्		घुटनों से पैरों तक	"	उल्लेख नहीं	पीला	उल्लेख नहीं	पृथ्वी अंश पर चतुर्भुज, मुकुटधारी अनिरुद्ध रूप नारायण का ध्यान	उल्लेख नहीं
योगतत्त्वोप-निषद्		पैरों से लेकर घुटनों तक	उल्लेख नहीं	लं			चतुर्भुज, चतुर्मुख तेजोमय ब्रह्म	पृथ्वी तत्त्व की धारणा से योगी की मृत्यु नहीं होती

घेरण्ड संहिता	जल महाभूत	हृदय	पाँच घड़ी तक (लगभग दो घण्टे)	वं	शंख, चक्र या कुन्द के समान शुभ्र	अर्धचन्द्रा कार	विष्णु	जल से मृत्यु नहीं होती, सभी दुःख- ताप से मुक्ति व पाप नष्ट हो जाते हैं।
त्रिशिखि- ब्राह्मणोपनिषद्		घुटनों से कमर तक	दस नाड़ी	उल्लेख नहीं	सफेद	अर्धचन्द्रा कार	जल अंश पर प्रद्युम्न देवता का ध्यान	उल्लेख नहीं
योगतत्त्वोप- निषद्		घुटनों से गुदा तक	उल्लेख नहीं	वं	सफेद	अर्धचन्द्रा कार	चतुर्भुज, मुकुट मण्डित, शुद्ध स्फटिक स्वरूप विष्णु	सभी पापों का नाश हो जाता है तथा जल में डूबने से योगी की मृत्यु नहीं होती।
घेरण्ड संहिता	अग्नि महाभूत	नाभि	पाँच घड़ी तक (लगभग दो घण्टे)	रं	इन्द्रगोप कोट के समान लाल	त्रिकोण	रुद्र	अग्नि से मृत्यु नहीं होती और मृत्यु का भय नहीं रहता

त्रिशिखि- ब्राह्मणोपनिषद्		देह मध्य से पीठ के अन्तिम छोर तक	पन्द्रह नाड़ी	उल्लेख नहीं	सिंदूरी	जाज्वल्य मान	अग्नि अंश पर संकर्षण रूप नारायण का ध्यान	उल्लेख नहीं
योगतत्त्वोप- निषद्		गुदा से हृदय तक	उल्लेख नहीं	रं	लाल	त्रिकोण/ त्रिभुजाका र	तीन यक्ष वाले, दान देने वाले, तरुण आदित्य के समान, सर्वांग भस्म, सुप्रसन्न मन रुद्र	अग्नि तत्त्व की धारणा से योगी को अग्नि नहीं चला सकती।
घेरण्ड संहिता	वायु महाभूत	उल्लेख नहीं	पाँच घड़ी तक (लगभग दो घण्टे)	यं	धुएं के समान हल्का काला	उल्लेख नहीं	ईश्वर	वायु से मृत्यु नहीं होती। आकाश गमन की शक्ति प्राप्त होती है तथा जरा व मृत्यु नहीं आती ।

त्रिशिखि- ब्राह्मणोपनिषद्		नाभि से नाक के अन्त तक	बीस नाड़ी	उल्लेख नहीं	धुएं के समान	यज्ञवेदी	वायु अंश पर संकर्षण रूप नारायण का ध्यान	उल्लेख नहीं
योगतत्त्वोप- निषद्		हृदय से भू मध्य	उल्लेख नहीं	यं	कृष्ण	षट्कोण	सर्वज्ञ, ईश्वर, विश्वतोमुख, मरुत	वायु के समान आकश-गमन की योग्यता आ जाती है। वायु से भय नहीं होता है और न वायु से मृत्यु होती है।
घेरण्ड संहिता	आकाश महाभूत	उल्लेख नहीं	पाँच घटी तक (लगभग 2 घण्टे)	हं	समुद्र के नीले शुद्ध जल के समान	उल्लेख नहीं	सदाशिव	देवत्व और मुक्ति की प्राप्ति । मृत्यु नहीं आती तथा प्रलय में भी दुःख नहीं होता ।
त्रिशिखि- ब्राह्मणोपनिषद्		नाक से ब्रह्मरन्ध्र	बीस घटी तक	उल्लेख नहीं	गहरा नीला	उल्लेख नहीं	आकाश अंश पर परमात्म-	उल्लेख नहीं

		तक					स्वरूप वासुदेव का स्मरण	
योगतत्त्वोप- निषद्		भ्रूमध्य से लेकर मूर्धान्त (सिर) तक	उल्लेख नहीं	हं	धूम्र	गोलाकार	बिन्दुरूप, व्योमाकार, शुद्ध स्फटिक, पञ्चवक्त्र, दशबाहु, त्रिलोचन, सर्वकारण कारण, उमार्धदेव शंकर	आकाश में गमन की शक्ति आ जाती है तथा योगी को हर स्थान पर सुख मिलता है।

तालिका संख्या 5.1 घेरण्ड संहिता तथा प्रमुख योग उपनिषदों में धारणा की तुलना

योगतत्त्वोपनिषद् व त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में भी शरीरस्थ पञ्च महाभूतों पर मन लगाना धारणा कही गई है। पञ्च धारणाओं की विधि, शरीरस्थ धारणा का स्थान, आकृति, रंग, बीजाक्षर, देवता आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् व योगतत्त्वोपनिषद् में प्रत्येक पञ्च धारणाओं की एकाग्रता का स्थान पृथक्-पृथक् बताया गया है जबकि घेरण्ड संहिता में हृदय (पृथ्वी व जल का) और नाभि (अग्नि का) को ही बताया गया है। योगतत्त्वोपनिषद् व त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में पञ्चधारणाओं का रंग घेरण्ड संहिता के समान ही है केवल योगतत्त्वोपनिषद् में आकाश धारणा का रंग धूम्र बताया गया है। योगतत्त्वोपनिषद् और घेरण्ड संहिता में पञ्चधारणाओं के अधिष्ठाता देव समान ही है केवल जल का नारायण देव योगतत्त्वोपनिषद् में अलग बताया गया है। घेरण्ड संहिता में पृथ्वी, जल, अग्नि के आकार का ही उल्लेख किया गया है परन्तु योगतत्त्वोपनिषद् में पाँचों धारणाओं के आकार को बताया गया है। घेरण्ड संहिता के समान ही योगतत्त्वोपनिषद् में पञ्चधारणाओं के अभ्यास का फल बताया गया है लेकिन त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में धारणाओं के अभ्यास का फल पृथक्-पृथक् न बताकर सामूहिक रूप से पञ्च महाभूतों पर अधिकार होना बताया है।

योगतत्त्वोपनिषद् में सामूहिक रूप से पञ्चधारणाओं पर ध्यान की अवधि घेरण्डसंहिता के समान पाँच घड़ी बताई गई है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में प्रत्येक धारणा पर ध्यान की अवधि भिन्न-भिन्न बताई है।

प्रत्याहार -

घेरण्ड संहिता में घटस्थ योग की चौथी साधना के रूप में प्रत्याहार का वर्णन किया गया है। महर्षि घेरण्ड का मानना है कि प्रत्याहार से जब मन अन्तर्मुखी और केन्द्रित हो रहा हो तब प्राणों को जाग्रत करना सरल हो जाता है। प्रत्याहार के पश्चात् स्वाभाविक रूप से सूक्ष्म स्तर के अनुभव व सूक्ष्म जगत् की अनुभूतियाँ होती हैं, जिससे कि प्राणों को जाग्रत करने व मन को अन्तर्मुखी बनाने के लिए अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं पड़ती इसलिए प्राणायाम से पूर्व प्रत्याहार का वर्णन किया है।

"यस्य विज्ञानमात्रेण कामादिरिपुनाशनम् ॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥
 पुरस्कारं तिरस्कारं सुश्राव्यं वा भयानकम् ।
 मनस्तमान्नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥
 सुगन्धे वाऽपि दुर्गन्धे मनो घ्राणेषु जायते ।
 तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥
 मधुराम्लकतिकलातादिरसं गतं यदा मनः ।
 तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥¹⁷⁸

महर्षि घेरण्ड के अनुसार चंचल मन जहाँ-जहाँ विचरण करे उसे वहाँ से हटाकर आत्मा के वश में करें। तिरस्कार-पुरस्कार तथा रुचिकर व अरुचिकर विषयों से मन को हटाकर आत्मा के वश में करें। सुगन्ध व दुर्गन्ध से मन को हटावें। खट्टा, मीठा, तीखा आदि रसों की ओर मन आकृष्ट हो तो उसे वहाँ से हटाकर आत्मा में लगावें, यही प्रत्याहार है। इस प्रकार मन की अन्तर्मुखी अवस्था को प्रत्याहार बताया गया है। प्रत्याहार का अभ्यास करने से कामक्रोध आदि षट्शत्रुओं का नाश होता है।

अमृतनादोपनिषद्, त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, योगचूडामण्युपनिषद् तथा योगतत्त्वोपनिषद् में भी प्रत्याहार के विषय में इसी प्रकार का वर्णन किया गया है। घेरण्ड संहिता में प्रत्याहार को थोड़ा विस्तार से बताया गया है जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में संक्षिप्त वर्णन मिलता है। अमृतनादोपनिषद् के अनुसार इन्द्रियों तथा मन को बाह्य विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी करना प्रत्याहार है -

"शब्दादि विषयान् पञ्च मनश्चैवातिचञ्चलम् ।

चिन्तयेत् आत्मनो रश्मीन् प्रत्याहारः स उच्यते ॥"¹⁷⁹

अर्थात् इन्द्रियों, तन्मात्राओं व मन को विषयों से हटाकर इनको सूर्य सदृश अपनी आत्मा की किरणों के रूप में देखें अर्थात् इनको आत्म चिन्तन में लगाना प्रत्याहार है। योगतत्त्वोपनिषद् में इन्द्रियों को स्व विषयों से हटाना प्रत्याहार बताया है तथा प्रत्याहार के अभ्यास में केवल कुम्भक का निर्देश दिया है -

"इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो यत् प्रत्याहारं स्फुटम् ।

योगी कुम्भकमास्थाय प्रत्याहारः स उच्यते ॥"¹⁸⁰

योगचूडामण्युपनिषद् के अनुसार प्रत्याहार के अभ्यास से मन के दोष दूर होते हैं तथा ज्ञानेन्द्रियों को देखने-सुनने आदि के विषयों से हटाने का अभ्यास प्रत्याहार बताया है।

प्राणायाम -

प्राणायाम घेरण्ड संहिता के सप्तांग योग का पाँचवाँ अंग है। प्राणायाम का तात्पर्य प्राणशक्ति का विभिन्न रूपों में सावधानीपूर्वक नियमन करना है। महर्षि घेरण्ड के अनुसार प्राणायाम के अभ्यास मात्र से मनुष्य देवतुल्य हो जाता है। प्राणायाम की विभिन्न विधियों या प्रकारों का वर्णन करने से पूर्व उन्होंने प्राणायाम योग्य उचित स्थान, काल व मिताहार तथा नाडीशुद्धि के महत्त्व पर बल दिया है -

"आदौ स्थानं तथा कालं मिताहारं तथापरम् ।

नाडीशुद्धिश्च ततः पश्चात् प्राणायामं च साधयेत् ॥"¹⁸¹

(i) स्थान निर्णय -

"दूरदेशे तथाऽरण्ये राजधान्यां जनान्तिके ।

योगारम्भं न कुर्वीत कृतश्चेत्सिद्धिर्हा भवेत् ॥

अविश्वासं दूरदेशे अरण्ये रक्षिवर्जितम् ।

लोकारण्ये प्रकाशश्च तस्मात्त्रीणि विवर्जयेत् ॥

सुदेशे धार्मिके राज्ये सुभिक्षे निरूपद्रवे ।

कृत्वा तत्रैकं कुटीरं प्राचीरैः परिवेष्टितम् ॥

वापी कूपतडागं च प्राचीर मध्यवर्ति च।

नात्युच्चं नातिनिम्नं च कुटीरं कीटवर्जितम् ॥

सम्यग्गोमयलिप्तं च कुटीरं तत्र निर्मितम् ।

एवं स्थानेषु गुप्तेषु प्राणायामं समभ्यसेत् ॥"¹⁸²

प्राणायाम के अभ्यास से पूर्व सर्वप्रथम उपयुक्त स्थान का चुनाव करना चाहिए। दूरदेश में अविश्वास बना रहता है, अरण्य (वन) रक्षकरहित होता है तथा जनसमूह या नगर चकाचौंध व कोलाहल युक्त होते हैं अतः ये तीनों स्थान प्राणायाम के लिए वर्जित बताए गए हैं।

जो देश या स्थान धार्मिक हो, उपद्रव रहित हो, जहाँ खाद्य पदार्थ सुलभ हो, वहाँ कुटिया बनानी चाहिए, जिसके चारों तरफ दीवार हो, जिसमें कुआँ या जलाशय हो।

कुटिया की भूमि ना अधिक ऊँची और ना अधिक नीची होनी चाहिए। कुटिया गोबर से लीपी हुई कीटाणु आदि से रहित स्वच्छ व एकान्त स्थान पर हो, वहाँ प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में भी योगाभ्यास हेतु उपयुक्त स्थान का उल्लेख किया गया है -

विविक्तदेशमास्थाय सर्वसम्बन्धवर्जितः ॥

योगाङ्गद्रव्यसम्पूर्णं तत्र दारुमये शुभे ।

आसने कल्पिते दर्भकुशकृष्णाजिनादिभिः ॥

तावदासनमुत्सेधे तावद् पदव्यसमायते ।

उपविश्यासनं सम्यक् स्वस्तिकादि यथारुचि ॥¹⁸³

साधक को सभी सम्बन्धों का परित्याग कर एकान्त स्थान पर जाकर योगाभ्यास करना चाहिए। जहाँ योगाभ्यास के लिए आवश्यक वस्तुएँ हो। इस उपनिषद् में लकड़ी के आसन का उल्लेख किया गया है, जो दो व्यक्तियों के बैठने योग्य जितना चौड़ा हो तथा भूमि से ऊँचा हो तथा आसन दर्भ, कुशा या कृष्णमृग की खाल से ढका होना चाहिए। इस प्रकार के आसन का उल्लेख घेरण्ड संहिता में भी किया गया है -

"कुशासने मृगाजिने व्याघ्राजिने च कम्बले ।

स्थूलासने समासीनः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥¹⁸⁴

योगतत्त्वोपनिषद् में भी प्राणायाम हेतु उचित स्थान व आसन का विस्तृत उल्लेख किया गया है-

"प्राणायामं ततः कुर्यात्पद्मासनगतः स्वयम् ।

सुशोभनं कुर्यात्सूक्ष्मद्वारं तु निर्व्रणम् ॥

सुष्ठु लिप्तं गोमयेन सुधया वा प्रयत्नतः ।

मत्कुणैर्मशकैर्लुतैर्वर्जितं च प्रयत्नतः ॥

दिने दिने च संमृष्टं संमार्जन्या विशेषतः ।

वासितं च सुगन्धेन धूपितं गुग्गुलादिभिः ॥

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ।

तत्रोपविश्य मेधावी पद्मासनसमन्वितः ॥"¹⁸⁵

अर्थात् पद्मासन लगाकर प्राणायाम करना चाहिए । एक सुन्दर व छोटी सी कुटिया होनी चाहिए, जिसका द्वार छोटा हो और दीवारों में छेद ना हो। कुटिया को गोबर से

लीपना चाहिए या चूने से इसकी पुताई करनी चाहिए। कुटिया खटमल, मच्छर, मकड़ी आदि जीवों से रहित होनी चाहिए। कुटिया को प्रतिदिन झाड़ू से साफ करना चाहिए और गुग्गुलु आदि से सुगन्धित रखना चाहिए। योगी का आसन बहुत ऊँचा या नीचा नहीं होना चाहिए। कुशा के आसन पर मृगचर्म बिछाकर और उसके ऊपर कपड़ा बिछाकर पद्मासन लगाना चाहिए।

इस प्रकार घेरण्ड संहिता में प्राणायाम योग्य स्थान का ही उल्लेख मिलता है जबकि इन योग उपनिषदों में प्राणायाम योग्य स्थान के साथ-साथ आसन आदि का भी वर्णन किया गया है।

(ii) कालनिर्णय -

"वसन्ते वापि शरदि योगाभ्यासं समाचरेत् ।

तथा योगो भवेत्सिद्धो विनायाससेन कथ्यते ॥"¹⁸⁶

महर्षि घेरण्ड के अनुसार योगाभ्यास प्रारम्भ करने वाले अनभ्यासी साधक को वसन्त और शरद् ऋतु में अभ्यास शुरू करना चाहिए। इन ऋतुओं में योगाभ्यास शुरू करने से शीघ्र योगसिद्धि तथा रोगों की निवृत्ति होती है। हेमन्त, शिशिर, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में योगाभ्यास प्रारम्भ करने से रोग उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार घेरण्ड संहिता में प्राणायाम या योगाभ्यास प्रारम्भ करने के लिए वसन्त (चैत्र-वैशाख महीना) शरद् ऋतु (भाद्रपद-मार्गशीर्ष महीना) को सर्वोत्तम माना है। प्रमुख योग उपनिषदों में प्राणायाम या योगाभ्यास प्रारम्भ करने के लिए किसी ऋतु या मास विशेष का उल्लेख नहीं किया गया है।

(iii) मिताहार -

घेरण्ड संहिता के अनुसार जो साधक योगाभ्यास के आरम्भ में मिताहार नहीं करता, वह अनेक रोगों से ग्रसित हो जाता है तथा उसका योग सिद्ध नहीं होता अतः आहार संयम सम्बन्धी कुछ नियम बताए गए हैं, जिसे मिताहार कहा है। निर्मल, सुमधुर और सुरस द्रव्य से सन्तोषपूर्वक आधा पेट भरना और आधा खाली रखना चाहिए। पेट के आधे भाग को अन्न से तीसरे भाग को जल से भरना चाहिए तथा चौथे भाग को वायु संचालन के लिए खाली रखा जाना चाहिए।

"शुद्धं सुमधुरं स्निग्धमुदरार्धविवर्जितम् ।

भुज्यते सुरसप्रीत्या मिताहारमिमं विदुः ॥

अन्नेन पूरयेदर्थं तोयेन तु तृतीयकम् ।

उदरस्य तृतीयांशं संरक्षेद्वायुचारणे ॥¹⁸⁷

इस प्रकार पेट भर भोजन करना वर्जित बताया गया है। साधक को मिताहारी होकर सन्तुलित आहार ग्रहण करना चाहिए क्योंकि प्रतिकूल या अनियमित भोजन करने से बीमारियाँ होने की सम्भावना रहती है।

घेरण्ड संहिता में पथ्य या अनुकूल आहार तथा निषिद्ध आहार का विस्तृत वर्णन किया गया है। उपयुक्त व निषिद्ध फलों, सब्जियों व अनाजों का भी उल्लेख किया गया है।

(क) पथ्य आहार -

महर्षि घेरण्ड साधक के लिए पथ्य आहार के बारे में बतलाते हैं कि - "चावल, जौ का सत्तू, गेहूँ का आटा, मूँग, उड़द, चना आदि की भूसी को साफ करके खाना चाहिए। परवल, कटहल, ओल, मानकन्द, कंकोल, करेला, कुन्दरु, ककड़ी, केला, गुलर तथा चौलाई आदि का शाक (सब्जी) खाना चाहिए। कच्चे या पक्के केले के गुच्छे का दण्ड और उसका मूल, बैंगन, ऋद्धि, कच्चाशाक, मौसमी शाक, परवल के पत्ते, बथुआ का शाक खाना चाहिए। शीघ्र पचने वाले, स्निग्ध पौष्टिक तथा मन के अनुकूल पदार्थ ही खाने चाहिए। प्राणायाम आरम्भ करने से पूर्व प्रतिदिन भोजन के साथ दूध व घी का सेवन करना चाहिए। एक दिन में मध्याह्न व सायं दो ही बार भोजन करना चाहिए।"

निषिद्ध या अपथ्य आहार -

महर्षि घेरण्ड ने पाँचवें अध्याय (श्लोक संख्या 23 से 29 तक) में वर्जित खाद्य पदार्थों के बारे में बताया है। घेरण्ड संहिता के अनुसार कड़वा, खट्टा, नमकीन, तीखी और भुनी हुई चीजे, दही, छाछ, भारी सब्जियाँ, शराब, ताड़, कुल्थी, मसूर की दाल, प्याज, कद्दू, सब्जी का तना, लौकी, जामुन, कठबेल, पलाश, कदम्ब के फूल, लहसुन, विष, कमरख, हींग, गोभी इनका त्याग करना चाहिए। मार्गगमन, स्त्रीगमन तथा अग्नि सेवन (तपना) भी साधक के लिए उचित नहीं है।

मक्खन, घृत, दूध, गुड़, शक्कर, आँवला, अम्लरस आदि का त्याग करना चाहिए। नारियल, अनार, सौंफ, इलायची, लोंग, जायफल, हरड़, खजूर तथा उत्तेजनात्मक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।

कड़ी व दूषित वस्तुओं, उत्तेजना व वासना उत्पन्न करने वाली अति उष्ण, बासी, अधिक ठण्डी और उग्र वस्तुओं का भी त्याग करना चाहिए। प्रातः स्नान, उपवासादि शरीर को कष्ट पहुँचाने वाली क्रियाओं का भी त्याग कर देना चाहिए। एक बार भोजन करना, निराहार रहना या बार-बार भोजन करना भी योगारम्भ में त्याज्य है।

योग कुण्डल्युपनिषद् में प्राणवायु को वश में करने के उपायों में मिताहार को प्रथम उपाय बताया है। इस उपनिषद् के अनुसार घी-दूध वाले मीठे पदार्थों से आधा ही पेट भरना चाहिए। पेट का चौथा भाग पानी के लिए तथा चौथा भाग वायु के खाली छोड़ना चाहिए साथ ही निर्देश दिया है कि भोजन स्वाद के लिए नहीं बल्कि जीवात्मा की प्रसन्नता के लिए किया जाना चाहिए।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के दस यमों के अन्तर्गत मिताहार का नामोल्लेख किया है। योगतत्त्वोपनिषद् में घेरण्ड संहिता के समान ही पथ्य-अपथ्य आहार व दिनचर्या का उल्लेख किया गया है। घी, दूध, गेहूँ, मूँग व चावल को पथ्य आहार बताया गया है तथा तैल, खटाई, मसाला युक्त आहार, ह्रींग आदि को अपथ्य बताया है। दिनचर्या हेतु बताया गया है कि आग तपना, स्त्रीचर्या, प्रातः उठना, उपवास करना तथा अधिक चलना वर्जित है।

नाड़ी शोधन -

महर्षि घेरण्ड के अनुसार नाड़ियों में अशुद्धि व मल भरे होने के कारण प्राण शक्ति का प्रवाह सुचारू रूप से नहीं हो पाता परिणामस्वरूप प्राणायाम की सिद्धि व तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं हो पाती अतः प्राणायाम के अभ्यास से पूर्व नाड़ी शोधन को आवश्यक माना है ताकि सरलता से प्राणों की जाग्रति और उनका स्वतन्त्र प्रवाह हो सके।

नाड़ी शुद्धि की चर्चा करते हुए महर्षि घेरण्ड ने नाड़ी शुद्धि क्या है? नाड़ी शुद्धि का अभ्यास कैसे किया जाए ? तथा नाड़ी शुद्धि क्रिया का स्वरूप क्या है ? इनका विस्तारपूर्वक विवेचन किया है।

नाड़ी शोधन के दो प्रकार बताए गए हैं - समनु और निर्मनु।

"नाडीशुद्धिर्द्विधा प्रोक्ता समनुनिर्मनुस्तथा ।

बीजेन समनुं कुर्यान्निर्मनुं धौतिकर्मणा ॥"¹⁸⁸

(i) समनु नाड़ी शुद्धि क्रिया -

यह नाड़ी शोधन क्रिया का मानसिक प्रकार है। जिसमें बीजमन्त्र का प्रयोग किया जाता है। घेरण्ड संहिता के पाँचवें अध्याय (श्लोक संख्या 37 से 44 तक) में महर्षि घेरण्ड ने समनु नाड़ीशोधन क्रिया को वर्णित करते हुए कहा है कि इस विधि में साधक को पद्मासन में बैठकर गुरु निर्देशानुसार गुरु न्यास करना चाहिए। फिर गुरु के आदेशानुसार प्राणायाम के साधनार्थ नाड़ी शोधन करें। नाड़ी शोधन की प्रथम अवस्था वायु बीज 'यं' का ध्यान कर सोलह बार जाप करते हुए बायीं नासिका द्वारा वायु खींचें। ध्यान के समय इस वायु 'यं' बीज को तेजोमय धूम्रवर्ण के समान मानना चाहिए। इस प्रकार बायीं नासिका से पूरक करने के पश्चात् चौंसठ बार जप करते हुए कुम्भक करें फिर बत्तीस बार जपते हुए दायीं नासिका से रेचक करना चाहिए।

द्वितीय अवस्था में नाभि (अग्नि तत्त्व का स्थान) में अग्नि तत्त्व को प्रकट कर 'लं' बीज युक्त पृथ्वी तत्त्व को मिलाकर ध्यान करना चाहिए। अग्निबीज 'रं' का ध्यान सोलह बार करते हुए दायीं नासिका (सूर्य नाड़ी) से पूरक करें। चौंसठ मात्रा से कुम्भक और बत्तीस मात्रा से जप करता हुए रेचक करना चाहिए।

तृतीय अवस्था में नासिका के अग्रभाग में चन्द्र बिम्ब का ध्यानपूर्वक सोलह मात्रा तक 'हं' बीज का जप करते हुए बायीं नासिका से 'यं' बीज का पूरक करना चाहिए। चौंसठ मात्रा तक 'वं' जपते हुए सुषुम्ना नाड़ी में कुम्भक करें। उस समय ध्यान करना चाहिए जब नासिका के अग्रभाग से अमृत टपकता हुआ शरीर की सब नाड़ियों को शुद्ध कर रहा हो फिर 'लं' बीज का बत्तीस मात्रा तक जप करते हुए पिंगला नाड़ी से रेचक करना चाहिए।

(ii) निर्मनु नाड़ी शुद्धि क्रिया -

निर्मनु नाड़ीशुद्धि भौतिक शरीर को शुद्ध करने की क्रिया है इसलिए महर्षि घेरण्ड ने निर्मनु को एक शारीरिक क्रिया के रूप में धौति के अभ्यास के साथ वर्णित किया है। धौति कर्म का निरूपण षट्कर्म साधन में किया जा चुका है।

इस प्रकार नाड़ी शोधन के इन प्रकारों से नाड़ी शुद्धि को सिद्ध करके कुश, मृगचर्म, सिंहचर्म या कम्बल के एक स्थिर आसन पर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके प्राणायाम करना चाहिए।

योगचूडामण्युपनिषद्, योगतत्त्वोपनिषद् तथा त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में प्राणायाम अभ्यास के प्रारम्भिक साधन के रूप में नाडीशोधन प्राणायाम को आवश्यक माना है। योगचूडामण्युपनिषद् के अनुसार नाड़ियों में जमी गन्दगी निकल जाने पर ही प्राणवायु को अन्दर रोका जा सकता है। चन्द्र स्वर और सूर्य स्वर से नाडी शोधन प्राणायाम का अभ्यास करने से योगी के शरीर की सभी नस-नाड़ियाँ दो महिने बाद साफ हो जाती हैं -

"प्राणं चेदिडया पिबेन्नियमितं भूयोऽन्यथा रेचयेत् ।

पीत्वा पिङ्गलया समीरणमथो बद्ध्वा त्यजेद् वामया ॥

सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिना बिम्बद्वयं ध्यायतां ।

शुद्धा नाडिगणा भवन्ति यामिनां मासद्वयादूर्ध्वतः ॥"¹⁸⁹

इस उपनिषद् में चन्द्रस्वर (नाक का बायां सुर) तथा सूर्यस्वर (नाक का दायां सुर) से नाडी शोधन प्राणायाम का अभ्यास बताया गया है साथ ही इससे होने वाले लाभ की भी चर्चा की है।

योगतत्त्वोपनिषद् के अनुसार अस्सी कुम्भक प्रतिदिन चार महिने तक करने से नाडी शुद्धि होती है जिससे पाचनशक्ति बढ़ जाती है, शरीर हल्का हो जाता है तथा मुख पर तेज आ जाता है। इन योग उपनिषदों में प्राणायाम से पूर्व नाडीशोधन को आवश्यक व अनिवार्य माना है । नाडीशोधन करने के पश्चात् प्राणायाम का निर्देश दिया है - **"नाडीशुद्धिं च कृत्वादौ प्राणायामं समाचरेत् ।"** अतः नाडी परिगणन, नाडी स्थान, नाड़ियों में चलने वाली वायु व उनके कार्य, नाडीचक्र में जीवगति, नाडीशुद्धि की पहचान, नाडीशुद्धि की अवधि, नाडीशोधन की विधि व लाभ आदि का भी विस्तृत विवेचन किया गया है। इस प्रकार का नाडी सम्बन्धी उल्लेख घेरण्ड संहिता में नहीं मिलता ।

घेरण्ड संहिता में नाडी शोधन प्राणायाम के समनु और निर्मनु भेद बताए हैं जबकि इन योग उपनिषदों में इस प्रकार का कोई भेद नहीं मिलता।

हालाँकि इन योग उपनिषदों में नाडी शोधन, प्राणायाम में पूरक, कुम्भक व रेचक क्रिया का प्रयोग किया गया है फिर भी घेरण्ड संहिता के समनु नाडी शोधन भेद में पूरक, कुम्भक व रेचक क्रिया के साथ बीजमन्त्र का प्रयोग बताया है जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में इस प्रकार के बीजमन्त्र के प्रयोग का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

प्राणायाम या कुम्भक के भेद -

"एवं विधां नाडीशुद्धिं कृत्वा नाडीं विशोधयेत् ।

दृढो भूत्वाऽऽसनं कृत्वा प्राणायामं समाचरेत् ॥

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा ।

भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्टकुम्भकाः ॥"¹⁹⁰

नाडी शुद्धि क्रिया पूर्ण होने पर एक स्थिर आसन में बैठ कर प्राणायाम का आचरण करना चाहिए ।

घरेण्ड संहिता में प्राणायाम या कुम्भक के सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा तथा केवली ये आठ भेद बताए हैं। योगकुण्डल्युपनिषद् में कुम्भक प्राणायाम के सहित कुम्भक व केवल कुम्भक दो भेद बताकर सहित कुम्भक के पुनः सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली और भस्त्रिका ये चार प्रकार बताए हैं। इनकी विधियों व लाभ का कुछ अन्तर के साथ विस्तृत वर्णन किया गया है। अमृतनादोपनिषद् में श्वास खींचने, अन्दर रोकने व बाहर निकालने के आधार पर प्राणायाम के पूरक, कुम्भक व रेचक तीन प्रकार या अंग बताए हैं -

"रुचिरं रेचकं चैव वायोः आकर्षणं तथा ।

प्राणायामस्त्रयः प्रोक्ता रेचक पूरक कुम्भकाः ॥"

(i) सहित प्राणायाम -

सहित प्राणायाम दो प्रकार का बताया गया है - सगर्भ प्राणायाम और निगर्भ प्राणायाम।

(क) सगर्भ प्राणायाम -

सगर्भ प्राणायाम में बीजमंत्र का प्रयोग किया जाता है - **"सगर्भो बीजमुच्चार्य"।**

विधि - सुखासन में बैठकर पूर्वमुखी या उत्तरमुखी होकर रजोगुणयुक्त लालवर्ण के ब्रह्म का ध्यान करें। बायीं नासिका से 'अं' बीजमंत्र का जप करते हुए पूरक करें। कुम्भक के पहले और पूरक के अन्त में उड्डीयान बन्ध लगाए फिर सत्त्वगुण युक्त उकार बीजरूप कृष्णवर्ण वाले हरि का ध्यान करते हुए चौंसठ मात्रा तक कुम्भक करें। तमोगुण युक्त मकार रूपी शुक्ल वर्ण के शिव का ध्यान करते हुए 'मं' बीज को बत्तीस बार जपते हुए रेचक करें फिर दायीं नासिका से पूरक, कुम्भक और बायीं नासिका से

रेचक करें। इस प्रकार तर्जनी और मध्यमा अँगुलियों को लगाए बिना अनुलोम-विलोम का अभ्यास करना चाहिए।

प्रमुख योग उपनिषदों में इस प्रकार के विशेष बीजमन्त्र के साथ प्राणायाम अभ्यास का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु अमृतनादोपनिषद् में भूः, भुवः, स्वः आदि सात व्याहृतियों को ओम् के साथ बोलकर तीन बार गायत्री मन्त्र के जप का निर्देश जरूर किया गया है। इसी प्रकार घेरण्ड संहिता में बीजमन्त्र के साथ ब्रह्म, शिव, हरि के ध्यान का उल्लेख किया गया है जबकि योगचूडामण्युपनिषद् में बिना बीजमन्त्र के अमृत समुद्र से निकले हुए गो-दुग्ध के समान श्वेत वर्ण के चन्द्र ध्यान तथा हृदय कमल में स्थित प्रज्वलित ज्वाला सदृश सूर्य के ध्यान का निर्देश दिया गया है ।

(ख) निगर्भ प्राणायाम -

निगर्भ का अभ्यास बीजमन्त्र के बिना किया जाता है - "निगर्भो बीजवर्जितः"।

विधि - पूरक, कुम्भक और रेचक अंग वाले प्राणायाम की एक से सौ तक मात्राएँ होती हैं। निगर्भ प्राणायाम के उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन स्तर होते हैं। उत्तम निगर्भ प्राणायाम में बीस मात्रा का पूरक, अस्सी मात्रा का कुम्भक और चालीस मात्रा का रेचक होता है। इस प्राणायाम से साधक पृथ्वी से उठ कर आकाश में विचरण करने लगता है। मध्यम निगर्भ प्राणायाम में सोलह मात्रा का पूरक, चौंसठ मात्रा का कुम्भक और बत्तीस मात्रा का रेचक होता है। इस प्राणायाम से मेरु कम्पन होने लगता है। अधम में बारह मात्रा का पूरक, अड़तालीस मात्रा का कुम्भक और चौबीस मात्रा का रेचक होता है। इससे शरीर से पसीना निकलता है।

सहित प्राणायाम का लाभ -

इस प्राणायाम के अभ्यास से आकाश गमन, रोग निवृत्ति तथा कुण्डलिनी जागरण होता है। साधक के चित्त में अपूर्व आनन्दानुभूति होती है तथा वह सुखी रहता है।

इसी प्रकार योगचूडामण्युपनिषद् में भी प्राणायाम के अधम, मध्यम व उत्तम इन तीन स्तरों को मात्रा व लक्षण सहित बताया गया है तथा त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में भी प्राणायाम के इन तीन स्तरों के लक्षण को प्रतिपादित करते हुए लाभ को वर्णित किया गया है ।

**घेरण्ड संहिता, योगचूडामण्युपनिषद् व त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में
प्राणायाम के स्तरों का तुलनात्मक अध्ययन**

यौगिक ग्रन्थ	स्तर या कोटि	लक्षण	मात्रा	लाभ
घेरण्ड संहिता	अधम	पसीना आना	12	उल्लेख नहीं
योगचूडामण्युपनिषद्		पसीना आना	12	उल्लेख नहीं
त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्		पसीना आना	उल्लेख नहीं	आधि, व्याधि व समस्त पापों का नाश
घेरण्ड संहिता	मध्यम	मेरु कम्पन	16	उल्लेख नहीं
योगचूडामण्युपनिषद्		शरीर कम्पन	24	उल्लेख नहीं
त्रिशिखि- ब्राह्मणोपनिषद्		शरीर कम्पन	उल्लेख नहीं	महाव्याधियों, पाप व समस्त रोगों का नाश
घेरण्ड संहिता	उत्तम	शरीर पृथ्वी से उठकर आकाश में विचरण करने लगता है।	20	उल्लेख नहीं
योगचूडामण्युपनिषद्		शरीर का आसन से ऊपर उठना	36	उल्लेख नहीं
त्रिशिखि- ब्राह्मणोपनिषद्		शरीर का ऊपर उठना	उल्लेख नहीं	अल्पनिद्रा, अल्पाहार, अल्प मल-मूत्र, लघु शरीर वाला, इन्द्रियाँ व बुद्धि तीव्र, त्रिकालदर्शी

तालिका 5.2 घेरण्ड संहिता और प्रमुख योग उपनिषदों में प्राणायाम का स्वरूप

महर्षि घेरण्ड ने सूर्यभेद प्राणायाम का वर्णन करने से पूर्व मानव शरीरस्थ दस प्राणों (वायु) के स्थान व पाँच उपप्राणों के कार्यों का उल्लेख किया है। प्राण, अपान,

समान, व्यान, उदान ये पाँच प्रमुख प्राण (वायु) तथा नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय ये पाँच उपप्राण बताए हैं -

"प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ तथैव च ।
 नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः ॥
 हृदि प्राणो वह्नेन्नित्यमपानो गुदमण्डले ।
 समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यमः ॥
 व्यानो व्याप्य शरीरे तु प्रधानाः पञ्च वायवः ।
 प्राणाद्याः पञ्च विख्याता नागाद्याः पञ्चवायवः ॥
 तेषां च पञ्चानां स्थानान्यपि च वदाम्यहम् ।
 उद्गारे नाग आख्यातः कूर्मस्तून्मीलने स्मृतः ॥
 कृकलः क्षुत्कृते ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ।
 न जहाति मृते क्वापि सर्वव्यापि धनञ्जयः ॥
 नागो गृह्णाति चैतन्यं कूर्मश्चैव निमेषणम् ।
 क्षुधा तृट् कृकरश्चैव चतुर्थेन तु जृम्भणम् ॥
 भवेत् धनञ्जयाच्छब्दं क्षणमात्रं न निःसरेत् ॥"¹⁹¹

प्रमुख योग उपनिषदों के अन्तर्गत योगचूडामण्युपनिषद् में घेरण्ड संहिता के समान ही पाँच मुख्य प्राणों (वायु) के स्थान व पाँच उपप्राणों के कार्यों का उल्लेख किया गया है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में दस प्राणादि वायु के स्थान व कार्यों का प्रतिपादन किया गया है तथा अमृतनादोपनिषद् में पञ्च प्राणों के स्थान रंगादि को बताया गया है -

घेरण्डसंहिता, योगचूडामण्युपनिषद् अमृतनादोपनिषद् व
 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार पाँच प्राण (वायु)

यौगिक ग्रन्थ	प्राण (वायु)	रंग	स्थान	कार्य
घेरण्ड संहिता	प्राण	उल्लेख नहीं	हृदय	उल्लेख नहीं
योगचूडामण्युपनिषद्		उल्लेख नहीं	हृदय	उल्लेख नहीं
अमृतनादोपनिषद्		लालमणि के समान	हृदय	उल्लेख नहीं

त्रिशिखि- ब्राह्मणोपनिषद्		उल्लेख नहीं	मुख व नासिका का मध्यभाग, हृदय, नाभिमण्डल, पैर का अँगूठा	आमाशय में स्थित जल, अन्न, रसादि को एकत्र कर पृथक्-पृथक् करना।
घेरण्ड संहिता	अपान	उल्लेख नहीं	गुदा	उल्लेख नहीं
योगचूडामण्युपनिषद्		उल्लेख नहीं	गुदा	उल्लेख नहीं
अमृतनादोपनिषद्		वीर बहूटी के समान हल्का गुलाबी	गुदा	उल्लेख नहीं
त्रिशिखि- ब्राह्मणोपनिषद्		शरीर कम्पन	गुदा, मेढ्रा, जंघा एवं घुटने	मल-मूत्र का विसर्जन
घेरण्ड संहिता	समान	उल्लेख नहीं	नाभि	उल्लेख नहीं
योगचूडामण्युपनिषद्		उल्लेख नहीं	नाभि	उल्लेख नहीं
अमृतनादोपनिषद्		गाय के दूध के समान	नाभि	उल्लेख नहीं
त्रिशिखि- ब्राह्मणोपनिषद्		उल्लेख नहीं	समस्त अंगों में व्याप्त	शरीर का पोषण
घेरण्ड संहिता	उदान	उल्लेख नहीं	कण्ठ	उल्लेख नहीं
योगचूडामण्युपनिषद्		उल्लेख नहीं	कण्ठ	उल्लेख नहीं
अमृतनादोपनिषद्		हल्का पीला	कण्ठ	उल्लेख नहीं
त्रिशिखि- ब्राह्मणोपनिषद्		उल्लेख नहीं	हाथ-पैर एवं समस्त सन्धि स्थान	ऊर्ध्वगामी

घेरण्ड संहिता	व्यान	उल्लेख नहीं	सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त	उल्लेख नहीं
योगचूडामण्युपनिषद्		उल्लेख नहीं	सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त	उल्लेख नहीं
अमृतनादोपनिषद्		अग्नि की लौ के समान चमकीला	सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त	उल्लेख नहीं
त्रिशिखि- ब्राह्मणोपनिषद्		उल्लेख नहीं	श्रोत्र, जँघा, कमर, एड़ी, कन्धे व गले में	प्राण व अपान आदि की चेष्टाएँ इस वायु के योग से सम्पन्न होती है।

तालिका 5.3 घेरण्ड संहिता और प्रमुख योग उपनिषदों में पञ्च वायु

घेरण्ड संहिता, योगचूडामण्युपनिषद् व त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार पाँच उपप्राण

यौगिक ग्रन्थ	उपप्राण	स्थान	कार्य
घेरण्ड संहिता	नाग	डकार में (उद्गार)	चैतन्य
योगचूडामण्युपनिषद्		उद्गार	उल्लेख नहीं
त्रिशिखि- ब्राह्मणोपनिषद्		उल्लेख नहीं	डकार आदि
घेरण्ड संहिता	कूर्म	आँखें खोलना व बन्द करना (उन्मीलन)	निमेषण
योगचूडामण्युपनिषद्		उन्मीलन	उल्लेख नहीं
त्रिशिखि- ब्राह्मणोपनिषद्		उल्लेख नहीं	आँखों का खोलना व बन्द करना।

घेरण्ड संहिता	कृकल	भूख में	भूख-प्यास
योगचूडामण्युपनिषद्		छींकने में	उल्लेख नहीं
त्रिशिखि- ब्राह्मणोपनिषद्		उल्लेख नहीं	भूख लगना
घेरण्ड संहिता	देवदत्त	जँभाई लेने में	जँभाई
योगचूडामण्युपनिषद्		जँभाई लेने में	उल्लेख नहीं
त्रिशिखि- ब्राह्मणोपनिषद्		उल्लेख नहीं	निद्रा आदि
घेरण्ड संहिता	कृकल	मृत्यु के उपरान्त भी जो विद्यमान है	कभी नहीं निकलती तथा इससे वाणी निकलती है
योगचूडामण्युपनिषद्		सर्वव्यापी मृत्यु के बाद भी विद्यमान	उल्लेख नहीं
त्रिशिखि- ब्राह्मणोपनिषद्		उल्लेख नहीं	मृत शरीर की शोभा

तालिका 5.4 घेरण्ड संहिता और प्रमुख योग उपनिषदों में पञ्च उपप्राण

(ii) सूर्य भेद प्राणायाम -

"पूरयेत् सूर्यनाड्या च यथाशक्ति बहिर्मरुत् ॥

धारयेत् बहुयत्नेन कुम्भकेन जलन्धरैः ।

यावत्स्वेदं नखकेशाभ्यां तावत्कुर्वन्तु कुम्भकम् ॥

कुम्भकः सूर्यभेदस्तु जरामृत्युविनाशकः ।

बोधयेत्कुण्डलीं शक्तिं देहानलविवर्धनम् ॥"¹⁹²

विधि - सूर्यनाड़ी (दायाँ नासिका सुर) से यथाशक्ति वायु भरकर जालन्धर बन्ध लगाकर कुम्भक करें। जब तक कि पैर से बालों तक पसीना न आ जाए। कुम्भक करते समय प्राणादि वायुओं को सूर्यनाड़ी से अलग करके नाभिमूल से समान वायु को उठाए, तथा बायीं नासिका से धीरे-धीरे रेचक करें फिर दायीं नासिका से वायु भरकर कुम्भक करें

और बायीं नासिका से रेचक करें। इस क्रिया को बार-बार करना चाहिए, यह क्रिया सूर्यभेद कहलाती है।

लाभ - यह प्राणायाम जरा-मृत्यु को नष्ट करता है। कुण्डलिनी जागरित होती है तथा शरीरस्थ अग्नि प्रदीप्त होती है। योगकुण्डल्युपनिषद् में इसे कुछ इस तरह बताया गया है -

दक्षनाड्या समाकृष्य बहिष्ठं पवनं शनैः ।

यथेष्ठं पूरयेद् वायुं रेचयेदिडया ततः ॥¹⁹³

अर्थात् दाहिने नासिका सुर से बाहर की वायु को धीरे-धीरे खींचना चाहिए । इस प्रकार यथाशक्ति वायु को फेफड़ों में भरकर बाएँ नासिका सुर से धीरे-धीरे निकालना चाहिए। इस योग उपनिषद् में घेरण्ड संहिता के समान जालन्धर बन्ध लगाने व कुम्भक करने का उल्लेख नहीं किया गया है। लेकिन इस प्राणायाम को वातदोष व उदर कृमि के नाश में उपयोगी बताया गया है।

(iii) उज्जायी प्राणायाम -

उज्जायी प्राणायाम का वर्णन करते हुए महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि -

"नासाभ्यां वायुमाकृष्य मुखमध्ये च धारयेत् ।

हृद्गताभ्यां समाकृष्य वायुं वक्त्रे च धारयेत् ॥

मुखं प्रक्षाल्य सम्बन्द्य कुर्याज्जालन्धरं ततः ।

आशक्तिकुम्भकं कृत्वा धारयेदविरोधतः ॥¹⁹⁴

विधि - दोनों नासिकाओं से पूरक करते हुए बाह्य वायु को अन्दर खींचकर आन्तरिक वायु को हृदय व कण्ठ से खींचकर कुम्भक द्वारा धारण करें फिर मुख प्रक्षालन कर जालन्धर बन्ध लगा कर निर्विघ्न विधि से यथाशक्ति वायु को धारण करना चाहिए।

लाभ - इससे सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। कफ, क्रूर वायु, अजीर्ण, आमवात, क्षय, ज्वर आदि रोग नष्ट हो जाते हैं तथा जरा-मरण भी दूर हो जाते हैं।

योगकुण्डल्युपनिषद् के अनुसार -

"मुखं संयम्य नाडिभ्यामाकृष्य पवनं शनैः ॥

यथा लगति कण्ठात्तु हृदयावधि सस्वनम् ।

पूर्ववत् कुम्भकेन प्राणं रेचयेदिडया ततः ॥¹⁹⁵

अर्थात् उज्जायी प्राणायाम में श्वास भरते समय गले को सिकोड़ कर शब्द करते हुए वायु को मुँह, गले व हृदय तक ले जाने का उल्लेख इस उपनिषद् में किया गया है साथ ही बताया गया है कि यह प्राणायाम बैठ कर या चलते-फिरते भी किया जा सकता है । जबकि इस प्रकार की क्रियाविधि का उल्लेख घेरण्ड संहिता में नहीं मिलता । लेकिन घेरण्ड संहिता के समान कफ, जलोदर, रक्तचाप, ज्वर आदि रोगों के शमन में इस प्राणायाम को उपयोगी बताया गया है।

(vi) शीतली प्राणायाम -

घेरण्ड संहिता के अनुसार -

"जिह्वया वायुमाकृष्य चोदरे पूरयेच्छनैः ।

क्षणं च कुम्भकं कृत्वा नासाभ्यां रेचयेत्पुनः ॥

सर्वदा साधयेद्योगी शीतलीकुम्भकं शुभम् ।

अजीर्णं कफपित्तं च नैव तस्य प्रजायते ॥"¹⁹⁶

विधि - जिह्वा द्वारा वायु को अन्दर खींचकर पेट को वायु से भर कर फिर कुछ समय तक कुम्भक द्वारा वायु को धारण कर दोनों नासिका छिद्रों से बाहर निकाल देना शीतली प्राणायाम होता है।

लाभ - अजीर्ण, कफ तथा पित्त से उत्पन्न विकार नष्ट हो जाते हैं। योगकुण्डल्युपनिषद् में भी घेरण्ड संहिता के समान ही शीतली प्राणायाम की विधि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि -

"जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत् कुम्भकादनु ।

शनैस्तु घ्राणरन्धाभ्यां रोचयेदनिलं सुधीः ॥"¹⁹⁷

अर्थात् जिह्वा द्वारा वायु को अन्दर खींच कर कुम्भक करते हुए वायु को धीरे-धीरे बाहर निकालना शीतली प्राणायाम या कुम्भक होता है। इस उपनिषद् में घेरण्ड संहिता के समान ही इसके अभ्यास से होने वाले लाभ की भी चर्चा की गई है।

(v) भस्त्रिका प्राणायाम -

"भस्त्रिका लोहकाराणां यथाक्रमेण सम्भमेत् ।

तथा वायुं च नासाभ्यामुभाभ्यां चालयेच्छन्नैः ॥

एवं विंशतिवारं च कृत्वा कुर्याच्च कुम्भकम् ।

तदन्ते चालयेद्वायुं पूर्वोक्तं च यथाविधि ॥

त्रिवारं साधयेदेनं भस्त्रिका कुम्भकं सुधीः ।

न च रोगो न च क्लेश आरोग्यं च दिने दिने ॥" 198

विधि - जैसे लौहार धौंकनी से वायु भरता है उसी तरह नाक से वायु पेट में भरकर धीरे-धीरे पूरित करें अर्थात् चालन करें। इस प्रकार बीस बार करके कुम्भक द्वारा वायु धारण करें फिर जैसे लौहार की धौंकनी से वायु निकलती है, वैसे ही नाक से वायु निकाल दें। इसका अभ्यास प्रतिदिन तीन बार करना चाहिए।

लाभ - इसके अभ्यास से किसी प्रकार के रोग नहीं होते तथा दिनोंदिन आरोग्यता में वृद्धि होती है।

योगकुण्डल्युपनिषद् में घेरण्ड संहिता के समान बीस बार कुम्भक करने व प्रतिदिन तीन बार अभ्यास करने का निर्देश नहीं दिया गया है परन्तु शारीरिक स्थिति व आसन विशेष को उल्लेखित करते हुए कहा गया है कि पद्मासन लगा कर गर्दन व पीठ एक सीध में रख कर मुँह बन्द करके नाक से वायु बाहर निकाल दें। रेचक करते समय श्वास इस तरह निकालें कि हृदय, कण्ठ व सिर तक रेचक का प्रभाव अनुभव हो। रेचक के बाद पुनः पूरक करें। लुहार की धौंकनी की भाँति पूरक व रेचक करना चाहिए। इस अभ्यास से थकान होने पर दाहिने नासिका स्वर से वायु को खींच कर तर्जनी को छोड़ कर अनामिका व किनष्ठिका से बायाँ नासिका स्वर पकड़ कर कुम्भक करना चाहिए। इस प्राणायाम को सुखदायक, पुण्यकारी व पापनाशक बताया गया है। जिसके अभ्यास से कुण्डलिनी जाग्रत होती है।

(vi) **भामरी प्राणायाम** -

घेरण्ड संहिता में वर्णित इस प्राणायाम की विधि भामरी प्राणायाम की व्यावहारिक विधि से थोड़ी भिन्न है। यहाँ भामरी प्राणायाम में नादयोग की स्थिति का उल्लेख किया गया है।

"अर्द्धरात्रे गते योगी जन्तूनां शब्दवर्जिते ।

कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां कुर्यात्पूरककुम्भकम् ॥

शृणुयाद् दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं शुभम् ।

प्रथमं झिल्लिकानादं वंशीनादं ततः परम् ॥

मेघझर्झरभमरी घन्टा कास्यं ततः परम् ।

तुरीभेरीमृदङ्गादिनिनादानेकदुन्दुभिः ॥

एवं नानाविधो नादो जायते नित्यमभ्यसात् ।

अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः ॥

ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिरन्तर्गतं मनः ।

तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ।

एवं भामरीसंसिद्धिः समाधिसिद्धिमाप्नुयात् ॥"¹⁹⁹

विधि - आधी रात्री होने पर जब जीव-जन्तुओं का शब्द सुनाई न दे तब एकान्त स्थान में जाकर साधक को अपने हाथों से दोनों कानों को बन्द करके पूरक-कुम्भक करना चाहिए। ऐसा करने से साधक को दाएँ कान में अनेक प्रकार की ध्वनियाँ सुनाई देती है। झींगुर, बंशी, मेघ गर्जन, झंझर, बाजे की ध्वनि, भौरों का गुंजन, घण्टा आदि अनेक प्रकार के नाद क्रमशः सुनाई देते हैं। निमीलित आँखों से हृदय में द्वादश दल के कमल की प्रतिध्वनि के बीच ज्योति दिखाई देती है, यह ज्योति ही ब्रह्म है। इसमें साधक के मन का विलय होकर उसे विष्णु का परम पद प्राप्त होता है।

लाभ - इस प्राणायाम के सिद्ध होने पर समाधि की सिद्धि होती है।

इस प्राणायाम का उल्लेख प्रमुख योग उपनिषदों में नहीं मिलता परन्तु इस प्राणायाम में नादयोग की स्थिति में जो उल्लेख किया गया है, वह योगचूडामण्युपनिषद् में वर्णित अनाहतनाद की तरह है। जिसके अनुसार षण्मुखी मुद्रा में प्राणायाम का अभ्यास करने से जब प्राणवायु सहस्रार चक्र में पहुँच जाती है तब घण्टे, घड़ियाल आदि बाजों की ध्वनि सुनाई देने लगती है। अनाहत नाद की यह ध्वनि तेल की धारा के समान निरन्तर और अटूट तथा घण्टे की आवाज की लम्बे समय तक सुनाई देने वाली झंकार की भाँति होती है। अनाहतनाद की ध्वनि में लीन मन शीघ्र ही ज्योतिर्मय ब्रह्म स्वरूप हो जाता है।

(vii) मूर्च्छा प्राणायाम -

इस प्राणायाम से चेतना की एक दूसरी अवस्था की प्राप्ति होती है। जिसमें साधक दृश्य जगत् के प्रति अनासक्त हो जाता है, देहाभास समाप्त हो जाता है और मन में परम शान्ति की अनुभूति होती है।

"सुखेन कुम्भकं कृत्वा मनश्च भ्रुवोरन्तरम् ।

सन्त्यज्य विषयान्सर्वान्मनोमूर्च्छां सुखप्रदा ।

आत्मनि मनसो योगादानन्दो जायते ध्रुवम् ॥²⁰⁰

विधि - कुम्भक करके, मन को विषयों से हटाकर भ्रूमध्य स्थित आज्ञाचक्र में लगाए तथा पद्म (हृदय) में स्थित परमात्मा में लीन कर दें।

लाभ - इसके अभ्यास से आनन्द की प्राप्ति होती है।

प्रमुख योग उपनिषदों में मूर्च्छा प्राणायाम का नामोल्लेख तो नहीं मिलता परन्तु कुण्डलिनी जागरण से मन को भ्रूमध्य आज्ञाचक्र में लगाकर परमात्मा में लीन कर देने की बात कही गई है।

(viii) केवली प्राणायाम -

महर्षि घेरण्ड के अनुसार प्रत्येक जीव चौबीस घण्टे में इक्कीस हजार छः सौ श्वास लेता है। जीव पूरक के साथ 'सो' एवं रेचक के साथ 'हं' मन्त्र का जप करता है। इसी हंस या सोऽहं को अजपा गायत्री कहते हैं। मूलाधार, हृदय और नासापुट इन तीनों स्थानों में हंस स्वरूप अजपा का जप होता है। स्वाभाविक प्राण की गति बारह अँगुल होती है।

विधि - नाक के सुरों से वायु को खींचकर केवली कुम्भक करें। पहले दिन इसका अभ्यास करने पर चौंसठ बार श्वास-प्रश्वास को धारण करें। इसका प्रतिदिन आठ प्रहर में आठ बार अभ्यास करें। जब तक इसकी सिद्धि न हो जाए तब तक अजपा गायत्री के साथ प्रमाण से पाँच-पाँच बार क्रम से बढ़ाते जाए।

लाभ - इसके अभ्यास से आयु में वृद्धि होती है तथा चित्त में आनन्द की अनुभूति होती है।

प्रमुख योग उपनिषदों में केवली प्राणायाम का नामतः उल्लेख तो नहीं मिलता परन्तु इस प्रकार की क्रिया विधि अजपा जप में बताई गई है। योगचूडामण्युपनिषद् के अनुसार श्वास लेते समय 'स' शब्द तथा श्वास छोड़ते समय 'ह' शब्द होता है। इस तरह हम श्वास भरते व छोड़ते समय सदा 'हंस' शब्द का जप करते हैं। एक दिन और रात में 21600 बार हंस शब्द जपते हैं। यह मुक्ति प्रदाता 'हंस' शब्द अजपा गायत्री बताया गया है। यह अजपा गायत्री प्राण को धारण करने वाली प्राणविद्या है। महाविद्या है, जो कि कुण्डलिनी शक्ति से उत्पन्न है। इस प्राण विद्या को जानने वाला वास्तव में ज्ञानी होता है। योगचूडामण्युपनिषद् और घेरण्ड संहिता में एक दिन-रात के श्वास का प्रमाण 21600 बताया गया है। लेकिन अमृतनादोपनिषद् में श्वास-प्रश्वास का प्रमाण छः दिन-रात में एक

लाख तेरह हजार छः सौ अस्सी बताया गया है यानि एक दिन-रात में 19335 बार श्वास प्रश्वास होता है।

ध्यान -

किसी वस्तु या विषय पर एकाग्रता या चिन्तन करना ध्यान है। महर्षि घेरण्ड के अनुसार ध्यान में प्रत्यक्ष अनुभूति होने लग जाती है। मन के सूक्ष्म अनुभवों को अन्तश्चक्षु या मनः दृष्टि से स्पष्ट करना ही ध्यान की वास्तविक स्थिति है। स्थूल, ज्योति तथा सूक्ष्म के भेद से ध्यान के तीन प्रकार बताए हैं -

"स्थूलं ज्योतिस्थासूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः ।

स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं तथा ।

सूक्ष्मं बिन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली परदेवता ॥"²⁰¹

(i) स्थूल ध्यान

इष्ट देवता या गुरु का चिन्तन करना स्थूल ध्यान होता है। महर्षि घेरण्ड ने स्थूल ध्यान की दो विधियाँ बताई हैं - पहली हृदय स्थान या अनाहत चक्र पर ध्यान और दूसरी ब्रह्मरन्ध्र या सहस्रार चक्र पर ध्यान।

प्रथम विधि -

आँखें बन्द करके अपने हृदय में अमृतसागर का ध्यान करें। इस अमृतसागर के बीच में एक रत्नमय द्वीप है तथा इस द्वीप की बालू भी रत्नमयी है। इस द्वीप के चारों ओर पुष्पों से युक्त कदम्ब के वृक्ष हैं तथा कदम्ब वन के चारों तरफ मालती, चमेली, केशर आदि के पुष्प बिखरे हुए हैं। जिससे द्वीप का कोना-कोना सुगन्धित है। इस द्वीप के मध्य में कल्पवृक्ष है, जिसकी चार शाखाएँ चारों वेदों का प्रतिनिधित्व करती हैं। सम्पूर्ण द्वीप कोयल की आवाज व भ्रमर की गुञ्जन से युक्त है। इस द्वीप में एक चबूतरा है, जो हीरे, नीलम आदि रत्नों से सजा हुआ है। इस पर इष्टदेव विराजमान है। गुरु द्वारा बताई गई विधि के अनुसार इष्टदेव के वस्त्र, आभूषण, वाहन आदि पर ध्यान करें।

द्वितीय विधि -

ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रार नामक एक हजार दल वाला महापद्म है। इसके बीच में सफेद व तेजपूर्ण बारह दलों वाला एक छोटा सा कमल है। इन बारह दलों पर क्रमशः ह, स, क्ष, म, ल, व, र, युं, ह, स, ख और फ्रें अक्षर लिखे हैं तथा इस कमल के केन्द्रीय भाग में

'अ, क, थ' इन तीन अक्षरों की तीन रेखाएँ हैं। ये तीन रेखाएँ मिलकर एक त्रिशूल की रचना करती हैं। इस त्रिभुज के कोणों पर हं, थं और लं अक्षर हैं तथा मध्य में ऊँ बना है।

ध्यान के समय सहस्रार में यह देखने का प्रयास करें कि सहस्र दल कमल के बीच में ध्वनि और प्रकाश के प्रतीकरूप हंसयुगल बैठा है। यहीं पर गुरु विराजित है। हंसयुगल गुरुपादुका का प्रतीक है। दो हाथ तथा तीन नेत्र वाला गुरु श्वेतवस्त्र तथा श्वेत पुष्पों की माला पहने हुए है। इस प्रकार गुरु ध्यान से स्थूल ध्यान की सिद्धि होती है।

(ii) ज्योतिर्ध्यान या तेजोध्यान -

"मूलाधारे कुण्डलिनी भुजङ्गाकाररूपिणी ।
तत्र तिष्ठति जीवात्मा प्रदीपकलिकाकृतिः ।
ध्यायेत्तेजोमयं ब्रह्म तेजोध्यानं परात्परम् ॥
भवोर्मध्ये मन ऊर्ध्वं यत्तेजः प्रणवात्मकम् ।
ध्यायेज्ज्वालावलीयुक्तं तेजोध्यानं तदेव हि ॥"²⁰²

इसकी दो प्रकार की विधियाँ बताई गई हैं, जो कि निम्नानुसार हैं -

प्रथम विधि - मूलाधार में सर्पाकार कुण्डलिनी है तथा यहीं दीपक की लौ के रूप में आत्मा का निवास स्थान है। यहाँ तेजोमय या ज्योतिमय ब्रह्म का ध्यान करना ही ज्योतिर्ध्यान या तेजोध्यान है।

द्वितीय विधि - भौहों के मध्य और मन के ऊर्ध्व भाग में प्रणवात्मक व ज्वालायुक्त ज्योति है इस ज्योति का ध्यान करना ही ज्योतिर्ध्यान है।

(iii) सूक्ष्म ध्यान -

"बहुभाग्यवशाद्यस्य कुण्डली जाग्रती भवेत् ॥
आत्मना सह योगेन नेत्ररन्धाद्विनिर्गता ।
विहरेद्राजमार्गे च चञ्चलत्वान्न दृश्यते ॥
शाम्भवी मुद्रया योगो ध्यानयोगेन सिध्यति ॥"²⁰³

कुण्डलिनी शक्ति आत्मा के साथ संयुक्त होकर नेत्र-रन्ध्र से निकल कर ऊर्ध्वभाग में स्थित राजमार्ग स्थल पर विचरण करती है, परन्तु सूक्ष्म व चंचल होने के कारण वह दिखाई नहीं देती। शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करते हुए कुण्डलिनी का ध्यान करना सूक्ष्म ध्यान कहलाता है।

इस प्रकार महर्षि घेरण्ड ने ध्यान के इन तीन प्रकारों में सूक्ष्म ध्यान को श्रेष्ठ बताया है। सूक्ष्म ध्यान से ही आत्मसाक्षात्कार होता है।

प्रमुख योग उपनिषदों में उपर्युक्त तीन प्रकार की ध्यान की प्रक्रियाओं का उल्लेख नहीं किया लेकिन अनेक विशेषणों से युक्त परमात्मा के ध्यान व फल को बताया गया है।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में ध्यान के निर्गुण व सगुण दो प्रकार बताए गए हैं। घेरण्ड संहिता में जिसे सूक्ष्म ध्यान कहा गया है वह एक प्रकार से निर्गुण ध्यान का ही रूप है तथा स्थूल ध्यान और ज्योतिर्ध्यान सगुण ध्यान के रूप हैं।

समाधि -

घेरण्ड संहिता के घटस्थ योग की सातवीं साधना समाधि है। महर्षि घेरण्ड के अनुसार समाधि सर्वोच्च योग है। जो योगी ज्ञान पर विश्वास रखता है, अपने गुरु पर विश्वास रखता है, अपने आप पर विश्वास रखता और जिसका मन दिनों-दिन बुद्धि के प्रति जाग्रत होता है, वह योगी समाधि के अभ्यास का अधिकारी होता है।

"घटाद्भिन्नं मनः कृत्वा चैक्यं कुर्यात्परात्मनि ।

समाधिं तं विजानीयान्मुक्तसंज्ञो दशादिभिः ॥

अहं ब्रह्म न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ।

सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तं स्वभाववान् ॥"²⁰⁴

मन को शरीर से अलग करके परमात्मा में लगा देना समाधि बताई गई है। समाधि चेतना की सभी अवस्थाओं से मुक्त होना है अर्थात् समाधि में मैं ब्रह्म से भिन्न नहीं, वरन् ब्रह्म ही हूँ। मैं शोकयुक्त नहीं वरन् सच्चिदानन्द स्वरूप नित्ययुक्त स्वभाव वाला हूँ, यही भाव रहता है।

महर्षि घेरण्ड ने समाधि योग के छः भेद बताए हैं - ध्यानयोग, नादयोग, रसानन्दयोग, लयसिद्धियोग, भक्तियोग और राजयोग।

(i) ध्यानयोग समाधि -

इस समाधि में शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास किया जाता है। शाम्भवी मुद्रा लगा कर आत्मा को प्रत्यक्ष रूप में देखने का प्रयत्न करना चाहिए फिर बिन्दुमय ब्रह्म का साक्षात्कार करते हुए बिन्दु में मन को लगावें। मस्तक में स्थित ब्रह्मलोकमय आकाश के

मध्य में आत्मा को लाकर आकाश को जीवात्मा में तथा जीवात्मा को परमात्मा में लय करें। इस प्रकार योगी सदानन्दमय व समाधिस्थ हो जाता है।

(ii) रसानन्दयोग समाधि -

इसमें भ्रामरी प्राणायाम अनिवार्य है। धीरे-धीरे श्वास लेकर भ्रामरी प्राणायाम करते हुए मन्दवेग से श्वास को निकाल दें। श्वास निकालते समय भौरे के गुञ्जार के समान ध्वनि उत्पन्न होती है। जहाँ यह नाद हो रहा हो, वहीं मन को लगाएं यही रसानन्दयोग समाधि है। इसमें सोऽहम् ज्ञान होता है और आनन्द की अनुभूति होती है।

(iii) नादयोग समाधि -

इसमें खेचरी अभ्यास किया जाता है। खेचरी मुद्रा लगाकर जीभ को ऊपर की ओर मोड़ते हैं तब इसमें साधारण क्रियाएँ छूट कर समाधि की सिद्धि होती है।

(iv) लयसिद्धियोग समाधि -

योनिमुद्रा करता हुआ योगी स्वयं में शक्ति की भावना और परमात्मा में पुरुष की भावना करे फिर यह भाव करे कि मुझमें और परमात्मा में शक्ति और पुरुष का विहार हो रहा है फिर आनन्दमय एकता प्राप्त कर ब्रह्म में 'मैं अद्वैत ब्रह्म हूँ' यह चिन्तन करे, यह लयसिद्धि समाधि है।

(v) भक्तियोग समाधि -

हृदय में परम आह्लादपूर्वक भक्तियोग के द्वारा इष्टदेव के स्वरूप का चिन्तन करें इससे आनन्द के अश्रु बहने लगते हैं। शरीर पुलकित हो जाता है तथा मन अचेत और एकाग्र होकर ब्रह्म से साक्षात्कार हो जाता है।

(vi) राजयोग समाधि -

मनोमूर्च्छा कुम्भक करते हुए मन को एकाग्र करके ब्रह्म में लगाए। इस प्रकार परमात्मा के साथ योग होने को मनोमूर्च्छा या राजयोग समाधि कहते हैं। राजयोग समाधि, उन्मनी, सहज अवस्था ये सभी समानार्थी शब्द हैं।

समाधियोग का माहात्म्य -

यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुमय है। सब जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, पर्वत आदि ब्रह्मरूप हैं। योगी सब को आत्मा में तथा सब में आत्मा को देखता है। शरीर में जो चैतन्य शाश्वत आत्मा है, उसे शरीर से भिन्न जानकर योगी वीतराग व वासना रहित हो जाता है अतः

स्वशरीर, पुत्र, पौत्र आदि से ममता रहित होकर समाधि को प्राप्त करना चाहिए क्योंकि संकल्परहित होना ही समाधि है।

इस प्रकार महर्षि घेरण्ड ने समाधि के लिए अनासक्ति और वैराग्य भाव का होना आवश्यक माना है।

प्रमुख योग उपनिषदों में घेरण्ड संहिता के समान समाधि भेदों का उल्लेख तो नहीं है परन्तु घेरण्ड संहिता के समान ही समाधि अवस्था मानी है। प्रमुख योग उपनिषदों के अनुसार मन के सारे संकल्प-विकल्प नष्ट हो जाना, जीवात्मा का परमात्मा से मिलन, मन का आत्मा में लीन हो जाना, ध्याता, ध्येय व ध्यान मिलकर ध्येयाकार हो जाना समाधि है। इसी प्रकार योगकुण्डल्युपनिषद् में समाधि को कुण्डलिनीशक्ति का निर्गुण ब्रह्म के साथ मिलन ही मोक्षदायिनी और संसार के बन्धनों से मुक्त कराने वाली परावस्था बताया है।

निष्कर्ष: -

घेरण्ड संहिता हठयोग आधारित ग्रन्थ है। जिसमें हठ शब्द को घटस्थ योग के रूप में प्रतिपादित किया गया है। शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक शुद्धि हेतु इस ग्रन्थ के सात अध्यायों में सप्तांग योग का विवेचन किया गया है। घटस्थ योग के प्रथम अंग के रूप में शरीर शुद्धिकरण हेतु षट्कर्म की इक्कीस क्रियाओं का वर्णन किया गया है परन्तु षट्कर्म की विधियों में किसी आसन विशेष का उल्लेख नहीं मिलता। वहीं दूसरी ओर षट्कर्म के विषय में प्रमुख योग उपनिषद् मौन हैं। महर्षि घेरण्ड ने द्वितीय अंग के रूप में बत्तीस आसनों को बताया है। आसन को परिभाषित किए बिना ही इन आसनों की विधियों व परिणामों की चर्चा की गई है। इन बत्तीस आसनों में सोलह आसन क्रियाविधि की कुछ विभिन्नताओं के साथ प्रमुख योग उपनिषदों में भी वर्णित हैं। महर्षि घेरण्ड ने तृतीय अध्याय में मुद्राओं का विस्तृत विवेचन किया है। चार बन्धों व पाँच धारणाओं को पच्चीस मुद्राओं के अन्तर्गत सम्मिलित कर इनकी क्रियाविधि व इनके अभ्यास से होने वाले लाभ की भी चर्चा की गई है। साथ ही योग्य गुरु के सान्निध्य में क्रमशः धीरे-धीरे अभ्यास करने तथा कुछ खेचरी आदि मुद्राओं को गुप्त रखे जाने का निर्देश दिया है।

प्रमुख योग उपनिषदों में मुद्रा, बन्ध व धारणाओं को पृथक्-पृथक् विवेचित किया गया है। मुद्राओं के अन्तर्गत घेरण्ड संहिता में वर्णित नभोमुद्रा, व्रजोणि, ताडागी,

माण्डुकी, शाम्भवी, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगी और भुजंगिनी इन दस मुद्राओं का उल्लेख प्रमुख योग उपनिषदों में नहीं मिलता। प्राण जाग्रत व मन को अन्तर्मुखी करना सरल व स्वाभाविक हो सके इस हेतु महर्षि घेरण्ड ने अन्य यौगिक ग्रन्थों की अपेक्षा प्राणायाम से पूर्व प्रत्याहार योगांग को बताया है। प्राणायाम से पूर्व नाड़ी शुद्धि को आवश्यक माना है तथा प्राणायाम से पूर्व स्थान, काल व मिताहार की भी चर्चा की है। प्रमुख योग उपनिषदों में भी घेरण्ड संहिता की भाँति प्राणायाम से पूर्व नाड़ी शुद्धि, स्थान व मिताहार को स्थान दिया है लेकिन काल विशेष का कोई उल्लेख नहीं किया साथ ही प्राणायामों में भस्त्रिका, भ्रामरी व मूर्च्छा का भी उल्लेख नहीं मिलता।

प्राणायाम के अन्तर्गत सहित कुम्भक व केवल कुम्भक के अभ्यास पर विशेष जोर दिया गया है। घेरण्ड संहिता में ध्यान के स्थूल, ज्योति तथा सूक्ष्म तीन भेद बताए हैं जबकि प्रमुख योग उपनिषदों ने इन तीन भेदों का अन्तर्भाव सगुण व निर्गुण ध्यान में ही कर लिया गया है। प्रमुख योग उपनिषदों के समान ही महर्षि घेरण्ड ने अपने सप्तांग योग के अन्तिम अंग के रूप में समाधि योग को वर्णित किया है। समाधि के छः भेद बताकर समाधि योग का फल पूर्ण मुक्ति बताया है। इस प्रकार घेरण्डसंहिता में प्रमुख योग उपनिषदों के समान योग तत्त्व को प्रतिपादित किया गया है।



सन्दर्भ सूची

- 1 अग्रवाल, डॉ. बीना, पातञ्जल योगसूत्र 1/1, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2014 पृ. 4
- 2 योगसूत्र 1/2, उपर्युक्त, पृ. 7
- 3 योगसूत्र 1/12, उपर्युक्त, पृ. 24
- 4 व्यासभाष्य 1/1
- 5 योगसूत्र 1/24, पूर्वोक्त, पृ. 42
- 6 योगसूत्र 2/45, पूर्वोक्त, पृ. 125
- 7 योगसूत्र 1/30, पूर्वोक्त, पृ. 50
- 8 योगसूत्र 1/31, पूर्वोक्त, पृ. 52
- 9 योगसूत्र 2/1, पूर्वोक्त, पृ. 76
- 10 योगसूत्र 3/45, पूर्वोक्त, पृ. 183
- 11 योगसूत्र 2/29, पूर्वोक्त, पृ. 110
- 12 योगसूत्र 2/30, पूर्वोक्त, पृ. 111
- 13 योगसूत्र 2/35, पूर्वोक्त, पृ. 117
- 14 योगसूत्र 2/36, पूर्वोक्त, पृ. 118
- 15 योगसूत्र 2/37, पूर्वोक्त, पृ. 119
- 16 योगसूत्र 2/38, पूर्वोक्त, पृ. 119
- 17 योगसूत्र 2/39, पूर्वोक्त, पृ. 120
- 18 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् - 28, पूर्वोक्त, पृ. 130
- 19 योगसूत्र 2/32, पूर्वोक्त, पृ. 113
- 20 योगसूत्र 2/40, पूर्वोक्त, पृ. 121
- 21 योगसूत्र 2/42, पूर्वोक्त, पृ. 123
- 22 योगसूत्र 2/43, पूर्वोक्त, पृ. 124
- 23 योगसूत्र 2/44, पूर्वोक्त, पृ. 125
- 24 योगसूत्र 2/45, पूर्वोक्त, पृ. 125
- 25 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, पूर्वोक्त, पृ. 130
- 26 योगतत्त्वोपनिषद् 29, पूर्वोक्त, पृ. 414
- 27 योगसूत्र 2/46, पूर्वोक्त, पृ. 126
- 28 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 29, पूर्वोक्त, पृ. 130
- 29 योगसूत्र 2/49, पूर्वोक्त, पृ. 128

-
- 30 योगसूत्र 2/51, पूर्वोक्त, पृ. 130
31 योगसूत्र 2/51, पूर्वोक्त, पृ. 131
32 योगसूत्र 2/53, पूर्वोक्त, पृ. 132
33 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 53, पूर्वोक्त, पृ. 141
34 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 65, पूर्वोक्त, पृ. 146
35 योगचूडामण्युपनिषद् 104-105, पूर्वोक्त, पृ. 402
36 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 106, पूर्वोक्त, पृ. 157
37 योगचूडामण्युपनिषद् 103, पूर्वोक्त, पृ. 402
38 योगसूत्र 2/54, पूर्वोक्त, पृ. 133
39 योगसूत्र 2/55, पूर्वोक्त, पृ. 134
40 अमृतनादोपनिषद् 5, पूर्वोक्त, पृ. 25
41 योगतत्त्वोपनिषद् 68-69, पूर्वोक्त, पृ. 421
42 योगसूत्र 3/1, पूर्वोक्त, पृ. 136
43 अमृतनादोपनिषद् 16, पूर्वोक्त, पृ. 29
44 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, 31, पूर्वोक्त, पृ. 131
45 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, 129, पूर्वोक्त, पृ. 164
46 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, 133-134, पूर्वोक्त, पृ. 165
47 योगसूत्र 3/2, पूर्वोक्त, पृ. 137
48 योगचूडामण्युपनिषद् 112, पूर्वोक्त, पृ. 404
49 योगतत्त्वोपनिषद् 104-105, पूर्वोक्त, पृ. 426-427
50 योगसूत्र 3/3, पूर्वोक्त, पृ. 138
51 योगसूत्र 1/17, पूर्वोक्त, पृ. 30
52 योगसूत्र 4/33, पूर्वोक्त, पृ. 243
53 अमृतनादोपनिषद्, 17, पूर्वोक्त, पृ. 30
54 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, 162, पूर्वोक्त, पृ. 170
55 योगचूडामण्युपनिषद्, 113, पूर्वोक्त, पृ. 405
56 योगतत्त्वोपनिषद् 106-107, पूर्वोक्त, पृ. 427
57 योगसूत्र 4/33, पूर्वोक्त, पृ. 243
58 योगसूत्र 3/55, पूर्वोक्त, पृ. 195
59 योगसूत्र 2/25, पूर्वोक्त, पृ. 103
60 अमृतनादोपनिषद्, 39, पूर्वोक्त, पृ. 37

-
- 61 प्रभुपाद, ए.सी. भक्तिवेदान्तस्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता, यथार्थरूप, 4/1-3, भक्ति
वेदान्त बुक ट्रस्ट, जुहु, 1990, पृ. 144-147
- 62 श्रीमद्भगवद्गीता 2/48, उपर्युक्त, पृ. 93
- 63 श्रीमद्भगवद्गीता 2/50, उपर्युक्त, पृ. 294
- 64 श्रीमद्भगवद्गीता 6/23, उपर्युक्त, पृ. 217
- 65 श्रीमद्भगवद्गीता 6/15, उपर्युक्त, पृ. 213
- 66 योगकुण्डल्युपनिषद् 1/1, पूर्वोक्त, पृ. 336
- 67 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, 22, पूर्वोक्त, पृ. 129
- 68 श्रीमद्भगवद्गीता 3/3, पूर्वोक्त, पृ. 112
- 69 श्रीमद्भगवद्गीता 7/6, पूर्वोक्त, पृ. 245
- 70 श्रीमद्भगवद्गीता 2/20, पूर्वोक्त, पृ. 70
- 71 श्रीमद्भगवद्गीता 2/24, पूर्वोक्त, पृ. 74
- 72 श्रीमद्भगवद्गीता 4/36, पूर्वोक्त, पृ. 177
- 73 श्रीमद्भगवद्गीता 4/37, पूर्वोक्त, पृ. 177
- 74 श्रीमद्भगवद्गीता 4/38, पूर्वोक्त, पृ. 177
- 75 श्रीमद्भगवद्गीता 4/39, पूर्वोक्त, पृ. 178
- 76 श्रीमद्भगवद्गीता 3/5, पूर्वोक्त, पृ. 114
- 77 श्रीमद्भगवद्गीता 3/7, पूर्वोक्त, पृ. 115
- 78 श्रीमद्भगवद्गीता 3/8, पूर्वोक्त, पृ. 116
- 79 श्रीमद्भगवद्गीता 3/19, पूर्वोक्त, पृ. 125
- 80 श्रीमद्भगवद्गीता 6/47, पूर्वोक्त, पृ. 236
- 81 श्रीमद्भगवद्गीता 12/2, पूर्वोक्त, पृ. 401
- 82 श्रीमद्भगवद्गीता 9/2, पूर्वोक्त, पृ. 295
- 83 श्रीमद्भगवद्गीता 7/17, पूर्वोक्त, पृ. 257
- 84 श्रीमद्भगवद्गीता 6/10-11, पूर्वोक्त, पृ. 209-210
- 85 श्रीमद्भगवद्गीता 6/13, पूर्वोक्त, पृ. 211
- 86 श्रीमद्भगवद्गीता 6/12, पूर्वोक्त, पृ. 211
- 87 श्रीमद्भगवद्गीता 6/19, पूर्वोक्त, पृ. 217
- 88 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, 24-25, पूर्वोक्त, पृ. 129
- 89 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, 26-27, पूर्वोक्त, पृ. 129
- 90 योगतत्त्वोपनिषद्, 16-17, पूर्वोक्त, पृ. 411

-
- 91 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, 155-156, पूर्वोक्त, पृ. 168-169
- 92 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, 157-158, पूर्वोक्त, पृ. 169
- 93 श्रीमद्भगवद्गीता 6/16-17, पूर्वोक्त पृ. 214-215
- 94 योगतत्त्वोपनिषद्, 46-47, पूर्वोक्त, पृ. 417
- 95 योगतत्त्वोपनिषद्, 48-49, पूर्वोक्त, पृ. 418
- 96 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/3-4, पूर्वोक्त, पृ. 337-338
- 97 सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द, घेरण्ड संहिता, 1/9, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, 2011, पृ. 15
- 98 घेरण्ड संहिता 1/10-11, उपर्युक्त, पृ. 18
- 99 घेरण्ड संहिता 1/12, उपर्युक्त, पृ. 23
- 100 घेरण्ड संहिता 1/13, उपर्युक्त, पृ. 28
- 101 घेरण्ड संहिता 1/15-16, उपर्युक्त, पृ. 29-31
- 102 घेरण्ड संहिता 1/17-18, उपर्युक्त, पृ. 35
- 103 घेरण्ड संहिता 1/19-20, उपर्युक्त, पृ. 45
- 104 घेरण्ड संहिता 1/21, उपर्युक्त, पृ. 49
- 105 घेरण्ड संहिता 1/26-27, उपर्युक्त, पृ. 56
- 106 घेरण्ड संहिता 1/29, उपर्युक्त, पृ. 59
- 107 घेरण्ड संहिता 1/32, उपर्युक्त, पृ. 60
- 108 घेरण्ड संहिता 1/33, उपर्युक्त, पृ. 63
- 109 घेरण्ड संहिता 1/36-37, उपर्युक्त, पृ. 65
- 110 घेरण्ड संहिता 1/38-39, उपर्युक्त, पृ. 66
- 111 घेरण्ड संहिता 1/40-41, उपर्युक्त, पृ. 72
- 112 घेरण्ड संहिता 1/42-44, उपर्युक्त, पृ. 75
- 113 घेरण्ड संहिता 1/45, उपर्युक्त, पृ. 80
- 114 घेरण्ड संहिता 1/46-47, उपर्युक्त, पृ. 82
- 115 घेरण्ड संहिता 1/48-49, उपर्युक्त, पृ. 84-85
- 116 घेरण्ड संहिता 1/50-51, उपर्युक्त, पृ. 88
- 117 घेरण्ड संहिता 1/52, उपर्युक्त, पृ. 97
- 118 घेरण्ड संहिता 1/53-54, उपर्युक्त, पृ. 106
- 119 घेरण्ड संहिता 1/56-57, उपर्युक्त, पृ. 114
- 120 घेरण्ड संहिता 1/58, उपर्युक्त, पृ. 117

-
- 121 घेरण्ड संहिता 1/59-60, उपर्युक्त, पृ. 118
122 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, 88-89, पूर्वोक्त, पृ. 152
123 योगचूडामण्युपनिषद्, 99, पूर्वोक्त, पृ. 401
124 योगकुण्डल्युपनिषद्, 4, पूर्वोक्त, पृ. 126
125 घेरण्ड संहिता 2/7-8, पूर्वोक्त, पृ. 126
126 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 49-50, पूर्वोक्त, पृ. 140
127 घेरण्ड संहिता 2/9, पूर्वोक्त, पृ. 130
128 योगकुण्डल्युपनिषद् 1/5, पूर्वोक्त, पृ. 338
129 घेरण्ड संहिता 2/10-11, पूर्वोक्त, पृ. 135
130 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, 45, पूर्वोक्त, पृ. 139
131 घेरण्ड संहिता 2/12, पूर्वोक्त, पृ. 137
132 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 46, पूर्वोक्त, पृ. 139
133 घेरण्ड संहिता 2/13, पूर्वोक्त, पृ. 139
134 योगकुण्डल्युपनिषद् 1/6, पूर्वोक्त, पृ. 338
135 घेरण्ड संहिता 1/14, पूर्वोक्त, पृ. 142
136 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 35, पूर्वोक्त, पृ. 136
137 घेरण्ड संहिता 2/15-16, पूर्वोक्त, पृ. 144
138 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 44, पूर्वोक्त, पृ. 139
139 घेरण्ड संहिता 2/17, पूर्वोक्त, पृ. 147
140 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 36, पूर्वोक्त, पृ. 136
141 घेरण्ड संहिता 2/18, पूर्वोक्त, पृ. 150
142 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 37, पूर्वोक्त, पृ. 137
143 घेरण्ड संहिता 2/19, पूर्वोक्त, पृ. 152
144 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 43, पूर्वोक्त, पृ. 138
145 घेरण्ड संहिता 2/23-24, पूर्वोक्त, पृ. 161
146 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 48-49, पूर्वोक्त, पृ. 140
147 घेरण्ड संहिता 2/27, पूर्वोक्त, पृ. 167
148 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 50-51, पूर्वोक्त, पृ. 141
149 घेरण्ड संहिता 2/30, पूर्वोक्त, पृ. 173
150 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 47-48, पूर्वोक्त, पृ. 139
151 घेरण्ड संहिता 2/31, पूर्वोक्त, पृ. 176

-
- 152 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 41, पूर्वोक्त, पृ. 138
153 घेरण्डसंहिता 2/33, पूर्वोक्त, पृ. 181
154 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 42, पूर्वोक्त, पृ. 138
155 घेरण्ड संहिता 2/44-45, पूर्वोक्त, पृ. 200
156 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 38, पूर्वोक्त, पृ. 137
157 घेरण्ड संहिता 3/6-7, पूर्वोक्त, पृ. 208
158 योगतत्त्वोपनिषद्, 120-122, पूर्वोक्त, पृ. 433
159 घेरण्ड संहिता 3/12-13, पूर्वोक्त, पृ. 217
160 योगचूडामण्युपनिषद् 48-49, पूर्वोक्त, पृ. 385
161 घेरण्ड संहिता 3/10-11, पूर्वोक्त, पृ. 213
162 योगचूडामण्युपनिषद्, 112-113, पूर्वोक्त, पृ. 428
163 घेरण्ड संहिता 3/14-15, पूर्वोक्त, पृ. 220
164 योगतत्त्वोपनिषद्, 112-113, पूर्वोक्त, पृ. 428
165 घेरण्ड संहिता 3/29-30, पूर्वोक्त, पृ. 231
166 योगचूडामण्युपनिषद्, 66, पूर्वोक्त, पृ. 390
167 घेरण्ड संहिता 3/42, पूर्वोक्त, पृ. 239
168 योगतत्त्वोपनिषद्, 115-116, पूर्वोक्त, पृ. 429
169 घेरण्ड संहिता 3/33-34, पूर्वोक्त, पृ. 235
170 योगतत्त्वोपनिषद्, 52, पूर्वोक्त, पृ. 430
171 योगचूडामण्युपनिषद्, 117-118, पूर्वोक्त, पृ. 386
172 घेरण्ड संहिता 3/46-47, पूर्वोक्त, पृ. 242
173 योगतत्त्वोपनिषद्, 124-125, पूर्वोक्त, पृ. 434
174 घेरण्ड संहिता 3/49-53, पूर्वोक्त, पृ. 247
175 योगचूडामण्युपनिषद् 114, पूर्वोक्त, पृ. 405
176 घेरण्ड संहिता 3/64-68, पूर्वोक्त, पृ. 255
177 योगचूडामण्युपनिषद् 40, पूर्वोक्त, पृ. 383
178 घेरण्ड संहिता 4/1-5, पूर्वोक्त, पृ. 281
179 अमृतनादोपनिषद्, 51, पूर्वोक्त, पृ. 25
180 योगतत्त्वोपनिषद् 68-69, पूर्वोक्त, पृ. 421
181 घेरण्ड संहिता 5/2, पूर्वोक्त, पृ. 288
182 घेरण्ड संहिता 5/3-7, पूर्वोक्त, पृ. 289-290

-
- 183 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, 89-91, पूर्वोक्त, पृ. 152
184 घेरण्ड संहिता 5/32, पूर्वोक्त, पृ. 298
185 योगतत्त्वोपनिषद्, 32-35, पूर्वोक्त, पृ. 415
186 घेरण्ड संहिता 5/15, पूर्वोक्त, पृ. 292
187 घेरण्ड संहिता 5/21-22, पूर्वोक्त, पृ. 294
188 घेरण्ड संहिता 5/35, पूर्वोक्त, पृ. 299
189 योगचूडामण्युपनिषद् 97, पूर्वोक्त, पृ. 400
190 घेरण्ड संहिता 5/45-46, पूर्वोक्त, पृ. 305-306
191 घेरण्ड संहिता 5/60-66, पूर्वोक्त, पृ. 314
192 घेरण्ड संहिता 5/58-59 व 69, पूर्वोक्त, पृ. 314
193 योगकुण्डल्युपनिषद् 1/24, पूर्वोक्त, पृ. 342
194 घेरण्ड संहिता 5/70-71, पूर्वोक्त, पृ. 319
195 योगकुण्डल्युपनिषद् 1/26-27, पूर्वोक्त, पृ. 343
196 घेरण्ड संहिता 5/74-75, पूर्वोक्त, पृ. 321
197 योगकुण्डल्युपनिषद् 1/30, पूर्वोक्त, पृ. 344
198 घेरण्ड संहिता 5/76-78, पूर्वोक्त, पृ. 323
199 घेरण्ड संहिता 5/79-83, पूर्वोक्त, पृ. 326
200 घेरण्ड संहिता 5/85, पूर्वोक्त, पृ. 330
201 घेरण्ड संहिता 6/1, पूर्वोक्त, पृ. 341
202 घेरण्ड संहिता 6/16-17, पूर्वोक्त, पृ. 355
203 घेरण्ड संहिता 6/18-20, पूर्वोक्त, पृ. 357
204 घेरण्ड संहिता 7/3-4, पूर्वोक्त, पृ. 365

षष्ठ अध्याय

प्रमुख योग उपनिषदों की वर्तमान प्रासंगिकता

षष्ठ अध्याय

प्रमुख योग उपनिषदों की वर्तमान प्रासंगिकता

उपनिषद् भारतीय दर्शन का एक महत्त्वपूर्ण अंग हैं। ये ब्रह्म, जगत्, जीव, आत्मा, सत्य आदि विषयों का प्रतिपादन गहनता से करते हैं। अध्यात्म के साथ-साथ उपनिषदों में जीवन दर्शन की व्यावहारिकता को भी बताया गया है - 'सत्यमेव जयते नानृतम्', 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्'। उपनिषद् केवल अध्यात्म-जीवन दर्शन ही नहीं अपितु जीवनशैली को भी मुखरता से प्रतिपादित करते हैं। योगदर्शन एवं योग उपनिषद् इसके प्रतिदर्श हैं, जो प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के मूलाधार हैं।

वस्तुतः योग अध्यात्म, जीवनदर्शन एवं दैनिक जीवन शैली इन तीनों ही आयामों को दर्शाता है। 'पहला सुख नीरोगी काया' का सिद्धान्त योग की मानव जीवन में भूमिका को अधिक स्पष्ट करता है। परम सुख की प्राप्ति योग के प्रशस्त मार्ग पर चलने के लिए सदा प्रेरित करती रहेगी।

मानव जीवन का चरम लक्ष्य चतुर्थ पुरुषार्थ की प्राप्ति तो वर्तमान पीढ़ी के लिए दूर की कौड़ी है। वर्तमान पीढ़ी स्वयं को स्वस्थ रख सके अथवा रोगों से बचाए रखने के लिए प्रयासरत हो यही पर्याप्त है। प्राचीन पीढ़ी आध्यात्मिक जीवन में स्वास्थ्य के महत्त्व को प्रामुख्य देती थी इसलिए विभिन्न योग उपनिषदों में आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध एवं विविध योग विधियों का वर्णन प्राप्त होता है। ये विधियाँ कई शताब्दियों के बाद भी मानव स्वास्थ्य के लिए प्रासंगिक हैं।

प्रमुख योग उपनिषदों में योग तत्त्व का विवेचनात्मक, तुलनात्मक व समीक्षात्मक अध्ययन चतुर्थ व पञ्चम अध्याय में किया जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय में प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित यम, नियम, आसन, बन्ध, मुद्रा, प्राणायाम, प्रत्याहार, कुण्डलिनी जागरण, मूलाधार चक्र का ध्यान, अजपा जप, प्रणव उपासना, धारणा, ध्यान, समाधि तथा यौगिक आहार व दिनचर्या की वर्तमान सन्दर्भ में उपादेयता सिद्ध की जा रही है साथ ही इन उपनिषदों में वर्णित योगाभ्यासों का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक व भावात्मक स्वास्थ्य के क्षेत्र में, नैतिक व चारित्र्यिक क्षेत्र में, शैक्षिक क्षेत्र में, आर्थिक क्षेत्र में तथा खेलकूद के क्षेत्र में उपयोगिता को बताया जा रहा है। बच्चों,

किशोरों, वृद्धों तथा गर्भवती महिलाओं के लिये योगाभ्यास व यौगिक आहार किस प्रकार उपयोगी हो सकता है। वात, पित्त व कफ को शान्त करने वाले योगाभ्यासों तथा विभिन्न अन्तःस्रावी ग्रन्थियों को प्रभावित करने वाले योगाभ्यासों का उल्लेख किया गया है। अस्थमा, उच्च व निम्न रक्तचाप, मधुमेह, सिर दर्द, मिर्गी, छाती, पेट व हृदय से सम्बन्धित रोगों को दूर करने वाले, मस्तिष्क एवं स्मरण शक्ति के विकास के लिए, आलस्य को दूर करने वाले, अनिद्रा व तनाव को दूर करने वाले, बवासीर, रक्त अल्पता, मोटापा, हर्निया तथा महिलाओं व पुरुषों से सम्बन्धित रोग को दूर करने वाले योगाभ्यासों की उपयोगिता बताई जा रही है।

6.1 यम-नियम की उपादेयता -

यम और नियम अष्टांग योग के मूल आधार व महत्त्वपूर्ण अंग हैं। ये योगसिद्धि के मार्ग हैं, जिनकी पालना किए बिना अष्टांग योग सिद्ध नहीं हो सकता। जितना इनका अभ्यास करेंगे उतना ही योग की गहराई में उतरेंगे। यम और नियम समाधि सिद्धि के लिए दृढ़ आधार रूप भूमिका तैयार करते हैं। ये हमारे व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन से सम्बन्धित हैं, जो हमारे नैतिक मूल्यों से सरोकार रखते हैं।

प्रमुख योग उपनिषदों में यम और नियम को योग साधक के द्वारा पालन किए जाने वाला प्रथम व द्वितीय अनिवार्य अंग माना है। यम के पालन से बाह्य आचरण शुद्ध होता है और नियम से आन्तरिक वृत्तियों में सुधार आता है। आचरण व वृत्तियों के शुद्ध या निर्मल हो जाने पर आगे की साधना से उपलब्धि शीघ्र होती है तथा कोई दुष्परिणाम नहीं होते अतः योग साधना में इनको अंग स्वीकार कर सर्वप्रथम इनके आचरण पर जोर दिया गया है।

योग गुरु डॉ.बी.के.एस. अयंगर ने यम और नियम को आध्यात्मिक द्वार खोलने की स्वर्णिम कुंजी के रूप में वर्णित किया है क्योंकि ये हमारी प्रत्येक क्रिया को ऐसी क्रिया में बदल देते हैं, जो हमें हमारे भीतर गहरे व पूर्व जुड़ाव व एकता की ओर ले जाती है। जिससे हम हर पल योग में जीते हैं। योगतत्त्वोपनिषद् में अष्टांग योग के अन्तर्गत यम व नियम का उल्लेख किया गया है लेकिन इनकी संख्या या प्रकार नहीं बताए गए हैं। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, भगवत्

आराधना, वेदान्त श्रवण, ही, बुद्धि व तप को व्रत (यम) कहा गया है तथा अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा, धैर्य, मिताहार और शुद्धता ये दस नियम बताए हैं। योगचूडामण्युपनिषद् व अमृतनादोपनिषद् में यम और नियम को सभी प्रकार के साधकों के लिए आवश्यक व अनिवार्य मानते हुए इन्हें योगांग के रूप में न मानकर अन्य छः को ही अंग माना है जिसे षडंग योग कहा है। अब यहाँ प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित यम और नियम की वर्तमान प्रासंगिकता बताई जा रही है -

- यम-नियम आत्मोत्थान व सामाजिक कल्याण के लिए उपयोगी हैं तथा बाह्य व आन्तरिक शुद्धता प्रदान करते हैं।
- ये योग के नैतिक दिशा निर्देश हैं, जिनके पालन से व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, नैतिक, सामाजिक व आध्यात्मिक विकास होता है।
- यम सामाजिक नैतिकता का तथा नियम शील व तपस्या का द्योतक है।
- यम सामाजिक नैतिकता या अनुशासन है, जो सामाजिक व बाह्य क्रियाओं को सामंजस्य पूर्ण बनाता है तथा निर्देश देता है कि हमें अपने समाज में कैसा व्यवहार करना है।
- नियम व्यक्तिगत नैतिकता या आन्तरिक अनुशासन है। जिससे व्यक्ति स्व जीवन का नियमन कर आत्मोत्थान कर सकता है।
- ये हमारे व्यवहार व चरित्र को शुद्ध, सात्त्विक व निर्मल बनाते हैं क्योंकि बिना व्यवहार शुद्धि के हम किसी भी साधना में प्रवृत्त नहीं हो सकते और न ही हमारा सर्वांगीण विकास हो सकता है।
- इनके परिपालन या आचरण से अच्छे संस्कारों का उदय होता है।
- यम-नियम का पालन करते हुए हम जागरूक होकर आत्म परिष्कार के साथ-साथ सामाजिक कुप्रथाओं को दूर कर सकते हैं, जिससे एक स्वस्थ, सभ्य व समुन्नत राष्ट्र का निर्माण हो सकता है।
- अहिंसा, अस्तेय, सन्तोष व तप के बिना शान्तिपूर्वक ध्यान नहीं किया जा सकता और न ही आसन में स्थिरता आ सकती है।
- सत्य व अहिंसा से सभी प्राणियों का कल्याण होता है। अस्तेय व अपरिग्रह से मानवीय व्यवहार व आचरण में ईमानदारी आती है तथा लालच व जमाखोरी की प्रवृत्ति का त्याग कर वही लेते हैं, जो आवश्यक है और हमारा है। ब्रह्मचर्य पालन से

मौन ऊर्जा को आध्यात्मिक या आत्मोत्थान में लगाते हैं। शौच से शारीरिक व मानसिक शुद्धि होती है। सन्तोष से आत्मसन्तुष्टि व प्रसन्नता होती है। तप स्वानुशासन सिखाता है। स्वाध्याय, आत्मचिन्तन व मनन सिखाता है, जिससे जीवन में उच्च विचारों का समावेश होता है तथा ईश्वर प्रणिधान से ईश्वर के प्रति समर्पण व श्रद्धा का भाव आता है जिससे हम सद्विचार व सुकर्म अपनाकर स्वजीवन की सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं।¹

- राग-द्वेष नष्ट हो जाते हैं, मोह व लालच नहीं रहता तथा शत्रुता नष्ट हो जाती है।
 - सभी प्राणियों से आत्मीयता हो जाती है। मर्यादित व नीतिमार्ग का आचरण करते हैं। व्यक्ति समाजनिष्ठ बन जाता है। एकता, समता व सद्भावना का विकास होता है।
 - परस्त्री व पुरुष के प्रति पवित्र दृष्टि हो जाती है। इन्द्रिय लोलुपता नष्ट हो जाती है। साथ ही हम स्वकर्तव्य व दायित्वों के प्रति जागरूक हो जाते हैं।
 - इनके आचरण से मधुरता, स्वच्छता, पवित्रता व सादगीपूर्ण परिवेश का निर्माण होता है।
 - व्यक्ति दैन्यभावहीन व अभिमानरहित होकर निश्चित, निडर व उत्साही हो जाता है।
- इस प्रकार यम और नियम जीवन जीने की एक व्यावहारिक शैली है। जो हमें दैनिक जीवन के प्रत्येक क्षण में आन्तरिक शान्ति, आनन्द और प्रेम प्रदान कर आत्मसाक्षात्कार कराती है। आज दिनोंदिन व्यक्ति का व्यक्तिगत व सामाजिक स्तर गिरता जा रहा है अतः प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित यम व नियम के पालन की वर्तमान सन्दर्भ में महती आवश्यकता है।

6.2 विभिन्न आसनों की उपादेयता

आसन शरीर की एक मुद्रा या स्थिति है, जिसमें सुखपूर्वक स्थिरता के साथ बैठा जाता है। यह योग का भौतिक पहलू है। यह ऐसी व्यायाम पद्धति है, जो सहज, साध्य व सर्वसुलभ है। हठयोग में आसनों को शरीर शुद्धीकरण व सुदृढ़ीकरण वाला अभ्यास बताया गया है। शरीर से मल या दूषित विकारों के नष्ट हो जाने पर शरीर व मन में स्थिरता आती है। शरीर ही मन और बुद्धि की सहायता से आत्मा को सांसारिक बन्धनों से मुक्त कर सकता है। शरीर की आरोग्यता ही मन और आत्मा के लिए सन्तोषप्रद है। इस प्रकार

आसन चित्त की स्थिरता, शरीर की शुद्धि, शरीर व इसके अंगों की सुदृढ़ता तथा योग के प्राणायामादि उत्तरवर्ती साधनक्रमों में सहायता प्रदान करते हैं। मनुष्य की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए आसन लाभप्रद हैं।

आसनों को खड़े होने, बैठने तथा पीठ या पेट के बल लेटने की स्थिति के आधार पर तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है परन्तु प्रमुख योग उपनिषदों में पेट के बल लेटकर किए जाने वाले धनुरासन को छोड़कर अन्य बैठकर किए जाने वाले आसनों का ही वर्णन किया गया है। इनमें भी पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन तथा सुखासन ध्यान के प्रमुख आसन माने गए हैं। योगतत्त्वोपनिषद् में सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन तथा भद्रासन ये चार प्रकार के आसन बताए गए हैं। योगचूडामण्युपनिषद् में सिद्धासन तथा पद्मासन इन दो आसनों का नामोल्लेख किया गया है। योगकुण्डल्युपनिषद् में पद्मासन तथा वज्रासन इन दो आसनों का वर्णन किया गया है तथा त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में स्वस्तिकासन, गोमुखासन, वीरासन, योगासन, पद्मासन, बद्धपद्मासन, कुक्कुटासन, उत्तानकूर्मासन, धनुरासन, सिंहासन, भद्रासन, मुक्तासन मयूरासन मत्स्येन्द्रासन, सिद्धासन, पश्चिमोत्तानासन व सुखासन इन सत्रह आसनों की क्रियाविधि सहित लाभ का वर्णन किया गया है। इन आसनों की क्रियाविधि व कुछ आसनों के लाभ का विस्तृत विवेचन चतुर्थ अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ इन आसनों की वर्तमान सन्दर्भ में उपादेयता बताई जा रही है -

सिद्धासन से लाभ -



चित्र 6.1 सिद्धासन

- यह ध्यानात्मक आसन है। इसके अभ्यास से मन नियन्त्रित व विचारशून्य हो जाता है अर्थात् मन शान्त हो जाता है।

- यह तनाव और चिन्ता को कम करता है।
- यह मेरूदण्ड को स्ट्रेच और स्थिरता प्रदान करता है।
- यह रक्तचाप, प्रजनन संस्थान व पाचन तन्त्र को संतुलित बनाए रखता है।
- इसके अभ्यास से कामशक्ति, स्वप्नदोष व महिलाओं की श्वेतप्रदर की समस्या भी नियन्त्रित हो जाती है।²

पद्मासन से लाभ -



चित्र 6.2 पद्मासन

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में पद्मासन के लाभ को वर्णित करते हुए कहा है कि इसके अभ्यास से शरीर की सारी बीमारियाँ और विष का प्रभाव दूर हो जाता है -

“पद्मासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविषापहम्”³

इसी प्रकार योगकुण्डल्युपनिषद् में पद्मासन को सर्वपापप्रणाशक बताया गया है-
“पद्मासनं भवेदेतत्सर्वपापप्रणाशनम्”⁴

अन्य यौगिक ग्रन्थों में इसके लाभ इस प्रकार बताए गए हैं - यह शारीरिक और मानसिक स्थिरता व शक्ति प्रदान करता है।

- चिन्ता और अवसाद को दूर कर मन को शान्त व एकाग्र बनाए रखता है।
- तन्त्रिका तन्त्र को शिथिल, पेशीय तनाव को कम तथा रक्तचाप को नियन्त्रित करता है।
- गर्भवती स्त्रियों के लिये प्रसव क्रिया को सुलभ बनाता है।
- यह ब्रह्मचर्य पालन, सकारात्मक दृष्टिकोण प्रदान करने व आध्यात्मिक विकास में सहायक है।
- पाचन तन्त्र को ठीक बनाए रखता है।⁵

सिंहासन से लाभ -



चित्र 6.3 सिंहासन

- गर्दन, पीठ व कन्धों के तनाव को दूर कर इन्हें सुदृढ़ व स्वस्थ बनाए रखता है।
- यह गले के संक्रमण व थायरॉयड की समस्या को दूर करने में सहायक है।
- चेहरे की मांसपेशियों को सुदृढ़ करता है।
- चिन्ता व तनाव को कम करता है।
- रक्त परिसंचरण को बढ़ाता है।
- जो व्यक्ति हकलाता है, तोतला बोलता है या बोलने में कठिनाई होती है तो इन सब विकारों को दूर करने में यह आसन लाभदायक है।⁶

पश्चिमोत्तानासन से लाभ -



चित्र 6.4 पश्चिमोत्तानासन

हठयोगप्रदीपिका (1/29) के अनुसार इस आसन के नियमित अभ्यास से प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी में चलने लगती है। भूख बढ़ जाती है, पेट की चर्बी कम हो जाती है और शरीर नीरोगी हो जाता है।

- मेरुदण्ड को लचीला बनाता है तथा मेरुदण्ड की कुब्जता अर्थात् मेरुदण्ड को सीधा करने के लिए यह उत्तम आसन है।

- घुटनों के पीछे की नसों का विस्तार करता है तथा कूल्हे के जोड़ों को लचीला बनाता है।
- मोटापे को कम करने व अतिरिक्त जमा चर्बी को कम करने में लाभप्रद है।
- मधुमेह, दमा तथा श्वास सम्बन्धी रोगों के उपचार में लाभदायी है।
- स्त्रियों के मासिक धर्म की अनियमितता, यकृत की कार्यमन्दता, कोलाइटिस तथा इयोसिनोकीलिया के उपचार में सहायक है।
- प्रजनन संस्थान से सम्बन्धित रोगों को दूर करने में सहायक है।
- पेट सम्बन्धी विकारों को दूर कर पाचन तन्त्र को ठीक बनाए रखता है।
- अनिद्रा व तनाव को दूर करता है।
- इस आसन के अभ्यास से प्राण सुषुम्ना से प्रवाहित होने लगता है अतः यह कुण्डलिनी जागरण में उपयोगी है।⁷

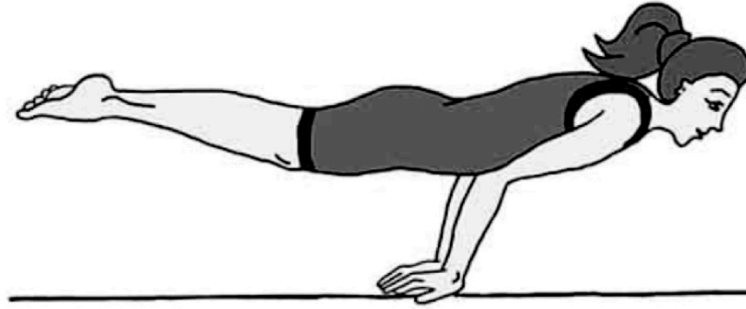
सुखासन से लाभ -



चित्र 6.5 सुखासन

- ध्यान लगाने के लिए यह एक उत्कृष्ट आसन है। जो व्यक्ति पद्मासन लगाने में असमर्थ हैं, वे ध्यान हेतु इस आसन का उपयोग कर सकते हैं।
- इसके अभ्यास से तनाव, चिन्ता तथा अनिद्रा की समस्या दूर हो जाती है।
- यह ब्लडप्रेसर व कोलेस्ट्रॉल नियन्त्रित करने में सहायक है।
- पीठ दर्द व श्वास सम्बन्धी समस्या को दूर करता है।⁸

मयूरासन से लाभ -



चित्र 6.6 मयूरासन

- इसके अभ्यास से पेट से सम्बन्धित अपच, कब्ज तथा वायु विकार की समस्याएँ दूर हो जाती हैं।
- आमाशय तथा मूत्राशय से सम्बन्धित विकार नष्ट हो जाते हैं।
- पाचन शक्ति बढ़ती है।
- हाथ तथा भुजाओं की माँसपेशियाँ सुदृढ़ हो जाती हैं।
- रक्त संचार के बढ़ जाने से चेहरा लाल व कांतिमय हो जाता है।
- यह फेफड़ों के लिए बहुत लाभकारी आसन है।
- पूरे शरीर को स्थिरता प्रदान करता है।
- मोटापा व वजन घटाने में सहायक है।
- मधुमेह, यकृत एवं वृक्क मन्दता के उपचार में सहायक है।
- वात, पित्त तथा कफ इन त्रिदोषों में सन्तुलन एवं सामंजस्य स्थापित करता है।⁹

मत्स्येन्द्रासन से लाभ -



चित्र 6.7 मत्स्येन्द्रासन

हठयोग प्रदीपिका (1/27) के अनुसार इसके अभ्यास से भूख बढ़ती है। शरीर के रोग नष्ट हो जाते हैं। कुण्डलिनी शक्ति जगाने में सहायता मिलती है। यह आसन ब्रह्मरन्ध्र से कोमल तालु पर गिरने वाले अमृतरस को नाभि में गिरकर नष्ट होने से रोकता है।

- मेरुदण्ड को स्वस्थ रखने में सहायक है।
- पीठ, कमर, गर्दन एवं नितम्बों के जोड़ों का दर्द अतिशीघ्र दूर हो जाता है।
- जननेन्द्रिय के रोग दूर हो जाते हैं।
- पेट की जमा चर्बी दूर हो जाती है तथा पाचनतन्त्र से सम्बन्धित रोगों का निवारण होता है।
- आँतों, आमाशय एवं पाचन तन्त्र की मालिश करने में उपयोगी है।
- मधुमेह के इलाज में लाभप्रद है।
- अधिवृक्क ग्रन्थियों (एड्रीनल ग्लैंड्स) व पित्त के स्राव का नियमन करता है।¹⁰

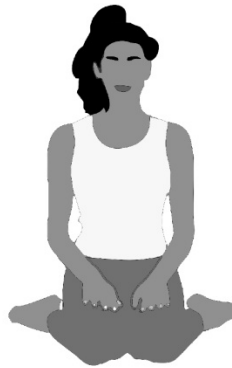
गोमुखासन से लाभ -



चित्र 6.8 गोमुखासन

- स्नायु तथा कन्धें मजबूत होते हैं।
- फेंफड़ों से सम्बन्धित या श्वास सम्बन्धी रोग दूर हो जाते हैं।
- दमा तथा क्षय रोग में लाभकारी है।
- कोहनी, जँघा तथा घुटनों के दर्द में लाभकारी है।
- स्पाँण्डिलाइटिस, राइटर्स क्रैम्प व स्टिक आदि विकारों में बहुत लाभकारी है।¹¹

वीरासन से लाभ -



चित्र 6.9 वीरासन

- ध्यान व एकाग्रता के लिए उपयोगी आसन है।
- स्नायविक विकारों के लिए बहुत उपयोगी है।
- जाँघ की मांसपेशियों को सुदृढ़ करता है।

- एड़ी व घुटनों के दर्द में लाभकारी है।
- वृक्क, यकृत, आमाशय व प्रजनन अंगों की स्वस्थता के लिए बहुत उपयोगी है।¹²

योगासन से लाभ -



चित्र 6.10 योगासन

- यह एक सहज व सरल आसन है। जो जप व ध्यान लगाने के लिए उपयुक्त है।
- मन को शान्त व एकाग्र बनाने के लिए बहुत लाभकारी है।
- इसके अभ्यास से चिन्ता, तनाव व अवसाद आदि मानसिक विकृतियाँ दूर हो जाती हैं।¹³

भद्रासन से लाभ -



चित्र 6.11 भद्रासन

- मेरुदण्ड व पैरों को मजबूती प्रदान करता है।
- यह ध्यान लगाने के लिए श्रेष्ठ आसन है। इसके अभ्यास से मूलाधार चक्र उत्तेजित हो जाता है।
- यह मन को स्थिरता प्रदान करता है।
- महिलाओं की मासिक धर्मसम्बन्धी अनियमितता को दूर करता है तथा गर्भाधान के लिए लाभकारी आसन है।¹⁴

वज्रासन से लाभ -



चित्र 6.12 वज्रासन

- भोजन करने के बाद इस आसन में बैठने से अपच, बदहजमी, कब्ज, गैस आदि पेट से सम्बन्धित विकार दूर हो जाती हैं।
- पाचन तन्त्र की कार्य क्षमता में वृद्धि करता है।
- कमर व घुटनों से सम्बन्धित दर्द को दूर करता है।
- पुरुषों के अण्डकोश ग्रन्थि की वृद्धि और हाइड्रोसिल के उपचार में सहायक है।
- स्त्रियों के मासिक धर्म की अनियमितता को दूर करता है।
- गठिया, अल्सर व पाइल्स जैसी बीमारियों के लिए बहुत लाभकारी है।¹⁵

स्वस्तिकासन से लाभ -



चित्र 6.13 स्वस्तिकासन

- यह सबसे सरल ध्यानात्मक आसन है। जो स्फीतशिरा, पेशीय पीड़ा या पैरों की द्रव अवरोधन पीड़ा से ग्रसित व्यक्ति के लिए बहुत लाभकारी है।
- घुटनों के जोड़ स्वस्थ और लचीले हो जाते हैं।
- इससे मन शान्त रहता है और एकाग्रता बढ़ती है, जिससे तनाव दूर हो जाता है।¹⁶

बद्धपद्मासन से लाभ -



चित्र 6.14 बद्धपद्मासन

- पद्मासन से होने वाले लाभ के अतिरिक्त इस आसन से घुटनों, पैरों, कन्धों व कोहनियों के दर्द में आराम मिलता है।
- मेरुदण्ड व पीठ की मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं।
- इसके अभ्यास से रक्त संचरण ठीक रहता है।¹⁷

कुक्कुटासन से लाभ -



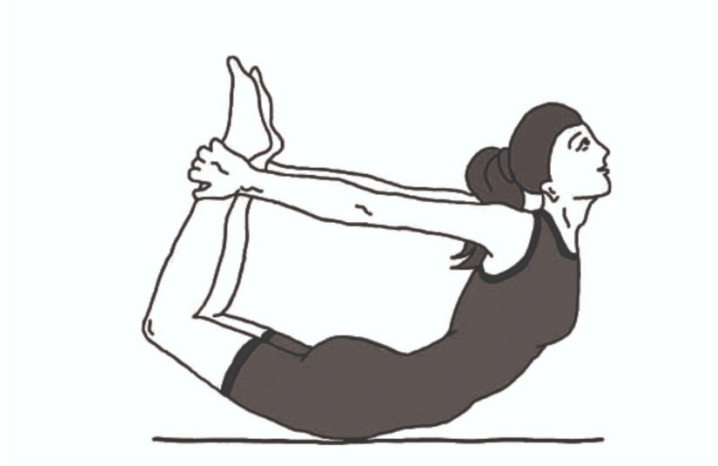
चित्र 6.15 कुक्कुटासन

- शरीरिक संतुलन व स्थिरता को बढ़ाता है।
- भुजाओं, कन्धों व कोहनियों को मजबूत करता है।
- वक्षस्थल का विस्तार कर उसे स्वस्थ बनाए रखने में सहायक है।
- पाचन तन्त्र सक्रिय बनाए रखता है।
- मूलाधार चक्र को सक्रिय करने के कारण इस आसन का उपयोग कुण्डलिनी जागरण के लिए किया जाता है।¹⁸

उत्तानकूर्मासन से लाभ -

- नाड़ियों में सुचारु रूप से प्राणवायु का संचार कर तन्त्रिका तन्त्र को मजबूत बनाता है।
- डायबिटीज को नियन्त्रित करने में उपयोगी है।
- पेट सम्बन्धी विकारों को दूर करने में सहायक है।
- पीठ दर्द में लाभदायक है।
- नाभि केन्द्र को ठीक बनाए रखता है।¹⁹

धनुरासन से लाभ -



चित्र 6.16 धनुरासन

- मोटापा कम करने व वजन घटाने के लिए यह एक उत्तम योगासन है।
- मेरुदण्ड को लचीला बनाता है।
- मेरुदण्ड सम्बन्धी रोगों जैसे - स्लिपडिस्क, स्पाँडिलाइटिस या साइटिका के उपचार में सहायक है।
- दीर्घकालिक कब्ज, अपच आदि को दूर कर पाचन तन्त्र को ठीक बनाए रखता है।
- डायबिटीज, थायरॉइड, कोलाइटिस तथा मासिक धर्म सम्बन्धी बीमारियों के उपचार में सहायक है।
- यकृत की क्रियाशीलता को बढ़ाता है तथा पेट के वायु सम्बन्धी विकारों को दूर करता है।²⁰

मुक्तासन से लाभ -



चित्र 6.17 मुक्तासन

- यह बहुत ही सरल आसन है। जो लोग ध्यान के अन्य आसनों में नहीं बैठ सकते हैं, वे इस आसन का उपयोग कर सकते हैं।
- यह एक शिथिलीकरण का आसन है। अन्य आसनों में लम्बे समय तक बैठने के बाद शरीर को आराम देने के लिए इस आसन का उपयोग किया जाता है।
- यह ध्यान व एकाग्रता प्रदान करता है।
- यह घुटनों के दर्द में तथा स्त्री रोगों में लाभदायक है।²¹

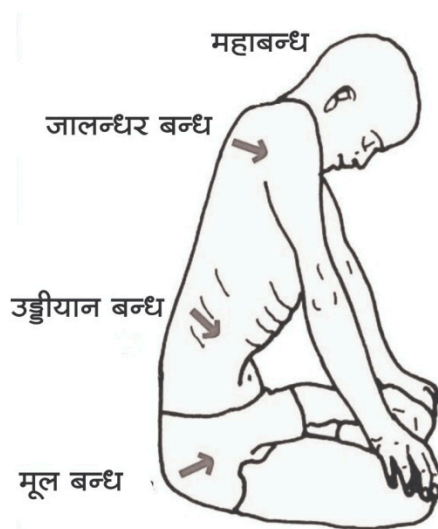
6.3 यौगिक बन्धों की उपादेयता

यह एक यौगिक तकनीक है, जिसमें शारीरिक क्रिया की प्रधानता रहती है। जिसका प्रभाव प्राण व शरीर पर पड़ता है। बन्ध के अभ्यास से शरीर में कुछ विशेष अवयवों या आन्तरिक अंगों में प्राणवायु के प्रवाह को रोक दिया जाता है और जब बन्ध खोला जाता है तो वायु अधिक वेग व दबाव से साथ शरीर में प्रवाहित होने लगती है जिससे ब्रह्म, विष्णु तथा रुद्र ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, जो हमारे शरीर में स्थित चक्रों में प्राण के प्रवाह को रोकती हैं। बन्ध प्राणवायु को अन्तरोन्मुखी बना देते हैं, जिससे सुषुम्ना नाड़ी में प्राण का प्रवाह होने लगता है और कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है।

इस प्रकार बन्धों का मूल उद्देश्य प्राणों को बांधकर उसके प्रवाह को सुषुम्ना नाड़ी की तरफ ले जाना व कुण्डलिनी जाग्रत करने में सहायता प्रदान करना है।

हठयोग के ग्रन्थों में बन्धों को मुद्राओं का अंग बताया गया है अतः बन्धों का उल्लेख मुद्राओं के साथ ही किया गया है परन्तु प्रमुख योग उपनिषदों में बन्धों को एक स्वतन्त्र अभ्यास प्रणाली के रूप में बताया गया है। बन्धों का अभ्यास पहले स्वतन्त्र रूप से करना चाहिए फिर उनमें कुशलता प्राप्त कर लेने पर इन्हें मुद्राओं और प्राणायामों के साथ जोड़ कर अभ्यास करना चाहिए।

योगचूडामण्युपनिषद् और योगकुण्डल्युपनिषद् में तीन बन्धों का वर्णन किया गया है जबकि योगतत्त्वोपनिषद् में मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध, जालन्धर बन्ध और महाबन्ध ये चार बन्ध बताए गए हैं। इन बन्धों की क्रियाविधि का फलसहित विवेचन चतुर्थ अध्याय में किया जा चुका है। अब यहाँ इन यौगिक बन्धों की वर्तमान प्रासंगिकता बताई जा रही है।



चित्र 6.18 बन्ध

मूलबन्ध (गुदा बन्ध) से लाभ -

योगकुण्डल्युपनिषद् में मूलबन्ध के अभ्यास से होने वाले आध्यात्मिक लाभ को बताते हुए कहा गया है कि -

“अपाने चोर्ध्वगे याति सम्प्राप्ते वह्निमण्डले।

ततोऽनलशिखा दीर्घा वर्धते वायुना हता॥

ततो यातौ वह्न्यपानौ प्राणमुष्णस्वरूपकम्।

तेनात्यन्तप्रदीप्तेन ज्वलनो देहजस्तथा।

तेन कुण्डली सुप्ता संतप्ता सम्प्रबुध्यते।

दण्डाहत भुजङ्गीव निश्वस्य ऋजुतां ब्रजेत्॥”²²

अर्थात् मूलबन्ध लगाने से अपान वायु ऊर्ध्वगामी होकर वह्निमण्डल तक पहुँचने पर जठराग्नि अपान वायु से प्रदीप्त हो जाती है। प्राण के संतप्त होकर ऊष्ण हो जाने पर उसके सान्निध्य के कारण सुप्त कुण्डलिनी भी संतप्त होकर जाग्रत हो जाती है।

योगचूडामण्युपनिषद् के अनुसार मूलबन्ध का निरन्तर अभ्यास करने से प्राण और अपान वायु मिल जाते हैं, जिससे शरीर में मल-मूत्र की मात्रा घट जाती है। वृद्ध व्यक्ति भी इसके अभ्यास से युवा हो जाता है -

“अपानप्राणयोरैक्यं क्षयान्मूत्रपुरीषयोः।

युवा भवति वृद्धोऽपि सततं मूलबन्धनात्॥”²³

योगतत्त्वोपनिषद् में कहा गया है कि -

“प्राणापानौ नादबिन्दू मूलबन्धेन चैकताम्॥

गत्वा योगस्य संसिद्धिं यच्छतो नात्र संशयः॥”²⁴

अर्थात् मूलबन्ध के द्वारा प्राण और अपान तथा नाद और बिन्दू आपस में मिलकर निस्सन्देह योग में सिद्धि प्रदान करते हैं।

अन्य लाभ इस प्रकार हैं -

- इसके अभ्यास से शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होते हैं।
- अर्श, गुदा का बाहर निकलना आदि गुदा सम्बन्धी विकार दूर हो जाते हैं।
- शीघ्रपतन, मूत्र का बार-बार आना आदि जननेन्द्रिय विकार दूर हो जाते हैं।
- इसके अभ्यास से कुण्डलिनी जाग्रत होकर सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर जाती है।
- प्राणवायु ऊर्ध्वगामी हो जाती है फलस्वरूप चेहरे पर तेज, ब्रह्मचर्य पालन बल व वीर्य में वृद्धि होती है।²⁵

उड्डीयान बन्ध (उदर बन्ध) से लाभ -

योगकुण्डल्युपनिषद् के अनुसार उड्डीयान बन्ध के अभ्यास से प्राण धीरे-धीरे उदर की अन्तः सन्धियों में पहुँच जाता है, जिससे उदर सम्बन्धी समस्त विकार दूर हो जाते हैं व पाचन तन्त्र ठीक रहता है -

शनैः शनैर्यदा प्राणस्तुन्दसन्धिं निगच्छति।

तुन्ददोषं विनिधूर्य कर्तव्यं सततं शनैः॥²⁶

अन्य यौगिक ग्रन्थों के अनुसार -

- अधिवृक्क ग्रन्थियाँ, यकृत व आमाशय सुचारु व सन्तुलित बने रहते हैं।
- तनाव व चिन्ता से मुक्ति मिलती है।
- रक्त संचार में सुधार होता है।²⁷

जालन्धर बन्ध (चिबुक बन्ध) से लाभ -

योगचूडामण्युपनिषद् में जालन्धर बन्ध के अभ्यास से होने वाले लाभ को इस प्रकार बताया गया है -

“जालन्धरे कृते बन्धे कण्ठसंकोचलक्षणे।

न पीयूषं पतत्यग्नौ न च वायुः प्रधावति॥”²⁸

अर्थात् जालन्धर बन्ध लगाने से ब्रह्मरन्ध्र की पीयूष ग्रन्थि से निकलने वाला अमृतरस पेट की अग्नि में गिरकर नष्ट नहीं होता तथा वायु विकार जनित रोगों का शमन हो जाता है।

योगतत्त्वोपनिषद् के अनुसार यह बन्ध मृत्यु रूपी हाथी के लिए सिंह के समान है अर्थात् इसके अभ्यास से मृत्यु दूर रहती है -

“बन्धो जालन्धराख्योऽयं मृत्युमातङ्गकेसरी”।²⁹

- गर्दन की मांसपेशियों में रक्त संचार सुचारु रूप से होने लगता है परिणामस्वरूप कैरोटिड साइनस सिंड्रोम विकार दूर हो जाते हैं।
- गुस्सा, तनाव, चिन्ता आदि मानसिक अवसादों से मुक्ति मिलती है।
- ध्यान व एकाग्रता बढ़ाता है।
- थायरॉइड ग्रन्थि के कार्य को सन्तुलित व नियमित बनाए रखता है।
- कण्ठ व वाणी सम्बन्धी विकार दूर हो जाते हैं।³⁰

महाबन्ध (तीनों बन्धों का संयोजन) से लाभ -

हठयोगप्रदीपिका (3/22-23) के अनुसार यह महासिद्धियों को देने वाला बन्ध है। इसके अभ्यास से भूमध्य से इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाडियों का मिलन होता है तथा मन भूमध्य में एकाग्र हो जाता है।

- इसके अभ्यास से उपर्युक्त तीनों बन्धों के लाभ प्राप्त होते हैं।
- कुण्डलिनी जागरण में सहायक है।
- पीनियल ग्रन्थि के हार्मोन को नियन्त्रित रखता है।
- अन्तःस्रावी तन्त्र की कार्यप्रणाली नियमित रहती है।
- ध्यान व एकाग्रता में सहायक है।
- शरीर की प्रत्येक कोशिका को नवजीवन प्रदान करता है। जिससे क्षय, हास व वार्धक्य की प्रक्रियाएँ रुक सी जाती है और व्यक्ति युवा बना रहता है।³¹

6.4 विभिन्न यौगिक मुद्राओं की उपादेयता

आध्यात्मिक दृष्टि से प्राणायाम में मुद्रा को आवश्यक माना गया है। यह आसन व प्राणायाम से अधिक सूक्ष्म व गहन शारीरिक गतियों का संयोजन है। इनके अभ्यास से प्राणदायिनी ऊर्जा को अधिक प्रखर व अन्तरोन्मुखी बनाया जाता है। मुद्रा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की प्राणशक्ति को ब्रह्माण्डीय प्राणशक्ति के साथ जोड़ना है। मुद्राएँ दुर्बलता, रुग्णता व शिथिलता का निराकरण कर व्यक्ति की सजगता व एकाग्रता को गहरा बनाती हैं। हठयौगिक ग्रन्थों में अनेक मुद्राओं का वर्णन किया गया है। घेरण्डसंहिता व हठयोगप्रदीपिका में तो मुद्रा को योगांग के रूप में स्वीकार किया गया है। प्रमुख योग उपनिषदों ने आसन, प्राणायाम तथा बन्ध के साथ या इनमें दक्षता प्राप्ति के पश्चात् मुद्रा अभ्यास का निर्देश दिया है। इस प्रकार मुद्राओं का अभ्यास उच्च कोटि का है, जिनके अभ्यास से प्राण, चक्र व कुण्डलिनी बोध होता है। मुद्राएँ शरीर में प्राणवायु के संचार में अवरोध उत्पन्न करती हैं, जिससे प्राणवायु की दिशा को परिवर्तित कर प्राण वायु को पुनः शरीर में ले आती हैं। प्राणवायु को ऊपर के चक्रों में दिशान्तरित करती हैं, जिससे चेतना की उच्च अवस्था की प्राप्ति होती है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में षण्मुखीमुद्रा, योगकुण्डल्युपनिषद् में शक्तिचालिनी मुद्रा व खेचरी मुद्रा,

योगचूडामण्युपनिषद् में शक्तिचालिनी, खेचरी मुद्रा, महामुद्रा व षण्मुखीमुद्रा तथा योगतत्त्वोपनिषद् में महावेध, खेचरी मुद्रा, विपरीतकरणी, वज्रोली व अमरोली मुद्राओं का विवेचन किया गया है। यहाँ इन योग उपनिषदों में वर्णित यौगिक मुद्राओं की वर्तमान प्रासंगिकता बताई जा रही है।

महामुद्रा से लाभ -



चित्र 6.19 महामुद्रा

योगचूडामण्युपनिषद् के अनुसार महामुद्रा के अभ्यास से शरीर की नाड़ियों का मल दूर हो जाता है, जिससे चन्द्र (इडा) और सूर्य (पिंगला) स्वरों (नाड़ियों) में प्राणवायु सरलता से चलने लगता है। अपच, प्रमेह आदि विकार नष्ट हो जाते हैं तथा भूख बढ़ने लगती है। पाचनशक्ति बढ़ने से खाये-पीये भोजन का रस शरीर में व्याप्त होकर शरीर को पुष्ट और स्वस्थ बनाता है। पथ्य-अपथ्य आहार आसानी से पच जाता है तथा विषाक्त आहार भी अमृत के समान हो जाता है।

इस मुद्रा के नियमित अभ्यास से क्षय, कुष्ठ, बवासीर, गुदा रोग, पेट की गांठ, अपचन आदि समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं अतः इसे व्याधिविनाशिनी मुद्रा कहा गया है-

“सेयं व्याधिविनाशिनी सुमहती मुद्रा नृणां कथ्यते॥

शोधनं नाडीजालस्य चालनं चन्द्रसूर्ययोः॥

रसानां शोषणं चैव महामुद्राभिधीयते॥

न हि पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेऽपि नीरसाः॥

अतिभुक्तं विषं घोरं पीयूषमिव जीर्यते॥

क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः।

तस्य रोगाः क्षयं यान्ति महामुद्रां तु योऽभ्यसेत्।³²

- पैर, पेट, पीठ व कंधे की मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं।
- उदर सम्बन्धी मन्दाग्नि, अपच, कब्ज आदि विकार दूर हो जाते हैं।
- मन की चंचलता को समाप्त कर मन को शान्त व एकाग्र करती है।
- यह मूलाधार को आज्ञाचक्र से जोड़ने वाले प्राणमार्ग को उत्प्रेरित करती है, जिससे एकाग्रता व ध्यान अवस्था की प्राप्ति होती है।
- ज्वर, कफ, गले की बीमारी, तिल्ली वृद्धि व क्षय रोग दूर हो जाते हैं।
- रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।
- प्राणवायु के प्रवाह में सुधार होता है, जिससे तन्त्रिका तन्त्र स्वस्थ रहता है।³³

महावेध मुद्रा से लाभ -

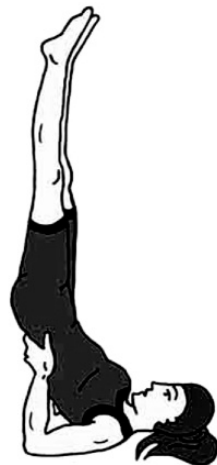


चित्र 6.20 महावेध मुद्रा

- मन को अन्तर्मुखी बनाने में सहायक है।
- इसके अभ्यास से चेतना अत्यन्त सूक्ष्म व गहरी हो जाती है।
- पित्तूटरी ग्रन्थि को नियन्त्रित व संतुलित रखती है।
- अन्तःसावी तन्त्र व पीनियल ग्रन्थि को सक्रिय कर सन्तुलित रखती है।
- शरीर पर झुर्रियाँ नहीं पड़ती व बाल जल्दी सफेद नहीं होते तथा व्यक्ति सदा जवान दिखता है।
- कंपवात (पार्किंसनडिजीज) नहीं होता।

- प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी में प्रवाहित होने लगती है, जिससे प्रसुप्त कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है।³⁴

विपरीतकरणी मुद्रा से लाभ -



चित्र 6.21 विपरीतकरणी मुद्रा

योगतत्त्वोपनिषद् में विपरीतकरणी मुद्रा की उपयोगिता बताते हुए कहा गया है कि -

“करणी विपरीताख्या सर्वव्याधिविनाशिनी॥

नित्यमभ्यासयुक्तस्य जाठराग्निविवर्धनी।

आहारो बहवस्तस्य संपाद्याः साधकस्य च॥

वली च पलितं चैव षण्मासार्धान्न दृश्यते॥

याममात्रं तु यो नित्यमभ्यसेत्स स तु कालजित्।”³⁵

अर्थात् इसका नियमित अभ्यास करने से समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। पाचन क्रिया तेज हो जाती है और भूख बढ़ जाती है। छः महीने तक इसका अभ्यास करने से शरीर पर झुरियाँ और सफेद बाल नहीं होते। जो साधक प्रतिदिन इसका एक प्रहर तक अभ्यास करता है, वह काल को भी जीत लेता है।

अन्य यौगिक ग्रन्थों व आधुनिक योगाचार्यों ने और भी इसके लाभ बताए हैं जो निम्न प्रकार से हैं -

- इड़ा व पिंगला नाड़ियों के प्राण प्रवाह में सन्तुलन बना रहता है।

- चयापचय (मेटाबॉलिज्म) की दर में वृद्धि करती है।
- यह अभ्यास वृद्धावस्था को दूर करता है।
- रक्त प्रवाह को ठीक बनाती है।
- श्वसन तन्त्र के रोगों के उपचार में उपयोगी है।
- शारीरिक स्थिरता प्रदान करती है।
- मानसिक अवसादों को दूर करती है।
- पीठ का तनाव व दर्द दूर कर पीठ की मांसपेशियों को मजबूत करती है।
- थायरॉइड की क्रिया को सन्तुलित व नियन्त्रित बनाए रखती है।³⁶

शक्तिचालिनी मुद्रा से लाभ -

योगकुण्डल्युपनिषद् के अनुसार शक्तिचालन का उपाय सरस्वती चालन को बताया गया है अतः सरस्वती नाड़ी चालन के अभ्यास से होने वाले लाभ को बताते हुए कहा गया है कि -

“तस्मात् संचालयेन्नित्यं शब्दगर्भा सरस्वतीम्।

यस्याः सञ्चालनेनैव योगी रोगैः प्रमुच्यते॥

गुल्मं जलोदरप्लीहा ये चान्ये तुन्दमध्यगाः।

सर्वे तु शक्तिचालेन रोगो नश्यन्ति निश्चयम्॥”³⁷

अर्थात् सरस्वती चालन से साधक सभी रोगों से मुक्त हो जाता है। गुल्म (पेट की गांठ) जलोदर, प्लीहा इत्यादि पेट सम्बन्धी विकार नष्ट हो जाते हैं।

योगचूडामण्युपनिषद् के अनुसार शक्ति चालन मुद्रा से प्रेरित होकर जब रज और वीर्य मिल जाते हैं तब साधक का शरीर दिव्य हो जाता है -

“वायुना शक्तिचालेन प्रेरितं तु यदा रजः।

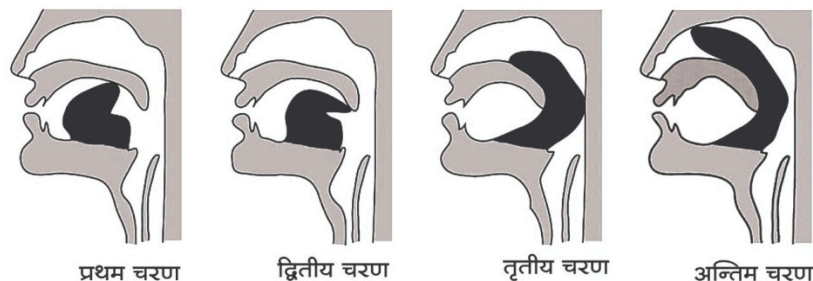
याति बिन्दोः सहैकत्वं भवेद् दिव्यं वपुस्तदा॥”³⁸

इस मुद्रा के अभ्यास से और भी लाभ बताए गए हैं, जो इस प्रकार हैं -

- यह मुद्रा गुस्सा, चिड़चिड़ापन कम करने व मन को शान्त बनाए रखने के लिए उपयोगी है।
- आत्मानन्द की अनुभूति होती है।
- मलाशय सम्बन्धी दोष कब्ज, बवासीर तथा गर्भाशय या मलाशय भ्रंश जैसे रोगों के लिए लाभप्रद है।

- गुदा की पेशियाँ मजबूत होती हैं।
- महिलाओं में पॉलीसिस्टिक ओवरियन डिजीज (पीसीओडी) दूर हो जाते हैं।³⁹

खेचरी मुद्रा से लाभ -



चित्र 6.22 खेचरी मुद्रा

योगचूडामण्युपनिषद् में खेचरी मुद्रा से होने वाले लाभ को बताते हुए कहा गया है-

“न रोगो मरणं तस्य न निद्रा न क्षुधा तृषा।
 न च मूर्च्छा भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्॥
 पीड्यन्ते न च रोगेण लिप्यते न स कर्मभिः।
 बाध्यते न च केनापि यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्॥
 यावत् बद्धा नभोमुद्रा बिन्दुर्न गच्छति॥”⁴⁰

अर्थात् खेचरी मुद्रा का अभ्यासी बीमारी से नहीं मरता, भूख-प्यास और नींद नहीं सताती। न ही कभी मूर्च्छा (बेहोशी) आती है। रोग, दुःख और शोक नहीं सताते। कर्मफल के बन्धन में नहीं पड़ता। न ही उसे कभी मृत्यु आदि किसी बाधा का सामना करना पड़ता और न ही तथा साधक का वीर्य स्थलित होता।

योगकुण्डल्युपनिषद् में बताया गया है कि खेचरी विद्या जानकर मृत्यु, रोग और वृद्धावस्था से ग्रस्त व्यक्ति भी अजर-अमर हो जाता है। वह भूतल पर रहते हुए भी वृद्धावस्था, मृत्यु और रोगों को जीत लेता है। इस विद्या को जानकर साधक सभी सिद्धियों शिवत्व को प्राप्त कर लेता है और सभी सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है-

“यथा विज्ञातवानस्या लोकेऽस्मिन्नजरामरः॥

मृत्युव्याधिजराग्रस्तो दृष्ट्वा विद्यामिमां मुने।

बुद्धिं दृढतरां कृत्वा खेचरीं तु समभ्यसेत्॥

जरामृत्युगदध्नो यः खेचरी वेत्ति भूतले।

तदा शिवत्माप्नोति निर्मुक्तः सर्वसंसृतेः॥”⁴¹

- रसानुभूति व दिव्यानन्द की प्राप्ति होती है।
- शरीर पर झुर्रियाँ नहीं पड़ती, सफेद बाल नहीं होते और व्यक्ति सदा जवान दिखता है।
- दीर्घायु की प्राप्ति होती है।
- मूर्च्छा, निद्रा, आलस्य तथा भूख व प्यास नहीं सताती।
- कुण्डलिनी जाग्रत करने में सहायक है।
- रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करती है।
- पाइरिया व बवासीर रोगों में लाभ मिलता है।
- मोटापा व वजन घटाने में सहायक है।
- गले के विकार दूर हो जाते हैं।
- शारीरिक सौन्दर्य में वृद्धि होती है।
- वीर्य का रक्षण होता है।⁴²

वज्रोली मुद्रा से लाभ -



चित्र 6.23 वज्रोली मुद्रा

वज्रोली मुद्रा की उपयोगिता को बताते हुए योगतत्त्वोपनिषद् में कहा गया है कि -

“वज्रोलिमभ्यसेद्यस्तु स योगी सिद्धिभाजनम्।

लभ्यते यदि तस्यैव योगसिद्धिः करे स्थिता।।”⁴³

अर्थात् इस मुद्रा के अभ्यास से सभी सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है। हठयोगप्रदीपिका (3/87-88) में वज्रोली मुद्रा के लाभ को वर्णित करते हुए कहा गया है कि इसके द्वारा बिन्दु (वीर्य) की रक्षा होती है। अकाल मृत्यु नहीं होती है। शरीर में सुगन्ध व तेज बना रहता है तथा साधक को आकाश गमन की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

- इसके अभ्यास से प्राण ऊर्जा ऊर्ध्वगामी होती है, जिससे शरीर में तेज व कान्ति बनी रहती है।
- पाचन क्रिया ठीक रहती है।
- प्रजनन तन्त्र मजबूत रहता है।
- रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है।
- शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, नपुंसकता आदि यौन रोगों में लाभकारी है।
- वीर्य धारण या सिद्धि व ब्रह्मचर्य में अत्यन्त उपयोगी है।⁴⁴

षण्मुखी या योनि मुद्रा से लाभ -



चित्र 6.24 षण्मुखी या योनि मुद्रा

- शरीर में वीर्य, बल व तेज में वृद्धि होती है।
- क्रोध, चिन्ता व तनाव से मुक्त कर मन व तन्त्रिका तन्त्र को नियमित रखती है।
- नवयौवन प्राप्त होता है।
- आन्तरिक जागरूकता व ध्यान केन्द्रित करने में उपयोगी है।

- सिर दर्द व नकारात्मकता को दूर करती है।
- बाह्य व आन्तरिक चेतना को संतुलित करती है।
- आँख, नाक व गले के संक्रमण के उपचार में लाभप्रद है।
- नादानुभूति व समाधि अवस्था की प्राप्ति होती है।⁴⁵

अमरोली मुद्रा -

जगदीश बी. ने अपनी पुस्तक 'प्राॅक्टिकल गाइड टू ऑटोयूरिन थेरेपी' में इस मुद्रा के निम्न लाभ बताए हैं -

- शरीर से विषाक्त पदार्थ बाहर निकल जाते हैं।
- रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है।
- यौन दुर्बलताओं को दूर कर यौन क्षमता में वृद्धि करना।
- कैंसर, ल्यूकेमिया, तपेदिक, हृदय व मस्तिष्क सम्बन्धी विकार, खाँसी, जुखाम, बुखार, अस्थमा, मिर्गी, आर्काइटिस आदि रोगों के उपचार में लाभप्रद है।⁴⁶

6.5 प्राणायाम की उपादेयता

हठयोग, अष्टांग योग, षडंग योग, तन्त्र तथा प्रमुख योग उपनिषदों में प्राणायाम का एक विशेष स्थान और महत्त्व है। ध्यानात्मक आसनों या मुद्राओं में निपुणता प्राप्त कर लेने के बाद प्राणायाम के अभ्यास का निर्देश दिया गया है। प्राणायाम प्राण व आयाम शब्दों से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है प्राणशक्ति का विस्तार। इसके अभ्यास से प्राणशक्ति में वृद्धि होती है। सम्पूर्ण शरीर के सूक्ष्म कोशों के अवरोध दूर होते हैं तथा प्राण के प्रवाह को नियमित किया जाता है। प्राणायाम से जीवन में संतुलन आता है तथा आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। यह शरीर के प्रत्येक अंग में प्राण ऊर्जा का नियमित संचार करता है तथा श्वसन, हृदय वाहिका, स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र को प्रभावित करता है। जिससे भावात्मक स्थिरता व मानसिक शान्ति की प्राप्ति होती है। प्राणायाम में मुख्य रूप से प्राणमय कोश पर कार्य किया जाता है। प्राणमय कोश पाँच प्रमुख प्राणों से मिलकर बना है, जिन्हें पञ्च प्राण कहा जाता है। इन प्राणों के साथ पाँच लघु उपप्राण भी हैं। प्राणायाम की तकनीकें प्राणमय कोश के भीतरी विभिन्न प्राणों को ऊर्जा प्रदान करती हैं तथा इसे सन्तुलित कर इस प्रक्रिया को नियमित करती हैं। प्राणायाम के

अभ्यास से प्राणमय कोश के अवरोध दूर होते हैं, जिससे प्राण के अवशोषण में वृद्धि होती है। प्राणायाम में श्वसन प्रक्रिया के ऐच्छिक नियन्त्रण हेतु अनुलोम-विलोम, सूर्यभेदन, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा, सीत्कारी, कपालभाति आदि विभिन्न अभ्यासों में कई तकनीकें होती हैं, जिनमें श्वास के पूरक, रेचक, अन्तर्कुम्भक तथा बहिर्कुम्भक इन चार पहलुओं का उपयोग किया जाता है।

यहाँ प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित प्राणायाम के प्रकारों से होने वाले लाभ की वर्तमान सन्दर्भ में प्रासंगिकता बताई जा रही है। योगकुण्डल्युपनिषद् में सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका सहित कुम्भक व केवली कुम्भक का विवेचन किया गया है।

योगचूडामण्युपनिषद् व योगतत्त्वोपनिषद् में प्रणव जप या उद्गीथ प्राणायाम का वर्णन किया गया है तथा नाड़ी शोधन प्राणायाम को सभी प्रमुख योग उपनिषदों ने प्राणायाम से पूर्व आवश्यक बताया है।

प्राणायाम से लाभ -

अमृतनादोपनिषद् में प्राणायाम का फल बताते हुए कहा गया है कि -

“यथा पर्वतधातूनां दहयन्ते धमनात् मलाः।

तथेन्द्रियकृता दोषा दहयन्ते प्राणधारणात्॥”⁴⁷

अर्थात् जैसे पर्वतों से प्राप्त धातुओं को अग्नि में तपाने से उनकी मलिनता नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार शरीरेन्द्रियों से उत्पन्न विकार प्राणायाम से नष्ट हो जाते हैं।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में कहा गया है कि प्राणायाम के नियमित अभ्यास से हृत्कमल खिल जाता है। हृत्कमल विकसित होने पर निष्कल ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। दिन में चार बार अस्सी-अस्सी प्राणायाम करने से शरीर की नाड़ियों की सारी गन्दगी व रोग आदि नष्ट हो जाते हैं तथा पन्द्रह दिन में शरीर पूरी तरह से शुद्धि हो जाता है। तीन वर्ष तक अभ्यास करने से साधक सिद्ध योगी बन जाता है। शरीर की प्राणवायु पर अधिकार या नियन्त्रण हो जाता है। साधक जितेन्द्रिय बन जाता है-

“हृदयाम्भोरूहं चापि व्याकोचं भवति स्फुम्।

तत्र पश्येत् परात्मानं वासुदेवमकल्मषम्॥

एकाहमात्रं कुर्वाणः सर्वपापैः प्रमुच्यते।

संवत्सरत्रयादूर्ध्वं प्राणायामपरो नरः॥

योगसिद्धो भवेत् योगी वायुजित् विजितेन्द्रियः॥”⁴⁸

योगचूडामण्युपनिषद् में कहा गया है कि प्राणायाम से समस्त पाप दूर हो जाते हैं- तथा साधक प्राणायामरूपी पुल से भवसागर को पार कर लेता है -

“प्राणायामो भवेदेवं पातकेन्धनपावकः।

भवोदधिमहासेतुः प्रोच्यते योगिभिः सदा॥”⁴⁹

योगतत्त्वोपनिषद् में प्राणायाम की उपयोगिता बताते हुए उपनिषत्कार कहते हैं कि प्राणायाम अभ्यास से योगी का मल-मूत्र कम हो जाता है। स्वल्प निद्रा आती है। बदबूदार लार नहीं बहती। शरीर व मुख से दुर्गन्ध नहीं आती। शरीर बलिष्ठ हो जाता है। साधक की भूचर सिद्धि हो जाती है तथा इस सिद्धि से वह प्राणियों को वश में कर सकता है। शेर, बाघ, हाथी आदि हिंसक व जंगली जीव साधक के हाथ मारने से ही मर जाते हैं। साधक का शरीर कामदेव जैसा हो जाता है।⁵⁰

अन्य यौगिक ग्रन्थों में बताए गए लाभ निम्न प्रकार से हैं -

- मलिन व दूषित नाड़ियों का शोधन करता है, जिसमें सम्पूर्ण शरीर में प्राण ऊर्जा का सुचारु रूप से संचार होने लगता है।
- दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है।
- इसके अभ्यास से बिन्दु (वीर्य) ऊर्ध्वगामी हो जाता है, जिससे काम वासना का शमन होता है और ब्रह्मचर्य का पालन होता है।
- त्रिदोषों (वात, पित्त, कफ) का नाश होता है।
- सम्पूर्ण शरीर में दिव्य जीवन शक्ति का संचार होने लगता है।
- साधक में इन्द्रिय निग्रह की क्षमता आ जाती है।
- साधक का शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक उत्थान करता है।
- पाचन तन्त्र, स्नायु तन्त्र तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता को सक्रिय कर सुदृढ़ बनाता है।
- क्रोध, तनाव, अवसाद, माइग्रेन, बालों की सफेदी, शीघ्र वृद्धावस्था की प्राप्ति, हृदय रोग तथा चेहरे पर झुर्रियाँ आदि समस्त समस्याओं का निदान करता है।

नाड़ी शोधन या अनुलोम- विलोम प्राणायाम से लाभ -



चित्र 6.25 नाड़ी शोधन प्राणायाम

योगचूडामण्युपनिषद् के अनुसार नाड़ी शोधन प्राणायाम से पाचनतन्त्र ठीक रहता है तथा अनाहत नाद स्पष्ट सुनाई देने लगता है -

“यथेष्टं धारणं वायोरनलस्य प्रदीपनम्।

नादाभिव्यक्तिरारोग्यं जायते नाड़ीशोधनात्।”⁵¹

योगतत्त्वोपनिषद् में नाड़ी शोधन प्राणायाम के लाभ को वर्णित करते हुए कहा गया है कि तीन मास पर्यन्त नाड़ी शोधन प्राणायाम करने से ही शरीर की सभी नाड़ियों में भरा मैल निकल जाता है। नाड़ी शुद्धि हो जाने पर शरीर हल्का हो जाता है। मुख पर तेज आ जाता है। पाचनशक्ति बढ़ जाती है तथा शरीर कृश (छरहरा) हो जाता है-

“एवं मासत्रयाभ्यासान्नाडीशुद्धिस्ततो भवेत्।

यदा तु नाडीशुद्धिः स्यात्तदा चिह्नानि बाह्यतः॥

जायन्ते योगिनो देहे तानि वक्ष्याम्यशेषतः।

शरीरलघुता दीप्तिः जाठराग्निविवर्धनम्॥

कृशत्वं च शरीरस्य तदा जायेत निश्चितम्।”⁵²

आधुनिक योगाचार्यों ने इसकी उपयोगिता बताते हुए कहा है कि -

- इसके अभ्यास से नाड़ियों का शुद्धिकरण होता है तथा अन्य प्राणायामों के अभ्यास से शीघ्र व पूर्ण लाभ प्राप्त होता है।

- मानसिक तनाव व चिन्ता को दूर करता है, जिससे मन शान्त, स्थिर व एकाग्र रहता है।
- पाचन तन्त्र ठीक रहता है।
- अस्थमा, कफ, टॉन्सिल, रक्तचाप, अनिद्रा, दर्द, अन्तःस्रावी असन्तुलन, हृदय रोग आदि में लाभप्रद है।
- रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है।
- शरीर से अपशिष्ट पदार्थों व विषैली गैसों को शरीर से बाहर निकालता है।
- इसके अभ्यास से खून में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती है, जिससे सकारात्मक ऊर्जा का विकास होता है।
- फेफड़े मजबूत होते हैं।
- धारणा, ध्यान व समाधि का स्तर बढ़ता है।⁵³

सूर्यभेदन प्राणायाम से लाभ -



चित्र 6.26 सूर्यभेदन प्राणायाम

योगकुण्डल्युपनिषद् के अनुसार यह प्राणायाम चारों प्रकार के वात रोगों को और पेट के कीड़ों को नष्ट कर देता है -

“चतुष्कं वातदोषं तु कृमिदोषं निहन्ति च।”⁵⁴

अन्य यौगिक ग्रन्थों में इसके लाभ इस प्रकार बताए गए हैं -

- इसके अभ्यास से शरीर में गर्मी बढ़ती, जिससे पाचन तन्त्र मजबूत होता है।
- वात और कफ नष्ट हो जाते हैं।

- आंतों के कीड़े व अधिवात से होने वाली बीमारियाँ नष्ट हो जाती हैं।
- चर्मरोग ठीक हो जाता है।
- रोग प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है।
- चेहरे की झुर्रियाँ नष्ट हो जाती हैं और चेहरे पर चमक व तेज बढ़ता है।
- निम्न रक्तचाप में लाभकारी है।⁵⁵

उज्जायी प्राणायाम से लाभ -



चित्र 6.27 उज्जायी प्राणायाम

योगकुण्डल्युपनिषद् में उज्जायी प्राणायाम से होने वाले लाभ को बताते हुए कहा गया है कि -

“शीर्षोदितानलहरं गलश्लेष्महरं परम्।

सर्वरोगहरं पुण्यं देहानलविवर्धनम्॥

नाडीजलोदरं धातुगतदोषविनाशनम्।

गच्छतस्तिष्ठत कार्यमुज्जाय्याख्यं तु कुम्भकम्॥”⁵⁶

अर्थात् यह प्राणायाम सिर में उत्पन्न ताप को हरने वाला, गले के रोग, कफ से उत्पन्न रोग, नाड़ीगत रोग, जलोदर तथा धातुदोष आदि रोगों को दूर करता है। शरीर के सारे रोग नष्ट हो जाते हैं तथा शरीर की अग्नि को बढ़ाता है। इस प्राणायाम के अभ्यास से और भी लाभ बताए गए हैं, जो इस प्रकार हैं -

- फेफड़े व गले की मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं।

- हृदय व कफ विकार दूर हो जाते हैं।
- पाचन तन्त्र ठीक रहता है।
- ध्यान व एकाग्रता बढ़ती है तथा स्मरण शक्ति तेज होती है।
- हाइपोथायरायडिज्म को नियन्त्रित करने में सहायक है।
- अनिद्रा, मानसिक अवसाद, चिन्ता व उन्मादी रोगियों के लिए लाभकारी है।
- क्षयरोग, प्लीहा, ज्वर, वात, कास तथा आमवात आदि रोगों का नाश करता है।⁵⁷

शीतली प्राणायाम -



चित्र 6.28 शीतली प्राणायाम

इस प्राणायाम के अभ्यास से होने वाले लाभ को योगकुण्डल्युपनिषद् में वर्णित करते हुए कहा गया है कि -

“गुल्मप्लीहादिकान्दोषान्क्षयं पित्तं ज्वरं तृषाम्।

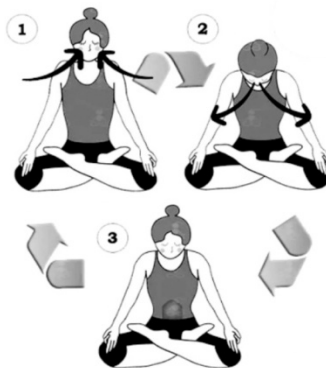
विषाणि शीतली नाम कुम्भकोऽयं निहन्ति च॥”⁵⁸

अर्थात् शीतली प्राणायाम गुल्म, प्लीहा, आदि उदर रोगों, क्षय, वातपित्त रक्तपित्त आदि पित्तरोग, ज्वर, तृषा (प्यास) और विषजन्य रोगों को नष्ट कर देता है। इससे होने वाले और भी लाभ इस प्रकार हैं -

- सम्पूर्ण शरीर में प्राण ऊर्जा के प्रवाह को बढ़ाता है तथा रक्त शुद्ध करता है।
- गुस्सा व तनाव को कम करके दिमाग को शान्त रखता है।
- रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।
- पाचन क्रिया को ठीक बनाए रखता है।
- शरीर को शीतलता प्रदान करता है।

- चर्मरोग, वात-पित्त दोष व बुखार को दूर करता है।
- उच्च रक्तचाप, प्लीहा, यकृत तथा अनिद्रा की समस्या को दूर करता है।
- भूख-प्यास को नियन्त्रित कर तृप्ति का भाव उत्पन्न करता है।⁵⁹

भस्त्रिका प्राणायाम -



चित्र 6.29 भस्त्रिका प्राणायाम

योगकुण्डल्युपनिषद् में भस्त्रिका प्राणायाम से होने वाले लाभ को बताते हुए कहा गया है कि -

“कण्ठोत्थितानलहरं शरीराग्निविवर्धनम्॥
 कुण्डलीबोधकं पुण्यं पापघ्नं शुभदं सुखम्।
 ब्रह्मनाड़ीमुखान्तस्थकफाद्यर्गलनाशनम्॥
 गुणत्रयसमुद्भूतग्रन्थित्रयविभेदकम्।
 विशेषेणैव कर्तव्यं भस्त्राख्यं कुम्भकं त्विदम्॥”⁶⁰

अर्थात् यह प्राणायाम कण्ठ की गर्मी को दूर करने वाला, शरीर की अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, कुण्डलिनी को जाग्रत करने वाला, पापों को नष्ट करने वाला, शुभफल और सुख देने वाला है। इसके अभ्यास से सुषुम्ना नाड़ी के अग्रभाग पर जमा कफ आदि मल नष्ट हो जाते हैं। सत्त्व, रज तथा तम इन तीन गुणों से उत्पन्न तीनों ग्रन्थियों का भेदन करने के लिए इस प्राणायाम का विशेष महत्त्व है। इस प्राणायाम से होने वाले लाभ को अन्य योगाचार्यों ने इस प्रकार बताया है -

- शरीर से विषाक्त पदार्थों को निष्कासित कर रक्त को शुद्ध करता है।
- दमा, क्षय आदि रोगों का नाश कर फेफड़ों को मजबूत बनाता है।
- टॉन्सिल, कफ, साइनस तथा ब्रोंकाइटिस आदि विकारों के उपचार में सहायक है।
- वात, पित्त व कफ का नियन्त्रण करता है।
- कुण्डलिनी या आध्यात्मिक जागरण में उपयोगी है।
- यकृत, प्लीहा व पाचन तन्त्र की क्रियाशीलता को सक्रिय करता है, जिससे पेट सम्बन्धी विकार दूर हो जाते हैं।
- दिमाग को क्रियाशील रखता है, विचारों में स्पष्टता आती है तथा एकाग्रता बढ़ती है।⁶¹

केवली प्राणायाम -



चित्र 6.30 केवली प्राणायाम

- यह प्राणायाम की उच्च अवस्था है। जिसके अभ्यास से ध्यान में दृढ़ता आती है तथा दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती है।
- संकल्प व संयम को बढ़ाता है।
- इसके अभ्यास से मन शान्त रहता है तथा स्मरण शक्ति बढ़ती है।
- पेट के समस्त विकार दूर हो जाते हैं तथा पाचन शक्ति बढ़ती है।
- आयु में वृद्धि होती है।⁶²

प्रणव या उद्गीथ प्राणायाम -



चित्र 6.31 प्रणव या उद्गीथ प्राणायाम

योगतत्त्वोपनिषद् में प्रणव मन्त्र के जप का लाभ बताते हुए कहा गया है कि -

“सर्वविघ्नहरो मन्त्रः प्रणवः सर्वदोषहा।

एवमभ्यासयोगेन सिद्धिरारम्भसम्भवा।।”⁶³

अर्थात् प्रणव मन्त्र के जप से सारी विघ्न-बाधाएँ और बुराइयाँ दूर हो जाती हैं और साधक के शरीर में सिद्धियाँ आरम्भ होने लगती हैं।

- यह ध्यानात्मक प्राणायाम है। जिसके अभ्यास से शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक लाभ की प्राप्ति होती है।
- ध्यान व एकाग्रता की प्राप्ति में सहायक है।
- मस्तिष्क की कोशिकाओं को दिव्य जीवनशक्ति प्रदान करता है।
- मन को शान्त, स्थिर व अन्तर्मुखी बनाने में सहायक है।
- अनिद्रा, तनाव, चिन्ता, सिरदर्द, दुःस्वप्न, अस्थमा आदि समस्याओं के निदान में उपयोगी है।
- उच्च रक्तचाप को नियन्त्रित करने में सहायक है।⁶⁴

6.6 कुण्डलिनी जागरण व षट्चक्र के ध्यान से लाभ -

सम्पूर्ण सृष्टि दिव्य ऊर्जा शक्ति का ही रूप है। ऊर्जा ही भौतिक व अभौतिक पदार्थों का रूप ग्रहण करती है। रासायनिक, तापीय, यान्त्रिक न्यूक्लियर आदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के ही रूप हैं और यही ब्रह्माण्डीय ऊर्जा प्राणरूप में मनुष्य के शरीर में व्याप्त है, जो कि मानवीय जीवन का आधार है। शरीर में कार्य करने वाली जैविकीय ऊर्जा को ही कुण्डलिनी शक्ति, शून्यपद्वी, भुजंगी, बालरण्डा, महादेवी, प्रणवस्वरूपिणी, सर्पिल अग्नि या सर्पिणी कहा जाता है। मूलाधार कुण्डलिनी का मूल स्थान है तथा सहस्रार अन्तिम स्थान है। कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार में साढ़े तीन कुण्डल (फेरे) लगाकर सोई रहती है अर्थात् सुषुप्त अवस्था में रहती है। मूलाधार को शक्ति का केन्द्र तथा सहस्रार को शिव का केन्द्र माना जाता है। प्रकृति-पुरुषरूप शक्ति व शिव का मिलन ही कुण्डलिनी जागरण है और यही आत्मसाक्षात्कार समाधि स्थिति, समत्व बोध, कैवल्य, सच्चिदानन्द तथा मोक्ष है।

विज्ञान के अनुसार मानव के मस्तिष्क का दस प्रतिशत भाग ही कार्य करता है, शेष नब्बे प्रतिशत भाग सुप्त पड़ा रहता है। इस सुप्त भाग को जाग्रत करने के लिए अतिरिक्त शक्ति प्रवाह की आवश्यकता होती है तथा इसे जाग्रत करने का कुण्डलिनी जागरण ही एक मात्र उपाय है। कुण्डलिनी जागरण अचानक तीव्र ऊर्जा के साथ होता है। भूख व यौन भावना में वृद्धि हो जाती है, व्यक्ति असामान्य व्यवहार करने लगता है। शारीरिक ताप में अचानक तीव्र वृद्धि हो जाता है अतः कुण्डलिनी जागरण का अभ्यास योग्य गुरु के दिशा निर्देश में धैर्यपूर्वक किया जाना चाहिए अन्यथा अतिरिक्त शक्ति सहन की क्षमता व उचित शक्ति उपयोग का ज्ञान न होने पर मानसिक सन्तुलन बिगड़ सकता है।

विभिन्न यौगिक क्रियाओं, आसनों, बन्ध, मुद्रा व प्राणायामों द्वारा कुण्डलिनी जाग्रत होकर ब्रह्म, विष्णु व रुद्र ग्रन्थियों तथा सुषुम्ना नाड़ी में स्थित मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध व आज्ञा चक्रों को भेदती हुई सहस्रार में पहुँच जाती है।

कुण्डलिनी जागरण से पूर्व आसनों के अभ्यास का निर्देश है ताकि शरीर लचीला, स्फूर्तिवान व स्वस्थ हो सके। षट्कर्म के बाद मुद्रा तथा प्राणायाम के साथ बन्ध का

अभ्यास बताया गया है। हठयोगिक ग्रन्थों में आत्मज्ञान हेतु कुण्डलिनी जागरण को मुख्य माना है तथा बिना कुण्डलिनी जागरण के मुक्ति नहीं मानी है। हठयोगिक क्रियाओं में मुद्रा, बन्ध व प्राणायामों का अभ्यास विशेषरूप से चक्रभेदन व कुण्डली जागरण के लिए ही बताया गया है।

योगकुण्डल्युपनिषद् में बताया गया है कि मूलबन्ध के अभ्यास से प्राण और अपान वायु के मिलन से कुण्डलिनी जाग जाती है और शरीर सीधा करके सुषुम्ना के मुख में प्रविष्ट कर जाती है।

गुरु कृपा रूपी शक्तिपात दीक्षा से भी गुरु योग्य शिष्य में कुण्डलिनी शक्ति को प्रवाहित कर देता है अर्थात् कुण्डलिनी जाग्रत कर देता है।

कुण्डलिनी जागरण से लाभ -

जब तक कुण्डलिनी सोई रहती है। तब तक मनुष्य परिस्थितियों का दास बनकर पशुवत् निकृष्ट आचरण करता रहता है। मनुष्य के भावों, विचारों, दिनचर्या, आचरण आदि में उत्कृष्टता दिखाई नहीं देती साथ ही उसमें आत्मविश्वास, धैर्य, स्थिरता, एकाग्रता, उमंग, उत्साह, कुशलता, उल्लास तथा उदारता आदि गुणों का यथोचित विकास नहीं हो पाता है अतः बुद्धिमान् व्यक्ति को अपनी सोई हुई आत्मशक्ति को जाग्रत, चैतन्य या गतिशील करना चाहिए।

कुण्डलिनी को विधिवत् तरीके से जाग्रत किया जाए तो यह साधक को अनेक दिव्य शक्तियाँ व अलौकिक सिद्धियाँ प्रदान कर आत्मज्ञान या मुक्ति प्रदान करती है। इससे मनुष्य में अतीन्द्रिय शक्तियों तथा अद्भुत व आश्चर्यजनक कार्य क्षमताओं का विकास होता है। व्यक्ति समबुद्धि होकर प्रेमपूर्वक व करुणामय व्यवहार करने लगता है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि वश में हो जाती हैं। अज्ञान व भ्रम का नाश होकर वह दिव्यज्ञान की प्राप्ति करता है।

साधक की इच्छाशक्ति व आत्मबल बढ़ जाता है। साधक स्वार्थ व क्षुद्र वासनाओं का त्याग कर परमार्थ में लग जाता है। बल, बुद्धि की वृद्धि हो जाती है। आत्मविश्वास सुदृढ़ हो जाता है। आन्तरिक सुख व आनन्द की अनुभूति होने लगती है। व्यक्ति अध्यात्म प्रवृत्ति में संलग्न हो जाता है। देहगत त्याज्य पदार्थ कफ, पित्तादि दोष तथा काम, क्रोध, मोह आदि दुर्गुण नष्ट हो जाते हैं। सामान्य व्यक्ति भी कुण्डलिनी जाग्रत कर सिद्ध व अतिमानव बन सकता है।

योगचूडामण्युपनिषद् में बताया गया है कि जैसे चाबी से ताला खोलकर घर में प्रवेश किया जाता है वैसे ही योगी कुण्डलिनी शक्ति को ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचा कर मोक्ष का मार्ग खोल लेता है -

“उद्घाटयेत् कवाटं तु यथा कुञ्चिकया गृहम्।

कुण्डलिन्यां तथा योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत्॥”⁶⁵

योगकुण्डल्युपनिषद् के अनुसार कुण्डलिनी जागरण हो जाने पर आधिभौतिक शरीर आधिदैविक शरीर में परिणत होकर अत्यन्त निर्मल हो जाता है और वह अणिमा आदि सिद्धियों से युक्त हो जाता है। इस स्थिति में शरीर वृद्धावस्था और जन्म-मरण के भय तथा कालरूप आदि के भ्रम से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार उस साधक की बुद्धि समस्त सन्देह एवं भ्रमों से परे स्वस्वरूप वाली हो जाती है जैसे रस्सी में सर्प का भ्रम दूर हो जाने पर मन पूर्णतः आश्वस्त हो जाता है। इस स्थिति में पहुँचने पर साधक के लिए जो कि स्त्री-पुरुषों को भ्रम से उत्पन्न हुए सीप में चांदी की भ्रान्ति अथवा इसी प्रकार के अन्य सांसारिक भ्रम उत्पन्न और विलीन होकर निरर्थक सिद्ध होते हैं साथ ही पिण्ड और ब्रह्माण्ड में, लिङ्ग सूत्र और आत्मा में, निद्रा और अव्याकृति समाधि में तथा स्वप्रकाश और चिदात्मा में कोई भेद बुद्धि नहीं रह जाती -

“आधिभौतिकदेहं तु आधिदैविकविग्रहे।

देहोऽतिविमलतां याति चातिवाहिकतामियात्॥

जाड्यभावविनिर्मुक्तममलं चिन्मयात्मकम्।

तस्यातिवाहिकं मुख्यं सर्वेषां तु मदात्मकाम्॥

जाराभवविनिर्मुक्तिः कालरूपस्य विभ्रमः।

इति तं स्व स्वरूपा हि मति रज्जुभुजङ्गवत्॥

मृषैवोदेति सकलं मृषैव प्रविलीयते

रौप्यबुद्धिः शुक्तिकायां स्त्रीपुंसोर्भ्रमतो यथा॥

पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं लिङ्सूत्रात्मनोरपि।

स्वापाव्याकृतयोरैक्यं स्वप्रकाशचिदात्मनोः॥”⁶⁶

कुण्डलिनी शक्ति विभिन्न ग्रन्थियों व चक्रों को भेदकर या प्रभावित कर सहस्रार में पहुँचती है। सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग में छः चक्र छः अवरोध के रूप में होते हैं, जिन्हें षट्गण्ठिता भी कहा जाता है। इन छः गांठों को खोलकर ही कुण्डलिनी जाग्रत की जाती

है, इसे ही षट्चक्र भेदन कहा जाता है। यह कार्य क्रियाकर्म व बीज मन्त्र के साथ किया जाता है। चतुर्थ अध्याय में कुण्डली जागरण के सन्दर्भ में नाड़ी परिगणन, नाड़ियों में प्रवाहित होने वाली वायु तथा तीन ग्रन्थियों का विवेचन किया जा चुका है। साथ ही षट्चक्र के स्थान, स्वरूप, बीजमन्त्र आदि का भी वर्णन किया जा चुका है। अब यहाँ कुण्डलिनी जागरण के दौरान षट्चक्रों पर ध्यान से होने वाले लाभ की उपयोगिता पर चर्चा की जा रही है।

मूलाधार चक्र के ध्यान से लाभ -

- शरीर आरोग्य होकर कान्तिमय व ओजस्वी हो जाता है।
- मेरुदण्ड सुदृढ़ हो जाता है।
- सृजनात्मक कार्यों में दक्षता आ जाती है।
- रक्त, काम, त्वचा, नेत्र, मूत्र आदि से सम्बन्धित विकार नष्ट हो जाते हैं।
- अध्यात्म प्रवृत्ति का जागरण होता है।⁶⁷

स्वाधिष्ठान चक्र के ध्यान से लाभ -

- मन शान्त व निर्भीक हो जाता है।
- ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि विकार नष्ट हो जाते हैं।
- साधक में अविश्वास, नाश, क्रूर आदि निम्न भावनाओं को नियन्त्रित कर प्रबुद्ध बुद्धि व नव निर्माण की शक्ति का प्रादुर्भाव होता है।
- उदारता व सम्पन्नता बढ़ती है तथा संतुलित व्यक्तित्व का विकास होता है।
- शरीर कान्तिमय हो जाता है।
- प्रजनन तन्त्र सुचारु रूप से विकसित होता है।⁶⁸

मणिपूर चक्र के ध्यान से लाभ -

- उदर व पाचन तन्त्र सम्बन्धी समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं।
- रक्त, हृदय सम्बन्धी तथा मानसिक विकार दूर हो जाते हैं।
- मधुमेह रोग में लाभप्रद है।
- ईर्ष्या, पिशुनता, तृष्णा, मोह, घृणा, भय आदि भावनाओं को नियन्त्रित किया जा सकता है।
- सम्पूर्ण कायव्यूह का बोध हो जाता है और साधक में संहार व पालन की शक्तियाँ आ जाती हैं।⁶⁹

अनाहत चक्र के ध्यान से लाभ -

- इसका सम्बन्ध व्यक्ति के आन्तरिक भावों से है।
- हृदय व श्वसन सम्बन्धी विकार दूर हो जाते हैं।
- साधक को दया, करुणा, क्षमा, विवेक तथा आत्मिक आनन्द की प्राप्ति होती है।
- साधक को वाक्पटुता (कवित्व) की शक्ति प्राप्त हो जाती है।
- नाद स्पष्ट रूप से श्रुतिगोचर होने लगते हैं।⁷⁰

विशुद्धि चक्र के ध्यान से लाभ -

- इसका ध्यान करने वाले साधक को भूख-प्यास नहीं सताती।
- थाईराइड व वाणी से सम्बन्धी विकार दूर हो जाते हैं।
- साधक शान्त चित्त, विचारक, आत्मचिन्तक व दार्शनिक हो जाता है।
- साधक तीनों कालों का ज्ञाता हो जाता है।
- कण्ठ से टपकने वाले अमृत का पान कर साधक तेजस्वी व कान्तिमय हो जाता है।⁷¹

आज्ञाचक्र के ध्यान से लाभ -

- इस चक्र का ध्यान करने से मानसिक विकार दूर हो जाते हैं।
- साधक का दिव्य नेत्र खुल जाता है अर्थात् दिव्यदृष्टि मिल जाती है, जिससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में कोई भी तत्त्व उसके लिए अज्ञेय नहीं रहता।
- समस्त चक्रों के ध्यान का फल इस चक्र के ध्यान से प्राप्त हो जाता है।
- ध्यान की अनेक अवस्थाओं में इस चक्र की उपयोगिता है।
- इस चक्र के जाग्रत होने पर साधक दिव्य ज्ञानी तथा भूत व भविष्य का ज्ञाता हो जाता है।
- साधक में दूसरों के मनोभावों को समझने की शक्ति व विचार सम्प्रेषण की दक्षता आ जाती है।⁷²

सहस्रार चक्र के ध्यान से लाभ -

- यह आध्यात्मिक व सम्पूर्ण शक्तियों का केन्द्र स्थान है।
- असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है।
- समस्त चित्तवृत्तियों का क्षय हो जाता है।
- कैवल्य, मोक्ष या सच्चिदानन्द की प्राप्ति होती है।
- यह निर्विकल्पक की स्थिति है, जिसमें साधक को दिव्य ज्ञान की अनुभूति होती है।⁷³

6.7 प्रत्याहार की उपादेयता

आज मनुष्य विषयभोगों में आसक्त होकर स्वलक्ष्य से भटक रहा है। उसे यह भी ज्ञात नहीं कि मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? और कहाँ जाना है ? वह तो बस दिग्भ्रमित होकर जीवन यात्रा कर रहा है। जब तक वह बाह्य विषयों व भौतिक लिप्साओं में भटकता रहेगा उसका जीवन सफल होना असंभव है अतः इन्द्रियों का विषयों से अलगाव व व्यक्ति का अन्तर्मुखी होना आवश्यक है। उसे आत्मोन्नति हेतु मुक्तभाव से योगमय जीवन शैली अपनानी होगी। सदाचार, यम, नियम आदि का श्रेयस् मार्ग अपनाना होगा। मनोदैहिक स्वास्थ्य, आध्यात्मिक उन्नति व लक्ष्य प्राप्ति हेतु प्रत्याहार योग साधना का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चरण है। राजयोग व हठयोग में प्रत्याहार को आध्यात्मिक व व्यावहारिक दृष्टि से अनिवार्य अंग माना गया है। यम का सामाजिक, नियम का वैयक्तिक, आसन का शारीरिक तथा प्राणायाम का मानसिक व प्राणिक जो लक्ष्य हैं, उनके लिए संयम व नियमन की दृष्टि से प्रत्याहार का अभ्यास अति आवश्यक है। साथ ही प्रत्याहार के बिना धारणा, ध्यान व समाधि इन अग्रिम अंगों का अभ्यास भी असंभव है। इस प्रकार यह योग का बहिरंग साधन होते हुए भी अन्तरंग अभ्यासों (धारणा, ध्यान व समाधि) हेतु अन्तरंगता की पृष्ठभूमि निर्मित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। प्राणायाम द्वारा मन व इन्द्रियों को शुद्ध कर इन्द्रियों की बाह्य वृत्तियों को सब ओर से हटाया जाता है तथा मन में विलीन करने का अभ्यास प्रत्याहार द्वारा ही किया जाता है। आसन व प्राणायाम को सिद्ध करने के पश्चात् विषय विकारों को हटाकर स्वस्वरूप में स्थित होना प्रत्याहार है। प्राणायाम के अभ्यास से इन्द्रियों में निरोध का भाव बढ़ता है तथा प्राण वश में हो जाने पर मन स्वतः ही वश में हो जाता है।

इन्द्रियों का स्वभाव बहिर्मुख होता है और यह योग मार्ग या योगसिद्धि में सबसे बड़ी बाधा है क्योंकि इन्द्रियों के बहिर्मुखी होने से मनुष्य बाहरी विषयों को ही देखता रहता है तथा उन सांसारिक विषयभोगों में फंसा रहता है। परिणामस्वरूप वह आत्मदर्शन या आत्मसाक्षात्कार नहीं कर पाता इसलिए इन्द्रियों व मन को बाह्य सांसारिक विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी करना परमावश्यक है। इन्द्रियों को स्वविषयों से हटाकर आत्मदर्शन या आत्मा की ओर ले जाना चाहिए तथा बुद्धिरूपी प्रज्ञा से इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर अपनी ओर खींचना चाहिए ताकि सांसारिक भोगों में ना पड़ सकें। प्रत्याहार द्वारा

इन्द्रियाँ वश में होकर अन्तर्मुखी बन जाती हैं। प्रत्याहार में चित्त की इच्छा मुख्य होती है। योगी जब चाहे कि मैं यह नहीं जानूँगा तब उस ज्ञानेन्द्रिय शक्ति का तत्काल निरोध हो जाता है। जब चित्त बाहरी विषयों से विरक्त होकर अन्तर्मुखी हो जाता है, तो इन्द्रियाँ भी अन्तर्मुखी होने लगती हैं अर्थात् चित्त के निरुद्ध होने पर स्वयं भी निरुद्ध हो जाती हैं। बाह्य सांसारिक विषयों पर ध्यान न देना व मानस भाव से रहना ये प्रत्याहार साधन के उपाय हैं। कछुआ जैसे अपने अंगों को सिकोड़कर अपने भीतर छुपा लेता है वैसे ही मनुष्य को अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटाकर उनकी वृत्तियों को आत्मा में अनुरक्त कर स्वकल्याण में ध्यान देना चाहिए यही प्रत्याहार की सार्थकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसी को इन्द्रिय निग्रह होने पर बुद्धि स्थिर को स्थितप्रज्ञ कहा है।

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार जब इन्द्रियाँ विषयों की ओर न जाकर चित्त का ही अनुकरण करने लग जाती हैं तो वह प्रत्याहार होता है। घेरण्डसंहिता व अमृतनादोपनिषद् में प्रत्याहार को प्राणायाम से पूर्व रखा गया है जो उपयुक्त प्रतीत होता है ताकि प्राणायाम करते हुए साधक को इन्द्रियों की इच्छाएँ व चेष्टाएँ अस्थिर न कर सकें। महर्षि घेरण्ड ने प्रत्याहार को काम, क्रोध, मोह आदि षट्शत्रु का विनाश करने वाला बताया है।

इस प्रकार हठयोगिक ग्रन्थों, गीता, पातञ्जलयोगसूत्र तथा प्रमुख योग उपनिषदों के अष्टांग व षडंगयोग में प्रत्याहार के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। अमृतनादोपनिषद् में प्रत्याहार को षडंगयोग का प्रथम अंग बताया गया है तथा योगचूडामण्युपनिषद् में षडंगयोग के अन्तर्गत तृतीय अंग के रूप में स्वीकार करते हुए कहा गया है कि इन्द्रियों को स्वविषयों से हटाने का अभ्यास प्रत्याहार कहलाता है। जैसे सूर्य तीसरे पहर में अपनी गर्मी और चमक वापस ले लेता है वैसे ही आसन और प्राणायाम का अभ्यास करने के बाद साधक तीसरे अंग प्रत्याहार के अभ्यास से मन के दोष व विकारादि दूर करता है -

“यथा तृतीयकाले तु रविः प्रत्याहरेत् प्रभाम्।

तृतीयांगस्थितो योगी विकारं मानसं हरेदित्युपनिषत्॥

विकारं मानसं योगी प्रत्याहरेण मुञ्चति॥”⁷⁴

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् व योगतत्त्वोपनिषद् में प्रत्याहार को अष्टांग योग का चतुर्थ अंग माना गया है।

इस प्रकार प्रत्याहार एक मनोविज्ञान है, जो मन पर केन्द्रित है। इसे व्यावहारिक जीवन में अपनाकर आध्यात्मिक उन्नति व मनोदैहिक स्वास्थ्य सम्बन्धी विभिन्न लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं। यह मनोचिकित्सकीय उपचार का सर्वोत्कृष्ट साधन है। आजकल मनोचिकित्सा के क्षेत्र में जो तकनीके अपनाई जा रही हैं। जिसमें वैचारिक विश्लेषण व अन्तर्वीक्षण का अभ्यास कराया जाता है, जैसे - यथार्थ बोध मनोचिकित्सकीय प्रविधि में श्वासों के शिथिलीकरण व आत्मचिन्तन का अभ्यास किया जाता है वह वस्तुतः प्रत्याहार सिद्धि हेतु अपनाए जाने वाले भावातीत ध्यान, योगनिद्रा, त्राटक आदि का ही आधुनिकीकरण हैं। इन अभ्यासों द्वारा असंयमित इच्छाओं पर नियन्त्रण का प्रयास किया जाता है। जिससे कि तनाव, अवसाद, अनिद्रा, क्रोध, विस्मृति आदि मानसिक समस्याओं का निराकरण किया जा सके।

प्रत्याहार के अभ्यास से इन्द्रिय विषयों को त्यागकर चित्त को ध्येय में लगाकर आत्मोन्नति के साथ भौतिक उन्नति भी की जा सकती है। यह व्यक्ति के आध्यात्मिक व नैतिक श्रेयस् हेतु आवश्यक है तथा असंयमित इच्छाओं व वासनाओं से उत्पन्न व्यावहारिक समस्याओं के समाधानार्थ प्रयुक्त किया जाने वाला उपयुक्त अभ्यास है। यह तनाव, चिड़चिड़ापन, विभ्रम आदि मानसिक विकारों व नशा, लत आदि व्यावहारिक समस्याओं के निदान हेतु लाभप्रद है। साथ ही इन्द्रियों के विकारग्रस्त होने से उत्पन्न विकार भी प्रत्याहार के अभ्यासी को विकृत या बाधित नहीं कर पाते।

आधुनिक युग में भौतिक सुख-सुविधाओं की प्रचुरता के होते हुए भी शैक्षिक क्षेत्र में अपेक्षित अध्ययन-अध्यापन में ध्यान केन्द्रित नहीं हो पा रहा परिणामस्वरूप एकाग्रता के अभाव व नैतिक पक्ष के विलुप्त होने जैसी ज्वलन्त समस्याओं का अनुभव कर रहे हैं साथ ही कम समय में अधिकाधिक विषयों को समझना विद्यार्थियों के लिये एक बड़ी चुनौती है क्योंकि ध्यान सही तरीके से केन्द्रित नहीं हो पा रहा है। इन सभी समस्याओं का एक मात्र उपाय प्रत्याहार है, जो बाह्य विषयों से ध्यान हटाकर अन्तर्मन की ओर मोड़ने व धारणा को विकसित करके ध्यान के केन्द्रीकरण में सहायता प्रदान करता है। व्यक्ति की मानसिक समस्याओं का कारण असंतुष्टि व अत्यधिक इन्द्रिय सुख की लिप्सा है। प्रत्याहार का अभ्यास मानसिक संतुष्टि व शान्ति प्रदान कर कार्य क्षमता व जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि करता है।

योग साधना में बहिरंग साधनों के अभ्यास के बाद साधक की मनोवैज्ञानिक वृत्ति-प्रवृत्ति एवं सम्पूर्ण साधना के लक्ष्य निर्धारण एवं निर्देशन हेतु प्रत्याहार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। जो साधक को बाह्य जगत् से हटाकर अपने भीतर की दुनिया को समझने व संतुलन बनाए रखने में सहायता प्रदान करता है।

6.8 धारणा, ध्यान व समाधि की उपादेयता

धारणा से लाभ -

धारणा ध्यान की भूमिका है। जब प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियों को अन्तर्मुखी कर मानसिक शक्तियों को जाग्रत किया जाता है, तब धारणा जाग्रत मानसिक शक्तियों को सही दिशा प्रदान कर एकाग्र करती है। प्रत्याहार ही धारणा की ओर ले जाता है। प्रत्याहार का अभ्यास बढ़ाने पर धारणा की स्थिति होने लगती है जैसा कि योगचूडामण्युपनिषद् में कहा गया है कि बारह बार प्रत्याहार करने से अर्थात् एक सौ चौवालीस प्राणायाम करने पर धारणा की स्थिति बनती है तथा धारणा से मन एक स्थान पर ठहरने लगता है। अमृतनादोपनिषद् के अनुसार धारणा से अन्तःकरण में उठने वाले बुरे विचार या वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं -

“धारणाभिश्च किल्बिषम्। किल्बिषं हि क्षयं नीत्वा रुचिरं चैव चिन्तयेत्॥”

योगचूडामण्युपनिषद् के अनुसार धारणा के अभ्यास से मन का धैर्य अद्भुत चैतन्य शक्ति से भर जाता है -

“धारणाभिर्मनोधैर्यं याति चैतन्यमद्भुतम्”⁷⁵

अष्टांग योग के बाह्यसाधनों से मन को शुद्ध व नियन्त्रित किया जाता है। जिससे मन में स्थिरता आ जाती है और वह एक स्थान पर ठहरने या स्थिर होने योग्य हो जाता है, यही चित्त की स्थिरता या एकाग्रता धारणा है। जिसमें किसी एक वस्तु या स्थान पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। जब बाह्य योगांगों आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि द्वारा चित्त स्थिर हो जाए तब उसे अन्य विषयों से हटाकर एक ध्येय विषय में बांधना धारणा होती है। एकाग्रता के लिए किसी भी बाह्य या आन्तरिक वस्तु को लिया जा सकता है। बाह्य वस्तु इष्टदेव की तस्वीर, प्रतिमा, यंत्र, बिन्दु पर मन को एकाग्र

करना या आन्तरिक श्वास, षट्चक्र, हृदय या शरीरस्थ पञ्चमहाभूतों पर एकाग्रता की जा सकती है।

घेरण्ड संहिता में पृथक् से धारणा को योग का अंग नहीं माना गया बल्कि मुद्रा प्रकरण में ही पञ्चधारणाओं के अभ्यास की बात कही गई है। इसी प्रकार त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् व योगतत्त्वोपनिषद् में शरीरस्थ पञ्चमहाभूतों पर मन लगाना धारणा कहा गया है। पृथिवी, जल, वायु, अग्नि व आकाश इन पाँचों तत्त्वों के स्वरूप में यानि उनके स्थान, आकृति, रंग, बीजमंत्र या देव में चित्त को ठहरा देना या बांध देना धारणा है। इन पंच तत्त्वों पर ध्यान लगाकर इन्हें साध्य करने का निर्देश दिया है ताकि कषाय आदि के परिणाम मन्द हो जाए। इन तत्त्वों के चिन्तन से कर्मों का क्षय होता है तथा आत्मिक लाभ प्राप्त होते हैं। पंचभूतों की धारणा से इन पर साधक का अधिकार हो जाता है तथा इनसे होने वाले विकार उत्पन्न नहीं होते। जैसे - योगतत्त्वोपनिषद् में पञ्चमहाभूत की धारणा के अभ्यास से होने वाले फल को बताते हुए कहा गया है कि -

“धारयेत् पञ्चघटिकाः पृथिवीजयमाप्नुयात्॥

पृथिवी योगतो मृत्युर्न भवेदस्य योगिनः।

धारयेत् पञ्चघटिकाः सर्वपापैः प्रमुच्यते।

ततो जलाद्भयं नास्ति जले मृत्युर्न विद्यते॥

धारयेत् पञ्चघटिका वह्निनासौ न दाहयते॥

न दहयते शरीरं च प्रविष्टस्याग्निमण्डले।

धारयेत् पञ्चघटिका वायुवद् व्योमगो भवेत्॥

मरणं न तु वायोश्च भयं भवति योगिनः।

आकाशधारणात्तस्य खेचरत्वं भवेद् ध्रुवम्॥

यत्र कुत्र स्थितो वापि सुखमत्यन्तमश्नुते।

एवं धारणाः पञ्च कुर्यात् योगी विचक्षणः॥

ततो दृढशरीरः स्यान्मृत्युस्तस्य न विद्यते।

ब्रह्मणः प्रलयेनापि न सीदति महामतिः॥”⁷⁶

अर्थात् पाँच घड़ी तक पृथिवी तत्त्व पर धारणा करते रहने से योगी पृथिवी पर विजय प्राप्त कर लेता है तथा पृथिवी सम्बन्ध से उसकी मृत्यु नहीं होती। जल तत्त्व पर विजय प्राप्त कर लेने पर योगी सभी पापों से मुक्त हो जाता है, उसे जल से भय नहीं

रहता और उसकी जल में मृत्यु नहीं होती। अग्नि तत्त्व की धारणा से अग्नि पर विजय प्राप्त कर लेने पर योगी की अग्नि से मृत्यु नहीं होती। वायु तत्त्व की धारणा से योगी वायु के समान आकाश में गति करने में समर्थ हो जाता है। वह मृत्यु को भी जीत लेता है तथा उसे वायु से भय नहीं रहता। आकाश धारणा से योगी को निश्चय ही आकाश में भ्रमण करने का सामर्थ्य मिल जाता है और वह जहाँ कहीं भी रहे वह अत्यन्त सुख का अनुभव करता है।

इसलिए बुद्धिमान योगी को पञ्चमहाभूतों में धारणा करनी चाहिए। पंचभूत धारणा से योगी का शरीर वज्र के समान दृढ़ हो जाता है, उसे मृत्यु का भय नहीं रहता तथा महाप्रलय होने पर भी यह योगी दुःखी नहीं होता।

इस प्रकार धारणा, ध्यान और समाधि की उच्च अवस्था तक ले जाने का साधन है। यह मानसिक व्याकुलता व बेचैनी को दूर करती है तथा साधक को जागरूक कर मानसिक शान्ति प्रदान करती है। स्मृति व ध्यान बेहतर बनाती है। चित्त की एकाग्रता व स्थिरता में वृद्धि करती है। पञ्चधारणा से साधक शारीरिक व मानसिक रूप से सुदृढ़ होकर दिव्य व अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त करता है तथा इन पंचतत्त्वों की धारणा से साधक की अकाल मृत्यु भी नहीं होती।

ध्यान से लाभ -

ध्यान योग की उच्च व एकाग्रता की परिपक्व अवस्था है। धारणा में चित्त को किसी एक स्थान पर एकाग्र किया जाता है। एकाग्रता से चित्त अविचलित व स्थिर हो जाता है तथा चित्त निरन्तर उसी में एक सा बना रहता है। ध्येय का निरन्तर मनन करना ही ध्यान है। ध्यान में वस्तु के यथार्थ स्वरूप का बोध होता है। धारणा में कभी-कभी मन भटक जाता है किन्तु ध्यान में मन की एकाग्रता बढ़ जाती है। धारणा से होने वाला ज्ञान पानी की टपकती हुई एक-एक बूँद के समान है जबकि ध्यान में यह ज्ञान मधु या तेल की धारा की तरह एकतार या एक तान हो जाता है। ध्यान में विचार एवं चिन्तन से रहित होकर केवल दृष्टाभाव से देखते रहना व कर्तापन का अभाव मात्र रह जाता है। वृत्ति का प्रवाह केवल ध्येय मात्र में रहता है। अस्मिता या अहं भाव नष्ट हो जाता है तथा केवल 'है' ही शेष रहता है।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार 'मैं केवल चिन्मात्र, चैतन्यस्वरूप ही हूँ' यह मन में विचार बनाए रखना ध्यान है। षट्चक्र, तालु, जिह्वा, नासिका तथा ब्रह्मरन्ध्र ये

सभी ध्यान के स्थान बताए गए हैं तथा मुख्य रूप से ध्यान के सगुण व निर्गुण दो प्रकार बताए हैं।

सगुण ध्यान से योगी की सम्पूर्ण मनोवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं तथा निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप का ध्यान करने से शीघ्र ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार योगतत्त्वोपनिषद् में सगुण व निर्गुण ब्रह्म के ध्यान का फल बताते हुए कहा गया है कि वायु को आकाश अर्थात् मूर्धा में रोक कर अभीष्ट देवता को स्मरण करते हुए साठ घटी तक ध्यान करना सगुण ध्यान होता है तथा इससे अणिमा आदि विभूतियों की प्राप्ति होती है। निर्गुण ध्यान करने से लगभग बारह दिनों में योगी को समाधि लाभ होता है -

“सगुणं ध्यानमेतत्स्यादणिमादिगुणप्रदम्।”

निर्गुणध्यानयुक्तस्य समाधिश्च ततो भवेत्॥”⁷⁷

इस प्रकार चित्त की सतत् एकाग्रता व सजगतापूर्ण क्रिया ध्यान है। जो कि व्यक्ति के आन्तरिक जीवन के साथ लय व सामंजस्य स्थापित करती है। मन से पार जाना आत्मज्ञान है और आत्मज्ञान की साधना का एकमात्र उपाय ध्यान है। ध्यान द्वारा ही मन का विसर्जन सम्भव है क्योंकि ध्यान ही अर्जित मान्यताओं व संस्कारों को मन से खाली कर आत्मानुभूति कराता है। मन की रिक्तता से मनुष्य बन्धन मुक्त हो जाता है तथा इसी स्थिति में उसे सत्य स्वरूप का ज्ञान होता है।

सम्यक् ध्यान से समाधि अवस्था की प्राप्ति होती है। ध्यान से मन शान्त व एकाग्र होता है। विचारों में स्पष्टता आती है तथा आत्मविश्वास व निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि होती है। यह नकारात्मक भावनाओं को दूर कर सकारात्मक भावनाओं को विकसित करने में सहायक है।

ध्यान से आत्मानुभूति होती है। यह आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ भौतिक उन्नति में भी सहायक है। व्यक्ति को तनावपूर्ण परिस्थितियों से मुक्त कर उसकी कार्यक्षमता व विचारशक्ति को संतुलित कर व्यक्ति को सामाजिक समायोजन योग्य बनाता है। ध्यान करने से इन्द्रियों की बोध क्षमता में और मन व बुद्धि की समझने व निर्णय लेने की क्षमता में विकास होता है। स्मरणशक्ति, भावनात्मक सहानुभूति व नींद में गुणात्मक सुधार आता है साथ ही बुरी आदतें बदलने व अच्छी आदतें विकसित करने में सहायक है। ध्यान को दैनिक जीवन में अपनाने से मन में शालीनता, निरहंकारिता,

सहनशीलता, साहस व धैर्य आदि भाव उत्पन्न होते हैं जिससे एक नया ताजगी से भरा पुनर्जीवन प्राप्त होता है।

मनोवैज्ञानिक और शारीरिक प्रभावों पर ध्यान आधारित शोध व अनुप्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि ध्यान से व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक व भावात्मक क्षेत्र पर प्रभाव पड़ता है।

ध्यान का स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र पर प्रभाव पड़ता है। हृदय गति धीमी हो जाती है, ऑक्सीजन का उपयोग न्यून हो जाता है तथा रक्तचाप कम हो जाता है।

गहन विश्राम से जुड़ी अल्फा तरंगें व शान्ति और आनन्द की भावना से जुड़ी थीटा तरंगें ध्यान की सामान्य अवस्था में भी मस्तिष्क में प्रवाहित होती रहती हैं। ध्यान से बेहतर अवधारणात्मक क्षमता, अधिगम, स्मृति, भावनात्मक परिपक्वता और लचीलापन पाया जाता है।⁷⁸

नैदानिक आबादी में ध्यान अनुसन्धान में पाया गया कि ध्यान से तनाव, दुश्चिन्ता, निरर्थक चिन्तन, अवसाद आदि में कमी, व्यसन मुक्ति, नींद में सुधार, जीवन गुणवत्ता, कल्याण, आत्मकरुणा तथा मनोवैज्ञानिक लचीलापन पाया जाता है।⁷⁹

शारीरिक स्वास्थ्य पर ध्यान के प्रभावों के अध्ययनों में उच्चरक्त चाप, हृदय सम्बन्धी विकार, श्वसन सम्बन्धी विकार, मस्कुलोस्केलेटन रोग, दर्द में सुधार, त्वचा की समस्याओं में सुधार तथा बेहतर प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया पाई गई।

इस प्रकार हमारे सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य और जागरूकता, सद्भाव और उच्च चेतना का जीवन बनाने में ध्यान साधना का महत्त्वपूर्ण योगदान है परिणामस्वरूप आज विभिन्न चिकित्सीय कार्यक्रम जैसे माइण्डफुलनेस आधारित तनाव न्यूनीकरण कार्यक्रम और माइण्डफुलनेस आधारित संज्ञानात्मक कार्यक्रम आदि ध्यान के मनोवैज्ञानिक तकनीक आधारित चिकित्सा कार्यक्रमों का विकास हुआ है।

समाधि का फल -

यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार ये पाँच अष्टांग योग के बाह्य साधन हैं। इनकी सम्यक् सिद्धि हो जाने के पश्चात् आन्तरिक साधनों का अभ्यास किया जाता है। आन्तरिक साधनों में प्रथम साधन धारणा, द्वितीय साधन ध्यान और तृतीय साधन समाधि है। इन तीनों साधनों का एक वस्तु में होना संयम कहलाता है। योग का लक्ष्य व अन्तिम सर्वोच्च साधन समाधि है। वास्तविक योग साधना का प्रारम्भ धारणा

एवं ध्यान से होता है जिसका अन्त समाधि में होता है। जहाँ साधक प्रकृति से पूर्णतया अपना सम्बन्ध विच्छेद कर उस चैतन्य तत्त्व पुरुष में विलीन हो जाता है। यही उसकी मुक्तावस्था है, जिसमें पहुँचकर वह जीवनमृत्यु के चक्र से सदा के लिए छूट जाता है। इसी को कैवल्य, मोक्ष या आत्मसाक्षात्कार कहते हैं।

योग साधना का मुख्य उद्देश्य स्वयं की चेतना में स्थित होना है इसी को आत्मज्ञान परमात्मा की प्राप्ति या समाधि कहा गया है। समाधि में मन की पूर्ण एकाग्रता होती है। इसमें ध्याता, ध्यान और ध्येय एक हो जाते हैं अर्थात् चित्त का अपना स्वरूप शून्य सा हो जाना और केवल ध्येय की प्रतीति हो वह अवस्था समाधि है। योगी को ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है। योगी के इस ज्ञान को ऋतम्भरा प्रज्ञा कहते हैं। इसके माध्यम से उसे वस्तुओं के स्वरूप का सच्चा व पूर्णज्ञान प्राप्त होता है। यह योग साधना की पराकाष्ठा है। अतीन्द्रिय क्षमता की प्राप्ति कर साधक समाधि द्वारा विभिन्न दिव्य विभूतियों को प्राप्त कर सकता है तथा प्रज्ञा के आलोक से अपने जीवन को उत्कृष्ट बना सकता है।

योगचूडामण्युपनिषद् में समाधि का फल बताते हुए कहा गया है कि -

“यत्समाधौ परं ज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखम्।

तस्मिन् दृष्टे क्रियाकर्म यातायातो न विद्यते॥”⁸⁰

अर्थात् समाधि अवस्था में सम्पूर्ण संसार को व्याप्त करने वाले अनन्त और उत्कृष्ट ज्योति स्वरूप परमात्म तत्त्व का साक्षात्कार हो जाता है। परमात्म तत्त्व का साक्षात्कार हो जाने पर योगी सांसारिक कर्मों के बन्धन से दूर हो जाता है। वह जन्म-मरण के चक्र से छूटकर मुक्त हो जाता है।

समाधि की अवस्था में वह चैतन्य तत्त्व अपनी पूर्ण जाग्रत अवस्था में रहता है। इसके अनुभव को ज्ञान या आत्म ज्ञान कहते हैं। ज्ञान की अवस्था में जब अहंकार विलीन हो जाता है और उस चेतना के साथ एकत्व स्थापित हो जाता है तब अद्वैत का अनुभव होता है जो परम उपलब्धि है। योग के अभ्यास से चित्त की सभी वृत्तियाँ उसी प्रकार सिमट कर चित्त में विलीन हो जाती हैं, जिस प्रकार कछुआ अपने सभी अंगों को सिकोड़कर अपने भीतर समाहित कर लेता है। यह चित्त अपनी इच्छा और क्रियाशक्ति के गुणों के माध्यम से चेतना के साथ एकाकार होकर विस्तार प्राप्त करता है। यह सब अविद्या या अज्ञान के कारण होता है लेकिन जब ज्ञान या विद्या का आलोक होता है

तो यह अज्ञान नष्ट हो जाता है, जिससे योगी को प्रकृति और पुरुष का भेद समझ में आ जाता है, जिससे मन का विस्तार रुक जाता है और वह अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाता है। प्रकृति के तीनों गुण निष्क्रिय हो जाते हैं तथा मन भी निष्क्रिय होकर आत्मा में विलीन हो जाता है। इसके बाद केवल ब्रह्मस्वरूप आत्म तत्त्व ही शेष रहता है।

अतः योग साधना का लक्ष्य मोक्षप्राप्ति अर्थात् स्व स्वरूप में स्थित हो जाना है। शारीरिक व्यायाम, चमत्कार प्रदर्शन, सिद्धियाँ आदि ये सब इसकी गौण उपलब्धियाँ हैं।

6.9 अजपा जप साधना की उपादेयता

अजपा जप को अजपा गायत्री के नाम से भी जाना जाता है। जो बिना जप किए ही अपने आप होता रहता है। प्रत्येक प्राणी श्वास-प्रश्वास के साथ-साथ स्वतः ही इसका जप करता रहता है। श्वास-प्रश्वास के साथ 'हंस' शब्द का उच्चारण करके हंस के समान निर्मल, विशुद्ध, त्रिगुणातीत परब्रह्म का जप करते रहते हैं। योगचूडामण्युपनिषद् में बताया गया है कि इस जप का ध्यान करने मात्र से ही जीव सभी प्रकार के पापों से छूट जाता है।

“अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदा सदा।

अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः।

अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति॥”⁸¹

अर्थात् अजपा जप के समान न कोई विद्या, न कोई जप, न कोई ज्ञान कभी था और न कभी होगा। यह अजपा जप प्राणों का आधार है। यह जीवात्मा की शक्ति होने के कारण प्राणविद्या है और यह सबसे बड़ी विद्या है। इस प्राणविद्या को जानने वाला वास्तव में जानी होता है।

जब हम श्वास छोड़ते हैं तब हकार ध्वनि बाहर आती है और श्वास भरते हुए सकार ध्वनि भीतर जाती है। इस प्रकार एक दिन और रात्रि में इक्कीस हजार छः सौ बार हंस मन्त्र का जप स्वाभाविक रूप से बिना प्रयास के स्वतः ही कर लेते हैं। यह योग की एक बहुत ही आसान व शक्तिशाली क्रिया है। इससे न केवल चेतना का विकास होता

है बल्कि आत्मसाक्षात्कार और मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। यह इन्द्रियों को नियन्त्रित करने का महत्त्वपूर्ण उपाय है। इसके माध्यम से इन्द्रियाँ अविकसित चेतना को बाहर की तरफ ले जाने में सक्षम होती हैं। इसे चेतना का बाह्य स्वरूप कहा जाता है। जैसे-जैसे व्यक्ति स्व चेतना के प्रति जागरूक होने लगता है। उसका वह बाह्य स्वरूप नष्ट होने लगता है। उसके बाह्य संसार के सम्बन्ध टूटने लगते हैं, जिससे उसका वास्तविक रूप प्रकट होने लगता है। शरीर से भौतिक सम्बन्ध टूट जाता है और आत्मस्वरूप से जुड़ने लगता है। यह चेतना का विकास है। यह अजपा जप के माध्यम से स्वतः ही प्राप्त हो जाता है।

अजपा जप हमारे अचेतन मन को भी साफ करता है। अचेतन मन की दमित इच्छाएँ व्यक्ति को समायोजन कर पाने में बाधा उत्पन्न करती हैं। व्यक्ति शान्त मन नहीं रह पाता है। अजपा जप व्यक्ति को पूर्ण शान्ति की स्थिति में ले जाता है। इसके नियमित अभ्यास से भौतिक चेतना नष्ट हो जाती है। इस चेतना के नष्ट होते ही व्यक्ति अपने अचेतन में पहुँच जाता है। अचेतन की दमित इच्छाएँ उसे स्वप्न की भाँति दिखाई देती हैं। धीरे-धीरे अचेतन मन शुद्ध होता जाता है। प्रारम्भ में अच्छे बुरे, सही, गलत, प्राकृतिक-अप्राकृतिक सभी तरह के अजीबो-गरीब सपने आते हैं। इन्हे द्रष्टाभाव से देखना चाहिए। धीरे-धीरे इनका स्वरूप शान्त व शुद्ध होता जाता है इसलिए अजपा जप से कई मानसिक रोग पूरी तरह से खत्म हो जाते हैं।

इस प्रकार अजपा जप प्रकृति प्रदत्त योग साधना है। यह स्वतः चलने वाली क्रिया है, जिसमें व्यक्ति को केवल जागरूक होने की आवश्यकता है। इसमें गुरु के मार्गदर्शन या शास्त्रज्ञान की भी आवश्यकता नहीं होती है अतः प्रत्येक व्यक्ति को निर्भय होकर इससे स्व चेतना का विकास करके अपने जीवन को शान्तिपूर्ण और सुखमय बनाना चाहिए।

6.10 यौगिक आहार व दिनचर्या से लाभ

आहार व दैनिकचर्या का हमारे मनोदैहिक स्वास्थ्य पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। एक प्राचीन सुप्रसिद्ध कहावत है कि "जैसा खाएँ अन्न वैसा बने मन" अर्थात् जैसा हमारा आहार होता है वैसा ही हमारा मन हो जाता है और जैसा मन होता है वैसा ही

व्यक्तित्व होता है अतः योग में आहार-विहार व आचार-विचार के महत्त्व को स्वीकार कर शुद्ध व सात्त्विक आहार तथा संतुलित दिनचर्या पर जोर दिया गया है। योगचूडामण्युपनिषद् में योगी के लिए मिताहार आवश्यक माना है -

“ब्रह्मचारी मिताहारी योगी योगपरायणः।

अब्दादूर्ध्वं भवेत् सिद्धो नात्र कार्या विचारणा॥

सुस्निग्धमधुराहारश्चतुर्थाशविवर्जितः।

भुञ्जते शिवसम्प्रीत्या मिताहारी स उच्यते॥”⁸²

अर्थात् जो योगी ब्रह्मचारी, मिताहारी व योग परायण होता है, निःसन्देह वह एक वर्ष में ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है अतः योगी को खट्टे, कड़वे व नमकीन पदार्थों का त्याग कर स्निग्ध व मधुर आहार करना चाहिए और उदर का चौथा भाग खाली रखना चाहिए साथ ही योगी को अपना भोजना प्रभु को निवेदित करके करना चाहिए। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में मिताहार को यम के रूप में स्वीकृत किया गया है। योगतत्त्वोपनिषद् में यमों में अल्प आहार को मुख्य बताकर पथ्य व अपथ्य आहार की चर्चा की गई है -

“लघ्वाहारो यमेष्वेको मुख्यो भवति नेतरः॥

प्रथमाभ्यासकाले तु विघ्नाः स्युश्चतुरानन।

आलस्यं कत्यनं धूर्तगोष्ठी मन्त्रादिसाधनम्॥

धातुस्त्रीलौल्यकादीनि मृगतृष्णामयानि वै।

ज्ञात्वा सुधीस्त्यजेत्सर्वान्विघ्नान्पुण्यप्रभावतः॥”⁸³

योगाभ्यास के समय आलस्य, आत्मप्रशंसा, धूर्तसंगोष्ठी, मन्त्र आदि सिद्ध करना स्वर्ण आदि धातुओं और स्त्री आदि की लालसा ये सब विघ्न मृगतृष्णा के समान भ्रम में डालने वाले होते हैं अतः इनका त्याग करना चाहिए साथ ही योगाभ्यास में बाधा डालने वाले आहार का भी त्याग कर देना चाहिए। नमक, सरसों, खट्टा, गर्म, रूखा, तीखा, शाक, हींग आदि मसालों वाला आहार नहीं करना चाहिए। अग्नि सेवन, स्त्रीसंग, पदयात्रा, उपवास तथा शरीर को पीड़ित करने वाले कार्य नहीं करने चाहिए। दूध व घृत का भोजन प्रशस्त माना गया है। गेहूँ, मूँग, चावल आदि का आहार योग साधक के लिए उपयोगी बताया है -

“योगविघ्नकराहारं वर्जयेत् योगवित्तमः॥

लवणं सर्षपं चाम्लमुष्णं रुक्षं च तीक्ष्णकम्।

शाकजातं रामठादि वह्नि स्त्री पथसेवनम्॥

प्रातः स्नानोपवासादिकायक्लेशांश्च वर्जयेत्।

अभ्यासकाले प्रथमं शस्तं क्षीराज्यभोजनम्॥

गोधूम मुद्गशाल्यन्नं योगवृद्धिकरं विदुः॥”⁸⁴

असंतुलित दिनचर्या व अशुद्ध आहार दूषित भावनाओं, विचारों व व्यवहार को जन्म देता है इसलिए अतिजागरण, अतिस्वप्न, आलस्य, अतिहार व अनाहार नहीं करना चाहिए। अधिक नमकीन, खट्टा व मसालेदार भोजन नहीं करना चाहिए क्योंकि ये तन्त्रिका तन्त्र को उत्तेजित करता है और जलन पैदा करता है। सभी यौगिक ग्रन्थों में बताया गया है कि मनोदैहिक गतिविधियों को ठीक प्रकार से शान्त करने से ही प्राण की कार्य प्रणाली सुचारु रूप से चलती है और यही सकारात्मक स्वास्थ्य का मार्ग है। योगी के आचार-विचारों को संयमित व नैतिक बनाए रखने हेतु ही अष्टांग योग में यम और नियम का पूर्णतया कठोरता से पालन करना नितान्त आवश्यक बताया गया है।

सूर्योदय से पूर्व ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए क्योंकि उस समय का वातावरण स्वच्छ रहता है तथा प्राणवायु सर्वाधिक रहती है। शुद्ध व स्वच्छ वातावरण के प्रभाव से शरीर में उपयोगी रसायन सक्रिय होते हैं, जिनसे शरीर में ऊर्जा व उत्साह का संचार होता है। नित्य स्नान से शारीरिक अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं तथा गहरी व अच्छी नींद आती है साथ ही शरीर की दुर्गंध, पसीना व चर्म सम्बन्धी विकार भी दूर हो जाते हैं। समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ सक्रिय हो जाती हैं। रक्त का शोधन होता है व भूख बढ़ती है। उचित या पर्याप्त निद्रा से शारीरिक व मानसिक थकान दूर हो जाती है। पाचनतन्त्र ठीक रहता है तथा शरीर में नवीन ऊर्जा का संचार होता है अतः ज्यादा सोना व कम सोना दोनों ही त्याज्य हैं।

इस प्रकार प्रमुख योग उपनिषदों में किस प्रकार का भोजन हितकारी है? कितनी मात्रा में भोजन करना चाहिए? किस समय भोजन करना चाहिए तथा भोजन की गुणवत्ता कैसी होनी चाहिए? आदि विषयों पर भी विचार किया गया है। भोजन प्राण ऊर्जा का निर्माता है। योग शुद्ध, हल्के, सात्त्विक व ऊर्जा से भरे शाकाहार का निर्देश देता है। जो हमारे भीतर सात्त्विक प्रवृत्ति का विकास करता है। यौगिक आहार आयुर्वेदिक

परम्परा पर आधारित सात्त्विक आहार है। जो शुद्ध, हल्का तथा प्राण ऊर्जा से भरपूर होता है। यह मन की स्पष्टता, शान्ति व समग्र कल्याण की भावना को बढ़ावा देने वाला होता है। यह पोषक तत्वों से भरपूर होता है तथा आसानी से पच जाता है। बिना भारीपन व सुस्ती पैदा किए शरीर को पोषण देता है। ऐसे भोजन से प्राण ऊर्जा, एकाग्रता व जागरूकता बढ़ती है। जो योगाभ्यास व आध्यात्मिक भावना को सुदृढ़ व सफल बनाने में सहायक है। जिससे शरीर अधिक ऊर्जावान, लचीला व फुर्तीला बनता है। जो विभिन्न आसन, बन्ध, मुद्रा व प्राणायाम आदि को बेहतर ढंग से करने में मदद करता है साथ ही योग में अधिक सक्रिय रूप से संलग्न करने में सक्षम बनाता है।

तामसिक व राजसिक आहार मन व शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। ये मन व शरीर की आन्तरिक शान्ति को बाधित करते हैं। तामसिक आहार अत्यधिक प्रसंस्करण, तला हुआ, नशीला तथा कृत्रिम योजक होता है, जो सुस्ती, जड़ता, वजन बढ़ाने व स्पष्टता की कमी पैदा करता है। राजसिक भोजन अत्यधिक मसालेदार या उत्तेजक होता है, जो बेचैनी व उत्तेजना पैदा करता है। जिससे योग व ध्यान के दौरान ध्यान व एकाग्रता बनाए रखना मुश्किल हो जाता है। यौगिक आहार शरीर की आध्यात्मिकता पर केन्द्रित होता है। इसमें सात्त्विक गुणों वाले खाद्य पदार्थ शामिल हैं जैसे - फल, हरी व पत्तेदार सब्जियाँ, साबुत व मोटे अनाज, दाल, फलियाँ, घी, दूध आदि। फल व साबुत अनाज फाइबर से भरपूर होते हैं, जिससे पाचन में सुधार होता है तथा आँते भी मजबूत होती हैं यह आहार अहिंसा, सत्त्व व शौच इन तीन सिद्धान्तों पर आधारित होता है।

यौगिक आहार प्राकृतिक रूप से पके और उगाएँ गए खाद्य पदार्थ होते हैं। जो स्वास्थ्यवर्धक, उपचारात्मक व कम प्रसंस्कृत होते हैं, जिससे कोई दुष्प्रभाव नहीं होता।

भोजन प्रेम व सकारात्मक भावना से कृतज्ञता प्रकट करके ग्रहण करना चाहिए ताकि भोजन विकृत या पीडित न कर सके। पूर्णरूप से उपस्थित व जागरूक होकर प्रत्येक निवाले का स्वाद लेकर भोजन की प्रशंसा करते हुए ध्यान पूर्वक भोजन करने से शरीर की भूख व तृप्ति मिटती है साथ ही इससे अधिक खाना खाने से बचा जा सकता है व पाचन अच्छी तरह से होता है। योगाभ्यास से पूर्व अधिक भोजन नहीं करना चाहिए अन्यथा पाचन क्रिया योग के दौरान बढ़े हुए रक्त परिसंचरण में बाधा उत्पन्न कर सकती है और न ही अधिक समय तक भूखे रहकर योगाभ्यास करना चाहिए अन्यथा मनोदशा में उतार-चढ़ाव व ब्लड शुगर कम हो सकता है, जिससे ध्यान केन्द्रित करने में

बाधा उत्पन्न हो सकती है अतः पर्याप्त, संतुलित व सही समय पर भोजन करना चाहिए। मिताहार का शारीरिक व आध्यात्मिक ऊर्जा दोनों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जिससे व्यक्ति शान्त व तनाव मुक्त रहता है। यह शीघ्र पच जाता है तथा वजन कम करने में सहायक होता है। इस प्रकार यह चयापचय में सुधार करने में भी मदद करता है।

6.11 विभिन्न क्षेत्रों में प्रमुख योग उपनिषदों की उपादेयता

6.11.1 स्वास्थ्य के क्षेत्र में -

जीवन की सार्थकता उत्तम स्वास्थ्य में ही है। स्वास्थ्य ठीक होने पर जीवन स्वर्ग के समान आनन्दमय हो जाता है और यदि स्वास्थ्य ठीक नहीं है, तो जीवन नरक के समान दुःखदायी व भार स्वरूप हो जाता है इसलिए हमारे ऋषि-महर्षियों ने उत्तम स्वास्थ्य की कामना करते हुए दीर्घायु की कामना की है -

"अपामीवामप स्त्रिधमप सेधत दुर्मतिम्।

आदित्यासो युयोतना नो अंहसः"।।⁸⁵

अर्थात् हे परमात्मन् ! आप हमारे शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के रोगों को दूर कर हमें पवित्र बुद्धि दें, जिससे हम सब पापों से दूर रहकर उन्नतिशील हो सकें।

"जीवेम शरदः शतम्। बुध्येम शरदः शतम्। पुषेम शरदः शतम्।"⁸⁶ अर्थात् हम बुद्धि व पोषण से युक्त होकर सौ वर्षों तक जीवित रहें।

इस प्रकार वैदिक ऋचाओं में मानव के शारीरिक-मानसिक रूप से स्वस्थ रहकर दीर्घायु की कामना की गई है क्योंकि स्वास्थ्य ही जीवन का महत्त्वपूर्ण आयाम है। स्वास्थ्य के बिना जीवन लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है अत एव चरक संहिता में कहा गया है -

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्"⁸⁷

अर्थात् धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का आरोग्य ही प्रधान कारण है। नीरोग शरीर से ही सभी पुरुषार्थ प्राप्त किए जा सकते हैं। रोग उस सुखमय श्रेयस् और जीवन का अपहर्ता है।

किसी व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावात्मक एवं आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ होने की दशा को स्वास्थ्य या आरोग्य कहा जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए कहा है कि - "Health is a state of Complete physical mental & Social well being and not merely an absence of disease or infirmity."

अर्थात् स्वास्थ्य केवल रोग एवं शारीरिक दौर्बल्य से रहित होना मात्र ही नहीं है, वरन् शारीरिक, मानसिक व सामाजिक साम्य की स्थिति है।

योग स्वस्थ जीवन जीने की कला और विज्ञान है। यह सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित आध्यात्मिक आत्मानुशासन है। योग मानव को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावात्मक और आध्यात्मिक पक्ष से सशक्त व मजबूत बनाता है। यह घातक व असाध्य रोगों के खिलाफ एक निवारक उपाय के रूप में काम करता है। चिकित्सा की अन्य पद्धतियों के विकल्प के रूप में आज योग दुनिया भर के कई देशों में अपनाया जा रहा है परिणामस्वरूप योग करने वालों की संख्या में प्रतिदिन बढ़ोतरी होती जा रही है।

(i) शारीरिक स्वास्थ्य -

स्वास्थ्य का शारीरिक पक्ष शरीर के बाह्य और आन्तरिक रूप से पूर्णता के साथ कार्य करने से सम्बन्धित है। शारीरिक स्वास्थ्य का अर्थ है कि शरीर की प्रणालियों व अंगों का उचित और सुचारु रूप से काम करना तथा व्यक्ति का स्वस्थ व मजबूत होना है। दैनिक जीवन के कार्यों को सुचारु रूप से करने के लिए शारीरिक स्वास्थ्य आवश्यक है।

शारीरिक स्वस्थता व्यक्ति को एक अच्छा जीवन जीने, कार्य करने व उसका आनन्द लेने और कार्य करने में सक्षम बनाता है तथा शारीरिक स्वास्थ्य को बनाए रखने में योग की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित आसन, बन्ध, मुद्रा तथा प्राणायाम के अभ्यास से शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। इन योगासनों व मुद्राओं के अभ्यास से शारीरिक शक्ति का विकास होता है। जिससे शरीर हल्का, स्फूर्तिला व मजबूत बनता है। शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग की कार्यक्षमता बढ़ती है। सभी अंग सुचारु रूप से कार्य करने लग जाते हैं। शरीर स्वस्थ व रोग मुक्त हो जाता है। अन्तःस्रावी तन्त्र सन्तुलित हो जाता है, जिससे शरीर स्वस्थ बना रहता है। प्राणायाम के अभ्यास से शरीर से मल, अशुद्धियाँ व अपशिष्ट पदार्थ बाहर निकल जाते हैं और शरीर

शुद्ध हो जाता है। वात, पित्त व कफ का सन्तुलन बना रहता है तथा इनसे उत्पन्न विकारों का शमन हो जाता है। जीवनदायिनी ऊर्जा में वृद्धि हो जाती है। रक्त शुद्ध होता है। फेफड़ों का विस्तार होता है। शरीर में स्थिरता आती है। शरीर में स्फूर्ति, उल्लास व नव यौवन की प्राप्ति होती है तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में योग के शारीरिक महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि -

"न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः।

प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥"⁸⁸

अर्थात् जिस व्यक्ति ने योग की अग्नि में अपने शरीर को परख लिया है। उसके शरीर में न तो कोई रोग होता है, न ही उसमें वृद्धावस्था के लक्षण दिखाई देते हैं और न ही उसकी अकाल मृत्यु होती है।

"पहला सुख निरोगी काया" "शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्" "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है" इत्यादि कथनों से शारीरिक स्वास्थ्य का महत्त्व सिद्ध होता है। शरीर ही एकमात्र ऐसा साधन है, जो सांसारिक व आध्यात्मिक गतिविधियों का आधार है। उज्ज्वल भविष्य और बेहतर जीवन के लिए शरीर का स्वस्थ होना जरूरी है और इन योग उपनिषदों में वर्णित योगाभ्यास शरीर को स्वस्थ रखकर उसे आध्यात्मिक उन्नति में लगाते हैं।

(ii) मानसिक स्वास्थ्य -

मानसिक स्वास्थ्य किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व और भावनात्मक दृष्टिकोण का संतुलित विकास है, जो उसे अपने आस-पास के लोगों के साथ सामंजस्य बिठाकर रहना सिखाता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति आंतरिक तनावों से मुक्त रहता है, अपनी कमियों को पहचानता है तथा अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करता है। व्यक्ति यदि मानसिक रूप से स्वस्थ है तो उसका शारीरिक, भावात्मक व सामाजिक स्वास्थ्य भी उत्तम बना रहता है, इस प्रकार व्यक्ति का सर्वांगीण विकास मानसिक स्वास्थ्य पर ही निर्भर है। संत तुकाराम ने कहा है कि - "मन कर प्रसन्न सर्व सिद्धि चे कारण" अर्थात् मन को प्रसन्न रखो यही सब सिद्धियों का मूल है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने मानसिक स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए कहा है कि - "मानसिक स्वास्थ्य मानसिक कल्याण की एक स्थिति है, जो लोगों को जीवन के तनावों से निपटने, अपनी क्षमताओं का

एहसास करने, अच्छी तरह सीखने और अच्छी तरह से काम करने और अपने समुदाय में योगदान देने में सक्षम बनाती है। यह स्वास्थ्य और कल्याण का एक अभिन्न अंग है। जो निर्णय लेने, रिश्ते बनाने और जिस दुनिया में हम रहते हैं उसे आकार देने की हमारी व्यक्तिगत और सामूहिक क्षमताओं को रेखांकित करता है"।

आज की भागमभाग भरी जिन्दगी में हम थकान बेचैनी, चिन्ता, तनाव, अनिद्रा, अवसाद, क्रोध, ईर्ष्या तथा चिड़चिड़ापन आदि मानसिक बीमारियों से जूझ रहे हैं, जो हमारे व्यक्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही हैं परिणामस्वरूप हम सामाजिक समायोजन कर पाने में विफल होते जा रहे हैं। मानसिक अस्वस्थता के कारण ही बेरोजगारी, गरीबी, अपराध, दुर्व्यसन तथा विखण्डित परिवार आदि सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती जा रही हैं। आज हम पाश्चात्य जीवन शैली की चकाचौंध में आकर हमारे ऋषि-महर्षियों द्वारा प्रदत्त अमूल्य व अक्षय ज्ञान-विज्ञान रूपी योग निधि को भूल गए हैं परिणामस्वरूप बच्चे, नौजवान व बूढ़े व्याकुलता, चिन्ता, तनाव, अस्थिरता, निराशा, नकारात्मकता, अकर्मण्यता आदि मानसिक बीमारियों के आगोश में फंसते जा रहे हैं।

प्रमुख योग उपनिषदों द्वारा प्रदत्त योगाभ्यासों से चिन्ताओं से मुक्ति, आरोग्य की भावना में वृद्धि, मन की शान्ति, धैर्य, आत्मविश्वास में वृद्धि, एकाग्रता में वृद्धि, प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि, जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण, जीवन प्रत्याशा की दर में वृद्धि, चिड़चिड़ेपन के स्तर में कमी, आत्मनिर्भरता में वृद्धि, आत्मानन्दानुभूति, स्वस्वरूप स्थिति तथा आत्मदर्शन की प्राप्ति होती है। प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा व ध्यान इन योगाभ्यासों से मन की चंचलता दूर होकर एकाग्रता और ध्यान की क्षमता में वृद्धि होती है।

राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य और मनोरोग विज्ञान संस्थान द्वारा किए गए अनुसन्धानों ने सिद्ध किया है कि संज्ञानात्मक व्यवहार सम्बन्धी पक्ष में सुधार हेतु योग एक कारगर औषधि है। उचित समय पर रोजगार न मिल पाने की वजह से युवा मानसिक स्वास्थ्य खोते जा रहे हैं। इसके उपायभूत योग वैश्विक पटल पर आजीविका का साधन बनकर उभरा है। योग अवसाद ग्रस्त रोगियों के जीववैज्ञानिक जैसे - संज्ञानात्मक क्षमताओं में सुधार, सहानुभूति पूर्ण तरीके में वृद्धि, कॉर्टिसोल स्तर को कम करने, न्यूरो इन्फ्लेमेशन में कमी तथा स्कीजोफ्रेनिया के रोगियों में सामाजिक, व्यावसायिक आदि अन्य गतिविधियों हेतु उन्हें प्रेरित कर स्वानुभूतियों को पहचानने की

क्षमता को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ है। धूमपान, मादक पदार्थों की लत से ग्रसित व्यक्तियों की नकारात्मक मनःस्थिति में सुधार हेतु योग एक असरदार उपाय है। यह नशे की लत से ग्रसित व्यक्तियों में सकारात्मकता, आशावादी दृष्टिकोण, आत्मविश्वास व चेतना आदि के स्तर में वृद्धि करता है। डिमेंशिया, फाइब्रोमायोजिया, इरिटेबल बॉवेल सिंड्रोम, पोस्ट ट्रॉमेटिक स्ट्रेस डिस ऑर्डर, ऑब्सेसिव कम्पल्सिव डिस ऑर्डर, ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिस ऑर्डर आदि मानसिक विकारों तथा व्याधियों से ग्रसित लोगों के लिए योग एक कारगर उपाय है। योग स्नायु तन्त्र और प्रमस्तिष्कमेरु को दुरस्त करता है, हार्मोन्स की क्षरण क्रिया को सन्तुलित करता है तथा मेलाटोनिन नामक हार्मोन के उत्पादन को बढ़ाता है, जो अच्छी व गहरी निद्रा आने में सहायक होता है।

ध्यान से तनाव व चिन्ता से मुक्ति मिलती है तथा स्मरणशक्ति में वृद्धि होती है। बारह मुद्राओं से युक्त सूर्य नमस्कार से सौर नाडी के जाल तंत्र में समुचित संतुलन बना रहता है तथा शरीर में रक्त संचार का प्रवाह ठीक हो जाता है। वीरभद्रासन, वज्रासन, अंजेनायासन, गरुडासन, नटराजासन, भ्रामरी प्राणायाम, पद्मासन, पश्चिमोत्तानासन, ताडासन तथा नाडीशोधन प्राणायाम आदि मानसिक स्वास्थ्य हेतु लाभकारी योगासन व प्राणायाम हैं।

(iii) भावात्मक स्वास्थ्य -

हम अपने व्यवहार, दृष्टिकोण और कार्यों के माध्यम से जो वातावरण बनाते हैं, उसे भावात्मक वातावरण कहते हैं। यह वातावरण व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। भावात्मक स्वास्थ्य का मतलब है कि हमें अपनी भावनाओं पर नियन्त्रण रखना चाहिए। एक व्यक्ति को भावात्मक रूप से तभी स्वस्थ कहा जा सकता है। जब उसकी भावनाएँ सकारात्मक हों और उन पर उसका पूरा नियन्त्रण हो। योग आन्तरिक ऊर्जा को सक्रिय कर व्यक्ति को भावात्मक रूप से स्वस्थ बनाता है। योग व्यक्ति की स्वानुभूतियों को पहचानने की क्षमता में वृद्धि करता है। यह नकारात्मक भावों को नष्ट कर सकारात्मकता, आशावादी दृष्टिकोण, आत्मविश्वास व चेतना आदि में वृद्धि करता है। क्रोध, भय, दुःख तथा मानसिक तनाव के कारण एड्रेनल ग्लैंड से कॉर्टिसोल के अत्यधिक स्राव से रक्तचाप, हृदयगति तथा रक्त शर्करा के स्तर पर बुरा प्रभाव पड़ता है क्योंकि कॉर्टिसोल का स्राव अधिक होने से मनोभावों को नियंत्रित करने वाले हार्मोन्स से

डोपामाइन के साव पर असर पड़ता है। डोपामाइन तन्त्रिका कोशिकाओं के बीच संदेश भेजने का कार्य करता है तथा यह प्लेजर हार्मोन के रूप में भी जाना जाता है।

सहनशक्ति, स्थिरता व सक्रियता में वृद्धि कर योग क्रोध, शोक, आत्मग्लानि, मोह, ईर्ष्या, रागद्वेष आदि व्यक्तिगत कमजोरियों को समाप्त कर देता है। ऐसे लोगों से युक्त समाज समतापूर्ण प्रगतिशील होता है।

प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित योग तत्त्व व्यक्तियों में आत्मजागरूकता, आत्मानुशासन, सकारात्मक विचार तथा उपयोगी व अच्छी आदतों का निर्माण करता है। योग आन्तरिक शांति व स्थिरता प्रदान करता है। योग व्यक्ति को अधिक दयालु, विचारशील, करुणामय तथा शान्त बनाता है, यह व्यक्ति में सद्भावों को बढ़ाता है जिससे व्यक्ति के व्यक्तिगत सम्बन्ध और अधिक गहरे होते हैं।

(iv) आध्यात्मिक स्वास्थ्य -

आध्यात्मिक स्वास्थ्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के उस हिस्से को कहते हैं। जो जीवन के उद्देश्य और अर्थ को समझने व जानने की कोशिश करता है। जीवन में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। आध्यात्मिक पक्ष व्यक्ति को संतुलित जीवन जीने व सही निर्णय लेने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है। यह स्वयं को समझने व जानने की समझ विकसित करता है। प्रमुख योग उपनिषदों का प्रमुख उद्देश्य भी आत्मनिष्ठ होना अर्थात् स्वस्वरूप को जानना ही है। यह चित्त में निहित सम्पूर्ण शंकाओं, जिज्ञासाओं तथा समस्याओं का एकमात्र समाधान है। योग रूपी मार्ग पर चलकर हम परमानन्द स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकते हैं। योग इह लोक के त्रिविध दुःखों से निवृत्त कर जीवन को आनन्ददायी व अमृतमय बनाता है। मन ही बन्धन व मोक्ष का कारण है। योग साधना से मन को ईश्वरोन्मुखी बनाकर सत्य के दर्शन को प्राप्त किया जा सकता है। योगाभ्यास से जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों से कलुषित मन शुद्ध हो जाता है और आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है। योग साधना में प्रवृत्ति होते ही हमारा चंचल मन व इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी होने लगती हैं। इससे दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है जिससे ब्रह्माण्ड के गूढ़तम रहस्यों का उद्घाटन होता है। प्रमुख योग उपनिषदों की साधना से आत्मदर्शन, आत्मसाक्षात्कार, अतीन्द्रिय बोध, दिव्यदृष्टि, समाधि, मोक्ष, कैवल्य व ब्रह्मसाक्षात्कार की प्राप्ति होती है।

(v) सामाजिक स्वास्थ्य -

सामाजिक रूप से स्वस्थ होने के लिए व्यक्ति को अपने परिवार, समुदाय और समाज में सकारात्मक योगदान देना होता है। किसी भी व्यक्ति के सामाजिक स्वास्थ्य का स्तर उसकी व्यक्तिगत भावनाओं के आधार पर नहीं मापा जाता बल्कि दूसरों की खुशी या समृद्धि पर पड़ने वाले प्रभाव के आधार पर किया जाता है। हर व्यक्ति की कुछ बुनियादी जरूरतें होती हैं। इसमें दूसरों के प्रति लगाव, पहचान, आत्मसम्मान और स्नेह आदि शामिल हैं। सामाजिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में ईमानदारी, दयालुता, सहयोग, न्यायप्रियता, निःस्वार्थता आदि आवश्यक गुण होते हैं जो कि उसके आचरण से अभिव्यक्त होते हैं। यदि व्यक्ति शारीरिक, मानसिक व भावात्मक रूप से स्वस्थ होता है तो वह सामाजिक रूप से भी स्वस्थ होगा।

प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित योगाभ्यास व्यक्ति के सामाजिक उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। योग व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास करते हैं जिससे एक स्वस्थ, सुसंस्कृत व आदर्श समाज की स्थापना होती है क्योंकि एक स्वस्थ व्यक्ति ही स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकता है। साथ ही व्यक्तिगत ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि को दूर कर समाज में एकता व भाईचारे की भावना को विकसित करता है। आधुनिक समाज में मनुष्य धन व भौतिक संसाधनों के माध्यम से विलासितापूर्ण जीवन जी रहा है परिणामस्वरूप प्रतिस्पर्धा व उच्चतर इच्छाओं को पूरा करने के लिए वह अनैतिक मार्ग अपना रहा है साथ ही द्वेष व नकारात्मक सोच बढ़ती जा रही है। जिससे सामाजिक बुराईयों को बढ़ावा मिल रहा है। योगाभ्यास से व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकार दूर होते हैं तथा व्यक्ति उच्च विचारों वाला बनता है। जिसका सीधा प्रभाव समाज पर पड़ता है अर्थात् समाज भी उच्च आदर्शों वाला बनता है।

योग का कर्म, भक्ति व ज्ञान मार्ग का समन्वय जीवन को श्रेष्ठ बनाता है। यह समाज को सृजनात्मकता, सकारात्मकता व भक्तिमय दिशा प्रदान करता है। जिससे व्यक्ति अपने कार्यों में कुशलता, विचारों में उच्चता व विवेक प्राप्त करता है। निःस्वार्थ भाव से कर्म की प्रेरणा, नैतिक मूल्यों की प्रेरणा, सत्य तथा अहिंसा की प्रेरणा योग के माध्यम से प्राप्त होती है। जिससे एक आदर्श, कर्मवादी व उदात्त समाज का निर्माण होता है।

इस प्रकार एक सुसभ्य, संस्कारित व आदर्शयुक्त समाज के निर्माण में प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित योग साधना की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

कोरोना महामारी के दौरान भारत की प्राचीन व समृद्ध परम्परा के रूप में योग बचाव का एक महत्त्वपूर्ण साधन बनकर उभरा। इस महामारी में योग का महत्त्व व प्रभाव और अधिक बढ़ा क्योंकि कोरोना ने उन लोगों को जल्दी संक्रमित किया जिनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता बहुत कमजोर थी। इस संक्रमण से बचाव के लिए मजबूत प्रतिरक्षा प्रणाली का होना बहुत जरूरी है। ऐसे कई योगाभ्यास हैं जो रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत करते हैं। जैसे - कपालभाति, अनुलोम-विलोम, भ्रामरी, भस्त्रिका आदि प्राणायाम तथा नौकासन, समकोणासन, मार्जरी, आसन, हस्त उत्तनासन आदि आसन। कोरोना महामारी के कारण होने वाली मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी चिन्ता, भय, सामाजिक अलगाव, अवसाद आदि को कम करने के लिए योग लोगों का जीवन सहारा बना। आसन, मुद्रा, प्राणायाम और ध्यान से लोगों के मनोवैज्ञानिक-सामाजिक पहलुओं पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा साथ ही लोगों को जल्दी रिकवर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रकार कोरोना काल में योग सिर्फ व्यायाम ही नहीं बल्कि लोगों की जीवन शैली बना। इससे शारीरिक, मानसिक, भावात्मक स्वास्थ्य को संतुलित रखने में सहायता मिली और लोगों को सकारात्मक नजरिया मिला।

6.11.2 नैतिक व चारित्रिक क्षेत्र में -

योग नैतिक मूल्य, आदर्श व उच्च चरित्र के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। योग द्वारा इन्द्रियों व विचारों पर नियन्त्रण हो जाता है तथा मन एकाग्र हो जाता है, जिससे व्यक्ति में नैतिकता, सुविचार व अच्छी आदतें विकसित होती हैं साथ ही करुणा, दया, परोपकार, त्याग, व्यवस्थित जीवन, सद्व्यवहार, उदात्त चिन्तन इत्यादि गुणों का समुचित विकास होता है। यम व नियम हमारे व्यक्तिगत व सामाजिक आचरण को शुद्ध करके नैतिक व चारित्रिक गुणों का विकास करते हैं। प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित यम-नियम के पालन से सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, तप, स्वाध्याय, संतोष इत्यादि दिव्य गुणों का जीवन में समावेश होने लगता है, जिससे संकीर्ण चिन्तन, वासना, कुविचार, लोभ, मोह, ईर्ष्या व प्रमाद आदि से मुक्त हो जाते हैं। इन योग उपनिषदों में उल्लेखित योग साधना शरीर व मन की शुद्धि करती है तथा विवेक जाग्रत करती है। जिससे उचित-अनुचित का ज्ञान होने लगता है। तपस्या, स्वाध्याय व

ईश्वरप्रणिधान ये क्रियायोग के तीन पक्ष हैं। जिससे व्यक्ति में उत्तम विचार, कार्य कुशलता व उत्तम आचरण का निर्माण होता है।

इस प्रकार इन योग उपनिषदों में व्याख्यायित योग साधना व्यक्ति के आदर्श व उत्तम चरित्र का निर्माण कर एक सुव्यवस्थित व अनुशासित जीवन प्रदान करती है।

6.11.3 शैक्षिक क्षेत्र में -

आधुनिक खान-पान व दिनचर्या ने शैक्षिक क्षेत्र में तनाव व अवसाद उत्पन्न कर दिया है। छात्र व शिक्षक स्थिरता, एकाग्रता व लक्ष्य निर्धारण कर पाने में कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं साथ ही शिक्षा से नैतिक मूल्यों का हास हो रहा है। योग शिक्षा की वास्तविक समस्याओं व चुनौतियों को जानने व उनका गंभीरता से विश्लेषण कर निदान करने में सहायक है।

योग न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक, आध्यात्मिक व भावात्मक रूप से भी मजबूत बनाता है। ध्यान व स्थिरता से छात्रों का मानसिक तनाव कम हो जाता है तथा उनकी एकाग्रता व स्मरणशक्ति बढ़ती है। यम-नियम से आलस्य, अकर्मण्यता, असन्तोष आदि समस्याओं का समाधान होता है। योग मूल्य परक शिक्षा की अवधारणा को विकसित करता है। योग के महत्त्व व उपयोगिता को देखते हुए आज देश-विदेश के सभी शैक्षिक संस्थानों में आधुनिक विषयों के साथ-साथ योग की शिक्षा दी जा रही है। वैश्विक स्तर पर आज गुणवत्तापूर्ण शारीरिक शिक्षा देने हेतु शारीरिक शिक्षा के साथ योग शिक्षा भी पाठ्यक्रम में शामिल की जा रही है ताकि छात्रों का सर्वांगीण विकास किया जा सके।

योग के क्षेत्र में अनेक शोध कार्य किए जा रहे हैं साथ ही बिहार योग विद्यालय, विवेकानन्द योग विश्वविद्यालय, निर्वाण विश्वविद्यालय, देव संस्कृति विश्वविद्यालय आदि अनेक योग विश्वविद्यालय स्थापित किए जा चुके हैं और किए जा रहे हैं। वर्तमान में मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान आयुष मंत्रालय भारत सरकार द्वारा योग में विभिन्न कोर्सेज करवाये जा रहे हैं जैसे - बी.एससी. व एम.एससी, मेडीकोस और पैरामेडिकोस के लिए योग चिकित्सा में स्नातकोत्तर डिप्लोमा (PGDYTMP), स्नातकों के लिए योगविज्ञान में डिप्लोमा (D.Y.SC), षट्कर्म प्रथाओं में बुनियादी पाठ्यक्रम (BCSP), स्वास्थ्य प्रशिक्षक के लिए योग में प्रमाण पत्र पाठ्यक्रम (CCYWI), विशेष रुचि समूह के लिए योग विज्ञान में प्रमाण पत्र पाठ्यक्रम, प्रोटोकॉल प्रशिक्षक के लिए योग में प्रमाण पत्र पाठ्यक्रम (CCYPI) कल्याण के लिए योग विज्ञान में आधार

पाठ्यक्रम (FCYSCW), कल्याण के लिए योग विज्ञान में सप्ताहांत आधार पाठ्यक्रम (FCYSCWEEKEND) आदि।

भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 में योग को विवेचित करते हुए भाग-1, धारा 4.27 में योग विषय को विद्यालयीय पाठ्यक्रम एवं शिक्षण शास्त्र के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है। भाग- 2, धारा 12.7 में देश में अन्तर्राष्ट्रियकरण के लक्ष्य की प्राप्ति का उल्लेख करते हुए योग विषय को शामिल किया गया है तथा भाग-3, धारा 20.5 में व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत स्वास्थ्य शिक्षा में योग को शामिल किया गया है। साथ ही धारा 22.1 में योग को सांस्कृतिक सम्पदा बताते हुए इसके संरक्षण, संवर्धन व प्रचार-प्रसार को देश की सर्वोच्च प्राथमिकता बताया गया है।

6.11.4 आर्थिक क्षेत्र में -

योग और अर्थ का सीधा सम्बन्ध है। एक स्वस्थ व्यक्ति ही अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बना सकता है। वह आय के विविध स्रोत विकसित कर सकता है तथा मेहनत करके आय को और अधिक बढ़ा सकता है। आलस्य व अकर्मण्यता को दूर कर कर्मयोग व्यक्ति को निरन्तर कर्म करने की प्रेरणा देता है। कर्मयोगी अपने व्यवसाय का विस्तार कर अपने कल-कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों की कार्य कुशलता व दक्षता को बढ़ावा देता है। शारीरिक रुग्णता व्यक्ति की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करती है। किसी प्रकार का रोग न होने की वजह से स्वास्थ्य पर होने वाला खर्चा भी कम हो जाता है। योग शारीरिक व मानसिक स्वस्थता प्रदान कर जीवन शक्ति को मजबूत करता है, जिससे आर्थिक समृद्धि आती है।

योग थैरेपी की भारी माँग के कारण वस्त्र, मैट, उपकरण, योग सामग्री तथा कई सहायक उपकरण जो प्रदर्शन को बेहतर व गुणवत्तापूर्ण बनाए रखने में मदद करते हैं, उनकी आज भारी माँग है। विगत 5-6 वर्षों में योग एक उद्योग के रूप में उभर कर आया है।

योग की बढ़ती लोकप्रियता व उपयोगिता के कारण आज योग प्रशिक्षकों व योग थैरेपिस्ट्स की माँग बढ़ रही है। योग आजीविका का साधन बनकर लोगों को रोजगार उपलब्ध करा रहा है। आज कई योग गुरु, योग शिक्षक व योग प्रशिक्षक ऑनलाईन व ऑफलाईन मोड़ पर शुल्क लेकर देश-विदेश के लोगों को योग का प्रशिक्षण दे रहे हैं।

आज जगह-जगह योग केन्द्रों में योग प्रशिक्षकों को अच्छे वेतन पर नियुक्तियाँ दी जा रही हैं। विदेश से सैकड़ों पर्यटक योग सीखने हेतु भारत आ रहे हैं, जिससे देश को आर्थिक लाभ प्राप्त हो रहा है। योग एवं यौगिक क्रियाओं के माध्यम से उपचार को बढ़ावा देने के लिए सन् 2019 से आयुषमान भारत योजना के तहत आयुष मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय आयुष मिशन के अन्तर्गत प्रत्येक पंचायत समिति पर स्थित आयुष हैल्थ एण्ड वेलनेस केन्द्र पर योग प्रशिक्षक व सहायकों को नियुक्तियाँ दी जा रही हैं, जो कि योग क्षेत्र में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए रोजगार की पहल है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज रोजगार व अर्थव्यवस्था में प्रमुख योग उपनिषदों में व्याख्यायित योग साधना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही है।

6.11.5 खेल-कूद के क्षेत्र में -

आज योगासन एक प्रतिस्पर्धी खेल के रूप में उभकर सामने आया है। सन् 2020 में युवा एवं खेल मंत्रालय व आयुष मंत्रालय ने औपचारिक रूप से योगासन को एक प्रतिस्पर्धी खेल के रूप में मान्यता दी है परिणामस्वरूप राष्ट्रीय योगासन खेल महासंघ द्वारा देशभर में राज्य, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर योग आधारित विभिन्न प्रतियोगिताएँ आयोजित की जा रही हैं। साथ ही खेलो इण्डिया, स्कूल नेशनल गेम्स, अखिल भारतीय अन्तर विश्वविद्यालय खेल आदि अनेक सरकारी संगठनों द्वारा योगासन प्रतियोगिताएँ आयोजित कराई जा रही हैं। हाल ही में उत्तराखण्ड में चल रहे राष्ट्रीय खेल 2025 में योगासन को पदक खेल का दर्जा दिया गया है। 2036 में होने वाले ऑलम्पिक खेलों की मेजबानी से पूर्व भारत योगासन को ऑलम्पिक खेल के रूप में मान्यता दिलाने की दिशा में भी कार्य कर रहा है। साथ ही आज दुनिया भर के कई योगसंघ साथ मिलकर योग खेलों को ऑलम्पिक खेल के रूप में दर्जा दिलाने के लिए प्रयासरत है। यूएसए योग फेडरेशन ने योग को एक आधिकारिक खेल के रूप में पंजीकृत किया है। सन् 2012 में यूनाइटेड स्टेट्स योगासन चैंपियनशिप प्रतियोगिता आयोजित करवाई गई। 16वीं विश्व योगासन खेल चैंपियनशिप 2025 मलेशिया में कराई जा रही है। इसी दिशा में भारत सरकार भी प्राचीन संस्कृति व विरासत के संरक्षण व संवर्धन हेतु योग को एक प्रतिस्पर्धी खेल के रूप में बढ़ावा देने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय ऑलम्पिक समिति से प्रयास किया जा रहा है कि 2026 में जापान में होने वाले एशियाई

खेलों में तथा 2030 दोहा एशियाड में योग को एक प्रतिस्पर्धी खेल के रूप में शामिल किया जाए। इस प्रकार आने वाले समय में योगाभ्यासियों के लिए योग के क्षेत्र में कई स्वर्णिम अवसर हैं जिनसे उन्हें पहचान व रोजगार के अवसर मिलेंगे।

अन्य खेलों के क्षेत्र में भी प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित योगाभ्यासों का विशेष महत्त्व है। इन योगाभ्यासों द्वारा विभिन्न खेलों के खिलाड़ी अपने कौशल, योग्यता व क्षमताओं को विकसित कर सकते हैं। खेल में खिलाड़ी को उच्च स्तरीय एकाग्रता व ध्यान की आवश्यकता होती है। योग मन को शान्त, नियन्त्रित व एकाग्र करता है, जो खिलाड़ी को खेल में अच्छा प्रदर्शन करने में मदद करता है साथ ही यह खिलाड़ी में आत्मानुशासन, आत्मविश्वास व आत्मनियन्त्रण को मजबूत करता है।

योग खिलाड़ी की मांसपेशियों व जोड़ों में तनाव कम कर उनमें लचीलापन व गति प्रदान कर स्थिरता प्रदान करता है। योग से खेल कौशल व फिटनेस में सुधार होता है। प्राणायाम चिन्ता व तनाव को दूर कर खिलाड़ी की एकाग्रता में सुधार करता है। योग की उपयोगिता के कारण ही आज क्रिकेट, शतरंज, निशानेबाजी, कुश्ती, एथलेटिक्स आदि खेलों के खिलाड़ी अपनी एकाग्रता में सुधार, शरीर में लचीलापन बढ़ाने तथा शरीर की क्षमता में वृद्धि करने के लिए योग को अपना रहे हैं, जिससे वे अपने खेल को और अधिक कुशल व प्रभावी बना रहे हैं।

6.11.6 एकता और सद्भाव के क्षेत्र में -

आज पूरी दुनिया में योग एक नई एकीकृत ताकत के रूप में उभरा है। आम हो या खास, युवा हो या वृद्ध, महिला हो या बच्चा, आस्तिक हो या नास्तिक योग आज हर उम्र के लोगों के शरीर, ऊर्जा, मन और आत्मा की पहचान बन चुका है। लिंग, धर्म, सम्प्रदाय, जाति, अमीरी-गरीबी और देशों को अलग करने वाली सीमा रेखाओं से परे पूरी दुनिया की भाषा बन चुका है। जैसे योग शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा को जोड़ता है वैसे ही आज योग ने सम्पूर्ण विश्व को जोड़ दिया है।

आज हर कोई चाहता है कि तनाव व बीमारी मुक्त आनन्दमय जीवन हो और इसको किसी एक उपाय से पाया जा सकता है तो वह योग है। योग गुरु के. पट्टाभि महोदय के अनुसार “योग वास्तविक आत्मज्ञान है, एक आन्तरिक सफाई है। यह एक ऐसा विज्ञान है, जो न सिर्फ सेहत के लिए फायदेमन्द है बल्कि समाज को एक सूत्र में

बाँधने में भी सहायक है।” जैसे योग स्वयं के विभिन्न पहलुओं को जोड़ता है वैसे ही यह हमारी दुनिया के विपरीत पहलुओं को एक साथ लाता है। योगाभ्यास अपने आप में विरोधाभासों का संगम है। शक्ति और लचीलापन, प्रयास और समर्पण, गति और स्थिरता। यह जीवन के उतार-चढ़ाव को प्रतिबिम्बित करता है, जो हमें संतुलन, एकता और सद्भाव की शक्ति सिखाता है।

योग व्यक्तिगत कल्पना के दायरे से आगे बढ़कर वैश्विक सद्भाव, भाईचारे व एकता को बढ़ावा देता है। यह एकता, शान्ति और सामूहिक कल्याण का प्रतीक है। यह हमें एकता, समावेशिता, सामंजस्यपूर्ण और समृद्ध भविष्य की दिशा में काम करने के लिए प्रेरित करता है। यह मन और शरीर, विचार और क्रिया, मनुष्य और प्रकृति के सामंजस्यपूर्ण एकीकरण का प्रतिनिधित्व करता है।

कल्याण के लिए इसके समग्र दृष्टिकोण ने दुनिया भर में मान्यता और प्रशंसा प्राप्त की है। योग एकता और सद्भाव का उत्प्रेरक है, सीमाओं को पार करता है, संस्कृतियों को मिलाता है। विभिन्न समय, क्षेत्र और भौगोलिक बाधाओं व सीमाओं से परे सामूहिक भागीदारी योग की व्यापक पहुँच को दर्शाती है। 21 जून 2020 को मनाए गए वर्चुअल अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के अवसर पर माननीय प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने अपने भाषण में कहा कि योग स्वयं के साथ विश्व और प्रकृति के साथ एकत्व खोजने का भाव है। हमें जोड़े, साथ लाए और दूरियों को खत्म करें वही तो योग है। योग न सिर्फ विश्वबन्धुत्व का संदेश देता है, बल्कि दूरियों को खत्म कर सबको साथ लाने और जोड़ने का अचूक जरिया है।

अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस 2023 की थीम ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की रही, जो एक पृथ्वी, एक परिवार व एक भविष्य के लिए योग का प्रतिनिधित्व करती है। यह दुनिया को एकजुट करने और सद्भाव पैदा करने की पहल है। इस प्रकार योग दिवस योग की एकजुट करने की शक्ति का जीवन्त प्रमाण है। यह एक ऐसा दिन है जब वैश्विक नागरिक अपने मतभेदों के बावजूद कल्याण, शान्ति और एकता के लिए साझा प्रतिबद्धता का उत्सव मनाने के लिए एक मंच पर आते हैं। आसन व प्राणायाम की प्रत्येक श्वास, ध्यान का प्रत्येक क्षण एकता और शक्ति के साझा कम्पन को बढ़ाता है। इस दिवस पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व गतिविधियों का आयोजन किया

जाता है, जो हमारी आपसी समझ को गहरा करने, ज्ञान और अनुभव को साझा करने तथा वैश्विक समुदाय की भावना को बढ़ावा देने के अवसर प्रदान करता है। आज योग शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास के साथ-साथ वैश्विकी स्तर पर एक एकीकृत शक्ति बन गया है। इसके व्यापक अभ्यास ने वैश्विक एकजुटता और आपसी सद्भाव की भावना को बढ़ा दिया है, जो विभिन्न संस्कृतियों और देशों के व्यक्तियों में समग्र स्वास्थ्य और कल्याण में योगदान देती है। योग के व्यापक प्रचार-प्रसार से आज योग दिवस एक वैश्विक उत्सव बन गया है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के एक अनमोल उपहार औपनिषदिक योग ने खुद को वैश्विक समुदाय के ताने-बाने में सहजता से पिरोया है। कल्याण, मनन और सद्भाव के इसके मूल सिद्धान्त ने अपनी भौगोलिक उत्पत्ति को पार कर लिया है तथा दुनिया भर के व्यक्तियों के साथ तालमेल बिठाकर एक साझा वैश्विक चेतना का पोषण कर रहा है।

6.12 विभिन्न आयु वर्ग के व्यक्तियों के लिए प्रमुख योग उपनिषदों की उपादेयता

6.12.1 बच्चों के लिए -

बच्चों में चंचलता का कारण उनकी प्राण ऊर्जा है अतः प्राण ऊर्जा को सही दिशा दी जानी चाहिए। बच्चों को स्वरुचि अनुसार कार्य दिया जाना चाहिए ताकि उनके जिद्दी स्वभाव व विध्वंसक प्रवृत्ति को बदला जा सके। बच्चों में याद करने व भूलने की सामान्य समस्या होती है साथ ही दबाव व प्रतिस्पर्धा का वातावरण इनमें असुरक्षा व भय बनाता है। औपनिषदिक योग बच्चों की इन सामान्य समस्याओं को दूर करने का समाधान प्रस्तुत करता है। खेल-खेल में योगाभ्यास बच्चों में बहुत से गुणों का समावेश कर सकता है। विकास व वृद्धि को सही दिशा प्रदान करता है तथा व्यवहार व व्यक्तित्व में सुधार करता है। इस अवस्था में बच्चों को अधिक शारीरिक गतिविधियों की आवश्यकता होती है ताकि शारीरिक विकास बेहतर हो सके। योगाभ्यास लचीलापन बढ़ाने, मांसपेशियों को मजबूत करने, अनुशासन व सृजनात्मकता बढ़ाने तथा संतुलन को सुधारने में मदद करता है। बचपन में स्थापित स्वस्थ आदतें बड़े होने तक जीवन शैली में बने रहने की अधिक संभावना रहती है अतः कम उम्र में योगाभ्यास से बच्चों में

आजीवन स्वस्थ आदतें विकसित करने में मदद मिलती है। योग आत्मसम्मान और शरीर के प्रति जागरूकता बढ़ाने में सहायक है तथा बच्चों में ध्यान, रिश्ते तथा श्रवण, भाषण, पठन व लेखन इन चतुर्विध कौशलों को सुधारने में सहायक है।

डिस्ग्राफिया, डिस्कैलकुलिया, डिस्लेक्सिया, ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर आदि विकारों को तथा चिन्ता व नकारात्मकता को कम करने में सहायक है। योग के प्रतिस्पर्धात्मक न होने की वजह से बच्चों में सहयोग व करुणा को बढ़ावा मिलता है। लेकिन योगाभ्यास में यह ध्यान देना आवश्यक है कि बच्चों को सरल व कम समय के लिए योगाभ्यास करवाया जाना चाहिए। लम्बी अवधि के लिए व सांस रोकने वाले अभ्यास नहीं करवाए जाने चाहिए। बच्चों को खेल-खेल में विरेचन, शिशुगति अभ्यास, अट्टहास आदि योगाभ्यास करवाए जाने चाहिए। ताडासन, हस्तोत्तानासन, तिर्यक ताडासन व पाद हस्तासन ये आसन बच्चों की ऊँचाई बढ़ाने में सहायक हैं। वृक्षासन व ताड़ासन एकाग्रता बढ़ाते हैं। मण्डूकासन, आगे झुकने के आसन व ध्यान स्मरण शक्ति में वृद्धि करते हैं। भुजंगासन, पर्वतासन आदि प्रतिरक्षा को बढ़ाते हैं। भुजंगासन, उष्ट्रासन व ऊँ का जप वाक्शक्ति का विकास करते हैं साथ ही कोणासन, गोमुखासन, तथा कागासन शारीरिक चपलता को दूर कर स्थिरता लचीलापन व मजबूती प्रदान करते हैं।

इस प्रकार प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित योगाभ्यास बच्चों में सकारात्मक विचार पैदा करने और अच्छे-बुरे के बीच अन्तर करने में मदद करते हैं। यह उनमें अच्छी आदतें विकसित कर उन्हें खुश व स्वस्थ रखते हैं।

साथ ही इन उपनिषदों में वर्णित यौगिक आहार बच्चों की वृद्धि एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सात्त्विक आहार बच्चों में बीमारी रोकने, ऊर्जा बढ़ाने तथा समग्र स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में उपयोगी है। यह एक प्राकृतिक संतुलित आहार है, जिनमें कैल्शियम, आयरन आदि पोषक तत्वों की अधिकता होती है। हरी पत्तेदार सब्जियाँ, मोटे अनाज, मिश्रित अनाज का आटा, प्राकृतिक मीठा, अंकुरित अनाज, सूखे मेवे व ताजे फल आदि का सेवन किया जाना चाहिए।

बच्चों के लिए अनुशंसित योग प्रोटोकॉल (5-6 साल)⁸⁹

क्र.सं.	यौगिक अभ्यास	चरण	अवधि
1	प्रार्थना (ओ३म् उच्चारण)		1 मिनट
2	यौगिक सूक्ष्म व्यायाम		10 मिनट
	ग्रीवा चालन - दाईं और बाईं ओर घुमाना		
	हाथ ऊपर और नीचे	3 चक्र	
	हाथ घुमाना (गेंद फेंकना)	3 चक्र	
	कंधा घुमाना	3 चक्र	
	कलाई घुमाना	3 चक्र	
	पीठ चालन (आगे और पीछे)	3 चक्र	
	पीठ को घुमाना (गेंद को दूसरे को देने के समान)	3 चक्र	
	पीछे आगे झुकना (सी-साँ के समान)	3 चक्र	
	तितली के समान संचलन	3 चक्र	
	टखने झुकाने का अभ्यास (अंदर और बाहर झुकाना), टखने घुमाना	3 चक्र	
3	योगासन (हर एक में से दो-तीन आसन)		
	खड़े होकर किए जाने वाले अभ्यास		
	ताडासन (ताड़ के पेड़ के समान)		
	वृक्षासन (पेड़ के समान)		
	अश्वचालनासन (घोड़ा चलाने के समान)		
	पर्वतासन (पर्वत के समान)		
	कोणासन (त्रिकोण के समान)		

	बैठकर किए जाने वाले अभ्यास		
	मार्जरी आसन		
	उष्ट्रासन (ऊँट के समान)		
	शशांकासन (खरगोश के समान)		
	मण्डूकासन (मेंढक के समान)		
	वक्रासन (घुमावदार मुद्रा)		
	गोमुखासन (गाय के मुख के समान)		
	कागासन (कौवे के समान)		
	सिंहासन (दहाड़ते हुए शेर के समान)		
	पेट के बल लेटकर किए जाने वाले आसन		
	मकरासन (मगरमच्छ के समान)		
	सरल भुजंगासन (साँप के समान)		
	धनुरासन (धनुष के समान)		
	बालासन (बच्चे के समान)		
	लेटकर किए जाने वाले अभ्यास		
	सेतु बंधासन (पुल के समान आसन)		
	सरल मत्स्यासन (मछली के समान आसन)		
	शवासन (स्टार फिश के समान आसन)		
4	प्राणायाम		4 मिनट
	गहन श्वास	5 चक्र	
	भ्रामरी	5 चक्र	
5	क्रीड़ा अभ्यास		5 मिनट
	वर्षा के समान ताली		

	फूल के समान ताली		
	विशेष ताली		
	हंसने का अभ्यास		
	फ्रीज गतिविधि (क्रीड़ा)		
	कुल समय	30 मिनट	

तालिका 6.1 बच्चों के लिए अनुशंसित योग प्रोटोकॉल

6.12.2 किशोरों के लिए -

किशोरावस्था जीवन का स्वर्णिम काल माना जाता है। यह बचपन और युवावस्था के बीच का संक्रमण काल होता है। यह संघर्ष, तनाव व विरोध की अवस्था होती है। इस अवस्था में किशोर क्रान्तिकारी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व भावनात्मक परिवर्तनों से गुजरता है। इस दौरान शरीर में तीव्र वृद्धि होती है, हार्मोन बदलाव होते हैं और मानसिक परिपक्वता विकसित होती है इसलिए वह अपने भीतर सामंजस्य बनाए रखने में असमर्थ होता है। वर्तमान आहार व दिनचर्या ने किशोर को नकारात्मक ऊर्जा से ग्रसित कर दिया है। वह कुसमायोजन, कुण्ठा, तनाव व दबाव में जी रहा है। यही कारण है कि हम किशोरों द्वारा आत्महत्या, सामाजिक निंदा से घर से भाग जाना, समाज द्वारा स्वीकार न किए जाने वाले कार्य करना जैसी घटनाएँ आए दिन देख रहे हैं। योग उपनिषदों में वर्णित योग तत्त्व किशोर को एक संतुलित व समायोजित जीवन शैली प्रदान करता है।

योग न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक, सामाजिक व भावनात्मक स्वास्थ्य को बेहतर बनाकर उसके व्यक्तित्व को स्थिरता व प्रभावशाली बनाता है। उसमें आ रहे परिवर्तनों को संतुलित करने में उपयोगी है साथ ही गहरी श्वास लेने, विश्राम तकनीकों के माध्यम से तथा ध्यान द्वारा तनाव को दूर कर शान्ति व सन्तुलन की भावना बढ़ाता है। योगाभ्यास किशोरों को एकाग्रता व ध्यान क्षमता को विकसित करने में मदद करता है। शारीरिक लचीलापन और रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करता है। भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को अधिक प्रभावी ढंग से प्रबन्धित करने में सक्षम बनाता है साथ ही

आत्मसम्मान व आत्मविश्वास में वृद्धि करता है। किशोरों की अलगाव या अकेलेपन की भावनाओं को दूर कर उसमें समुदाय या सामाजिक सम्बन्ध की भावना बढ़ाता है और जीवन के लिए स्वस्थ आदतें विकसित करता है।

किशोरों के लिए अनुशंसित योगाभ्यास -

आसन - पश्चिमोत्तानासन, हलासन, सर्वांगासन, भुजंगासन, उष्ट्रासन, ताडासन, धनुरासन, कुक्कुटासन, नटराजासन, शवासन, सिद्धासन, पद्मासन।

प्राणायाम - कपालभाति, नाडीशोधन, शीतली, भ्रामरी, भस्त्रिका।

क्रियाएँ - त्राटक, नेति।

ध्यान - गायत्री मंत्र जप, योगनिद्रा।

6.12.3 वृद्धों के लिए -

वृद्धावस्था का तात्पर्य जीवन प्रक्रिया के दौरान होने वाले संचयी, प्रगतिशील और अपक्षयी परिवर्तनों से है (राममूर्ति, 1995)। इसका मतलब है कि उम्र बढ़ने की प्राकृतिक प्रक्रिया विशिष्ट कार्यात्मक क्षमताओं में गिरावट से जुड़ी है। यह एक सार्वभौमिक घटना है जिसमें शरीर की कोशिकाओं का धीरे-धीरे ह्रास होने लगता है। रोग प्रतिरोधक क्षमता, कोशिकाओं के निर्माण की क्षमता व कार्यक्षमता में कमी होने लगती है, साथ ही मानसिक स्वास्थ्य भी कमजोर होने लगता है। योग वृद्धों के सोचने, समझने और समभावी संतोषी बनाने में सहायक है, साथ ही कमजोर हो रहे उनके स्नायु तन्त्र व जोड़ों को सबलता प्रदान करता है। योगाभ्यास संतुलन, स्थिरता, जोड़ों में दर्द, लचीलापन व गतिशीलता में सुधार करता है। ऑस्टियोपोरोसिस से बचाता है साथ ही तनाव, चिन्ता व अवसाद को दूर करता है।

वृद्धों के लिए अनुशंसित योगाभ्यास -

आसन - ताडासन, पश्चिमोत्तानासन, शवासन, पवनमुक्तासन, वक्रासन, वज्रासन, मार्जरी आसन, बालासन, शशांकासन।

प्राणायाम - नाडीशोधन, उज्जायी, भ्रामरी।

क्रियाएँ - जलनेति, कपालभाति, वमन, कुर्सी मुद्रा, संधि संचालन, भ्रमण आदि।

ध्यान - योगनिद्रा, गायत्री मंत्र जाप।

6.12.4 गर्भवती महिलाओं के लिए -

गर्भावस्था एक महिला के जीवन में बड़े बदलाव लाती है। गर्भाधान के क्षण से ही माँ का शरीर अन्दर पल रहे नए जीवन को समायोजित करने के लिए कई तरह से बदलाव शुरू कर देता है। जैसे-जैसे भ्रूण बढ़ता और विकसित होता जाता है, वैसे-वैसे माँ को शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूप से खुद को समायोजित करने की आवश्यकता होती है। विभिन्न शारीरिक परिवर्तनों के कारण, गर्भावस्था से सम्बन्धित समस्याएँ महिलाओं के लिए तनावपूर्ण हो जाती हैं। जिससे भ्रूण के विकास व उसके समग्र स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है इसलिए गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। सामाजिक व मनोवैज्ञानिक सहयोग के साथ उसकी दिनचर्या व आहार पर भी विशेषरूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। वर्तमान में योग को मातृत्व समस्याओं के प्रबन्धन के लिए एक प्रभावी चिकित्सा प्रणाली के रूप में माना जाता है।

गर्भावस्था के दौरान शरीर में कई तरह के बदलाव होते हैं, जिससे मानसिक और शारीरिक स्तर पर तनाव होता है। योग गर्भावस्था के दौरान मन और शरीर को स्वस्थ बनाए रखने में मदद करता है। यह पेल्विक फ्लोर की मांसपेशियों की ताकत, लचीलापन व स्थिरता बढ़ाने के लिए आवश्यक है। यह श्वास लेने के उचित प्रबंधन और कम कष्टदायक प्रसव में भी मदद करता है। तनाव के स्तर को कम करता है व नींद की गुणवत्ता में सुधार करता है। कार्पल टनल सिंड्रोम को कम करने में सहायक है। इंट्रायूट्रिन विकास प्रतिबन्ध से सम्बन्धित समस्या को कम करता है। यम-नियम का आचरण शिशु के बौद्धिक विकास में सहयोग प्रदान करता है इसलिए गर्भवती महिला को सात्त्विक विचार व संयमित दिनचर्या का पालन करना चाहिए। योगाभ्यास के साथ-साथ आहार भी बहुत पौष्टिक, संतुलित और सात्त्विक होना चाहिए। गर्भावस्था के दौरान स्थूल व सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता बढ़ जाती है और यदि गर्भावस्था के दौरान यौगिक आहार लिया जाए तो माँ व शिशु को स्वास्थ्य जोखिमों से बचने में मदद मिलती है। सात्त्विक यौगिक आहार शिशु को जीवन में आगे चलकर बीमारियों से बचाता है इसलिए योगाभ्यास के साथ-साथ गर्भवती के आहार पर ध्यान दिया जाना चाहिए। प्रोसेस्ड फूड खाने से तामसिक गुण व तामसिक रोग बढ़ते हैं इसलिए प्राकृतिक व मोटे अनाज युक्त सात्त्विक आहार को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। यौगिक आहार बीमारियों

को रोकने, ऊर्जा बढ़ाने तथा समग्र स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में सहायक है अतः पत्तेदार सब्जियाँ, अंकुरित अनाज, दलियाँ, मल्टीग्रेन, फल, सूखे मेव, दूध आदि को आहार में शामिल किया जाना चाहिए।

इस प्रकार गर्भावस्था और प्रसव के दौरान प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित योगाभ्यास और आहार महत्त्वपूर्ण है। यह तन्त्रिकापेशी समन्वय, नींद, जीवन की गुणवत्ता में सुधार करता है। तनाव व चिन्ता को कम करता है तथा प्रसव के लिए आवश्यक मांस पेशियों की ताकत, लचीलापन व सहनशक्ति को बढ़ाता है।

गर्भवती महिलाओं के लिए अनुशंसित प्रोटोकॉल⁹⁰

गर्भवती महिलाओं के लिए योग (पहला त्रैमासिक)

क्र.सं.	यौगिक अभ्यास	चरण	अवधि
1	प्रार्थना		1 मिनट
2	यौगिक सूक्ष्म व्यायाम (सूक्ष्म संचालन क्रियाएँ)		8 मिनट
	गर्दन चालन:		
	आगे और पीछे झुकाना	3 बार	
	दाएँ और बाएँ झुकाना	3 बार	
	दाएँ और बाएँ घुमाना	3 बार	
	गर्दन रोटेशन (घड़ी की सूई की दिशा में और घड़ी की सूई की दिशा के विपरीत)	3 बार	
	कंधे की गति		
	कंधे की स्ट्रेचिंग	3 बार	
	कंधे को घुमाना (आगे और पीछे)	3 बार	
	घुटने का संचलन	5 बार	
	टखने का संचलन		

	टखने को घुमाना (घड़ी की सूई की दिशा में और घड़ी की सूई की दिशा के विपरीत)	5 बार	
3	योगासन		10 मिनट
	खड़े होकर किए जाने वाले आसन		
	ताडासन		
	वृक्षासन		
	बैठकर किए जाने वाले अभ्यास		
	दण्डासन		
	सुखासन		
	पीठ के बल लेटकर किए जाने वाले अभ्यास		
	शवासन		
4	श्वास सम्बन्धी अभ्यास	हर एक को 5 बार किया जाए	20 मिनट
	विभागीय श्वसन - उदर श्वसन वक्षस्थलीय श्वसन और हसली श्वसन		
5	प्राणायाम		
	नाड़ी शोधन प्राणायाम	5 बार	
	भ्रामरी प्राणायाम	5 बार	
	शीतली प्राणायाम	5 बार	
6	ध्यान		5 मिनट
7	शान्तिपाठ		1 मिनट
	कुल समय		45 मिनट

गर्भवती महिलाओं के लिए योग (दूसरा त्रैमासिक)⁹¹

क्र.सं.	यौगिक अभ्यास	चरण	अवधि
1	प्रार्थना		1 मिनट
2	यौगिक सूक्ष्म व्यायाम (सूक्ष्म संचालन क्रियाएँ)		5 मिनट
	गर्दन चालन:		
	आगे और पीछे झुकाना	3 बार	
	दाएँ और बाएँ झुकाना	3 बार	
	दाएँ और बाएँ घुमाना	3 बार	
	गर्दन रोटेशन (घड़ी की सूई की दिशा में और घड़ी की सूई की दिशा के विपरीत)	3 बार	
	कंधे की गति		
	कंधे की स्ट्रेचिंग	3 बार	
	कंधे को घुमाना (आगे और पीछे)	3 बार	
3	योगासन		18 मिनट
	खड़े होकर किए जाने वाले आसन		
	ताडासन		
	वृक्षासन		
	त्रिकोणासन		
	कटिचक्रासन		
	वीरभद्रासन		
	प्रसृत पादोत्तानासन		
	बैठकर किए जाने वाले अभ्यास		
	दण्डासन		
	सुखासन		

	बद्धकोणासन		
	शशांकासन		
	मार्जरी आसन		
	मलासन		
	परिवृत्त सुखासन		
	पीठ के बल लेटकर किए जाने वाले अभ्यास		
	विपरीतकरणी (दीवार का सहारा लेकर शवासन)		
	पेट के बल लेटकर किए जाने वाले अभ्यास		
	बालासन		
4	प्राणायाम		
	नाड़ी शोधन प्राणायाम	5 बार	
	उज्जायी प्राणायाम	5 बार	
	शीतली प्राणायाम	5 बार	
5	ध्यान		10 मिनट
6	शांतिपाठ		1 मिनट
	कुल समय		45 मिनट

गर्भवती महिलाओं के लिए योग (तीसरा त्रैमासिक)⁹²

क्र.सं.	यौगिक अभ्यास	चरण	अवधि
1	प्रार्थना		1 मिनट
2	यौगिक सूक्ष्म व्यायाम (सूक्ष्म संचालन क्रियाएँ)		5 मिनट
	गर्दन चालन		

	आगे और पीछे झुकाना	3 बार	
	दाएँ और बाएँ झुकाना	3 बार	
	दाएँ और बाएँ घुमाना	3 बार	
	गर्दन रोटेशन (घड़ी की सूई की दिशा में और घड़ी की सूई की दिशा के विपरीत)	3 बार	
	कंधे का चालन		
	कंधे की स्ट्रेचिंग	3 बार	
	कंधे को घुमाना (आगे और पीछे)	3 बार	
	टखने का चालन		
	टखने की स्ट्रेचिंग	5 बार	
3	योगासन		15 मिनट
	खड़े होकर किए जाने वाले आसन		
	ताडासन		
	अर्ध पार्श्वकोणासन		
	त्रिकोणासन		
	बैठकर किए जाने वाले अभ्यास		
	दण्डासन		
	सुखासन		
	उपविष्ट कोणासन		
	परिवृत्त जानुशीर्षासन		
	मार्जरी आसन		
	पीठ के बल लेटकर किए जाने वाले अभ्यास		
	सुप्त बद्ध कोणासन		
	शवासन		
4	प्राणायाम		8 मिनट

	नाड़ी शोधन प्राणायाम	5 बार	
	भ्रामरी प्राणायाम	5 बार	
	शीतली प्राणायाम	5 बार	
5	ध्यान ओम ध्यान अथवा सोहउम् ध्यान		15 मिनट
6	शांतिपाठ		1 मिनट
	कुल समय		45 मिनट

तालिका 6.2 गर्भवती महिलाओं के लिए अनुशंसित योग प्रोटोकॉल

6.13 विभिन्न रोगों के उपचार में प्रमुख योग उपनिषदों के उपयोगी योगाभ्यास -

6.13.1 वात, पित्त व कफ को शांत करने वाले योगाभ्यास⁹³ -

(i) वात दोष में उपयोगी योगाभ्यास -

ताडासन, उत्कटासन, हलासन, शलभासन, त्रिकोणासन, हस्तपादासन, सूर्य नमस्कार, जानुशीर्षासन, पश्चिमोत्तानासन, मेरु वक्रासन, नौकासन, शवासन, उग्रासन, योगमुद्रा, विपरीतकरणीमुद्रा।

(ii) पित्त दोष में उपयोगी योगाभ्यास -

हस्त उत्तानासन, शवासन, सुप्त वज्रासन, सर्वांगासन, विपरीतकरणी, भुजंगासन, अश्वसंचालन आसन, जानुशीर्षासन, पश्चिमोत्तानासन, मार्जारासन, पर्वतासन, नौकासन, विपरीत नौकासन।

(iii) कफ दोष में उपयोगी योगाभ्यास -

त्रिकोणासन, वीरासन, शलभासन, उग्रासन, सेतुबन्धासन, धनुरासन, शवासन, चक्रासन, आकर्ण धनुरासन, हस्त उत्तानासन, पर्वतासन, ताडासन, वृक्षासन, उग्रासन, भुजंगासन, अश्वसंचालन आसन, नौकासन।

6.13.2 अंतःस्रावी ग्रंथियों को प्रभावित करने वाले योगाभ्यास -

थायरॉइड ग्रंथि - सर्वांगासन, हलासन एवं विपरीतकरणी।

वृक्क -	भुजंगासन, सूर्य नमस्कार, मार्जरासन, शशांकासन।
अण्डकोष -	सिद्धासन, पद्मासन, वज्रासन और मूलबन्ध, वज्रोली मुद्रा, योनिमुद्रा।
पीनियल ग्रंथि -	सूर्य नमस्कार, योग मुद्रा, पाद हस्तासन, भ्रामरी, कपालभाति, त्राटक, नेति, शीर्षासन।
प्लीहा -	उड्डीयान बन्ध, नौलि क्रिया।
पिट्यूटरी ग्रंथि -	शीर्षासन से अधिक प्रभावित होती है।
यकृत -	मत्स्येन्द्रासन (दायीं ओर)।
क्लोम -	मत्स्येन्द्रासन (बायीं ओर)।
एड्रीनल -	मयूरासन, सिंहासन, नेति, उज्जायी प्राणायाम।

6.13.3 विभिन्न रोगों में उपयोगी योगाभ्यास -

दमा, श्वास सम्बन्धी रोग (अस्थमा) में - पश्चिमोत्तानासन, धनुरासन, वीरासन, उष्ट्रासन, सुप्त, वीरासन, शीर्षासन समूह, सर्वांगासन, भुजंगासन, शलभासन, उड्डीयान बन्ध, योग निद्रा, नाडी शोधन प्राणायाम, सूर्यभेदन प्राणायाम।

मधुमेह (डायबिटीज) में - शीर्षासन और उनका समूह, गौमुखासन, हलासन, अर्ध मत्स्येन्द्रासन, शवासन, मंडूकासन, पश्चिमोत्तानासन, उष्ट्रासन, सुप्त वज्रासन, सूर्य नमस्कार, सर्वांगासन, महामुद्रा, भुजंगासन, नाडीशोधन प्राणायाम (बिना अन्तःकुम्भक के)

मिर्गी या अपस्मार में - शशांकासन, भुजंगासन, हलासन, महामुद्रा, पश्चिमोत्तानासन, ध्यान, शीतली प्राणायाम, बिना कुम्भक के नाडी शोधन प्राणायाम, अन्तःकुम्भक के साथ उज्जायी प्राणायाम, योग निद्रा।

उच्च रक्तचाप (हाई ब्लड प्रेशर) में - सिद्धासन, पवनमुक्तासन, पद्मासन, पश्चिमोत्तानासन, सीत्कारी, शीतली, चन्द्रभेदन प्राणायाम, नाडी शोधन प्राणायाम (कुम्भक न करे), उज्जायी, योग निद्रा।

निम्न रक्तचाप (लो ब्लड प्रेशर) में - सर्वांगासन, शीर्षासन, हलासन, वीरासन, सूर्य नमस्कार, शशांकासन, कपालभाति, सूर्य भेदन प्राणायाम, नाडी शोधन प्राणायाम, भस्त्रिका तथा शवासन।

सिर दर्द में - सर्वांगासन, पवनमुक्तासन, वज्रासन, पद्मासन, शीर्षासन, हलासन, मार्जारी आसन, अनुलोम-विलोम प्राणायाम, योग निद्रा।

आधा शीशी (मेरेन) में - वीरासन, शवासन, शीर्षासन, सर्वांगासन, पद्मासन में ध्यान या सिद्धासन में ध्यान, योग निद्रा, बिना कुम्भक के नाड़ी शोधन प्राणायाम, उद्गीथ प्राणायाम।

सीना या छाती रोग में - भुजंगासन, धनुरासन, बद्धकोणासन, चक्रासन, कपोतासन, पद्मासन, सूर्य नमस्कार, शीर्षासन, सर्वांगासन, आकर्ण धनुरासन, अर्ध मत्स्येन्द्रासन, बकासन, नटराजासन, पीछे झुककर किए जाने वाले आसन, नाड़ी शोधन प्राणायाम, उज्जायी तथा योग निद्रा।

गुदा (किडनी) रोग में - हलासन, उष्ट्रासन, शलभासन, सूर्य नमस्कार, सर्वांगासन, शीर्षासन और उसका समूह, धनुरासन, भुजंगासन, हनुमानासन, कपोतासन, अर्ध नौकासन, मत्स्येन्द्रासन।

पेट दर्द या उदरशूल में - शीर्षासन, वीरासन, सुप्त वीरासन, नौकासन, वज्रासन, हलासन, उत्तनासन।

कमर दर्द में - पर्वतासन, अर्ध मत्स्येन्द्रासन, सर्वांगासन, सुप्त वज्रासन, भुजंगासन, शीर्षासन, चक्रासन, कपालभाति, नाड़ी शोधन प्राणायाम।

हृदय दर्द या विकार में - योग निद्रा, सुखासन में ध्यान या शवासन में ध्यान, शवासन, नाड़ी शोधन प्राणायाम, उज्जायी प्राणायाम बिना कुम्भक।

उदरस्थ अल्सर में - पादांगुष्ठासन, पादहस्तासन, उत्तानासन, शलभासन, वज्रासन, वीरासन, नौकासन।

अण्डकोष वृद्धि - बद्ध कोणासन, योग मुद्रासन, वातायनासन, शीर्षासन एवं उनके समूह, सर्वांगासन, समकोणासन, वज्रासन, हनुमानासन, गरुडासन।

आँत के अल्सर में - शीर्षासन एवं सम्बन्धित समूह, अर्ध मत्स्येन्द्रासन, उज्जायी, सर्वांगासन, पश्चिमोत्तानासन, योग निद्रा, अन्तःकुम्भक के साथ उड्डीयान बन्ध, नाड़ी शोधन प्राणायाम में।

फेफड़े या फुफुस विकार में - पद्मासन, खड़े होकर किए जाने वाले आसन, सूर्य नमस्कार, शीर्षासन तथा उसका समूह, सर्वांगासन, लोलासन, अन्तः कुम्भक के साथ सभी प्राणायाम, वीरासन, चक्रासन, धनुरासन।

मस्तिष्क एवं स्मरणशक्ति के विकास के लिए - शीर्षासन एवं उसका समूह, पश्चिमोत्तानासन, सर्वांगासन, उत्तानासन, योग मुद्रासन, पादहस्तासन, पद्मासन में

ध्यान या सिद्धासन में ध्यान, योग मुद्रासन, पादहस्तासन, सामान्य त्राटक, शवासन, सूर्य भेदन, भस्त्रिका प्राणायाम, नाडी शोधन प्राणायाम, योगनिद्रा।

शरीर की लम्बाई बढ़ाने के लिए - ताडासन, सूर्य नमस्कार, सर्वांगासन एवं पश्चिमोत्तानासन, धनुरासन, हलासन।

नपुंसकता दूर करने के लिए - शीर्षासन एवं उसका समूह, अर्ध मत्स्येन्द्रासन, हनुमानासन, सर्वांगासन, उत्तानासन, पश्चिमोत्तानासन, महासमुद्रासन, वज्रोली मुद्रा एवं विपरीतकरणी मुद्रा, कपाल भाति, अनुलोम-विलोम, नाडी शोधन प्राणायाम के साथ अन्तःकुम्भक, उड्डीयान बन्ध।

रक्त अल्पता या रक्त क्षय में - शीर्षासन एवं उसका समूह, सर्वांगासन, पश्चिमोत्तानासन, सूर्य नमस्कार, उज्जायी प्राणायाम, नाडीशोधन प्राणायाम, कपालभाति प्राणायाम।

आलस्य दूर करने के लिए - शीर्षासन, उत्तानासन, सर्वांगासन, बिना कुम्भक के नाडी शोधन प्राणायाम।

चर्बी कम करने या मोटापा दूर करने के लिए - सर्वांगासन, हलासन, ऊर्जा प्रदायक विशेष आसन एवं क्रियाएँ, सूर्य नमस्कार, शीर्षासन तथा उसका समूह, पवनमुक्तासन समूह की क्रियाएँ, विपरीतकरणी मुद्रा, पेट सम्बन्धित रोग दूर करने के सभी आसन तथा यौगिक आहार।

दस्त में - शीर्षासन और उसके समूह, सर्वांगासन, जानुशीर्षासन, बिना कुम्भक के नाडी शोधन प्राणायाम।

खाँसी में - शीर्षासन एवं उनका समूह, सर्वांगासन, उत्तानासन, अर्ध मत्स्येन्द्रासन एवं दमा रोग दूर करने के आसन।

हार्निया में - शीर्षासन एवं उसका समूह, आकर्ण धनुरासन, सर्वांगासन।

कोष्ठबद्धता, कब्ज, गैस या अजीर्ण में - शीर्षासन और उनका समूह, वीरासन, योग मुद्रासन, उत्तानासन, पद्मासन, वज्रासन, पवनमुक्तासन और सम्बन्धित आसन, धनुरासन, भुजंगासन, त्रिकोणासन, महामुद्रा, शलभासन, मत्स्यासन, अर्धचन्द्रासन, शशांकासन, सर्वांगासन, नौकासन, मत्स्येन्द्रासन, पादांगुष्ठासन और शंख प्रक्षालन आसन।

संधिवात जोड़ो का दर्द, मेरुदण्डीय स्कन्धास्थि या गठिया में - शीर्षासन और उसका समूह, गौमुखासन, उत्तानासन, वीरासन, सर्वांगासन, पद्मासन, सिद्धासन, पवनमुक्तासन समूह की क्रियाएँ।

दाँत, मसूढ़े, पायरिया, गंजापन, चेहरे की ताजगी, झुर्रिया दूर करने या सामान्य नेत्र विकार में - शीर्षासन एवं उनका समूह, सर्वांगासन, पश्चिमोत्तानासन, शलभासन, हलासन, विपरीतकरणी मुद्रा, वज्रासन (सिर के बल किए जाने वाले सभी आसन), भुजंगासन, सूर्य नमस्कार, सिंहासन एवं दृष्टि अभ्यासक अभ्यास।

सिल्प डिस्क, साइटिका, कमर, मेरुदण्ड, सर्वाङ्गल दर्द या स्पोन्डिलाइटिस में - स्थिर रहने की क्रिया और पीछे झुकने वाले आसन, भुजंगासन, सुप्त वज्रासन, गौमुखासन, शलभासन, धनुरासन, उत्तानपादसन, ताडासन, उत्कटासन, मकरासन।

लकवा (पक्षाघात) पोलियो में - शलभासन, धनुरासन, मकरासन, भुजंगासन, पद्मासन, सिद्धासन, कंधरासन, हलासन, सर्वांगासन, शवासन, उज्जायी तथा नाडी शोधन प्राणायाम।

बवासीर (अर्श, गुदा-विकार या भगंदर) में - कुण्डलिनी जागरण, मूलबन्ध, शीर्षासन और उनका समूह, सर्वांगासन, हलासन, विपरीत मुद्रा, मत्स्यासन, सिंहासन, शलभासन, धनुरासन, बिना कुम्भक उज्जायी और नाडी शोधन प्राणायाम।

अनिद्रा, चिन्ता, उन्माद, निराशा, मानसिक दुर्बलता दूर करने में - सूर्य नमस्कार एवं उनका समूह, सर्वांगासन, कूर्मासन, शशांकासन, योगमुद्रा, उत्तानासन बिना कुम्भक के भस्त्रिका, नाडी शोधन तथा सूर्य भेदन प्राणायाम के साथ भ्रामरी, मूर्च्छा, शीतली एवं सीत्कारी प्राणायाम एवं योगनिद्रा तथा सुदृढीकरणप्रदायक विशेष आसन एवं क्रियाएँ।

पौरुष ग्रन्थि, मूत्र दोष (पेशाब विकृति) में - शीर्षासन और उसका समूह, सर्वांगासन, हलासन, शलभासन, धनुरासन, उत्तानासन, नावासन, सुप्तवज्रासन, बद्ध कोणासन, उड्डीयान बन्ध, नाडी शोधन।

स्वप्नदोष में - शीर्षासन से सम्बन्धित आसन समूह, सर्वांगासन, पश्चिमोत्तानासन, बद्ध कोणासन, मूलबन्ध, वज्रोली मुद्रा, योनि मुद्रा, नाडी शोधन प्राणायाम, सुविचार एवं रात्रि को शीतल जल से हाथ पैर धोकर सोए एवं प्रभु ध्यान करें।

जननांग सम्बन्धी दोष में - सूर्य नमस्कार, वज्रासन, शशांकासन, उष्ट्रासन, ताड़ासन, उत्तानासन, योग मुद्रासन, चक्रासन, धनुरासन, मकरासन, वीरासन, धनुराकर्षण आसन, वीरासन एवं कपालभाति प्राणायाम।

अनियमित ऋतुस्त्राव, मासिक धर्म, अण्डाशय व उससे सम्बन्धित रोग - सर्वांगासन, भुजंगासन, वीरासन, वज्रासन, शशांकासन, मार्जारी आसन, योग निद्रा, नाड़ी शोधन प्राणायाम, मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध, विपरीतकरणी, वज्रोली मुद्रा, योनिमुद्रा एवं योग मुद्रासन।

बाँझपन - सर्वांगासन, हलासन, पद्मासन या सिद्धासन, चक्रासन, गरुडासन, वातायनासन, आसन मुद्राएँ (वज्रोली मुद्रा, योनिमुद्रा) नाड़ी शोधन प्राणायाम, कपालभाति प्राणायाम।

सौन्दर्य वृद्धि कारक योगाभ्यास - ताड़ासन, वज्रासन, पद्मासन, सूर्यनमस्कार, मत्स्यासन, त्रिकोणासन, मार्जारी आसन, उत्तान कूर्मासन, भुजंगासन, चक्रासन, धनुरासन, गोमुखासन, तिर्यक भुजंगासन, मेरु, व्रजासन, सर्वांगासन, हलासन, स्वर्णासन, पवनमुक्तासन, मर्कटासन, अनुलोम-विलोम प्राणायाम, कपालभाति प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम, योगनिद्रा एवं योगासन ध्यान।

सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए - पवनमुक्तासन समूह के आसन, शीर्षासन से सम्बन्धित आसन, सर्वांगासन, विपरीत मुद्रा, धनुरासन, तिर्यक भुजंगासन, तिर्यक ताड़ासन, शलभासन, मार्जारासन, मर्कटासन, पद्मासन, योग मुद्रा, मूलबन्ध, नाड़ी शोधन प्राणायाम, वज्रोली और आसन मुद्राएँ महामुद्रासन और कपालभाति व भस्त्रिका प्राणायाम।

महिलाओं के लिए - अधिक मासिक स्राव के लिए बद्ध कोणासन, जानुशीर्षासन, पश्चिमोत्तानासन, उत्तानासन एवं पवनमुक्तासन समूह की क्रियाएँ।

गर्भावस्था में - हल्के व्यायाम (यौगिक सूक्ष्म व्यायाम) पवनमुक्तासन सम्बन्धी आसन एवं बिना कुम्भक के प्राणायाम।



सन्दर्भ सूची

- 1 कुमार राजेश, यम नियम के पालन का हमारे जीवन पर प्रभाव, IJCRT. ORG, VOL-10, 2022, पृ. 712-713
- 2 सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुँगेर, चतुर्थ सं. 2015, पृ. 104
- 3 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 39, पूर्वोक्त, पृ. 137
- 4 योगकुण्डल्युपनिषद् 1/5, पूर्वोक्त, पृ. 338
- 5 सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, पृ. 102
- 6 सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, पूर्वोक्त, पृ. 118
- 7 सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, पूर्वोक्त, पृ. 237
- 8 सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, पूर्वोक्त, पृ. 99
- 9 सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, पूर्वोक्त, पृ. 372-373
- 10 सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, पूर्वोक्त, पृ. 370
- 11 सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, पूर्वोक्त, पृ. 231
- 12 सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, पूर्वोक्त, पृ. 122
- 13 योग शिक्षा (शिक्षा स्नातक) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली, 2015, पूर्वोक्त, पृ. 112
- 14 योग शिक्षा (शिक्षा स्नातक) पूर्वोक्त, पृ. 37-38
- 15 योग शिक्षा (शिक्षा स्नातक) पूर्वोक्त, पृ. 113
- 16 योग शिक्षा (शिक्षा स्नातक) पूर्वोक्त, पृ. 111
- 17 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योग विद्या, मंजुन पब्लिशिंग हाउस, भोपाल, पञ्चम सं., 2018, पृ. 207
- 18 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योग विद्या, पूर्वोक्त, पृ. 250
- 19 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योग विद्या, पूर्वोक्त, पृ. 262
- 20 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योग विद्या, पूर्वोक्त, पृ. 270
- 21 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योग विद्या, पूर्वोक्त, पृ. 200
- 22 योगकुण्डल्युपनिषद् 1/43-45, पूर्वोक्त, पूर्वोक्त, पृ. 346-347
- 23 योगकुण्डल्युपनिषद् 47, पूर्वोक्त, पृ. 385
- 24 योगतत्त्वोपनिषद् 121 पृ. 433
- 25 सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुँगेर, चतुर्थ सं. 2015, पृ. 515-516

-
- 26 योगकुण्डल्युपनिषद्, 50 पूर्वोक्त, पृ. 347
 - 27 सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, पूर्वोक्त, पृ. 520
 - 28 योगचूडामण्युपनिषद्, 51, पूर्वोक्त, पृ. 386
 - 29 योगतत्त्वोपनिषद्, 119, पूर्वोक्त, पृ. 432
 - 30 सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, पूर्वोक्त, पृ. 512
 - 31 सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, पूर्वोक्त, पृ. 522
 - 32 योगचूडामण्युपनिषद्, 65-66 व 68-69, पूर्वोक्त, पृ. 389-390
 - 33 सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, पूर्वोक्त, पृ. 499
 - 34 सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, पूर्वोक्त, पृ. 503
 - 35 योगतत्त्वोपनिषद् 122-123 व 125-126, पूर्वोक्त, पृ. 434
 - 36 सरस्वती, सत्यानन्द स्वामी, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, पूर्वोक्त, पृ. 486
 - 37 योगकुण्डल्युपनिषद् 1/17-18, पूर्वोक्त, पृ. 341
 - 38 योगचूडामण्युपनिषद्, 63, पूर्वोक्त, पृ. 389
 - 39 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योगविद्या, मंजूल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल, पञ्चम सं. 2018, पृ. 406
 - 40 योगचूडामण्युपनिषद्, 53-54 व 58 पूर्वोक्त, पृ. 387-388
 - 41 योगकुण्डल्युपनिषद् 2/1-3 व 9, पूर्वोक्त, पृ. 355-357
 - 42 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योगविद्या, पूर्वोक्त, पृ. 402
 - 43 योगतत्त्वोपनिषद्, 65, पूर्वोक्त, पृ. 420
 - 44 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योगविद्या, पूर्वोक्त, पृ. 404
 - 45 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योगविद्या, पूर्वोक्त, पृ. 405
 - 46 B. Acharya, Jagadish, Auto urine therapy treatment and diet, Jagadish B. Publication, Bombay, 1978
 - 47 अमृतनादोपनिषद्, पूर्वोक्त, पृ. 26
 - 48 त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, 100 व 102-103, पूर्वोक्त, पृ. 156
 - 49 योगचूडामण्युपनिषद्, 108, पूर्वोक्त, पृ. 403
 - 50 योगतत्त्वोपनिषद्, 57-60, पूर्वोक्त, पृ. 419-420
 - 51 योगचूडामण्युपनिषद्, 99, पूर्वोक्त, पृ. 401
 - 52 योगतत्त्वोपनिषद्, 44-46,, पूर्वोक्त, पृ.417
 - 53 प्राणायाम, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, आयुष मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 6

-
- 54 योगकुण्डल्युपनिषद् 1/25, पूर्वोक्त, पृ. 343
- 55 प्राणायाम, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, पूर्वोक्त, पृ. 7
- 56 योगकुण्डल्युपनिषद् 1/28-29, पूर्वोक्त, पृ. 343
- 57 प्राणायाम, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, पूर्वोक्त, पृ. 8
- 58 योगकुण्डल्युपनिषद् 1/31, पूर्वोक्त, पृ. 344
- 59 प्राणायाम, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, पूर्वोक्त, पृ. 8
- 60 योगकुण्डल्युपनिषद् 1/37-38, पूर्वोक्त, पृ. 345
- 61 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योग विद्या, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल पञ्चम सं. 2018, पृ. 387
- 62 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योगविद्या, पूर्वोक्त, पृ. 392
- 63 योगतत्त्वोपनिषद्, 64, पूर्वोक्त, पृ. 420
- 64 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योगविद्या, पूर्वोक्त, पृ. 388
- 65 योगचूडामण्युपनिषद्, 39, पूर्वोक्त, पृ. 382
- 66 योगकुण्डल्युपनिषद्, 1/77-81, पूर्वोक्त, पृ. 353-354
- 67 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योगविद्या, पूर्वोक्त, पृ. 476
- 68 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योगविद्या, पूर्वोक्त, पृ. 478
- 69 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योगविद्या, पूर्वोक्त, पृ. 479
- 70 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योगविद्या, पूर्वोक्त, पृ. 480
- 71 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योगविद्या, पूर्वोक्त, पृ. 481
- 72 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योगविद्या, पूर्वोक्त, पृ. 482
- 73 त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योगविद्या, पूर्वोक्त, पृ. 483
- 74 योगचूडामण्युपनिषद्, 121 व 110, पूर्वोक्त, पृ. 407 व 403
- 75 योगचूडामण्युपनिषद्, 110, पूर्वोक्त, 403
- 76 योगतत्त्वोपनिषद्, 86-87, 90, 93-94, 96-97 व 101-103, पूर्वोक्त, पृ. 424-426
- 77 योगतत्त्वोपनिषद्, 105, पूर्वोक्त, पृ. 427
- 78 Hussain, D. And Bhushan, B. Psychology of Meditation and Health; Present Status and Future Direction, International Journal of psychology and Psychological Therapy, 10(3), 2010, P. 439-451
- 79 Goyal, M. Singh and other, Meditation Programs for Psychological Stress and Well-being: A systematic Review and Meta-Analysis, Jama Internal Medicine, 174 (3), 2014, P.3

-
- 80 योगचूडामण्युपनिषद्, 113, पूर्वोक्त, पृ. 405
- 81 योगचूडामण्युपनिषद्, 33-34, पूर्वोक्त, पृ. 381-382
- 82 योगचूडामण्युपनिषद्, 42-43, पूर्वोक्त, पृ. 314
- 83 योगतत्त्वोपनिषद्, 28 व 30-31, पूर्वोक्त, पृ. 414
- 84 योगतत्त्वोपनिषद्, 46-49, पूर्वोक्त, पृ. 427-428
- 85 तीर्थ, आचार्य वेदान्त, ऋग्वेद भाग-3, 8.18.10, मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2022, पृ. 248
- 86 तीर्थ, आचार्य वेदान्त, अथर्ववेद भाग-2, 19.67, मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2022, पृ. 384
- 87 त्रिपाठी, ब्रह्मानन्द, चरकसंहिता भाग-1, 1.15, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2024, पृ. 34
- 88 श्वेताश्वतरोपनिषद्, 2012, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1995, पृ. 145
- 89 योग मॉड्यूल, बच्चों (3-6 आयु वर्ग) के लिए योग, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली।
- 90 योग मॉड्यूल, गर्भवती महिलाओं के लिए योग, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली।
- 91 त्रिलोकी, राजीव जैन, सम्पूर्ण योग विद्या, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल, पञ्चम सं. 2018, पृ. 54-55
- 92 उपर्युक्त, पृ. 53
- 93 उपर्युक्त, पृ. 567-563

उपसंहारः

उपसंहारः

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन।

स धीनां योगमिन्वति॥ ऋग्वेद 1-18-7

जगत् की सम्पूर्ण विद्याओं का मूल वेद है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में कला, विज्ञान, चिकित्सा, भूगोल, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष तथा योग आदि विद्याएँ वर्णित हैं। उपनिषद् वेद का सारभूत रहस्य तथा गुप्त उपदेश है। प्राचीन काल से ही वैदिक वाङ्मय में उपनिषद् विद्या का विशेष महत्त्व रहा है। जिसको अध्यात्मविद्या, योगविद्या, ब्रह्मविद्या आदि नामों से भी जाना जाता है। वेदों से निकली बीजरूपी योगविद्या का वटवृक्ष उपनिषदों में देखने को मिलता है। समस्त, श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, पुराण, धर्मशास्त्र आदि विद्याएँ योग से ही निष्पन्न हैं। आचार्य शंकर ने मुख्य ग्यारह उपनिषदों पर अपना भाष्य लिखा है। मुक्तिकोपनिषद् में एक सौ आठ उपनिषदों का नामोल्लेख है तथा कल्याण के उपनिषद् अंक में इनकी संख्या दो सौ बीस बताई गई है। इनमें से इक्कीस उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय योग ही है। इन उपनिषदों में योग तत्त्व पर मुख्य रूप से चर्चा की गई है अतः इन्हें योग उपनिषद् कहा गया है। इन योग परक उपनिषदों के नाम इस प्रकार हैं -

मण्डलब्राह्मणोपनिषद्,	हंसोपनिषद्,	अमृतबिन्दुपनिषद्,
अमृतनादोपनिषद्,	क्षुरिकोपनिषद्,	तेजोबिन्दूपनिषद्,
ध्यानबिन्दूपनिषद्,	ब्रह्मविद्योपनिषद्,	योगतत्त्वोपनिषद्,
त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्,	योगशिखोपनिषद्,	योगकुण्डल्युपनिषद्,
वराहोपनिषद्,	पाशुपतब्राह्मणोपनिषद्,	महावाक्योपनिषद्,
शाण्डिल्योपनिषद्,	नादबिन्दूपनिषद्,	योगचूडामण्युपनिषद्,
दर्शनोपनिषद्,	अद्वयतारकोपनिषद्	तथा योगराजोपनिषद्।

इन योग उपनिषदों में योगांग, योग के प्रकार तथा यौगिक प्रक्रिया का सांगोपांग विस्तृत विवेचन किया गया है। इस प्रकार इन उपनिषदों ने वैदिक परम्परा का पालन करते हुए योग तत्त्व का स्पष्ट, विस्तृत व विकसित रूप प्रस्तुत किया है।

आज प्राचीन भारतीय योग विद्या की सर्वत्र चर्चा हो रही है। सम्पूर्ण विश्व में योग के प्रति जिज्ञासा व आदरभाव जाग्रत हो रहा है। योग की उत्कृष्टता के कारण मुझे इस विषय में और अधिक जानने की इच्छा हुई, इसी जिज्ञासा ने **“प्रमुख योग उपनिषदों में योग तत्त्व : आधुनिक परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में”** इस शोध विषय को जन्म दिया। प्रमुख योग उपनिषदों में अमृतनादोपनिषद्, त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, योगकुण्डल्युपनिषद् योगचूडामण्युपनिषद् तथा योग तत्त्वोपनिषद् इन पाँच योग उपनिषदों का शोध कार्य हेतु चयन किया गया है ताकि इनका विस्तृत विवेचन कर आधुनिक सन्दर्भ में इनको व्याख्यायित किया जा सके। अमृतनादोपनिषद् में षडंगयोग को प्रतिपादित किया गया है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में ब्रह्मप्राप्ति के उपायभूत अष्टांगयोग का निरूपण किया गया है। योगकुण्डल्युपनिषद् में कुण्डलिनी बोध की प्रक्रिया बताई गई है तथा प्राणायाम द्वारा विराट् रूप की सिद्धि का उपदेश दिया गया है। योगचूडामण्युपनिषद् में योग साधना के द्वारा आत्मशक्ति को जाग्रत करने की प्रक्रिया विधि तथा योग के छः अंग बताए गए हैं। योगतत्त्वोपनिषद् में कैवल्यपद प्राप्ति के प्रमुख साधन अष्टांग योग का निरूपण किया गया है। इसके साथ-साथ मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग इन चार प्रकार के योग मार्गों द्वारा आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करके संसार चक्र से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया है।

इस प्रकार प्रमुख योग उपनिषदों ने मानव मात्र के कल्याण के लिए आमजन के बीच योग को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया है। प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित योग तत्त्व की आधुनिक युग में महती आवश्यकता है क्योंकि आज सम्पूर्ण मानव जाति विविध भौतिक साधनों से सुसम्पन्न होने पर भी मानसिक अशान्ति है, नैतिक व सामाजिक मूल्यों का विघटन बहुत तेजी से हो रहा है। इन परिस्थितियों में कैसे एक सुव्यवस्थित और संतुलित जीवन जिया जा सकता है? कैसे मानव का नैतिक व आध्यात्मिक विकास सम्भव हो सकता है? किस प्रकार का जीवन या दिनचर्या व्यतीत करे? ऐसे अनेक प्रश्न हमारे सम्मुख खड़े हैं जिनका हमारे पास कोई समाधान नहीं है।

इस समय एक ही आशा की किरण हमें नजर आ रही है कि इन योग उपनिषदों में वर्णित यौगिक दिनचर्या को एक बार फिर से अपने आचरण में धारण किया जाए ताकि हम अल्पकालीन जीवन में अपना शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावात्मक, नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान कर सकें। बाह्य विज्ञान से मनुष्य को

सच्ची शान्ति कभी नहीं मिल सकती। प्रमुख योग उपनिषदों के सम्यक् ज्ञान से ही मनुष्य शोक, मोह, दुःख आदि से निवृत्त होकर शाश्वत शान्ति को प्राप्त कर सकता है। इन उपनिषदों के योगाचरण से हम अपने तथा समाज के अन्दर की समस्याओं व त्रुटियों को दूर करके संयमित व सन्तुलित जीवन जी सकते हैं।

प्रस्तुत शोध कार्य प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित विभिन्न यौगिक क्रियाओं को आधुनिक परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में विवेचित करता है कि किस प्रकार ये योग उपनिषद् व्यक्ति व समाज के प्रत्येक क्षेत्र में उपादेय हैं। ये उपनिषद् प्राचीन होते हुए भी तात्कालिक युगबोध को अभिव्यक्त करने वाले हैं। इन्होंने योग के महत्त्व को बढ़ाया है। इन उपनिषदों की वर्तमान सन्दर्भ में उपयोगिता उभरकर सामने आ रही है परिणामस्वरूप आज पूरी दुनिया में योग दिवस एक वैश्विक उत्सव बन गया है।

आज मनुष्य के शारीरिक अवयवों को सशक्त, इन्द्रियों को नियन्त्रित, मन को एकाग्र व निर्मल, भावनाओं को संतुलित, प्राण को अनुशासित तथा बुद्धि को सबलता प्रदान कर उसे राग, द्वेष, अहंकार आदि दोषों से मुक्त कर आत्मिक निर्मलता प्रदान करने का एकमात्र साधन योग है। यह योग केवल शारीरिक व्यायाम मात्र नहीं है और न ही केवल आध्यात्मिक उत्कर्ष का साधन है। यह तो एक विकसित विज्ञान है। आसन तथा मुद्राएँ जहाँ शरीर को सशक्त, निरोगी सुडौल तथा रोगप्रतिरोधक बनाते हैं वहीं प्राणायाम, धारण, ध्यान आदि मानसिक एकाग्रता एवं बुद्धि को प्रखरता प्रदान करते हैं तथा यम-नियमादि का अभ्यास युवा पीढ़ी के चारित्र्यिक विकास में योगदान देता है। योग आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ व्यक्ति को भौतिक क्षेत्र में भी उन्नति के अवसर प्रदान करता है।

प्रस्तुत शोध कार्य के विषय को ध्यान में रखते हुए प्रमुख योग उपनिषदों में योग तत्त्व के स्वरूप का वर्तमान परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में जो समीक्षात्मक, तुलनात्मक व विवेचनात्मक अध्ययन इस शोधकार्य में प्रस्तुत किया गया है, वह निश्चय ही योग के अवदान को उपलक्षित कर व्यक्ति व समाज को उपकृत कर सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

यद्यपि इन योग उपनिषदों की भाषाशैली अत्यन्त सरल है अतः इन पर विशेष रूप से किसी भी प्रकार की टीका या भाष्य लिखने की आवश्यकता नहीं पड़ी फिर भी विषय गहन तथा गम्भीर है अतः विभिन्न योगासनों, बन्ध, मुद्रादि को चित्रों व सारणी के माध्यम से प्रस्तुत कर शोधार्थी द्वारा विषय को रोचक व सुग्राह्य बनाने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध कार्य में योग के सभी अंगों का स्वरूप तथा फल बताया गया है। मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग को वर्णित कर इनसे होने वाले लाभों को भी उपस्थापित किया गया है तथा यम, नियम, आसन, मुद्रा, बन्ध, प्राणायाम, कुण्डलिनी, जप, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि की आधुनिक सन्दर्भ में प्रासंगिकता बताई गई है। निष्कर्षतः प्रमुख योग उपनिषदों में निहित योग तत्त्व का अनुशीलन वर्तमान में योग के स्वरूप व चिन्तन में भी पूर्णतः प्रासंगिक है, यह इस शोध कार्य द्वारा स्पष्ट प्रतिपादित किया गया है। यह शोध कार्य शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकारों को दूर कर दिनचर्या को संतुलित व नियमित कर जीवन को सुखमय बनाने में सहायक सिद्ध होगा। इस प्रकार आधुनिक सन्दर्भ में प्रमुख योग उपनिषदों की प्रासंगिकता को उजागर करने का सार्थक प्रयास किया गया है।

मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह शोधकार्य अध्येताओं तथा अनुसन्धाताओं को न केवल प्रमुख योग उपनिषदों के अध्ययन के लिए प्रेरित करेगा अपितु विभिन्न यौगिक क्रियाओं को जानने के लिए उनमें उत्सुकता उत्पन्न करेगा।

शोधकार्य का सामाजिक अवदान -

- ❖ प्रस्तुत शोधकार्य जनसामान्य के शारीरिक, मानसिक तथा भावात्मक क्लेशों को दूर कर एक स्वस्थ जीवन शैली के निर्माण में सहायक सिद्ध होगा।
- ❖ आधुनिक समाज में निरन्तर गिरते नैतिक व चारित्र्यिक मूल्यों की पुनर्स्थापना में उपयोगी सिद्ध होगा।
- ❖ समाज को एक प्रेरणा व मार्गदर्शन मिलेगा, जिससे समाज में योग के प्रति लगाव दृढ़ होगा।
- ❖ आज मनुष्य अशान्त, अस्थिर, असुरक्षित व आन्तरिक रूप से रिक्त होता जा रहा है, परिणामस्वरूप समाज में अनेकों विसंगतियाँ जैसे - स्वार्थ, ईर्ष्या, काम, क्रोध द्वेष इत्यादि निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत शोधकार्य व्यक्ति के चित्त को शान्त व स्थिरता प्रदान कर प्रेम, सहृदयता, परोपकार आदि सद्गुणों का संचार कर सकेगा।
- ❖ मानसिक क्लेशों, शारीरिक दुःखों व भावात्मक विकारों के निराकरण हेतु प्रस्तुत शोध कार्य चिकित्सा पूरक के रूप में उचित मार्गदर्शन प्रदान करता है।

- ❖ जन सामान्य की योग के प्रति भ्रान्तियों का निराकरण हो सकेगा तथा योग की स्पष्टता बढ़ेगी।
- ❖ प्रस्तुत शोधकार्य औपनिषदिक योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि व क्रमबद्ध विकास के अध्ययन में तथा योग के प्रचार-प्रसार में सहायक सिद्ध होगा।
- ❖ प्रस्तुत शोधकार्य योग तत्त्व को सरल व स्पष्ट रूप में प्रतिपादित कर जनसामान्य के लिए योग को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया गया है।
- ❖ वर्तमान परिस्थितियों में यदि व्यक्ति इन योग उपनिषदों में उक्त योग के मार्ग या उपाय को अपनायेगा तो वह निश्चित ही विभिन्न समस्याओं या विकारों से मुक्त होकर दिव्य योगी, नीरोगी, उपयोगी, उद्योगी व सहयोगी बनकर एक स्वस्थ व संयमित समाज का निर्माण कर सकेगा।
- ❖ प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित योग तत्त्व के स्वरूप व योग के विभिन्न आयामों का विवेचनात्मक व समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है जो कि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उपयोगी सिद्ध होगा।

भावी शोध हेतु सुझाव -

प्रस्तुत शोध कार्य को शोधार्थी द्वारा पूरी लगन व कार्य निष्ठा से सत्य को मुखरित करने का प्रयास किया गया है फिर भी शोधकार्य करते हुए विषय से सम्बन्धित बहुत से ऐसे पक्ष आते हैं। जिन पर भविष्य में विस्तृत अध्ययन किया जा सकता है। शोध की समस्या व सीमांकन की परिधि को ना लांघते हुए उन पक्षों को भविष्य के लिए छोड़ दिया जाता है क्योंकि कोई भी शोधकार्य कभी भी परिपूर्ण नहीं होता बल्कि वह अन्य शोधकार्यों के लिए मार्ग का समुद्घाटक होता है। प्रस्तुत शोधकार्य के ऐसे पक्ष जिन पर भविष्य में शोध किया जा सकता है इस प्रकार से हैं -

- ❖ प्रस्तुत शोधकार्य में योग उपनिषदों के अन्तर्गत केवल पाँच योग उपनिषदों का चयन शोधार्थी द्वारा किया गया है। इस प्रकार अन्य योग उपनिषदों को लेकर भी शोधकार्य किया जा सकता है।
- ❖ योग उपनिषदों का परस्पर समीक्षात्मक व तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है।
- ❖ प्रस्तुत शोध में प्रमुख योग उपनिषदों का भगवद्गीता, घेरण्ड संहिता व पातञ्जल योगसूत्र के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इसी प्रकार

अन्य यौगिक ग्रन्थ जैसे - योग वाशिष्ठ, हठयोगप्रदीपिका, शिवसंहिता, गोरक्षसंहिता आदि के साथ भी तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

- ❖ प्रमुख योग उपनिषदों में योग तत्त्व का वैज्ञानिक विवेचनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है।
- ❖ प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित किसी एक योगांग या योग तत्त्व को लेकर भी वैज्ञानिक शोध कार्य किया जा सकता है।
- ❖ स्वास्थ्य के विभिन्न आयामों को लेकर भी प्रमुख योग उपनिषदों पर शोध कार्य किया जा सकता है।
- ❖ किसी विशिष्ट क्षेत्र, व्यक्ति या आयु वर्ग विशेष को लेकर प्रमुख योग उपनिषदों का अध्ययन वर्तमान सन्दर्भ में किया जा सकता है।



शोध सारांश

शोध सारांश

“भवतापेन तप्तानां योगो हि परमौषधम्” - स्कन्दपुराण

योग भारतवर्ष की अमूल्य अमृतमयी निधि है, जो प्राचीन काल से अविच्छिन्न रूप में गुरु परम्परापूर्वक चली आ रही है। वैदिक कालीन ऋषियों ने योग साधना द्वारा ही उच्चावस्था में समाधिस्थ होकर मन्त्रों का साक्षात् दर्शन किया इसलिए वैदिक ऋषि साक्षात्कृतधर्मा अर्थात् मन्त्रदृष्टा कहलाए। वैदिक ऋषियों ने अपने विलक्षण ध्यान योग द्वारा पारलौकिक शक्तियों का अनुभव किया तथा अल्पकाल अस्थायी भौतिक जीवन से ऊपर उठकर महान्, शाश्वत् एवं असीम अनन्त जीवन को प्राप्त किया साथ ही योग के मानव जीवन के साथ अटूट सम्बन्ध को देखकर ही मनुष्य को योगमय जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देकर सम्पूर्ण जगत् के सृष्टि विज्ञान को मानव कल्याण हेतु प्रसारित किया।

योग का जो स्वरूप वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों व आरण्यक ग्रन्थों में देखने को मिलता है, उसका स्पष्ट, व्यवस्थित तथा दार्शनिक रूप उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है। वेदों से निकली बीजरूप योग विद्या का पालन-पोषण उपनिषदों में हुआ है। योगविद्या औपनिषद् काल में उद्गीथ विद्या, नचिकेत विद्या, उपकोसल विद्या, मन्थविद्या, बालाकि विद्या आदि अनेक विद्याओं के नाम से विकसित हुई। ये सब विद्याएँ उपासना हैं, जो कि एक प्रकार से योग ही है। औपनिषद् काल के अन्त में अनेक योग परक उपनिषदों का भी प्रणयन हुआ, जिनमें योग का विस्तृत वर्णन मिलता है। इन योग परक उपनिषदों की संख्या लगभग इक्कीस बताई जाती है, जिन्हें योग उपनिषद् के नाम से जाना जाता है।

प्रस्तुत शोधकार्य हेतु अमृतनादोपनिषद् त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, योगकुण्डल्युपनिषद् योगचूडामण्युपनिषद् तथा योगतत्त्वोपनिषद् इन पाँच योग उपनिषदों का चयन किया गया है, जिन्हें प्रमुख योग उपनिषद् कहा गया है।

प्रस्तुत शोधकार्य में प्रमुख योग उपनिषदों में निहित योग तत्त्व की विवेचना करते हुए इसके व्यावहारिक पक्ष की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है जिससे कि प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित योग तत्त्व को समझने व जानने का अवसर मिलेगा तथा इसके आधुनिक सन्दर्भों के प्रस्तुतीकरण

से योग के विषय में शोध का क्षेत्र और अधिक व्यापक बन सकेगा, इसी ध्येय के साथ शोध विषय का चयन किया गया है।

खुद को स्वस्थ रखकर बीमारियों से बचाना आज मनुष्य के सामने सबसे बड़ी चुनौती है और इस चुनौती का सामना हम योगरूपी विद्या से ही कर सकते हैं। योग के विभिन्न आयामों पर वैज्ञानिक शोध कार्यों से यह स्पष्ट हो चुका है कि योग आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व भावात्मक विकास में सहायक है। आज योग विभिन्न रोगों व विकारों के निवारण में चिकित्सा पूरक के रूप में उचित मार्गदर्शन प्रदान कर रहा है। योग की बढ़ती उपादेयता व लोकप्रियता के परिणामस्वरूप ही आज 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस एक उत्सव के रूप में मनाया जा रहा है।

योग की लोकप्रियता व उत्कृष्टता को देखते हुए ही शोधार्थी को इस विषय में और अधिक जानने की इच्छा जाग्रत हुई जिससे “**प्रमुख योग उपनिषदों में योग तत्त्व: आधुनिक परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में**” इस विषय पर शोध कार्य करने के लिए प्रेरित हुआ। इस शोध प्रबन्ध द्वारा आधुनिक सन्दर्भ में प्रमुख योग उपनिषदों की प्रासंगिकता को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को अध्ययन सुविधा की दृष्टि से छः अध्यायों में विभाजित करते हुए अन्त में उपसंहार, सन्दर्भग्रन्थसूची तथा परिशिष्ट भाग को प्रस्तुत किया गया है। शोधप्रबन्ध का अध्यायवार सारांश निम्नानुसार है-

प्रथम अध्याय - उपनिषद् वाङ्मय: परिचय एवं महत्त्व को सात भागों में विभाजित किया गया है। ‘**उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ**’ भाग के अन्तर्गत उपनिषद् शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ बताते हुए उपनिषद् के अर्थ को व्यापक रूप से स्पष्ट करने हेतु विभिन्न विद्वानों के मतों को उपस्थापित किया गया है।

द्वितीय भाग ‘**औपनिषदिक विचारों का उद्भव एवं विकास**’ में बताया गया है कि उपनिषदों ने अपने मूल अर्थात् वेद से अलग न होकर वैदिक विचारों को ही सदाचार का पुट देने का प्रयास किया है। उपनिषदों ने वैदिक सूक्तों के सांकेतिक द्वैतपरक विचारों पर और अधिक बल देकर विचारों के केन्द्र को बाह्य जगत् से दूर आन्तरिक जगत् की ओर उन्मुख किया है।

‘**उपनिषदों का रचना काल**’ इस भाग के अन्तर्गत उपनिषदों के रचना काल के सम्बन्ध में भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के मतों को समुपस्थापित किया गया है।

‘उपनिषदों की संख्या तथा वर्गीकरण’ के अन्तर्गत वैष्णव, संन्यास, शैव, शाक्त वेदान्त व योग विषयों के आधार पर तथा वैदिक संहिताओं के आधार पर उनसे सम्बन्धित उपनिषदों को वर्गीकृत किया गया है। साथ ही विभिन्न विचारकों द्वारा प्रतिपादित उपनिषदों की संख्या व विभाजन को सम्प्रदाय, विषयवस्तु, क्रमिक विकास तथा शैली के आधार पर वर्गीकृत किया गया है। वाक्यमहाकोष में बताए गए 223 उपनिषदों की नामावली दी गई है।

‘उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय’ इस भाग में उपनिषदों की विषय वस्तु को ब्रह्मतत्त्व, ब्रह्म और आत्मा का ऐक्य, प्राणतत्त्व, सृष्टि विज्ञान, कर्मवाद पुनर्जन्मवाद तथा नैतिकता के आधार पर प्रतिपादित किया गया है।

‘उपनिषदों की भाषा एवं प्रतिपादन शैली’ इस उप अध्याय के अन्तर्गत उपनिषदों में प्रयुक्त संवाद, कथा, समन्वय, अरून्धती न्याय, उपमा, निर्वचन तथा विश्लेषणात्मक आधार पर भाषा-शैली को वर्णित किया गया है।

अन्तिम उप अध्याय **‘उपनिषदों का महत्त्व एवं प्रभाव’** में उपनिषदों के आध्यात्मिक, नैतिक तथा व्यावहारिक महत्त्व को स्पष्ट करते हुए उपनिषदों की भारत तथा विदेशों में बढ़ती ख्याति व लोकप्रियता के प्रभाव को विवेचित करने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय - योगः ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उद्देश्य एवं महत्त्व को सात उप अध्यायों में विभक्त कर योग का अर्थ, परिभाषा, उद्भव, विकास, प्रकार, यौगिक ग्रन्थ, उद्देश्य तथा योग के महत्त्व को विस्तार से वर्णित किया गया है। **‘योग का अर्थ व परिभाषा’** इस उप अध्याय में योग का व्युत्पत्तिपरक अर्थ बताते हुए संस्कृत वाङ्मय में वर्णित योग की विभिन्न परिभाषाओं को तथा आधुनिक आचार्यों द्वारा प्रदत्त परिभाषाओं को परिभाषित किया गया है।

‘योग का इतिहास एवं परम्पराएँ’ इसके अन्तर्गत बताया गया है कि सृष्टि के आरम्भ काल से ही योग विद्या विद्यमान थी। योग विद्या के परिणामस्वरूप ही वैदिक मन्त्रों की रचना हुई। हिरण्यगर्भ को योग का आदि वक्ता बताया गया है साथ ही सात हिरण्यगर्भों का उल्लेख किया गया है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन शक्तियों से योग की प्रमुख तीन परम्पराओं का प्रादुर्भाव बताते हुए योग की विभिन्न शाखाओं को तीन प्रमुख परम्पराओं में वर्गीकृत किया गया है।

‘योग का विकास एवं प्रमुख यौगिक ग्रन्थ’ इस भाग में वैदिक काल से आधुनिक काल पर्यन्त योग के विकास में योगाचार्यों की भूमिका को उजागर करने का प्रयास किया गया है साथ ही विभिन्न यौगिक ग्रन्थों का नामोल्लेख किया गया है।

‘वेद में योग का तत्त्व स्वरूप’ इसके अन्तर्गत वैदिकीय यौगिक तत्त्व को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। वैदिक ज्ञान का संलक्ष्य आत्म तत्त्व की प्राप्ति रहा है और आत्म तत्त्व की प्राप्ति योग विद्या से ही सम्भव है। वैदिक संहिताओं में सप्तनाड़ी, अष्टचक्र, नवद्वार, त्रिगुण, पञ्च प्राणायाम, साधना, उपासना, ध्यान आदि यौगिक क्रियाओं का विवेचन प्राप्त होता है।

‘मुख्य उपनिषदों में योग तत्त्व’ इस उप अध्याय के अन्तर्गत शांकर भाष्यकृत प्रमुख उपनिषदों में ब्रह्म प्राप्ति के उपाय भूत ज्ञानयोग, कर्मयोग, उपासना योग, ध्यान योग, भक्तियोग आदि का वर्णन किया गया है। इन उपनिषदों में योग का लक्षण, योग का स्वरूप, प्राणायाम का क्रम और उसकी महत्ता, योगसिद्धि, योगसिद्धि के पूर्वलक्षण, ध्यानयोग विधि व महत्त्व, ध्यान के लिए उपयुक्त स्थान, शरीरस्थ दस द्वार, दस प्राण, एक सौ एक नाड़ियाँ, मनोनिग्रह तथा अन्तःकरण शुद्धि के विषयों पर भी चर्चा की गई है।

‘योग के विविध प्रकार’ इस भाग में यौगिक ग्रन्थों के अन्तर्गत वर्णित योग के विभिन्न प्रकारों यथा - ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राज योग आदि का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है तथा अन्तिम भाग के अन्तर्गत योग के उद्देश्य एवं महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है।

तृतीय अध्याय - योग उपनिषद्: सामान्य परिचय को पाँच भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग **‘योग उपनिषद् का तात्पर्य’** इसके अन्तर्गत योग उपनिषद् से क्या तात्पर्य है? तथा किन उपनिषदों को योग उपनिषद् कहा गया है? योग उपनिषद् क्या है? इस विषय में विभिन्न विचारकों के मतों को समुपस्थापित कर इसका आशय स्पष्ट किया गया है।

द्वितीय उप अध्याय **‘योग उपनिषदों का रचना काल’** में योग उपनिषदों का काल निर्धारण करने का प्रयास किया गया है हालांकि इनका समय स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं है फिर भी विभिन्न प्रमाणों को प्रस्तुत कर कुछ हद तक समय सीमा को निर्धारित करने का प्रयास किया गया है।

‘योग उपनिषदों की संख्या एवं वर्गीकरण’ इस भाग के अन्तर्गत योग उपनिषदों की संख्या तथा वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न विद्वानों द्वारा

प्रदत्त संख्या को प्रस्तुत कर निष्कर्ष रूप में योग उपनिषदों की संख्या इक्कीस बताई गई है साथ ही किस वैदिक संहिता से कौनसा योग उपनिषद् सम्बद्ध है, इसको भी वर्गीकृत किया गया है।

‘योग उपनिषदों का संक्षिप्त परिचय’ के अन्तर्गत अध्याय, मन्त्र संख्या, उपक्रम, प्रतिपाद्य विषय तथा उपसंहार के रूप में इक्कीस योग उपनिषदों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

‘योग उपनिषदों की भाषा एवं प्रतिपादन शैली’ इस अन्तिम भाग के अन्तर्गत बताया गया है कि योग उपनिषदों में दीर्घसमास व क्लिष्ट पदों का सर्वथा अभाव है। अधिकांश पद्यात्मक अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध हैं तथा वर्णनात्मक, उपदेशात्मक व संवादात्मक शैली प्रयुक्त की गई है।

चतुर्थ अध्याय - प्रमुख योग उपनिषदों में योग तत्त्व मीमांसा में चयनित पाँच योग उपनिषदों का विवेचनात्मक व विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय को पाँच भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग **‘अमृतनादोपनिषद् में योग तत्त्व’** के अन्तर्गत कृष्ण यजुर्वेदीय अमृतनादोपनिषद् के षडंग योग का विवेचन किया गया है। प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क तथा समाधि को योग के छः अंग बताए गए हैं। इन्द्रियों तथा मन को आत्मचिन्तन में लगाना प्रत्याहार, ईश्वर का चिन्तन ध्यान, रेचक, पूरक व कुम्भक ये तीन अंग प्राणायाम के बताकर व्याहृति सहित ओम् के साथ मन ही मन बोलकर गायत्री मन्त्र का तीन बार मन में उच्चारण करना प्राणायाम, मन को आत्मा में लय कर परमात्मा का ध्यान धारणा, शास्त्रानुकूल विचार तर्क तथा जीवात्मा-परमात्मा की समत्व अवस्था समाधि बताई गई है। समाधि सिद्धि के उपायभूत पद्मासन, स्वस्तिकासन तथा भद्रासन इन आसनों का भी उल्लेख किया गया है। प्राणायाम के साथ प्रणव जप का निर्देश देते हुए प्राणायाम के नियम को भी बताया गया है। हृदयद्वार, वायुद्वार, मूर्धद्वार, मोक्षद्वार बिलद्वार, सुषिर द्वार तथा मण्डल द्वार को आत्मदर्शन के सात द्वार बताए गए हैं। प्राण के प्रमाण, स्थान तथा रंग का उल्लेख करते हुए योगाभ्यास के आवश्यक नियमों को बताया गया है तथा अन्त में पुनर्जन्म से मुक्त होकर ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति को योग का उत्कृष्ट फल बताया गया है।

‘योगकुण्डल्युपनिषद् में योग तत्त्व’ इस भाग के अन्तर्गत कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध इस योग उपनिषद् में योगाभ्यास में प्राणसिद्धि को आवश्यक बताकर सर्वप्रथम प्राणसिद्धि के मिताहार, आसन तथा शक्तिचालन इन तीन उपायों की चर्चा की गई है।

मिताहार में योगी के लिए आहार सम्बन्धी आवश्यक निर्देश दिए गए हैं। आसन के अन्तर्गत पद्मासन और वज्रासन को ही दो मुख्य आसन मानकर इनकी क्रियाविधि को वर्णित किया गया है। शक्तिचालन के अन्तर्गत सरस्वती चालन तथा प्राणसंरोध (प्राणायाम) की प्रक्रिया को वर्णित करते हुए इनसे होने वाले लाभ की भी चर्चा की गई है। प्राणायाम का विस्तार से वर्णन किया गया है। प्राणायाम में सूर्यभेदी, शीतली, भस्त्रिका तथा त्रिबन्ध की क्रिया विधि का उल्लेख करते हुए इनसे होने वाले लाभ को भी बताया गया है साथ ही षट्चक्र, खेचरी विद्या का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। कुण्डलिनी के स्वरूप तथा इसकी जागरण विधि बताकर कुण्डलिनी बोध को ब्रह्मप्राप्ति का उपाय बताया है अन्त में योगाभ्यास के दस विधियों का उल्लेख करते हुए इनके परित्याग का निर्देश दिया गया है।

‘त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में योग तत्त्व’ इस भाग के अन्तर्गत कृष्णयजुर्वेदीय त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में मोक्षप्राप्ति हेतु योग के ज्ञानयोग और कर्मयोग ये दो उपाय बताए गए हैं। चित्त को आत्मोत्थान में लगाना ज्ञानयोग तथा शास्त्रानुकूल कर्म करना कर्मयोग बताया गया है साथ ही अष्टांग योग को निर्विशेष ब्रह्म ज्ञान का उपाय बताया है। अष्टांग योग के अन्तर्गत दस यम, दस नियम, सत्रह आसन, प्राणायाम के अन्तर्गत नाड़ी चक्र, नाड़ीस्वरूप, नाड़ी परिगणन, कन्दस्वरूप व स्थान, प्राण का स्थान तथा कार्य को बताते हुए प्राणायाम से पूर्व नाड़ी शोधन प्राणायाम को आवश्यक बताया गया है। प्राणायाम के तीन स्तरों व लाभ की चर्चा की गई है। चित्त का अन्तर्मुखी भाव प्रत्याहार व चित्त का निश्चल भाव धारणा है। धारणा में पञ्चमहाभूतों का चिन्तन बताया गया है। धारण के अन्तर्गत पञ्चमहाभूतों का शरीरस्थ स्थान, रंग, आकृति तथा ध्यानावधि बताई गई है। चिन्मात्रस्वरूप का चिन्तन ध्यान तथा ध्यान का पूर्णरूप से विस्मरण होना समाधि कही गई है।

‘योगचूडामण्युपनिषद् में योग तत्त्व’ इस भाग के अन्तर्गत सामवेद से सम्बद्ध योगचूडामण्युपनिषद् में षडंग योग का विस्तृत वर्णन किया गया है। रज (इडा) और वीर्य (पिंगला) अर्थात् चन्द्र नाड़ी और सूर्य नाड़ी की प्राणवायु के मिलन को योग कहा है।

षडंग योग के प्रथम अंग आसन के अन्तर्गत सिद्धासन व पद्मासन इन दो आसनों के साथ बद्धपद्मासन की भी चर्चा की गई है। द्वितीय अंग प्राणायाम के विवेचन से पूर्व षट्चक्र, पञ्चप्राण, पञ्च उपप्राण तथा नाड़ी परिगणन को विवेचित करते हुए नाड़ी शोधन प्राणायाम की विधि व लाभ को वर्णित किया गया है। अजपा

जप, कुण्डलिनीबोध, त्रिबन्ध, खेचरीमुद्रा व महामुद्रा का भी विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस योग उपनिषद् के अनुसार प्राणायाम का अभ्यास जितना अधिक किया जायेगा उतनी ही शीघ्रता से समाधि की प्राप्ति होगी अतः इस उपनिषद् में प्राणायाम की विस्तृत विवेचना की गई है।

तृतीय अंग के रूप में बारह प्राणायाम से होने वाले प्रत्याहार को लाभ सहित वर्णित किया गया है। इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाने के अभ्यास को प्रत्याहार कहा गया है।

चतुर्थ अंग के रूप में बारह बार प्रत्याहार अभ्यास से होने वाली धारणा को वर्णित किया गया है। बारह बार धारणा के अभ्यास से ध्यान रूपी पञ्चम अंग को स्पष्ट किया गया है तथा अन्त में योग की उच्च अवस्था समाधि को विवेचित किया गया है।

‘योगतत्त्वोपनिषद् में योगतत्त्व’ इसके अन्तर्गत कृष्णयजुर्वेद से सम्बन्धित योगतत्त्वोपनिषद् में योग की आरम्भ, घट, परिचय तथा निष्पत्ति अवस्थाओं के आधार पर योग के मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग, राजयोग ये चार प्रकार बताए गए हैं। इनमें हठयोग व राजयोग का विस्तृत वर्णन किया गया है। मन्त्रयोग को मातृका से युक्त मन्त्र का बारह वर्षों तक जप करने वाला बताया गया है। चित्त का लय होना लययोग है। हठयोग के अन्तर्गत बारह मुद्राओं का वर्णन किया गया है। अष्टांग योग का अभ्यास ही राजयोग है। इसमें यम के अन्तर्गत आहार को तथा निमय के अन्तर्गत अहिंसा को प्रमुख माना है। आसन योगांग के अन्तर्गत सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन तथा भद्रासन इन चार आसनों को ही मुख्य बताया गया है। चतुर्थ योगांग प्राणायाम के अन्तर्गत केवल कुम्भक प्राणायाम का विवेचन किया गया है साथ ही प्राणायाम विधि, मात्रा व लाभ को प्रतिपादित किया गया। प्राणायाम हेतु उचित आसन व स्थान को भी उल्लेखित किया गया है। इन्द्रियों को विषयों से हटाना प्रत्याहार तथा पञ्चमहाभूतों में धारणा का अभ्यास धारणा बताई गई है। धारणा के अन्तर्गत पञ्चमहाभूतों का शरीरस्थ स्थान, देवता, रंग, आकृति, बीजाक्षर, समयावधि तथा परिणाम की चर्चा की गई है। इष्ट देवता के ध्यान को ध्यान बताया गया है तथा ध्यान के सगुण तथा निर्गुण दो प्रकार बताए गए हैं। अन्तिम योगांग समाधि को जीवात्मा-परमात्मा का ऐक्य भाव कहा गया है अन्त में, समाधि का फल, योगाभ्यास के विघ्न तथा यौगिक आहार व दिनचर्या को वर्णित किया गया है।

पञ्चम अध्याय - प्रमुख उपनिषदों का अन्य यौगिक ग्रन्थों से तुलनात्मक अध्ययन

में प्रमुख योग उपनिषदों का श्रीमद्भगवद्गीता, पातञ्जलयोगसूत्र तथा घेरण्डसंहिता इन यौगिक ग्रन्थों से तुलनात्मक अध्ययन किया गया है ताकि प्रमुख योग उपनिषदों के योगतत्त्व का और अधिक व्यापक, तुलनात्मक व समीक्षात्मक अध्ययन कर इनकी वर्तमान सन्दर्भ में प्रासंगिकता सिद्ध की जा सके। इस अध्याय को तीन उप अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम उप अध्याय **‘पातञ्जल योगसूत्र और प्रमुख योग उपनिषद्’** में पाया गया कि पातञ्जलि ने चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहा है तथा अभ्यास व वैराग्य द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध बताया है अतः चित्तवृत्तियों तथा उनके आश्रयों चित्तभूमियों का विस्तार से वर्णन किया गया है साथ ही अष्टांग योग, क्रियायोग, समाधि सिद्धि के विघ्न, कैवल्य, ईश्वर विचार तथा योग सिद्धियों का भी विवेचन किया गया है, वहीं प्रमुख योग उपनिषदों में चित्तवृत्तियों का इस प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता। इनमें प्राणों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है अतः प्राणों के प्रकार, प्रमाण, स्थान आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। इन योग उपनिषदों में अष्टांगयोग तथा क्रियायोग के साथ-साथ षडंगयोग, मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग को भी प्रतिपादित किया गया है। इनमें प्राणायाम से पूर्व नाड़ी शोधन प्राणायाम को आवश्यक माना है साथ ही प्राणायाम के विभिन्न प्रकारों को भी वर्णित किया गया है। इन उपनिषदों में नाड़ी, प्राण, मुद्रा, बन्ध, कन्द आदि को विवेचित करते हुए योगी के आहार व दिनचर्या का भी निर्देश दिया गया है। योगसूत्र में किसी आसन विशेष का उल्लेख नहीं किया गया है जबकि उन उपनिषदों में विभिन्न आसनों की क्रियाविधि को उल्लेखित करते हुए लाभ को भी वर्णित किया गया है। इस उप अध्याय में बताया गया है कि प्रमुख योग उपनिषद् हठयौगिक क्रियाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं जबकि पातञ्जल योग सूत्र चित्तवृत्तियों के संयम पर आधारित एक मानसिक अनुशासन है।

‘श्रीमद्भगवद्गीता और प्रमुख योग उपनिषद्’ इस उप अध्याय में बताया गया है कि गीता में समत्व भाव, चित्त की स्थिरता तथा सामर्थ्य के अर्थों में योग शब्द को प्रयुक्त किया गया है। मोक्ष साधन के रूप में प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वसामर्थ्यानुसार ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग का उपदेश दिया गया है साथ ही शरीर की नश्वरता, आत्मा की अमरता, स्थितप्रज्ञ, वर्णव्यवस्था, त्रिगुण, पुनर्जन्म, मोक्ष तथा दैवी एवं आसुरी सम्पदाओं को भी वर्णित किया गया है। गीता में सगुण व निर्गुण ब्रह्म के ध्यान की बात कही गई है जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में सगुण-

निर्गुण के साथ ईश्वर के वाचक प्रणव की उपासना या जप को विशेष महत्त्व दिया गया है। गीता में प्रमुख योग उपनिषदों की भाँति ध्यान योग्य उचित स्थान, शारीरिक मानसिक स्थिति का तथा आहार-विहार की चर्चा की गई है। गीता में यम-नियम का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु सुरी-आसुरी प्रवृत्तियों के लक्षण व स्वरूप को सम्यक् रूप से प्रतिपादित किया गया है। इसमें मन व इन्द्रियों के संयम पर विशेष बल दिया गया है जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में मन व प्राणों के नियन्त्रण पर विशेष बल दिया गया है। गीता में दर्शन, धर्म और नीति का अद्भुत समन्वय है। यह अध्यात्मवाद के व्यावहारिक रूप को प्रस्तुत करती है जबकि प्रमुख योग उपनिषद् हठयोग व राजयोग को प्रतिपादित करते हैं।

‘घेरण्ड संहिता और प्रमुख योग उपनिषद्’ इस उप अध्याय के अन्तर्गत बताया गया है कि घेरण्ड संहिता हठयोग आधारित ग्रन्थ है, जिसमें हठ शब्द को घटस्थ योग के रूप में प्रतिपादित किया गया है। शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक शुद्धि हेतु इस ग्रन्थ में सप्तांग योग का विवेचन किया गया है। प्रथम अंग के रूप में शरीर शुद्धिकरण हेतु षट्कर्म की इक्कीस क्रियाओं का उल्लेख किया गया है, दूसरी ओर षट्कर्म के विषय में प्रमुख योग उपनिषद् मौन हैं। द्वितीय योगांग के रूप में बत्तीस आसनों के लाभ को क्रियाविधि सहित वर्णित किया गया है। इन आसनों में सोलह आसन कुछ क्रियाविधि की विभिन्नताओं के साथ प्रमुख योग उपनिषदों में भी वर्णित है। चार बन्ध व पञ्च धारणाओं सहित पच्चीस मुद्राओं का विवेचन मुद्रा योगांग के अन्तर्गत किया गया है जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में मुद्रा, बन्ध व धारणाओं को पृथक्-पृथक् विवेचित किया गया है। प्राण व मन को स्वाभाविक व सरल करने हेतु घेरण्ड संहिता में प्राणायाम से पूर्व प्रत्याहार योगांग को बताया है। प्रमुख योग उपनिषदों की भाँति प्राणायाम से पूर्व नाड़ी शोधन को आवश्यक माना है साथ ही प्राणायाम से पूर्व प्राणायाम हेतु उपयुक्त स्थान, काल व मिताहार की भी चर्चा की गई है। घेरण्ड संहिता के स्थूल, ज्योति तथा सूक्ष्म इन तीन ध्यान के भेदों का अन्तर्भाव प्रमुख योग उपनिषदों ने सगुण व निर्गुण ध्यान में ही करने का प्रयास किया गया है। सप्तांग योग के अन्तिम अंग के रूप में समाधि को वर्णित कर समाधि के छः भेद बताए गए हैं जबकि प्रमुख योग उपनिषदों में इस प्रकार का कोई भेद प्राप्त नहीं होता है।

षष्ठ अध्याय - प्रमुख योग उपनिषदों की वर्तमान प्रासंगिकता इस अध्याय में प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित यम, नियम, आसन, बन्ध, मुद्रा, प्राणायाम, प्रत्याहार,

कुण्डलिनी जागरण, षट्चक्र का ध्यान, अजपा जप, प्रणव उपासना, धारणा, ध्यान, समाधि तथा यौगिक आहार व दिनचर्या की वर्तमान सन्दर्भ में उपादेयता को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत अध्याय को तेरह उप अध्यायों में विभक्त किया गया है। **‘यम-नियम की उपादेयता’** के अन्तर्गत बताया गया है कि इनके पालन से व्यक्ति के आचरण व वृत्तियों में सुधार आता है। यम सामाजिक नैतिकता या अनुशासन है, जो सामाजिक व बाह्य क्रियाओं को सामंजस्य पूर्ण बनाता है तथा निर्देश देता है कि हमें अपने समाज में किस तरह का व्यवहार करना चाहिए। नियम व्यक्तिगत नैतिकता या आन्तरिक अनुशासन है जिससे व्यक्ति स्व जीवन का नियमन कर आत्मोत्थान कर सकता है। **‘विभिन्न आसनों की उपादेयता’** इसके अन्तर्गत इन उपनिषदों में वर्णित अठारह योगासनों को सचित्र प्रस्तुत कर इनसे होने वाले लाभ को वर्णित किया गया है। **‘यौगिक बन्धों की उपादेयता’** इस भाग में चार बन्धों को सचित्र प्रस्तुत कर बन्ध लगाने से होने वाले लाभ को वर्णित किया गया है। **‘विभिन्न यौगिक मुद्राओं की उपादेयता’** इसके अन्तर्गत इन उपनिषदों में वर्णित आठ मुद्राओं की आधुनिक सन्दर्भ में उपयोगिता को स्पष्ट किया गया है। **‘प्राणायाम की उपादेयता’** इस भाग के अन्तर्गत बताया गया है कि प्राणायाम प्राणमय कोश के भीतरी विभिन्न प्राणों को ऊर्जा प्रदान कर इसे सन्तुलित व नियमित करता है जिससे कि शरीर के प्रत्येक अंग में प्राण ऊर्जा का नियमित संचार होने लगता है। प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित नाडी शोधन, सूर्यभेदन, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, केवली व उद्गीथ इन प्राणायामों के अभ्यास से हाने वाले लाभ को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वर्णित किया गया है।

‘कुण्डलिनी बोध व षट्चक्र के ध्यान से लाभ’ इस उप अध्याय के अन्तर्गत बताया गया है कि कुण्डलिनी जागरण से अनेक दिव्य व अलौकिक सिद्धियाँ मिलती हैं तथा अतीन्द्रिय शक्तियों तथा अद्भुत कार्यक्षमताओं का विकास होता है। साधक स्वार्थ व क्षुद्र वासनाओं को त्याग कर परमार्थ में लग जाता है। अज्ञान व भ्रम का नाश होकर आत्मज्ञान या मुक्ति की प्राप्ति होती है। षट्चक्र भेदन से ही कुण्डलिनी जाग्रत होती है। षट्चक्र ध्यान से शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकारों का शमन होता है इस प्रकार षट्चक्रों के ध्यान से होने वाले लाभ को वर्तमान सन्दर्भ में वर्णित किया गया है। **‘प्रत्याहार की उपादेयता’** इसके अन्तर्गत प्रत्याहार को आध्यात्मिक व नैतिक श्रेयस् हेतु आवश्यक बताया गया है। अध्ययन-अध्यापन, असंयमित इच्छाओं व वासनाओं से उत्पन्न व्यावहारिक तथा मानसिक समस्याओं के समाधानार्थ प्रयुक्त

किया जाने वाला उपयुक्त अभ्यास बताया गया है साथ ही आधुनिक मनश्चिकित्सकीय उपचार का सर्वोत्कृष्ट साधन बताया गया है। **‘धारणा, ध्यान व समाधि की उपादेयता’** इस उप अध्याय के अन्तर्गत धारणा, ध्यान व समाधि से होने वाले लाभ को पृथक्-पृथक् वर्णित किया गया है। धारणा मानसिक विकारों को दूर कर मानसिक शान्ति प्रदान करती है तथा स्मृति व ध्यान को बेहतर बनाने में सहायक बताई गई है। ध्यान से अस्मिता या अहं का भाव नष्ट हो जाता है। यह नकारात्मकता को दूर कर सकारात्मक भावनाओं को विकसित करता है तथा मानसिक, आध्यात्मिक व भावनात्मक स्थिति में गुणवत्तापूर्ण सुधार करता है। समाधि योग का लक्ष्य व सर्वोच्च पराकाष्ठा है। इसे ही कैवल्य, मोक्ष या आत्मसाक्षात्कार कहा गया है। व्यक्ति को अपने आप को जानने व वास्तविक स्वरूप में स्थित होने के लिए समाधि आवश्यक बताई गई है।

‘अजपा जप साधना की उपादेयता’ इसके अन्तर्गत बताया गया है कि अजपा जप स्वाभाविक रूप से बिना प्रयास के श्वास-प्रश्वास के साथ हंस शब्द का उच्चारण करके किया जाता है। प्रत्येक वाणी श्वास-प्रश्वास के साथ-साथ इसका जप करता है। यह योग का आसान व शक्तिशाली अभ्यास है। इससे न केवल चेतना का विकास होता है बल्कि आत्मसाक्षात्कार और मानसिक शान्ति की भी प्राप्ति होती है। **‘यौगिक आहार व दिनचर्या से लाभ’** इसमें बताया गया है कि आहार व दैनिकचर्या का हमारे मनोदैहिक स्वास्थ्य पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है अतः प्रमुख योग उपनिषदों में आहार-विहार व आचार-विचार के महत्त्व को स्वीकार कर शुद्ध व सात्त्विक आहार तथा संतुलित दिनचर्या पर जोर दिया गया है साथ ही अति आहार, अनाहार, अतिजागरण, आलस्य आदि के त्याग का निर्देश दिया गया है। **‘विभिन्न क्षेत्रों में प्रमुख योग उपनिषदों की उपादेयता’** इस भाग के अन्तर्गत प्रमुख योग उपनिषदों में वर्णित योग तत्त्व की शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, सामाजिक व आध्यात्मिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में, नैतिक व चारित्रिक क्षेत्र में, शैक्षिक क्षेत्र में, आर्थिक क्षेत्र में, खेलकूद के क्षेत्र में तथा एकता और सद्भाव के क्षेत्र में योग की उपादेयता को विस्तारपूर्वक विवेचित किया गया है। **‘विभिन्न आयु वर्ग के व्यक्तियों लिए प्रमुख योग उपनिषदों की उपादेयता’** इसके अन्तर्गत बच्चों, किशोरों, वृद्धों तथा गर्भवती महिलाओं के लिए उपयोगी योगाभ्यासों को वर्णित कर उनसे होने वाले लाभ को भी बताया गया है। अन्तिम उप अध्याय **‘विभिन्न रोगों के उपचार में प्रमुख योग उपनिषदों के उपयोगी योगाभ्यास’** के अन्तर्गत वात, पित्त व कफ दोषों में उपयोगी

योगाभ्यास, अन्तः स्रावी ग्रन्थियों को प्रभावित करने वाले योगाभ्यास तथा अस्थमा, डायबिटीज, मिर्गी, ब्लड प्रेशर, कमरदर्द, पेट सम्बन्धी विकार आदि के उपचार में उपयोगी योगाभ्यासों को उल्लेखित किया गया है।

शोध प्रबन्ध के अन्त में उपसंहार के अन्तर्गत शोध निष्कर्ष, शोध कार्य का सामाजिक अवदान, भावी शोध हेतु सुझाव तथा शोध सारांश प्रस्तुत किया गया है। सन्दर्भ ग्रन्थसूची के अन्तर्गत आधार ग्रन्थ, सहायक ग्रन्थ, शोध पत्र एवं पत्रिका, कोश ग्रन्थ तथा अन्तर्जालीय सन्दर्भों को रखा गया है तथा परिशिष्ट भाग में प्रकाशित शोध पत्र एवं संगोष्ठी पत्र प्रस्तुतीकरण के प्रमाण पत्रों का समावेश किया गया है।

इस शोध प्रबन्ध को सर्वजनसंवेद्य बनाने का पूर्ण प्रयास किया गया है। आशा है कि यह जनसामान्य व योग क्षेत्र में शोध कर रहे शोधार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।



सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ -

1. भारती, परमहंस स्वामी अनन्त, योग उपनिषद् संग्रह (भाग 1-2), चौखम्बा ओरियन्टलिया, दिल्ली, 2015
2. विद्यालंकार, सुभाष, योग उपनिषद : (भाग 1-2), प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2018
3. शर्मा, श्रीराम आचार्य, 108 उपनिषद् (ब्रह्मखण्ड, ज्ञानखण्ड, साधना खण्ड), संस्कृति संस्थान, बरेली, 2023
4. त्रिवेदी, इन्द्राणी, योगशास्त्र-संग्रह, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2024
5. शास्त्री, केशवलाल वी., उपनिषत्संचयनम्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2021
6. बिष्ट, भीमसिंह, 108 उपनिषद् संग्रह, तीन खण्ड, आस्था प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली, 2022
7. प्रभुपाद, स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट, मुंबई, 2011
8. गोस्वामी, नारायण, श्रीमद् भगवद्गीता (वेदव्यास), श्री केशव जी गौडीय मठ, मथुरा, 1997
9. सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द, घेरण्ड संहिता (महर्षि घेरण्ड), योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, 2011
10. भारती, स्वामी अनन्त, घेरण्ड संहिता (महर्षि घेरण्ड), चौखम्बा ओरियन्टलिया, दिल्ली, 2021
11. पतंजलि महर्षि, योगदर्शन, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2013
12. आरण्य, स्वामी हरिहरानन्द, पातञ्जल योगदर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, 2003

सहायक ग्रन्थ

1. शास्त्री, केशव लाल वि., 108 उपनिषद् (तीन खण्ड), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2021
2. द्विवेदी, पारसनाथ, वैदिक साहित्य का इतिहास, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2005

3. राधाकृष्णन्, भारतीय दर्शन (भाग-1), राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 2023
4. काला, सरस्वती तथा श्रीवास सुनील कुमार, योग के सिद्धान्त एवं आधारभूत, तत्त्व, किताब महल, नई दिल्ली, 2022
5. सरस्वती, स्वामी विज्ञानानन्द, योग विज्ञान, योग निकेतन ट्रस्ट, ऋषिकेश, 2007
6. दशोरा, नन्द लाल, योग साधना प्राणायाम विधि और ध्यान से लाभ, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, 2012
7. पाण्डेय, राजकुमारी, भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2018
8. शर्मा, विनय कुमार, उपनिषद् योग तत्त्व दर्शन, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 2022
9. यादव, अच्छे लाल, योग परम्परा और आयुर्वेद, कला प्रकाशन, वाराणसी, 1993
10. वेदालंकार, रघुवीर, उपनिषदों में योग-विद्या, के.सी. पब्लिशर्स, दिल्ली, 1991
11. परमहंस, योगेश्वरानन्द, आत्म विज्ञान, योग निकेतन ट्रस्ट, दिल्ली, 1997
12. शर्मा, रामनाथ तथा शर्मा अर्चना, भारतीय मनोविज्ञान, अटलांटिक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2005
13. विश्नोई, एम., उपनिषद् सार संग्रह, किताब महल, दिल्ली, 2019
14. सहाय, ज्ञानशंकर, हठयोगप्रदीपिका (स्वात्माराम), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2021
15. त्रिलोक, राजीव जैन, सम्पूर्ण योग विद्या, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल, 2018
16. कुमार, कामाख्य, योग महाविज्ञान, स्टैंडर्ड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011
17. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, योग पब्लिकेशन्स, मुंगेर, 2017
18. सिंह हरिनाम तथा जगदानन्द, योग एवं वैकल्पिक चिकित्सा द्वारा रोग निवारण, चेतना प्रकाशन, वाराणसी, 2010
19. भोगल, रणजीत सिंह, योग एवं मानसिक स्वास्थ्य, कैवल्य धाम समिति, लोनावाला, 2022

20. उपाध्याय, सुनील कुमार, षट्चक्रोपासना कुण्डलिनी योग एवं श्री विद्या, परिमल पब्लिकेशन प्रा. लि. दिल्ली, 2019
21. बालकृष्ण, आचार्य, विज्ञान की कसौटी पर योग, दिव्या प्रकाशन, हरिद्वार, 2007
22. नागेन्द्र, एच.आर, प्राणायाम काल और विज्ञान, स्वामी विवेकानन्द योग प्रकाशन, बैंगलौर, 2021
23. गहराना, वाई.डी., योग विज्ञान एवं निसर्गोपचार, सुमित प्रकाशन, आगरा, 2019
24. विवेकानन्द स्वामी, व्यक्तित्व का विकास, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2001
25. सरस्वती, स्वामी निरजानन्द, प्राण एवं प्राणायाम, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, 2012
26. तीर्थ, आचार्य वेदान्त, (व्याख्याकार), ऋग्वेद (भाग 1-4) मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2023
27. तीर्थ, आचार्य वेदान्त (व्याख्याकार), यजुर्वेद, मनोजपब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2023
28. तीर्थ, आचार्य वेदान्त (व्याख्याकार), अथर्ववेद (भाग 1-2), मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2023
29. तीर्थ, आचार्य वेदान्त (व्याख्याकार) सामवेद, मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2023
30. सरस्वती, स्वामी अनन्तानन्द, उपनिषद्, तत्त्वनिर्णय, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1968
31. शास्त्री, राजवीर, उपनिषद् भाष्य (भाग 1-2), आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, 2017
32. रामदेव, स्वामी, प्राणायाम रहस्य, दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार, 2009
33. गौड़, अक्षय कुमार, उपनिषद् योग विज्ञान, किताब महल, आगरा, 2021
34. जोशी, हरिशंकर, वैदिक योगसूत्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1974
35. हसुरकर, श्रीपद शास्त्री, भारतीय दर्शन एवं दिग्दर्शन, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1964
36. उपाध्याय, आचार्य बलदेव, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, चौखम्बा ओरियन्टालिया, दिल्ली, 2017

37. सरस्वती, स्वामी कर्मानन्द, रोग और योग, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, 1998
38. शर्मा, मधुर, प्राणायाम एवं अन्य योगासन, प्रत्यक्ष इंटरप्राइजेज, दिल्ली, 2014
39. स्वयमानन्द, योगासन सबके लिए (120 चित्रों से सुसज्जित), परमहंस प्रकाशन, मथुरा, 2012
40. जैन, रश्मि, योग द्वारा स्वास्थ्य, नवोदय प्रकाशन, सहारनपुर, 1988
41. मंगल, एस.के. उमा तथा माना, सतीश कुमार, योग शिक्षा, आर्य बुक नई दिल्ली, 1996
42. सरस्वती, सत्यानन्द, योग निद्रा, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, 1992
43. सत्यपाल, वैज्ञानिक योगासन और स्वास्थ्य, किताब घर, दिल्ली, 1997
44. आत्मानन्द, अक्षय, योगासन और प्राणायाम, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 2010
45. आर्यंगार, बी.के.एस., सभी के लिए योग, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2011
46. राम, शिवजी, सुगम योग शिक्षा, आर्य पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1996
47. कौशल, रमेश, योग महिमा, फिनिक्स बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2017
48. शर्मा, प्रमिला, योग: रोग से आरोग्य तक, पिंगसिटी पब्लिशर्स, जयपुर, 2003
49. मलिक, जयवीर सिंह, योगाभ्यास प्राकृतिक उपचार, ममता प्रकाशन, दिल्ली, 2012
50. मिश्र, जगदीश चन्द्र, भारतीय दर्शन, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2012
51. पुरुषार्थी, योगेन्द्र, वेदों में योग विद्या, यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार, 1999
52. पातञ्जल योग प्रदीप, गीता प्रेस गोरखपुर, 1999
53. कुमार, नवनीत, योगासनों के स्वरूप एवं उनकी वैज्ञानिकता, आइडियल पब्लिकेशन, जयपुर, 2019
54. आर्यंगार, बी.के.एस., योगदीपिका, आरियंट लॉन्गमैन प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद, 2005
55. ब्रह्मचारी, धीरेन्द्र, यौगिक सूक्ष्म व्यायाम (प्रथम पुष्प), धीरेन्द्र योग प्रकाशन, दिल्ली, 2007
56. शर्मा, वासुदेव, सरल योग शिक्षा, जीवन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2015
57. योग, विवेकानन्द केन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, चैन्नई, 2019

58. शर्मा, शेखर, दैनिक जीवन में योग, निवेदिता प्रकाशन, जयपुर, 2009
59. सिंह, रामहर्ष, स्वस्थवृत्त-विज्ञान, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2007
60. ज्योतिर्मयानन्द, व्यावहारिक योग, इंटरनेशनल योग सोसाइट, गाजियाबाद, 1999
61. उपाध्याय आचार्य बलदेव, संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास (प्रथम खण्ड-वेद), उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, प्रथमसंस्करण, वि.सं. 2052
62. कुमारी, किरण, वैदिक साहित्य और संस्कृति (द्वितीय भाग), न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली, 2001
63. खेतान, चन्द्र प्रकाश, भारत एवं उसकी संस्कृति की महानता, श्री अरविन्द खेतान, झन्झुनू (राज.), 2015
64. गुप्त, रामेश्वर दयाल, वैदिक वाङ्मय में विज्ञान, महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन, 1997
65. गैरोला, वाचस्पति, वैदिक साहित्य और संस्कृति, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2004
66. गुप्ता, एस.एन. दास, भारतीय दर्शन का इतिहास (प्रथमखण्ड), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1988
67. उपाध्याय, आचार्य बलदेव, पुराण विमर्श, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1987
68. उपाध्याय, आचार्य बलदेव, धर्म और दर्शन, शारदा मन्दिर, बनारस, प्रथम संस्करण, 1945
69. गोयन्दका, जयदयाल, श्रीमद् भगवद्गीता (श्रीरामानुज भाष्य), गीताप्रेस, गोरखपुर, 2008
70. गोयन्दका, जयदयाल, ज्ञानयोग का तत्त्व, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि.संवत् 2063
71. सिन्हा, जादुनाथ, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, पब्लिशर्स, दिल्ली, 2008
72. गौतम चमन लाल, गोरक्ष संहिता, संस्कृति संस्थान, बरेली, 2005
73. चरक, महर्षि, चरकसंहिता, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1999
74. रामदेव, स्वामी, योगसाधना एवं योगचिकित्सा रहस्य, दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार, 2020
75. महेशानन्द, स्वामी, शिवसंहिता, कैवल्य धाम, लोनावाला, 1999

76. मिश्र, उमेश, भारतीय दर्शन, हिन्दी समिति, उत्तरप्रदेश, 1975
77. शास्त्री, जगदीश, उपनिषत्संग्रह, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2006
78. सरस्वती, स्वामी दयानन्द, सत्यार्थप्रकाश, राम लाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, 1975
79. भारती, परमहंस, स्वामी अनन्त, सिद्धसिद्धान्तपद्धति (गोरक्षनाथ), चौखम्बा ओरियन्टलिया, दिल्ली, 2014
80. Marshall, Sir Jhon, Mohenjo - Daro and the Indus Civilization, Vol-1, Arthur Probsthain, London W.C. 1931
81. Sharma, N.N Yoga Karnika of Nath Aghoranand An Ancient Treatise on Yoga, Eastern Book Linkers, Delhi, 2022
82. Nagarathna, R and Nagendra, HR, Positive Health, Swami Vivekanand Yoga Prakashana, Bangalore, 2022
83. Ananthanraman, T.R. , Acient yoga and modern science, Munshiram manoharlal publishers PVT.Ltd. , New Delhi, 1996
84. Bhavanani, A.D. , A. primer of yoga Theory, Dhivyananda creations , Pondicherry , 2008
85. Bhogal, R.S., Yoga and modern Psychology , Kaivalyadhama Smym Samiti, Lonnvala , 1987
86. Devi , I , Yoga the technique of Health and Happiness, Jaico Publishing House, Bombay, 1987
87. Prajnanananda, swami, Thoughts on yoga , Upanishads and Units , RamaKrishna Vedanta math , Calcutta, 1991
88. Ayengar, T.R.Srinivasa , The yoga upanishads , New Bhartiya Book Corporations , New Delhi, 2019
89. Singh, N.K., 20 upanishads of the yoga , Global Academic Publishers and Distributers, Delhi, 2025

पत्र एवं पत्रिकाएँ -

1. कल्याण, योगांक, गीताप्रेस, गोरखपुर, विक्रम सं. 2077
2. कल्याण, योग तत्त्वांक, गीताप्रेस, गोरखपुर, विक्रम सं. 2065
3. कल्याण, उपनिषद् अंक, गीता प्रेस, गोरखपुर, विक्रम. सं. 2080
4. अखण्ड ज्योति (मासिक पत्रिका), अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
5. युग निर्माण योजना (मासिक पत्रिका), युग निर्माण प्रेस, मथुरा
6. योग सन्देश (मासिक पत्रिका), पतंजलि योग संस्थान, हरिद्वार
7. योगदा सत्संग (वर्षिकांक), योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इण्डिया, रांची
8. योग विद्या (मासिक पत्रिका), योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार

9. योजना, योग विशेषांक (मासिक पत्रिका), सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
10. कुरुक्षेत्र, योग विशेषांक (मासिक पत्रिका), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार
11. कुंवर जयसिंह, आधुनिक जीवन में योग की प्रासंगिकता, JARSSC, VOL-5 Issue-1 मार्च 2022
12. रुद्र, शिवराज, मानव जीवन के सर्वांगीण विकास में योग शिक्षा, श्रीनालन्दा, VOL-2 Issue-1 मई 2023
13. सैनी, नेहारानी, गौतम, रुद्रदीप एवं प्रजापति, धवल उपनिषदों में बन्ध एवं उनकी वैज्ञानिक विवेचना, IJCRT, VOL-10, Issue-1, जनवरी 2022

कोशग्रन्थ -

1. आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत-हिन्दी-कोश, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2015
2. भार्गव, दयानन्द, वेदविज्ञान-विश्वकोश, रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर, 2018
3. शास्त्री, हरगोविन्द, अमरकोष (अमरसिंह), चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2008
4. विद्यालंकार, सुभाष योग उपनिषद् कोश, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2021
5. सूर्यकान्त, वैदिक कोश, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2012
6. Potter, Karle H., Encyclopedia of Indian Philosophy, Pratibha Parkashan, 2001
7. Wilson, H.H., Sanskrit English Dictionary, Nag Publications, Delhi, 1979

अन्तर्जालीय सन्दर्भ -

1. [https:// egyankosh.ac.in](https://egyankosh.ac.in)
2. [https:// hi.wikipedia.org](https://hi.wikipedia.org)
3. [https:// Sanskrit documents.org](https://Sanskritdocuments.org)
4. [https:// gitaseva.org/books](https://gitaseva.org/books)
5. [https:// www.Pustak.org](https://www.Pustak.org)
6. [https:// www.scribd.com](https://www.scribd.com)
7. [https:// archive.org](https://archive.org)
8. [https:// Ved .com](https://Ved.com)
9. [https:// yoga. ayush.gov.in](https://yoga.ayush.gov.in)
10. [https:// www.nios.ac.in](https://www.nios.ac.in)
11. [https:// epustaklay.com](https://epustaklay.com)

12. [https:// yogamagarine.com](https://yogamagarine.com)
13. [https:// yogalifelive.com](https://yogalifelive.com)
14. [https:// yoga.ayush.gov.in](https://yoga.ayush.gov.in)
15. [https:// Shodhagangtri.inflibnet.ac](https://Shodhagangtri.inflibnet.ac)
16. [https:// Shodhaganga.Inflibnet.ac.in](https://Shodhaganga.Inflibnet.ac.in)

प्रकाशित शोध-पत्र



ISSN 2348-3857

Research Reinforcement

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

रिसर्च रिइन्फोर्समेंट

Volume 11

Issue 1

May 2023 - October 2023

Research Reinforcement

(A PEER REVIEWED INTERNATIONAL REFEREED JOURNAL)

Contents

S.No.	Particulars	Page No.
1.	भारत में बदलता शिक्षा का स्वरूप डॉ. रोहित कुमार जैन, ललितपुर (उत्तर प्रदेश)	1
2.	ब्राह्मण ग्रंथों में उल्लेखित यज्ञ की अवधारणा में निहित पर्यावरण चेतना डॉ. भावना पारीक, जयपुर (राजस्थान)	7
3.	राजस्थान में पंचायती राज व्यवस्था में महिला राजनीतिक सहभागिता प्रियंका रानी, फरीदाबाद (हरियाणा)	17
4.	ऐतिहासिक उपन्यास : इतिहास लेखन में प्रयोग और समस्याएँ सुरेंद्र सिंह, जयपुर (राजस्थान)	23
5.	भगवद्गीता का नीतिशास्त्र : निष्काम कर्म योग—एक दार्शनिक विश्लेषण डॉ. मीनाक्षी श्रीवास्तव, जयपुर (राजस्थान)	30
6.	पंचायती राज पर गांधी के विचार डॉ. देवकान्ता शर्मा, भीलवाड़ा (राजस्थान)	34
7.	पूर्वी राजस्थान नहर परियोजना : चुनौतियाँ व समाधान डॉ. आशुतोष मीणा, दौसा (राजस्थान)	39
8.	भारतीय ज्ञान परंपरा में सूत्र साहित्य का योगदान नीलम शर्मा, जयपुर (राजस्थान)	44
9.	राजनीतिक सशक्तिकरण एवं लैंगिक समानता: भारतीय परिदृश्य एवं चुनौतियाँ डॉ. श्रवण कुमार सैनी, झुंझुनूं (राजस्थान)	48
10.	स्वाधीनता आंदोलन में गांधी की पत्रकारिता डॉ. सुषमा पाण्डेय, टोंक (राजस्थान)	52
11.	रूस-यूक्रेन संघर्ष डॉ. अनिल कुमार यादव, जयपुर (राजस्थान)	58
12.	वेदों में योगतत्त्व का विवेचन हेमराज पलसानिया एवं डॉ. प्रतिभा किरण, बूंदी (राजस्थान)	65
13.	नगरीकरण के प्रभावस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती स्वास्थ्य सेवाओं पर एक समाजशास्त्रीय अध्ययन डॉ. गौरव गोठवाल एवं सुनीता चौधरी, जयपुर (राजस्थान)	69

S.No.	Particulars	Page No.
14.	राजस्थान में लोक देवता एवं धर्म : सामाजिक परिवर्तन डॉ. रामफूल जाट, जयपुर (राजस्थान)	76
15.	सतत शहरी विकास : जयपुर शहर में प्रकृति और संस्कृति का संरक्षण रूबी मीना, जयपुर (राजस्थान)	81
16.	कालीबंगा एक अद्भुत सभ्यता डॉ. राजेश कुमार मीना, जयपुर (राजस्थान)	88
17.	राजस्थान स्वास्थ्य देखभाल अधिकार अधिनियम, संभावनाएं एवं चुनौतियां आशाराम खटीक, कोटा (राजस्थान) एवं डॉ. अनिल सैनी, सीकर (राजस्थान)	93
18.	महात्मा गाँधी और ग्रामीण विकास डॉ. अभिलाषा कुमारी, सीकर (राजस्थान)	98
19.	पूर्वी राजस्थान में दादू पंथ : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन अर्पित कुमार चित्तौंसिया, जयपुर (राजस्थान)	102
20.	ग्रामीण विकास : डिजिटलीकरण से ग्रामोत्थान डॉ. निमिषा, जयपुर (राजस्थान)	107
21.	भारत में प्रशासनिक सुधार : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन चन्द्रकला शर्मा, सीकर (राजस्थान)	115
22.	सुशासन की भारतीय अवधारणा एवं उसका क्रियान्वयन डॉ. ईश्वर चन्द्र शर्मा, पाली (राजस्थान)	120
23.	संविधान प्रदत्त सामाजिक न्याय के सिद्धान्त की महिलाओं के संदर्भ में सार्थकता डॉ. हंसा शर्मा, जयपुर (राजस्थान)	125
24.	महिला सशक्तिकरण और नारीवाद : अन्या से अनन्या खेमचन्द डीगवाल, बाँसवाड़ा (राजस्थान)	131
25.	साफ्टा की भूमिका : पूर्वोत्तर भारत के विशेष संदर्भ में जीवराज सिंह चारण, अलवर (राजस्थान)	136
26.	पाक-प्रायोजित आतंकवाद का भारत-पाक सम्बन्धों पर प्रभाव डॉ. नीतू शर्मा, जोधपुर (राजस्थान)	141
27.	भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका रेणु कुमारी, जयपुर (राजस्थान)	148
28.	महिलाएं एवं मानवाधिकार संगीता कुमारी, जयपुर (राजस्थान)	152
29.	पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की स्थिति : एक विश्लेषण डॉ. उषा अंजुम खान, जयपुर (राजस्थान)	158
30.	ग्राम सभा : ग्रामीण स्तरीय लोकतांत्रिक व्यवस्था अनूप बाई रत्नावत, जयपुर (राजस्थान)	162

वेदों में योगतत्त्व का विवेचन

हेमराज पलसानिया

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, बूंदी,
कोटा विश्वविद्यालय कोटा (राजस्थान)

डॉ. प्रतिभा किरण

शोध पर्यवेक्षक, आचार्य, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, बूंदी (राजस्थान)



शोध सारांश

वेद मानव जाति के लिए आदिम ज्ञान स्रोत है। वेदों में मनुष्य के मानसिक, शारीरिक एवं चारित्रिक विकास के लिए आवश्यक क्रियाओं, व्यवहार तथा दर्शन का सांगोपांग वैज्ञानिक वर्णन मिलता है। मनुष्य को एक व्यक्तिगत इकाई न मानकर प्रकृति के महत्वपूर्ण घटक के रूप में स्वीकार किया गया है। इस हेतु उसकी अन्तश्चेतना के विकास पर सर्वाधिक बल दिया गया है। अन्तश्चेतना अथवा आन्तरिक विकास में सम्पूर्ण मानसिक तथा शारीरिक विकास के लिए आवश्यक क्रिया-विधियों को सम्मिलित किया जाता है। उनको वैदिक वाङ्मय में योग रूप में अभिहित किया गया है। वेदों में योग तत्त्व से सम्बन्धित विपुल साहित्य विद्यमान है। योग विद्या के बिना वेद रचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। वैदिक ज्ञान का संलक्ष्य आत्म तत्त्व की प्राप्ति रहा है और आत्म तत्त्व की प्राप्ति योग विद्या से ही सम्भव है। वैदिक संहिताओं में मोक्ष प्राप्ति तथा आत्मा से परमात्मा के मिलन के लिए दैवीय उपासना, याज्ञिक कर्म, धार्मिक अनुष्ठान, विद्या प्राप्ति, सत्संगति तथा योगाभ्यास आदि साधनों का प्रतिपादन किया गया है। इसके अन्तर्गत सप्त नाड़ी, अष्टचक्र, नवद्वार, त्रिगुण, पञ्चप्राण, सुषुम्ना नाड़ी, प्राणायाम इत्यादि यौगिक क्रियाओं का सूक्ष्म रूप से वर्णन किया गया है। इस शोध पत्र के द्वारा वर्णनात्मक विधि, ऐतिहासिक विधि एवं अन्वेषण विधियों के माध्यम से विभिन्न वैदिकीय यौगिक तत्त्वों को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर—आत्मतत्त्व, साक्षात्कार, विद्या, यज्ञकर्म, प्राणतत्त्व, युक्त, ब्रह्मविद्, आध्यात्मिक

प्रस्तावना

“सर्वज्ञानमयो हि सः”¹ संसार की सकल विद्याओं का मूल वेदों में सन्निहित है। वेदों का मूल विषय ज्ञान है। अर्थात् लौकिक व अलौकिक विषयों का ज्ञान वेदों में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। आत्म, अध्यात्म, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, खगोल, भूगोल, ज्योतिष, अभियान्त्रिक, गणित, रसायन, भौतिक, औषधि, इतिहास, संस्कृति, धर्म तथा योग इत्यादि विषयों के सम्बन्धित ज्ञान से वेद परिपूर्ण हैं। योग में जीवन की सुषुप्त, अविज्ञात तथा अजाग्रत शक्तियों को जाग्रत कर व्यक्तित्व को परम शिखर तक पहुँचाने की अपूर्व क्षमता है। योग प्राचीन महर्षियों तथा तत्त्ववेत्ताओं द्वारा प्रतिपादित एक सर्वोत्कृष्ट विद्या है, जिसमें कि सम्पूर्ण मानव जाति के समग्र उत्थान, विकास एवं उत्कर्ष

के लिए अनेकानेक उपायोपागम सन्नियोजित हैं। इस प्रकार योग जीवन का एक शान्ति पथ है जिस पथ पर चलकर मनुष्य एक सुव्यवस्थित तथा आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकता है। योग परम्परा तो अनादि काल से ही सृष्टि में किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। भगवान शिव (रुद्र) को योग विद्या के प्रथम गुरु या आदि योगी माना जाता है। भगवान शिव ने सप्त ऋषियों को योग का गूढ़ ज्ञान प्रदान किया फिर सप्त ऋषियों ने अन्य ऋषियों में इस ज्ञान को सञ्चरित किया। वैदिक ऋषियों ने योग साधना द्वारा ध्यान की उच्चावस्था में समाधिस्थ होकर ही मन्त्रों का साक्षात् दर्शन किया इसलिए वैदिक ऋषि साक्षात्कृतधर्मा अर्थात् मन्त्र दृष्टा कहलाये। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के उत्खनन से प्राप्त प्राचीन अवशेषों, योग साधना

करती मूर्तियों व मुद्राओं (सिक्कों) पर उत्कीर्ण ध्यानमुद्रा, नासाग्रदृष्टिमुद्रा, कायोत्सर्गमुद्राओं से योग की प्राचीनता के बारे में जानकारी मिलती है जो इस बात का प्रमाणित करती है कि वैदिक ऋषियों ने योग साधना से ही आत्म तत्त्व तथा सृष्टि विज्ञान को जाना। वैदिक संहिताओं में योग तत्त्व निगूढरूप में विद्यमान है। योग का बीज व फल वेद ही है जैसा कि गोरक्ष शतक में कहा गया है—

द्विजसेवितशाखस्य श्रुति कल्पतरोः फलम्।

शमनं भव तापस्य योगं भजति सज्जनः॥२

अर्थात् वेद रूपी कल्पवृक्ष का फल योगशास्त्र है। इस योगशास्त्र के सेवन से संसार के त्रिविध तापों (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक) का शमन होता है। वैदिक योग साधना का मुख्य ध्येय है आत्मा का परमात्मा के साथ ऐक्य होना। जैसा कि ऋग्वेद में कहा है—हे अग्निदेव! तुम हमारे और हम तुम्हारे बन जाए अर्थात् एक हो जाए और तेरी कृपा से हमारा जीवन सत्कर्म में प्रवृत्त हो जाए।

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्।

स्युष्टे सत्या इहाशिषः॥³

वेदों में योग को एक यज्ञ माना। जो मुख्य रूप से दो प्रकार का है। जिन ब्रह्मादि सूर्यादि नित्य तत्त्वों से अनित्य तत्त्वों का उत्तरोत्तर विकास होता है उसे सृष्टि यज्ञ कहते हैं। तथा जिन अनित्य तत्त्वों से योग द्वारा नित्य तत्त्वों की सृष्टि करके अनुभूति की जाती है, उसे अतिसृष्टि या योगयज्ञ कहते हैं। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय इन्हीं दो प्रकार की सृष्टिओं से ओतप्रोत है। वैदिक ऋषियों ने सृष्टि और अतिसृष्टि के तत्त्वों का साक्षात्कार या अनुभव किया था—

“को ददर्श प्रथमं जायमानम्”⁴

“अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्”⁵
मैंने उस प्राण रूप गायों के स्वामी को साक्षात् करके देखा है।

“अपश्यं ग्रामं वहमानमारादचक्रया स्वधया वर्तमानम्”⁶
अनादि काल से प्रकृति प्राणी समूह को वहन कर रही है और वहन करते हुए मैंने उसे पुरुष को देखा है।

नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम्।

दिवो न सद्यमखसम्॥⁷

मैंने तुमको अपने मन से ज्ञात करते या अनुभूति लेते साक्षात् देखा मैंने प्राणों की समाधि में मन के द्वारा तुम्हें साक्षात् देखा।

एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममन्धि।

आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान्॥⁸

हमारे प्राण-अपान शरीर रूपी रथ से योजित दो वृषभों के समान हैं। हे परमात्मा! तू इन्हें कभी शरीर से अलग न करे। उस जीव के सूक्ष्म प्राण ही उसे लक्ष्य तक पहुँचाते हैं। इन दो प्रकार की सृष्टियों को वैदिक ऋषियों ने द्वे चक्रे, द्वे अरणी, द्वे स्तुती आदि नामों से पुकारा है—“ते द्वे अरणी ययोरजन्मज्जन्मत्रिहितो जातवेदारू”⁹ इन्हीं को देवमार्ग (उत्तरायण), पितृ और मनुष्य मार्ग (दक्षिणायन) कहा है। योगी लोग दक्षिणायनीय आत्मा को ध्यान आदि प्रक्रियाओं से अतिसृष्टि करके उसकी अनुभूति करते हैं अर्थात् उसका साक्षात्कार करते हैं। उसमें नित्य मग्न रहते हैं। ध्यानादि प्रक्रिया में प्राण तत्त्वों को विश्व देवताओं की उपासना में लगा देते हैं। ऋत्विज् का मुख्य कार्य अपने-अपने देवता को उद्दीप्त करना है। सब के देवता उद्दीप्त होते ही समाधि योग यज्ञ को प्रस्तुत करके इनके शरीर उद्दीप्त सोम का पान करने लगते हैं। पुरुष या सोम का भोक्ता नाम इसी योग का पृथक् नाम है। जब योगी सोम का पान करता है तो सोम भी उस योगी के आत्मेन्द्रिय मन आदि का भोग करता है। यह भोग सब करते हैं। आत्मेन्द्रिय मन भी सोम पान की उन्मादकता रूप भोग पाए बिना नहीं रह सकता। इस भोग अवस्था का ही नाम विष्णु का परम पद या परागति कहा जाता है।

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।

विष्णोर्यत्परमं पदम्॥¹⁰

प्राण रूप योगी ऋषि जाग्रत रहकर योग प्रक्रिया में संलग्न होकर विष्णु के परम पद को उद्दीप्त करते हैं अर्थात् प्राणों द्वारा अपने आत्मा रूपी देवताओं की अतिसृष्टि करना है।

कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः॥¹¹

अश्विनी कुमारों की स्तुति करते हुए कहा गया है कि कब प्राण का योग रसमय ब्रह्म के साथ हो सकेगा जिससे हे नासत्य! तुम उस सत्य नामक अमृत तत्त्व को प्राप्त हो सकोगे। यहाँ योग शब्द जोड़ने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

योगानुष्ठान के बिना कर्मों को करना अनुचित बताया है—

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन।

स धीनां योगमिन्वति॥¹²

जिस सदसस्पति देव की दया के बिना विद्वान् का यज्ञ भी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर पाता। वह देव सब मनुष्यों की बुद्धि और

कर्मों के योग (संयोग) को जानता है अतः ज्ञानियों को अपनी बुद्धि एवं कर्मों का योग करना चाहिए। योग से विवेकख्याति व ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति होती है जैसा कि इन्द्र की स्तुति करते हुए कहा गया है—

स घा नो योग अ भुवत्स राये स पुरंध्याम्।

गमद्वाजेभिरा स नः॥¹³

इन्द्र अपनी विभिन्न शक्तियों द्वारा हमें प्राप्त हो जिससे हम विवेकख्याति व ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त कर सकें अर्थात् वह इन्द्र हमारे योग का साधन या साध्य हो।

सविता देव की स्तुति करते हुए कहा गया है कि जैसे महान् स्तुति का पात्र सभी मार्गों का ज्ञाता सविता देव अकेले ही यज्ञ को धारण करता है अर्थात् चित्त को धारण करता है वैसे ही बुद्धिमान् योगीजन सम्पूर्ण जगत् के उत्पन्न करने वाले सम्पूर्ण जगत् के प्रकाशक परमात्मा में मन और बुद्धि को युक्त करते हैं अर्थात् लगाते हैं।

युज्जते मन उत युज्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो

विपश्चितः।

वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः

परिष्टुतिः॥¹⁴

यजुर्वेद के सोहलवें (रूद्राध्याय) में यौगिक मुद्राओं का उल्लेख मिलता है तथा ग्यारहवें अध्याय के प्रारम्भिक सात मन्त्रों में योगाभ्यास का उपदेश दिया गया है। योगाभ्यास से आत्मा-परमात्मा को जोड़कर अविद्या आदि क्लेशों से मुक्त होकर दिव्य गुणों को उत्पन्न करता है अर्थात् नित्य सुखों को भोगता है।

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे।

स्वर्ग्या य शक्त्या॥¹⁵

युजे वां ब्रह्म पूर्वं नमोभिर्वि श्लोकऽएतु पथ्येव सूरैः।

शृण्वन्तु विश्वेऽमृतस्य पुत्राऽआ ये धामानि दिव्यानि

तस्थुः॥¹⁶

योगाभ्यास के ज्ञान को चाहने वाले मनुष्यों को चाहिए कि योग में कुशल विद्वानों का सङ्ग करें। उन के सङ्ग से योग की विधि को जान के ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करें। जैसे विद्वान् का प्रकाशित किया हुआ धर्म मार्ग सब को सुख से प्राप्त होता है, वैसे ही योगाभ्यासियों के सङ्ग से योगविधि सहज में प्राप्त होती है। कोई भी जीवात्मा इस सङ्ग और ब्रह्मज्ञान के अभ्यास के विना पवित्र होकर सब सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता,

इसीलिए उस योगविधि के साथ ही सब मनुष्य परब्रह्म की उपासना करें। योग का नाम योगक्षेम (अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति कराने वाल) भी है क्योंकि योग ही कल्याण या श्रेय का एक मात्र उपाय है—

“योगक्षेमो नः कल्पताम्”¹⁷ “योगो वै क्षेम”

योग साधना में आने वाले विघ्नों को दूर करने के लिए इन्द्र से प्रार्थना की गई है—

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।

सखाय इन्द्रमूतये॥¹⁸

हम मित्र के समान शक्तिशाली इन्द्र का आह्वान करते हैं, जो उन्नति व अति कठिनता से प्राप्त होने वाले पदार्थ (योगे योगे) अर्थात् प्रत्येक उत्तम कार्य में हमारी सहायता करें। ऋग्वेद के एक मन्त्र में सप्तनद्यः (सप्त नादियों) का उल्लेख मिलता है—

तव त्ये सोम पवमान निण्ये विश्वेदेवास्त्रम एकादशासः।

दश स्वधामिरधि सानौ अव्ये मृजन्ति त्वा नद्यः सप्त

यह्नीः॥¹⁹

हे परमात्मा (सोम)! आपके लिए सम्पूर्ण देव तैंतीस देव पांच सूक्ष्म भूत और पांच स्थूल भूतों की सूक्ष्म शक्तियों द्वारा आपके उच्च स्वरूप को शोधित करते हैं तथा सात नदियाँ संस्कार करती हैं। इस मन्त्र में योगविद्या का वर्णन किया गया है और सप्तनद्यः से तात्पर्य सात प्रकार की नाड़ियों से है। सात प्रकार की नाड़ियाँ इडा-पिंगला आदि मनुष्य के शरीर में विद्यमान रहती हैं। योगी पुरुष इन नाड़ियों के द्वारा संयम करके परमात्मा को प्राप्त करता है। सामवेद में ॐ प्रणव है। साम का रस ही यह उद्गीथ है। ॐ प्रणव संगीत विद्या से ही उपजा है और ओंकार योग में एकाग्रता के लिए परम आवश्यक माना है। जब मन की संगीतमय संगति हो जाती है तभी जीव परमात्मा के सच्चिदानन्द स्वरूप की अनुभूति करने लगता है।

अथर्ववेद में मानव शरीर का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया गया है—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।

तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽवृतः॥²⁰

यह मानव शरीर आठ चक्रों (मूलाधार चक्र, स्वधिष्ठान चक्र, मणिपूरक चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र, ललना चक्र, आज्ञा चक्र तथा सहस्रार चक्र) तथा नौ द्वारों (दो आँख, दो

नासिका छिद्र, दो कान, एक मुख, दो मल-मूत्र के द्वार) से युक्त देवों की (अयोध्या) कभी पराजित न होने वाली नगरी है, इसी नगरी में ज्योति से ढका हुआ हिरण्यमयकोश (हृदय) है, जिसमें ज्योति से परिपूर्ण आत्मिक आनन्द का भण्डार परमात्मा विराजमान है। योगी लोग योग-साधना के द्वारा इन चक्रों का भेदन करते हुए उस ज्योतिस्वरूप परमात्मा का दर्शन करते हैं।

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।

तस्मिन् यद् यक्षमात्मवत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥²¹

तीन अरों से युक्त, तीन केंद्रों में स्थित, तेजस्वी हिरण्यमय कोश में जो यजन योग्य आत्मा का स्थान है, उसके अस्तित्व का ज्ञान ब्रह्मविद् व्यक्ति को ही होता है। सामान्यजन अपनी आत्मविस्मृति में ही जीवन जीते हैं। यह अज्ञानता ही जीवात्मा को जन्म-मरण के चक्र में डाले रखती है। योगाभ्यास के द्वारा जब जीवात्मा को अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, तो वह जन्म-मरण के इस चक्र से बाहर हो जाता है।

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।

योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च
नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु॥²²

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस मन्त्र के ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासनाविषय पर कहा है—हे परमेश्वर! अट्ठाईस (दश इन्द्रिय, दश प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, विद्या, स्वभाव, शरीर और बल) कल्याणकारक और सुखकारक होकर एक साथ मेरे उपासना योग को करें। उस योग को और रक्षा को मैं प्राप्त होऊँ अर्थात् योग के द्वारा रक्षा को प्राप्त होऊँ और रक्षा को और योग को अर्थात् रक्षा से योग को मैं प्राप्त होऊँ, इसलिए मेरा तुझ को दिन-रात नमस्कार होवे अर्थात् ये अट्ठाईस तत्त्व हमारी योग साधना के अनुकूल होंगे ताकि हम अध्यात्म योग साधना का अभ्यास कर सकें। इससे हम रक्षा को और उस रक्षा से योग में पूर्णता को प्राप्त कर सकें।

निष्कर्ष

योग का सम्बन्ध किसी व्यक्ति, राष्ट्र, धर्म, जाति या लिङ्ग विशेष से नहीं है अपितु यह तो एक जगत् कल्याणकारिणी अमूल्य निधि है जो प्रत्येक व्यक्ति, राष्ट्र, धर्म, जाति व लिङ्ग की जीवन पद्धति से जुड़ा है। योग जीवन का एक शान्ति पथ है जिस पथ पर चलकर मनुष्य एक सुव्यवस्थित तथा आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकता है। योग एक जीवन विज्ञान है, एक जीवन शैली है, जीने की उत्कृष्ट कला है तथा जीवन

दर्शन है। प्राचीन महर्षियों की योगमय जीवन शैली थी। उनका प्रत्येक कर्म योग से निबद्ध था। उनके विविध क्रियाकलापों तथा आयामों में सर्वत्र योग विद्यमान था। वे अन्तःकरण की शुद्धता के लिए देवताओं की संस्तुति करते थे ताकि वे परम तत्त्व को प्राप्त कर सकें। व्यक्ति का सर्वाङ्गीण विकास कर संयमित, शान्त, संतुलित व स्वस्थ समाज का निर्माण करना तथा परम तत्त्व की अनुभूति करना ही योग का उद्देश्य रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आचार्य मनु, मनुस्मृति 2/7, व्याख्याकार शर्मा गिरधर गोपाल, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2014, पृ.सं. 63
2. योगी गोरखनाथ, गोरक्ष पद्धति श्लोक सं. 6, टीकाकार श्रीवास्तव रामलाल, गोरक्षनाथ मन्दिर गोरखपुर, 2017, पृ.सं. 3
3. आचार्य तीर्थ वेदान्त, ऋग्वेद 8.44.23, भाग-3, मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2022, पृ.सं.331
4. उपर्युक्त, ऋग्वेद 1.164.4 भाग-1, पृ.सं. 339
5. उपर्युक्त, ऋग्वेद 1.164.31 भाग-1, पृ.सं. 344
6. उपर्युक्त, ऋग्वेद 10.27.19 भाग-4, पृ.सं. 263
7. उपर्युक्त, ऋग्वेद 1.18.9 भाग-1, पृ.सं.
8. उपर्युक्त, ऋग्वेद 10.27.20 भाग-4, पृ.सं. 263
9. उपर्युक्त, ऋग्वेद 1.22.21 भाग-1, पृ.सं. 57
10. उपर्युक्त, ऋग्वेद 1.34.9 भाग-1, पृ.सं. 87
11. उपर्युक्त, ऋग्वेद 1.18.7 भाग-1, पृ.सं. 50
12. उपर्युक्त, ऋग्वेद 1.5.3 भाग-1, पृ.सं. 28
13. उपर्युक्त, ऋग्वेद 5.81.1 भाग-2, पृ.सं. 398
14. उपर्युक्त, यजुर्वेद 11.2, पृ.सं. 139
15. उपर्युक्त, यजुर्वेद 11.5, पृ.सं. 140
16. उपर्युक्त, यजुर्वेद 22.22, पृ.सं. 139
17. उपर्युक्त, ऋग्वेद 1.30.7 भाग-1, पृ.सं. 74
18. उपर्युक्त, ऋग्वेद 9.92.4 भाग-4, पृ.सं. 192
19. उपर्युक्त, अथर्ववेद 10.2.31 भाग-4, पृ.सं. 544
20. उपर्युक्त, अथर्ववेद 10.2.32 भाग-1, पृ.सं. 544
21. उपर्युक्त, अथर्ववेद 19.8.2 भाग -2, पृ.सं. 312
22. कल्याण, योगाङ्क, गीताप्रेस गोरखपुर, श्रावण विक्रम संवत् 1992
23. जोशी, पं. हरिशंकर, वैदिक योगसूत्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी, सं. प्रथम, विक्रम संवत् 2024

UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

ISSN: 2581-9925(Online)
Impact Factor 7.555

INTERNATIONAL JOURNAL OF EDUCATION, MODERN MANAGEMENT APPLIED SCIENCE & SOCIAL SCIENCE (IJEMMASSS)

A bi-lingual Multidisciplinary Quarterly Peer Reviewed Refereed Journal

Vol. 07 | No. 01(I) | January-March, 2025

Indexing Status: IJEMMASSS is Indexed and Included in:
CrossRef || International Scientific Indexing (ISI) || General Impact Factor (GIF)
COSMOS Foundation & Electronic Journal Library EZB, Germany
International Institute of Organized Research (I2OR)





**INTERNATIONAL JOURNAL OF
EDUCATION, MODERN MANAGEMENT, APPLIED SCIENCE
& SOCIAL SCIENCE (IJEMMASSS)**

A bi-lingual Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Quarterly Journal

Volume 07

No. 01 (I)

January - March, 2025

CONTENTS

1	A SECONDARY DATA ANALYSIS OF MICROFINANCE INSTITUTIONS' (MFIs') CONTRIBUTION TO INCLUSIVE GROWTH IN INDIA <i>Dr. Sonali Ashutosh Sathe</i>	01-04
2	EVALUATING THE EFFECTIVENESS OF LEARNING MANAGEMENT SYSTEMS FOR B. ED STUDENTS' EDUCATIONAL DEVELOPMENT <i>Dr. Kalindi Lal Chandani</i>	05-10
3	DID YOU KNOW THAT GESTATIONAL DIABETES CAN ALSO OCCUR IN THE FIRST TRIMESTER OF PREGNANCY? <i>Dr. S. Gupta, Dr. R.K. Gupta, Dr. A. Agarwal, Dr. M Sai Sushma Priya & P. Gupta</i>	11-20
4	रोजगार सृजन में मनरेगा के प्रभाव का विश्लेषण: चुरु जिले का एक अध्ययन <i>धन्ना राम जानू एवं प्रो कृष्णा गुप्ता</i>	21-24
5	मानसिक स्वास्थ्य और योग <i>हेमराज पलसानिया एवं डॉ. प्रतिभा किरण</i>	25-28
6	ग्रामीण पर्यटन की राजस्थान की अर्थव्यवस्था में भूमिका <i>कैलाश चन्द्र मीना</i>	29-32
7	भारतीय राजनीति में नैतिक अवमूल्यन : कारण व सुझाव <i>डॉ. सरोज सीरवी</i>	33-38
8	मानव जीवन और कला <i>पुष्पा मीना</i>	39-42
9	महिला सशक्तिकरण और राजस्थान <i>श्री सत्यनारायण खींची</i>	43-49
10	शैक्षिक मनोविज्ञान <i>डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा एवं सुभाष चन्द प्रधान</i>	50-56
11	पेड न्यूज के संबंध में चुनाव आयोग के निर्धारित मानदण्ड: एक आलोचनात्मक अनुशीलन <i>घनश्याम लाल एवं डॉ. अजय कुमार सिंह</i>	57-60
12	महामारी के दौरान विद्यालय शिक्षकों की पारिवारिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति: ऑनलाइन शिक्षा, उत्पन्न अवसरों और भविष्य की संभावनाओं का अध्ययन <i>प्रो. अरविंद कुमार महला एवं कीर्ति पारीक</i>	61-73

मानसिक स्वास्थ्य और योग

हेमराज पलसानिया*
डॉ. प्रतिभा किरण**

सार

आज की भागमभाग भरी जिन्दगी में हम थकान, बेचैनी, चिन्ता, तनाव, अनिद्रा, अवसाद, क्रोध, ईर्ष्या तथा चिड़चिड़ापन आदि मानसिक बीमारियों से जूझ रहे हैं, जो हमारे व्यक्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही हैं परिणामस्वरूप हम सामाजिक समायोजन कर पाने में विफल होते जा रहे हैं। योग मन, शरीर तथा चेतना के बीच उचित तालमेल रखने की एक वैज्ञानिक जीवन शैली है। योग चित्त की चंचलता को दूर कर एकाग्रता और ध्यान की क्षमता को बढ़ाता है, इससे चेतना, भावना और मस्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है फलतः आरोग्य प्रदान करने वाली जीवनदायनी ऊर्जा के प्रवाह में सुधार होता है। मानसिक स्वास्थ्य के लिए चिकित्सापूरक के रूप में योग एक दुष्प्रभावमुक्त, स्थायी व सरल उपचार है। योग आत्मविश्वास, शान्ति, धैर्य, एकाग्रता आदि प्रदान कर शरीर, मन और चेतना के विकास के लिए एक साथ कार्य करता है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य विवरणात्मक विधि द्वारा मानसिक स्वास्थ्य के सन्दर्भ में योग की महत्ता का प्रतिपादन करना है।

शब्दकोश: मानसिक स्वास्थ्य, योग, समायोजन, चेतना, जीवन शैली, तनाव।

प्रस्तावना

“अपामीवामप रित्रधमप सेधत दुर्मति। आदित्यासो युयोतना नो अंहसः”।¹

हे परमात्मन् ! आप हमारे शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के रोगों को दूर कर हमें पवित्र बुद्धि दें, जिससे हम सब पापों से दूर रहकर उन्नतिशील हों। “जीवेम शरदः शतं । बुध्येम शरदः शतं । पुपेम शरदः शततं”² अर्थात् हम बुद्धि व पोषण से युक्त होकर सौ वर्षों तक जीवित रहें।

इस प्रकार वैदिक ऋचाओं में मानव के शारीरिक-मानसिक रूप से स्वस्थ रहकर दीर्घायु की कामना की गई है क्योंकि स्वास्थ्य ही जीवन का महत्वपूर्ण आयाम है। स्वास्थ्य के बिना जीवन लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है अतः एव चरक संहिता में कहा गया है— “धर्मार्थकाममोक्षानामारोग्यं मूलमुत्तम”³ अर्थात् धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का आरोग्य ही प्रधान कारण है। नीरोग शरीर से ही सभी पुरुषार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं। रोग उस सुखमय श्रेय और जीवन का अपहर्ता है।

फिस्ती व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से स्वस्थ होने की दशा को स्वास्थ्य कहा जाता है। व्यक्ति यदि मानसिक रूप से स्वस्थ है तो उसका शारीरिक व सामाजिक स्वास्थ्य भी उत्तम बना रहता है, इस प्रकार मानव का सर्वांगीण विकास मानसिक स्वास्थ्य पर ही निर्भर है। संत तुकाराम ने कहा है— “मन

* शोधार्थी, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, बूंदी, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान।

** शोध पर्यवेक्षक, आचार्य, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, बूंदी, राजस्थान।

कर प्रसन्न सर्व सिद्धि चे कारण" अर्थात् मन को प्रसन्न रखो वही सब सिद्धियों का मूल है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने मानसिक स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए कहा है— "मानसिक स्वास्थ्य मानसिक कल्याण की एक स्थिति है जो लोगों को जीवन के तनावों से निपटने, अपनी क्षमताओं का एहसास करने, अच्छी तरह से सीखने और अच्छी तरह से काम करने और अपने समुदाय में योगदान करने में सक्षम बनाती है। यह स्वास्थ्य और कल्याण का एक अविच्छिन्न अंग है जो निर्णय लेने, रिश्ते बनाने और जिस दुनिया में हम रहते हैं उसे आकार देने की हमारी व्यक्तिगत और सामूहिक क्षमताओं को रेखांकित करता है। " मानसिक अस्वस्थता के कारण ही बेरोजगार, गरीबी, अपराध, दुर्व्यसन तथा विखण्डित परिवार आदि सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। आज हम पाश्चात्य जीवन शैली की चकाचौंध में आकर हमारे ऋषि-महर्षियों द्वारा प्रदत्त अमूल्य व अक्षय ज्ञान-विज्ञान निधि को भूल गए हैं परिणामस्वरूप बच्चे, नौजवान व बूढ़े व्याकुलता, चिन्ता, तनाव, अस्थिरता, निराशा, नकारात्मकता, अकर्मण्यता आदि मानसिक बीमारियों के आगोश में फँसते जा रहे हैं। राष्ट्र के कर्णधार नवयुवकों की अकर्मण्यता, तनाव व हिंसा की स्थिति राष्ट्र को शारीरिक, मानसिक, आर्थिक सामाजिक व भावनात्मक रूप से पंगु बना रही है इसलिए आज हम मानसिक आरोग्य हेतु स्थायी, दुष्परिणाममुक्त, सफल, प्रमाणिक और सरल चिकित्सीय उपचार की आवश्यकता महसूस कर रहे हैं अतः विभिन्न चिकित्सा पद्धतियाँ आज चिकित्सा पूरक के रूप में योग को अपना रही हैं। अपने चिकित्सकीय गुणों की वजह से आज सम्पूर्ण विश्व में योग की लोकप्रियता दिनोदिन बढ़ती जा रही है। योग मनुष्य के सर्वांगीण विकास का सर्वोत्तम उपाय है क्योंकि यह स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा तथा रोगी व्यक्ति के रोग का प्रशमन करता है। आहार, विहार, आचार और विचार इसके मुख्य घटक हैं। यह शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य के लिए एक साथ कार्य करता है। योग का केवल किसी जाति, लिंग, मत, पंथ या सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्ध नहीं है अपितु यह तो प्रत्येक मनुष्य के उठने-बैठने, चलने-फिरने, सोने, खाने-पीने, पढ़ने-लिखने, सोचने-विचारने हर प्रकार की दैनिकचर्या में निहित है। योग तो सार्वभौमिक सुख, एक जीवन शैली या आचार संहिता है, जो मनुष्य को प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाने में सहयोग प्रदान करता है। योग आन्तरिक ऊर्जा को सक्रिय करने की तकनीक है, व्यक्तित्व सामंजस्य का विज्ञान है, स्वास्थ्य बीमा है, स्वास्थ्य सुरक्षा की गारण्टी है। योग से चिन्ताओं से मुक्ति, आरोग्य की भावना में वृद्धि, मन की शान्ति, धैर्य, आत्मविश्वास में वृद्धि, एकाग्रता में वृद्धि, प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि, जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण, जीवन प्रत्याशा की दर में वृद्धि, चिड़चिड़ेपन के स्तर में कमी, आत्मनिर्भरता में वृद्धि, आत्मानन्दानुभूति, स्वरूप स्थिति तथा आत्म दर्शन की प्राप्ति होती है।

राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य और मनोरोग विज्ञान संस्थान द्वारा किए गए अनुसन्धानों ने सिद्ध किया है की संज्ञानात्मक व्यवहार सम्बन्धी पक्ष में सुधार हेतु योग एक कारगर औपधि है। उचित समय पर रोजगार न मिल पाने की वजह से युवा मानसिक स्वास्थ्य खोते जा रहे हैं, इसके उपायभूत योग वैश्विक पटल पर आजीविका का साधन बनकर उभरा है। योग की बढ़ती लोकप्रियता व उपयोगिता के कारण आज योग प्रशिक्षकों व योग थेरेपिस्ट्स की माँग बढ़ रही है। योग अवसादग्रस्त रोगियों के जीववैज्ञानिक जैसे— संज्ञानात्मक क्षमताओं में सुधार, सहानुभूति पूर्ण तरीके में वृद्धि, कॉर्टिसोल स्तर को कम करने, न्यूरो इन्फ्लेमेशन में कमी तथा स्कीजोफ्रेनिया के रोगियों में सामाजिक, व्यावसायिक आदि अन्य गतिविधियों हेतु उन्हें प्रेरित कर स्वानुभूतियों को पहचानने की क्षमता को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ है। धूमपान, मादक पदार्थों की लत से ग्रसित लोगों की नकारात्मक मनस्थिति में सुधार हेतु योग एक असरदार उपाय है। यह नशे की लत से ग्रसित व्यक्तियों में सकारात्मकता, आशावादी दृष्टिकोण, आत्मविश्वास, चेतना आदि के स्तर में वृद्धि करता है। डिमेंशिया, फाइब्रोमायल्जिया, इरिटेबल बॉवेल सिंड्रोम, पोस्ट ट्रॉमेटिक स्ट्रेस डिस ऑर्डर, ऑब्सेसिव कम्पल्सिव डिसऑर्डर, ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर आदि विकारों तथा व्याधियों से ग्रसित लोगों के लिए योग कारगर उपाय है। क्रोध, भय, दुःख तथा मानसिक तनाव के कारण एड्रेनल ग्लैंड से कॉर्टिसोल के अत्यधिक स्राव से रक्तचाप, हृदय गति तथा रक्त शर्करा के स्तर पर बुरा असर पड़ता है क्योंकि कॉर्टिसोल का स्राव अधिक होने से मनोदशा को नियन्त्रित करने वाले हार्मोन्स से डोपेमाइन के स्राव पर असर पड़ता है। योग वात, पित्त, कफ को संतुलित करता है। र्नायु तन्त्र और प्रमस्तिष्कमेरु को दुरुस्त करता है। हार्मोन्स की क्षरण क्रिया को संतुलित करता है।

सहनशक्ति, स्थिरता, सक्रियता, प्रतिरोधक शक्ति में वृद्धि कर योग शोक, चिन्ता, तनाव, अवसाद, आत्मग्लानि, मोह, राग-द्वेष आदि व्यक्तिगत कमजोरियों को समाप्त कर देता है। ऐसे लोगों से युक्त समाज समतापूर्ण प्रगतिशील होता है। कॉर्टिकल हार्मोन को नियन्त्रित व संतुलित करने में ध्यान योग की महती भूमिका है। ध्यान से तनाव व चिन्ता से मुक्ति, स्मृति बढ़ना, आत्म जागरूकता, आत्मानुशासन, सकारात्मक दृष्टिकोण तथा उपयोगी व अच्छी आदतों का निर्माण होता है। बारह मुद्राओं से युक्त सूर्य नमस्कार से सौर नाड़ी के जाल तंत्र में समुचित संतुलन बना रहता है तथा शरीर में रक्त संचार का प्रवाह भी ठीक हो जाता है।

संसार में जितने जीव-जन्तु हैं, उतनी संख्या में आसन बताये गये हैं। परम्परा के अनुसार भगवान शिव ने पार्वती को आसनों की शिक्षा देते हुए चौरासी लाख आसन बताये हैं। इनमें भी चौरासी आसन श्रेष्ठ माने गये हैं। आसनों का उद्देश्य शारीरिक और मानसिक कष्टों से मुक्ति दिलाना है। इनसे मानसिक और भावात्मक संतुलन प्राप्त होता है।

मानसिक स्वास्थ्य हेतु लाभकारी कुछ योगासन

- **वीरभद्रासन-** इसे योद्धा मुद्रा भी कहा जाता है। वीरभद्रासन की कई मुद्रायें हैं। सबसे पहले सीधी मुद्रा में खड़े होकर, भुजाओं को फर्श के समानांतर उठाते हुये सिर को बायीं तरफ मोड़ें। बाएं पैर को भी गन्धे डिग्री कोण पर बायीं तरफ मोड़ें। यह मन व मस्तिष्क को शान्त कर ध्यान केन्द्रित करने में सहायता प्रदान करता है।
- **बजासन या डायमंड पोज-** दोनों जांघों को बज्र के समान कठोर करके दोनों पैरों को गुदा के दोनों तरफ लगायें। यह ध्यान केन्द्रित करने में सहायक आसन है।
- **अंजनेयासन या हाई लंज पोज-** सीधे खड़े होकर बाएं पैर को आगे व दाएं पैर को पीछे रखें अब बाया घुटना मोड़ते हुए आगे ले जायें तथा दाएं पैर के घुटने को मोड़ते हुए तलवे को ऊपर की तरफ कर भूमि पर रख ले। दोनों हाथों को जांघों पर रख ले। गहरी सांस के साथ बाएं पैर के पंजे पर हल्का जोर देकर दोनों हाथों को ऊपर ले जायें। कमर को सीधी कर दोनों भुजाओं को सीधा ऊपर कर हाथों को जोड़ ले अब गहरी सांस लेकर धीरे-धीरे हाथों को छोड़ दे। यह आसन मन-मस्तिष्क की शान्ति में मददगार है।
- **गरुडासन या ईगल पोज-** दोनों जांघों और दोनों घुटनों से भूमि को दबाए और शरीर को स्थिर रखें तथा दोनों घुटनों पर दोनों हाथ रखकर बैठ जायें। यह ध्यान केन्द्रित करने में सहायक है।
- **नटराजासन या नर्तक मुद्रा-** सीधे भूमि पर खड़े होकर दाएं पैर को पीछे की तरफ उठायें और दाएं हाथ से पैर के पंजे को पकड़े बाएं पैर से शरीर का संतुलन बनाए रखें, बाएं हाथ को बाएं पैर पर रखें या कंधे की रीढ़ में फैलायें दृष्टि हाथ की उंगलियों पर रखें फिर दूसरे पैर से इस अभ्यास को दोहराएं। यह आसन अवसाद व चिन्ता से मुक्ति में मददगार है।
- **पद्मासन-** बायीं पैर दायीं जांघ पर तथा दायीं पैर बायीं जांघ पर रखकर व्युत्क्रम रीति से हाथों को पीठ तक ले जायें फिर दाहिने हाथ से बाएं पैर का अंगूठा और बाएं हाथ से दाहिने पैर का अंगूठा कसकर पड़कर छोड़ी को हृदय पर लगाकर नासिकग्रभाग को देखें। यह आसन तनाव मुक्त कर प्रसन्नता प्रदान करता है।
- **पश्चिमोत्तानासन-** दोनों पैरों को दंड के समान सहज भाव से भूमि पर फैलायें और पैर के अंगूठों को पकड़ ले फिर दोनों जांघों के बीच में सिर को रखें तो यह पश्चिमोत्तानासन होता है। स्नायु तथा मांसपेशियों में रक्त का संचार बढ़ता है तथा चिड़चिड़ापन, क्रोध, तनाव व नकारात्मकता को दूर करता है।
- **गोमुखासन-** भूमि पर दोनों पैरों को रखकर पीठ के दोनों बंगलो में लगाकर शरीर को सीधा रख कर गोमुख के समान ऊंचा करके बैठना चाहिए। यह एक सरल आसन है। इसके अभ्यास से थकान, चिंता एवं तनाव दूर होता है तथा स्नायु तंत्र मजबूत होता है।

- **ताड़ासन-** दोनों जांघों और घुटनों से भूमि को दबायें और शरीर को स्थिर रखें तथा दोनों घुटनों पर दोनों हाथ रख कर बैठ जायें। अनिद्रा, बेचैनी से राहत दिलाता है साथ ही यह साइटिका, आमवात तथा हाइड्रोसील के उपचार में सहायता प्रदान करता है।

प्राणायाम तो मानो मानसिक आरोग्य के लिये संजीवनी है। प्राणायाम से पूर्व नाड़ी शोधन प्राणायाम को आवश्यक माना है। नाड़ी शुद्धि प्राणायाम से नाड़ियों के अवरोध दूर हो जाते हैं तथा रक्त प्रवाह सुचारु रूप से होने लगता है जिससे मस्तिष्क तक उचित मात्रा में रक्त पहुंचता है और मानसिक तनाव दूर हो जाते हैं। प्राणायाम के सहित, शीत्कारी, सूर्यभेदी, कपालभाति, अनुलोम-विलोम, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली आदि प्रमुख भेद बताये गये हैं। ये सभी मानसिक स्थिरता के लिये आवश्यक हैं। प्राणायाम प्राणवायु को नियंत्रित करता है। प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य स्वायत्त तंत्रिका तंत्र को नियंत्रित कर मानसिक कार्यों को प्रभावित करना है। प्राणायाम के पूरक, कुम्भक, रेचक ये तीन अंग हैं।

लेकिन आसन, ध्यान, प्राणायाम शारीरिक व्यायाम, मुद्रा आदि क्रिया विशेष का नाम ही योग नहीं है बल्कि योग एक सम्पूर्ण जीवन दर्शन व जीवन शैली है। यह तो धित में निहित सम्पूर्ण शंकाओं, जिज्ञासाओं तथा समस्याओं का एकमात्र समाधान है। प्राणायाम, आसनादि तो योग अवस्था तक पहुंचने के सोपान मात्र हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि इस अष्टांग मार्ग पर क्रमबद्ध चलकर हम परमानन्द स्वरूप ब्रह्म में लीन हो सकते हैं। यदि हम अष्टांग मार्ग पर न चलकर यदि प्राणायाम, आसन ध्यान, मुद्रा आदि मार्गों को भी जीवन में अपनाते हैं तो इहलोक में भी त्रिविध दुखों से निवृत्त होकर अपना जीवन आनन्ददायी व अमृतमय बना सकते हैं। इस प्रकार दुनिया भर में अब चिकित्सा के साथ-साथ योग अपनाने पर भी जोर दिया जा रहा है। योग स्वस्थ जीवन जीने की कला और विज्ञान है। यह सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित आध्यात्मिक आत्मानुशासन है।

निष्कर्ष

योग मानव को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक पक्ष से सशक्त व मजबूत बनाता है। यह घातक व असाध्य मनोरोगों के खिलाफ एक निवारक उपाय के रूप में काम कर रहा है। चिकित्सा की अन्य पद्धतियों के विकल्प के रूप में आज योग दुनिया भर के कई देशों में अपनाया जा रहा है परिणामस्वरूप योग करने वालों की संख्या में प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है, इस प्रकार निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि मानसिक आरोग्य के लिए तो योग एक संजीवनी ही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आचार्य तीर्थ वेदान्त, 2022, ऋग्वेद 8.18.10 भाग-3, मनोज पब्लिकेशन्स दिल्ली, पृ.सं. 248
2. तीर्थ, आचार्य वेदान्त, 2022, अथर्ववेद 19.67 भाग-2, मनोज पब्लिकेशन्स दिल्ली, पृ.सं. 384
3. त्रिपाठी, ब्रह्मानन्द, 2024, चरक संहिता भाग - 1, सूत्र-1.15, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
4. आरोग्य अंक, संवत् 2017, कल्याण, गीता प्रेस गोरखपुर
5. योजना मासिक पत्रिका, जून 2023, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय नई दिल्ली
6. योगांक, संवत् 2022 कल्याण, गीता प्रेस गोरखपुर
7. विद्यालंकर, सुभाष, 2019, योग एवं मानसिक स्वास्थ्य, ज्ञान भारती पब्लिकेशन्स दिल्ली
8. कुरुक्षेत्र मासिक पत्रिका, जून 2022, ग्रामीण विकास मंत्रालय नई दिल्ली
9. दास, संजय, 2019, योग आसन और स्वास्थ्य, पिलग्रिम्स पब्लिशिंग वाराणसी
10. विजय कुमार, 2021, योग एवं स्वास्थ्य, चौखम्बा विश्व भारती वाराणसी
11. सरस्वती, निरजनानन्द, 2004, घेरुड संहिता-योगासन प्रकरण, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर, बिहार



संगोष्ठी प्रमाण-पत्र



**S.S. JAIN SUBODH P.G.
MAHILA MAHAVIDYALAYA**
Rambagh Circle, Jaipur



INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY CONFERENCE
on

Emerging Trends and Perspectives in Research and Innovations

IMCETPRI-2024

HYBRID MODE
(February 23-24, 2024)

Certificate of Participation

This is to certify that Prof./Dr./Mr./Ms. HEMRAJ PALSANIA, RESEARCH SCHOLAR
of Government college Bundi, Bundi
has participated/ presented a paper/poster titled योग उपनिषदों में वर्णित यौगिक सुद्राओं का
वैशिष्ट्य

His/ Her participation is highly appreciated.


Dr. Indu Sharma
Conference Convener


Prof. (Dr) Neelima Gupta
Convener, CRSI (Raj. Chapter)
Convener, SMC (Jaipur Chapter)


Prof. (Dr) Renu Joshi
Conference Chairperson


Shri V.C. Daga
Conference Patron



icsimt
2024

20-21
December
2024



Hybrid
Mode

INTERNATIONAL CONFERENCE

On
Sustainable Practices, Innovations & Emerging Trends in Global Current Scenario:
Multidisciplinary Research and Technological Issues
VENUE : Vedic Kanya PG Mahavidyalaya, Jaipur

CERTIFICATE

Reg. No.97.....

This is to certify that

Prof./Dr./Mr./Ms. **HEMRAJ PALSANIA**

RESEARCH SCHOLAR, SANSKRIT GOVERNMENT COLLEGE BUNDI (RAJ.)

KOTA UNIVERSITY, KOTA

has participated in the conference. He/She has also presented/contributed a paper
entitled "योग, उपनिषदों में वर्णित, नाडीशुद्धि, प्राणायाम की उपादेयता"

Dr. Latika Jha
Chairperson-ICSIMT 2024
Principal
Vedic Kanya PG Mahavidyalaya, Jaipur

Dr. Ravi Kant Modi
Convener-ICSIMT 2024
General Secretary
Inspira Research Association, Jaipur

Dr. Neha Khatri
Secretary-ICSIMT 2024
IQAC Coordinator
Vedic Kanya PG Mahavidyalaya, Jaipur

Prof. (Dr.) S.S. Modi
President
Inspira Research Association
Jaipur

DAY 1



DAY 2



VEDIC KANYA PG MAHAVIDYALAYA
Raja Park, Jaipur
(Affiliated to University of Rajasthan, Jaipur)
www.vedickanyapgccollege.in



INSPIRA RESEARCH ASSOCIATION-IRA
www.inspirajournals.com

Organized By: